# दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

**डॉ. अश्विनी महाजन**

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

**प्रो. प्रसून दत्त सिंह**

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

**डॉ. फूल चन्द**

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

**वर्ष** : 13 **अंक** : 6 ❑ नवम्बर–दिसम्बर, 2021

# दृष्टिकोण


## संपादक मंडल

**डॉ. अरुण अग्रवाल**
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो
**डॉ. दया शंकर तिवारी**
दिल्ली विश्वविद्यालय
**डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी**
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी
**डॉ. प्रकाश सिन्हा**
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
**डॉ. दीपक त्यागी**
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
**डॉ. अरुण कुमार**
रांची विश्वविद्यालय, रांची
**डॉ. महेश कुमार सिंह**
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका
**डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि**
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
**डॉ. पूनम सिंह**
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
**डॉ. एस. के. सिंह**
पटना विश्वविद्यालय, पटना
**डॉ. अनिल कुमार सिंह**
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा
**डॉ. मिथिलेश्वर**
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
**डॉ. अमर कान्त सिंह**
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
**डॉ. ऋतेश भारद्वाज**
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
**डॉ. स्वदेश सिंह**
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
**डॉ. विजय प्रताप सिंह**
छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर



**संपादकीय सम्पर्क:**

448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091
फोन : 011-22753916, 40564514, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610
e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
Website : www.ugc-care-drishtikon.com

©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

**ISSN 0975-119X**

**नोट:** पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

# सम्पादकीय

पूरे देश की निगाहें एक फरवरी 2021 को संसद में पेश होने वाले बजट पर लगी हैं। यूं तो बजट के बारे में हर बार ही उत्सुकता होती है, कि वित्तमंत्री के पिटारे में विभिन्न वर्गों के लिए क्या योजनाएं हैं? क्या सरकार आयकर में कोई छूट देगी? कारपोरेट टैक्स के बारे में सरकार का क्या नजरिया रहेगा? देशी और विदेशी निवेशकों पर क्या कर प्रावधान होंगे? बजट का शेयर बाजारों पर क्या असर पड़ेगा? शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, बैकिंग आदि के बारे में क्या नजरिया होगा? कौन सी नई जनकल्याणकारी योजनाएं होंगी?

लेकिन हमें समझना होगा कि इस बार का बजट एक महामारी के बाद का बजट है। पिछली एक सदी के बाद पहली बार ऐसी महामारी आई, जिसने पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया। हालांकि भारत में इस बाबत हालात (केरल और महाराष्ट्र को छोड़कर) सुधरे हुए दिखाई देते हैं, लेकिन इस महामारी के कारण हुए नुकसानों की भरपाई बहुत जल्द होने वाली नहीं है। पिछले वर्ष हमने देखा कि कैसे महामारी के कारण आवाजाही बाधित हुई, जिसके कारण न केवल मांग बाधित हुई, काम-धंधों पर भी जैसे ब्रेक लग गया। कुछ व्यवसायों में घर से काम (वर्क फ्रॉम होम) थोड़ी-बहुत मात्रा में चला, लेकिन अधि कांश मामलों में आर्थिक गतिविधियां पूरे या अधूरे तौर पर बाधित रही। मजदूरों का बड़े शहरों से पलायन, कामगारों का काम से निष्कासन या उनके वेतन में भारी कटौती, इस महामारी के कालखंड में सामान्य बात बन गई। ऐसे में जीडीपी के प्रभावित होने के साथ-साथ, सरकार का राजस्व भी प्रभावित हुआ।

महामारी से पूर्व भी अर्थव्यवस्था कई कारणों से मंदी की मार झेल रही थी। पूर्व में बैकों द्वारा दिए गए ऋणों की वापसी नहीं होने के कारण, बैंकों के बढ़ते एनपीए के चलते बैंकों का मनोबल ही नहीं गिरा था, लोगों का बैंकों पर विश्वास भी घटने लगा था। उसके साथ ही साथ आईएलएफएस सरीखे गैरबैंकीय वित्तीय संस्थानों में घोटालों के कारण वित्तीय क्षेत्र के संकट और अधिक बढ़ गए थे। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों पर नकेल कसने के प्रयासों में बैंकों द्वारा कार्य निष्पादन भी प्रभावित हो रहा था और व्यवसाय भी। बैंकों द्वारा ऋण भी कम मात्रा में दिए जा रहे थे। कुल मिलाकर नए निवेश भी घटे और चालू आर्थिक गतिविधियां भी। कठिन परिस्थितियों में जब पिछले साल वित्तमंत्री ने बजट पेश किया था, वर्ष 2019-20 में राजस्व उम्मीद से कम दिखाई दिया था लेकिन यह अपेक्षा जरूर थी कि इसकी भरपाई 2020-21 में हो सकेगी।

लेकिन उसके पश्चात वर्ष 2020-21 में भी महामारी के प्रकोप ने राजस्व में सुधार की सभी अपेक्षाओं पर पानी फेर दिया है। वित्तीय वर्ष 2020-21 के पहले 9 महीनों में जीएसटी से कुल राजस्व 7,79,884 करोड़ रूपए ही प्राप्त हुआ है, जबकि इस कालखंड में अपेक्षा न्यूनतम 10 लाख करोड़ रूपए की थी। जीएसटी में इस कमी का असर हालांकि केन्द्र और राज्य, दोनों के राजस्व पर पड़ा है, लेकिन राज्यों के हिस्से की भरपाई (14 प्रतिशत वृद्धि के साथ) देर-सबेर केन्द्र सरकार को नियमानुसार करनी ही पड़ेगी। इस कारण केन्द्र को इसका नुकसान राज्यों से कहीं ज्यादा होगा। दूसरे इस वर्ष वैयक्तिक आयकर और निगम (कारपोरेट) कर भी उम्मीद से कम रहने वाला है। सरकार के इस वर्ष का विनिवेश का लक्ष्य भी पूरा होने की दूर-दूर तक कोई संभावना दिखाई नहीं देती।

एक तरफ जहां महामारी के चलते सरकारी राजस्व में भारी नुकसान हो रहा था, रोजगार खोने के कारण भारी संकट से गुजर रहे मजदूरों और अन्य प्रभावित वर्गों के जीवनयापन की कठिनाईयों के कारण उन्हें खाद्य सामग्री उपलब्ध कराने हेतु सरकार का दायित्व तो था ही, गांवों में लौट रहे मजदूरों को रोजगार दिलाने का भी दबाव था। 80 करोड़ लोगों को लगभग 9 महीने तक मुफ्त भोजन उपलब्ध कराया गया। महामारी से निपटने हेतु सरकार का स्वास्थ्य पर खर्च भी बढ़ चुका था। महामारी से पार पाने हेतु कोरोना योद्धाओं, शिक्षकों एवं अन्य वर्गों को वैक्सीन उपलब्ध कराने की भी आवश्यकता है।

महामारी के कारण बाधित गतिविधियों को दुबारा शुरू करने की भी जरूरत थी। यह सरकार की मदद के बिना नहीं हो सकता था। पूरी तरह से छिन्न-भिन्न हुई आर्थिक गतिविधियों को पुनः पटरी पर लाना, महामारी की मार झेल रही आम जनता को राहत देना, रोजगार खोने वालों के लिए राहत और रोजगार की व्यवस्था करना, पहले से ही मंदी की मार झेल रही अर्थव्यवस्था को सही रास्ते पर लाना, यह सरकार का दायित्व भी है और प्राथमिकता भी।

दुनिया भर में सरकारों ने इस महामारी से निपटने के लिए राहत पैकेजों की व्यवस्था की है। उसी क्रम में भारत सरकार ने भी अपने सभी राहत उपायों की घोषणा की है। ये सभी राहत उपाय कुल मिलाकर देश की जीडीपी के लगभग 10 प्रतिशत के बराबर बताए जा रहे हैं। इन राहत अथवा प्रोत्साहन पैकेजों में सरकार ने लघु, सूक्ष्म और मध्यम उद्यमों को प्रोत्साहन, प्रवासी मजदूरों एवं किसानों के लिए राहत पैकेज, कृषि विकास, स्वास्थ्य उपायों, व्यवसायों को अतिरिक्त ऋणों की व्यवस्था, ईज ऑफ डूइंग बिजनेस समेत कई उपायों की घोषणा की गई है। सरकार ने हाल ही में रियल ईस्टेट क्षेत्र को राहत एवं प्रोत्साहन देने, इलैक्ट्रॉनिक्स, टेलीकॉम, मोबाईल फोन और एक्टिव फार्मास्यूटिकल उत्पादों के उत्पादन को प्रोत्साहन देने हेतु 'प्रोडक्शन लिंक्ड' प्रोत्साहनों की भी घोषणा की है।

पिछले साल का बजट प्रस्तुत करते हुए, वित्तमंत्री ने वर्ष 2020-21 के लिए राजकोषीय घाटे का लक्ष्य जीडीपी को 3.5 प्रतिशत रखा था। लेकिन बदले हालातों में घटे सरकारी राजस्व और बजट अनुमानों से कहीं ज्यादा खर्च के दबाव के चलते इस वर्ष का राजकोषीय घाटा अनुमान से कहीं ज्यादा हो सकता है। माना जा रहा है कि इस महामारी का बड़ा असर राजकोषीय घाटे पर पड़ सकता है। माना जा रहा है कि वर्ष 2020-21 के लिए यह राजकोषीय घाटा जीडीपी के 8 प्रतिशत तक पहुंच सकता है।

महामारी से निपटने हेतु राहत के प्रयासों की अभी शुरूआत भर हुई है। आगामी वर्ष में इन प्रयासों को और आगे बढ़ाने की जरूरत होगी। सरकार द्वारा आत्मनिर्भरता के संकल्प और अर्थव्यवस्था में सुधार हेतु तमाम प्रयासों के चलते अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भी इस वर्ष भारत की जीडीपी में 11.5 प्रतिशत संवृद्धि का अनुमान दिया है। इसके चलते राजस्व में वृद्धि तो होगी, लेकिन सरकार को जीडीपी ग्रोथ की इस गति को बनाए रखने के लिए और अधिक प्रयास करने की जरूरत होगी। ऐसे में केन्द्र सरकार का राजकोषीय घाटा अधिक रहेगा। लेकिन इसके साथ ही साथ केन्द्र सरकार ने कोरोना से उपजी समस्याओं से निपटने हेतु राज्य सरकारों को भी अतिरिक्त ऋण लेने के लिए अनुमति दी है। विशेषज्ञों का मानना है कि इस वर्ष राज्यों के बजट में भी राजकोषीय घाटा जीडीपी के 4 से 5 प्रतिशत के बीच रह सकता है। ऐसे में देश में कुल राजकोषीय घाटा 10 से 11 प्रतिशत तक पहुंच सकता है।

लेकिन समय की मांग है कि अर्थव्यवस्था को गति देने हेतु सभी प्रकार के प्रयास किए जाएं। कुछ समय तक एफआरबीएम एक्ट को स्थगित रखते हुए देश की अर्थव्यवस्था को गति देना जरूरी होगा। वित्तमंत्री इस बात को समझती हैं और आशा की जा सकती है कि जहां महामारी से प्रभावित वर्गों को सरकारी बजट का समर्थन मिलेगा, अर्थव्यवस्था को गति देने हेतु प्रयासों में कोई कंजूसी नहीं की जाएगी। वर्षों से चीन से सस्ते आयातों की मार झेल रही अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भरता और 'वोकल फॉर लोकल' का संकल्प एक नई दिशा और ऊर्जा देगा और यह बजट उस दिशा में मील का पत्थर साबित होगा।

**संपादक**

# इस अंक में


पुलिस प्रशासन-संगठन, समस्या और सुझाव–डॉ० शेषाराम मीणा 1
नाटककार भवभूति की कृतियों में पर्यावरण चिन्तन–डॉ० बाबूलाल मीना 6
राजनीतिक सामाजीकरण एवं विकास : एक अध्ययन–कृष्णा बैठा 12
'दृश्य से अदृश्य का सफर में व्यक्त मनोवैज्ञानिकता'–प्रो० शर्मिला सक्सेना 17
प्राचीन भारत में दण्ड-व्यवस्था का स्वरूप–कुंवर विक्रम सूर्यवंश 21
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में चित्रित स्त्री–डॉ० राम किशोर यादव 25
भारत में पंचायती राज व्यवस्था: एक समीक्षात्मक अध्ययन–अरूण कुमार 29
स्वातंत्र्योत्तर नेहरूवादी राजनीति में पत्रकारिता का स्वरूप–निधि सिंह 33
जिला सरकार की परिकल्पना व अनुप्रयोग : एक विमर्श–राजू कुमार पाण्डेय 35
पर्यावरण पर आधुनिक कृषि के प्रभावों का भौगोलिक विश्लेषण–हरि शंकर गुप्ता 38
गुरु नानक वाणी में प्रस्तुत पंजाबी संस्कृति : एक अध्ययन–अमृतपाल कौर 42
हिन्दी साहित्य एवं अनुवाद : अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में–डॉ० (श्रीमती) कंचना सक्सेना; ऋतु वर्मा 45
जनप्रतिनिधियों का राजनीति संस्कृति स्वरूप संबंधी विचार विमर्ष–डॉ० जितेन्द्र पाटीदार 48
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी साहित्य–डॉ० दिनेश्वर कुमार महतो 51
वर्तमान समय में ई-गवर्नेंस के माध्यम से ग्रामीण परिवेश का चहुमुखी विकास 'एक अध्ययन'–डॉ. कविता अग्रवाल; चन्दना शर्मा 53
सरोज स्मृति पर सम्यक् दृष्टि–डॉ० हरिश्चन्द्र अग्रहरि 56
हवेली संगीत एवं पंडित जसराज का अंत: संबंध–स्नेहा कुमारी 59
छात्राध्यापकों के संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन–प्रज्ञा सिंह 62
भारत में कृषि के विकास में कृषि प्रबंधन की भूमिका–प्रियंका 67
सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में व्यक्त दलित स्त्री चेतना–डॉ० अखिलेश कुमार वर्मा 70
राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020: सक्षमता का सबल साधन–डॉ० अनिल कुमार पाण्डेय 73
उत्तराखण्ड में सड़क-पुल आन्दोलन में गढ़वाली पत्र की भूमिका–डॉ. मनोज सिंह बाफिला 76
मान्यवर कांशीराम की विचारधारा का दलित कविता पर प्रभाव–मुकेश कुमार भारतीय 81
मुगलकालीन विदेशी यात्रियों की दृष्टि में भारतीय महिलाओं की स्थिति–आशु त्यागी 87
गाँधी दर्शन में ब्रह्मचर्य की अवधारणा–दीक्षा 91
भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रारंभिक शिक्षा के अधिकार की ऐतिहासिक समीक्षा–डॉ० शिखा चतुर्वेदी 93
'हंस' सम्पादकीय दृष्टि और हाशिए का समाज–ममता यादव; डॉ० यशवन्त वीरोदय 96
भाषा और साहित्य: बौद्ध धर्म की देन–डॉ० कविता लखैयार 99
बौद्ध धर्म और अशोक: एक संक्षिप्त अवलोकन–डॉ० नीता लखैयार 101
जैन मूर्तिकला का विकास–रवींद्र सिंह 103
तिब्बत-चीन संवाद: अनुबंध के लिए योजना–डॉ० सच्चिदा नन्द राम 106
वैदिककालीन नारी शिक्षा–रोहित कुमार सिंह 109
गुप्तकालीन स्थापत्य कला क्षेत्र में उपलब्धियों का मूल्यांकन–डॉ० कविता सिंह; अजय कुमार सिंह 112
भारत-पाकिस्तान संबंधों के संदर्भ में शांति की मध्यस्था–डॉ० अरूण कुमार दीक्षित 115
प्राथमिक शिक्षा में नए आयाम–डॉ० ममता दीक्षित 118
महात्मा गाँधी और भारत छोड़ो आन्दोलन -1942–संजय कुमार पासवान 121
'दीवार में एक खिड़की रहती थी' उपन्यास में मूल्यबोध–रश्मि 124

## दृष्टिकोण


कामकाजी एवं घरेलू महिलाओं के बच्चों में बौद्धिक विकास–जागृती कुमारी 126
शिक्षा से ही मिलेगी नारी को बंधनों से मुक्ति - महादेवी वर्मा–डॉ० राजन तनवर 130
आधुनिक युग के विश्व में जनसंख्या एवं पारिस्थितिकीय-संकट–डॉ० शीशराम यादव; डॉ० ललिता यादव 132
स्वामी विवेकानन्द की संचार नीति में भाषायी चिन्तन–डॉ० जुगल किशोर दाधीच; रविन्द्र सिंह 134
हिंदी दलित साहित्य में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना: एक अध्ययन–भानु प्रताप 138
उच्चतर माध्यमिक स्तर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि पर एक अध्ययन–विनोद अवस्थी; डॉ० आशावती वर्मा गाइड 144
भारत में राष्ट्रीय पोषण प्रबंधन नीतियों का मूल्यांकन–डॉ० बबिता बी० शुक्ला 149
सामाजिक जीवन का यथार्थ और कथा साहित्य: अलका सरावगी–डॉ० सविता वर्मा; खेमवती साहू 152
विरमगाम में देसाई राजवंश की स्थापना–पटेल बाबूभाई अमराभाई 154
नरेन्द्र मोदी काल में भारत-नेपाल सम्बन्ध–डॉ० मन्मथ नारायण सिंह 157
भारत का परमाणु सिद्धान्त: चीन व पाक के सन्दर्भ में विश्लेषण–डॉ० रजवन्त सिंह 161
डिजिटल युग का हिंदी साहित्य पर प्रभाव और डिजिटल छत्तीसगढ़ी की स्वरूप संभावनाएं–डॉ० बृजेन्द्र पाण्डेय 165
गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में प्रकृति चित्रण–प्रो० (डॉ०) कल्पना शर्मा; नेहा लाक्षाकर 168
भारतीय साहित्य, सभ्यता, संस्कृति का प्राचीन स्वरूप और महत्त्व–दिलीप कुमार 172
कृषि विकास एवं मृदा उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव–मनोज पटेल 175
समकालीन साहित्य में सामाजिक चेतना–डॉ० हीरालाल शर्मा 178
नाटककार भवभूति की कृतियों में प्रकृति एवं पर्यावरण चिन्तन–उदयन कुमार 180
स्वयं सहायता समूह, लघु ऋण एवं महिला सशक्तिकरण: एक विश्लेषण–डॉ० राजेश गौतम 186
निष्कवच: पुरुषों को छलती 'नीरा' के बहाने उभरता नया नारी रूप–डॉ० नमिता जायसवाल 188
राष्ट्रीय बंसत की प्रथम कोकिला सुभद्रा कुमारी चौहान–डॉ० रोशनी मिश्रा 191
जॉन रॉल्स का न्याय सिद्धांत–डॉ० आलोक कुमार पाण्डेय 194
वैदिक कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था–डॉ० प्रेरणा माथुर 196
कोविड-19 महामारी और भारतीय प्रशासन की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–निखिल गुप्ता 200
भारत में 'पुण्य' की अवधारणा - एक विवेचन–डॉ० हर्षवर्द्धन मिश्र 204
कमलेश्वर के स्त्री पात्र ('इतने अच्छे दिन' के विशेष संदर्भ में)–डॉ० राजेश कुमार 208
मानवीय विकास में शारीरिक शिक्षा का ध्येय एवं उद्देश्य: एक अवलोकन–जितेन्द्र चौधरी 211
हिंदी भाषा का बढ़ता प्रयोग और महत्व–डॉ० रीना देवी 214
"बलबीर सिंह 'करुण' के प्रबन्धकाव्यो में युगबोध"–डॉ० साधना तोमर; एकता 217
उच्च शिक्षा एवं वैश्वीकरण: भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रभाव एवं संभावनाएँ–डॉ० श्याम लाल निराला 220
आधुनिक अवधी का रामभक्ति काव्य: एक विवेचन–डॉ० चित्रा यादव 224
पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता–ज्ञान प्रकाश 228
प्राचीन भारत मे महिलाओं की शैक्षिक व सामाजिक स्थिति: एक सामाजशास्त्रीय अध्ययन–राम प्रताप चौरसिया 231

# पुलिस प्रशासन-संगठन, समस्या और सुझाव


## डॉ० शेषाराम मीणा

*पूर्व शोधार्थी लोक प्रशासन विभाग, मो.लाल सु. विश्वविद्यालय, उदयपुर*

*व्याख्याता, राजनीति विज्ञान, रा. सी. से. वि., गुड़ा, जिला पाली*


राजस्थान भारत में भारतीय पुलिस बल की मौजूदा व्यवस्था भारतीय पुलिस अधिनियम 1861 आई.पी.ए. के द्वारा निर्देशित होती है। जिसके द्वारा ही पुलिस विभागों की संरचना एवं उनके कामकाज का तरीका तय किया जाता है। 1861 अधिनियम के अलावा कुछ और कानून है, जो पुलिस की प्रशासनिक व्यवस्था को निर्देशित करते हैं। उन कानूनों में- 1. भारतीय दंड संहिता 1862 आईपीसी 2. भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 IEA 3. दंड प्रक्रिया संहिता सीआरपीसी।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 246 आईपीए की धारा 3 के अनुसार पुलिस बल राज्य सूची का विषय है, जो राज्य द्वारा अभीशासित है। इसीलिए 29 राज्यों में से प्रत्येक के पास अपने राज्य पुलिस बल है। पुलिस का मुख्य कार्य कानूनों को बरकरार रखना और उसका प्रवर्तन करना, अपराधों की जांच करना, आंतरिक सुरक्षा को कायम रखते हुए कानून व्यवस्था को बहाल रखने का प्रमुख कार्य किया जाता है।

इस प्रकार पुलिस बल राज्य द्वारा अधिकार प्राप्त व्यक्तियों का एक निकाय है, जो राज्य द्वारा निर्मित कानूनों को लागू करने, संपत्तियों की रक्षा करने और नागरिक अव्यवस्था को सीमित रखने का कार्य करता है। तथा विभिन्न राज्यों की पुलिस को उनके राज्य के कानून और रेगुलेशन द्वारा अभीशासित किया जाता है। पुलिस व्यवस्था भारत में प्रमुख दो प्रकार के पुलिस बल कार्यरत है। 1. केंद्रीय पुलिस बल 2. राज्य पुलिस बल

राज्यों की सहायता के लिए केंद्र को भी पुलिस के रखा की अनुमति दी गई है, ताकि कानून और व्यवस्था की स्थिति को सुनिश्चित किया जा सके। इसलिए केंद्र विशेष कार्यो जेसे-खुफिया सूचनाएं एकत्र करने, जांच अनुसंधान एवं रिकॉर्डिंग तथा प्रशिक्षण के लिए 7 केंद्रीय पुलिस और कुछ अन्य पुलिस संगठनों का रखरखाव करता है। इन 7 में से 4 पुलिस बल भारत की सीमाओं की रक्षा करते हैं तथा 3 विशेष कार्य करते हैं।

## भारतीय सीमाओं के रक्षक पुलिस बल

1. असम राइफल्स AR 1835 में कछार लेनी के नाम से स्थापना की गई यह म्यांमार से लगी भारतीय सीमाओं की रक्षा करती है।
2. सीमा सुरक्षा बल बीएसएफ 1865 स्थापना की गई दिल्ली में जो पाकिस्तान एवं बांग्लादेश से लगी सीमा पर रक्षा करती है।
3. भारत तिब्बत सीमा पुलिस बल आईटीबीपी OCT 1962 में स्थापना हुई जो भारत की चीन से लगी सीमा पर अटल रूप से सुरक्षा करती है।
4. सशस्त्र सीमा बल एसएसबी 15 दिसंबर 2003 से पूर्व का नाम स्पेशल सर्विस ब्यूरो था। यह पुलिस बल नेपाल वह भूटान से लगी भारतीय सीमा की रक्षा करती है। विशेष कार्यों /कर्तव्य हेतू कार्यरत केंद्रीय पुलिस बल
5. केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल सी आई एस एफ 1969 स्थापना की गई थी। यह पुलिस बल भारत सहित राज्यों में महत्वपूर्ण इंफ्रास्ट्रक्चर इंस्टॉलेशनो जैसे हवाई अड्डों, परमाणु संयंत्र, रक्षा उत्पाद इकाइयों तथा तेल क्षेत्रों की रक्षा व सुरक्षा के प्रति समर्पित है।
6. केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल सीआरपीएफ 1939 में स्थापना हुई। यह केंद्रीय बल प्रत्येक राज्य में केंद्रित है। जो राज्यों की बिगड़ती कानून एवं व्यवस्था को संभालने में जवाबी कार्यवाही तथा सांप्रदायिक हिंसा विरोधी अभियानों हेतु तैनात की जाती है। अर्थात राज्य में उपजी समस्याओं के समाधान हेतु मुस्तैद है। 7. राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड NSG 1984 में स्थापना की गई। राष्ट्रीय स्तरीय प्रमुख आतंकवाद एवं विमान अपहरण की घटनाओं में प्रभावी कार्रवाई करने तथा बंधकों को छुड़ाने के अभियान में विशेषज्ञता प्राप्त बल वीआईपी सुरक्षा तथा महत्वपूर्ण सुरक्षा के प्रति समर्पित पुलिस बल हें।

इस प्रकार उल्लेखनीय है, कि सीमाओं की सुरक्षा करने वाले को कभी-कभी उग्रवादियों के खिलाफ जवाबी कार्रवाई करने और आंतरिक सुरक्षा के काम के लिए तेनात किया जाता है। केंद्र के अंतर्गत हम महत्वपूर्ण आधारभूत पुलिस संगठन

(क) खुफिया ब्यूरो IB जो जासूसी उग्रवाद और आतंकवाद सहित आंतरिक सुरक्षा के सभी मामलों से जुड़ी केंद्रीय संस्था है।

(ख) केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो CBI दिल्ली विशेष पुलिस इंटेलिजेंसी अधिनियम 1996 के तहत गठित जाच है। जो एसे गंभीर अपराधों की जांच के लिए जिम्मेदार है, जिसका असर पूरे भारत पर या अंतरराज्य होता है। जिसे- भ्रष्टाचार, वित्तीय घोटाले, धोखाधड़ी से जुड़े अपराध तथा संगठित अपराध से कालाबाजारी और अनिवार्य वस्तुओं से जुड़ी मुनाफाखोरी आदि है।

(ग) राष्ट्रीय जांच एजेंसी छप। राष्ट्रीय जांच एजेंसी अधिनियम 2008 के तहत किया गया है। यह देश की सुरक्षा और अखंडता के खिलाफ किया जाने वाले अपराधों की जांच हैतु जिम्मेदार है, जो 8 विशेष कानूनों के तहत दंडनीय है या गैर कानूनी गतिविधियों रोकथाम अधिनियम1967 और विमान अपहरण विरोधी अधिनियम 1982 यह एजेंसी केंद्र सरकार के आदेश पर जांच कर सकती है। केंद्र सरकार या राज्य सरकार की जांच का आदेश दे सकती है। यह फैसला कर सकती है किसी मामले में एनआईए की जांच की आवश्यकता है।

(घ) राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो ऐसी संस्था जो देश के अपराधी है। और उनका रखरखाव करती है यह संस्था विभिन्न राज्यों की जांच एजेंसियों और प्रॉस्टिट्यूट्स इन सूचनाओं को पहुंचाती है। और इनके बीच समन्वय स्थापित करती है। संस्था अपराधियों के फिंगरप्रिंट कार्ड के लिए राष्ट्र हाउस के रूप में काम करती है।

## राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की देशभर में विभिन्न शाखाएं हैं-

1. पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो:- पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो को देश में पुलिस बलों की आवश्यकता और समस्याओं को चिन्हित करने के उद्देश्य से संगठित किया गया ब्यूरो की गतिविधियों इस प्रकार है-
   - पुलिस के कामकाज में विद्वान और तकनीकी के प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिए
   - पुलिस बलों के प्रशिक्षण की जरूरतों का निरीक्षण करना और उस में सहयोग देना
   - राज्य पुलिस बलों के राज्य पुलिस बलों के आधुनिकरण में सहयोग देना
   - पुलिस उपकरणों और इंफ्रास्ट्रक्चर के संबंध में क्वालिटी स्टैंडर्ड्स विकसित करने में केंद्र का सहयोग देना।

## प्रमुख पुलिस प्रशिक्षण अकादमी

1. केंद्र स्तर पर - सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी हैदराबाद जो भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारी वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण हेतु स्थापित संस्था है।
2. उत्तर पूर्व पुलिस अकादमी इस अकादमी की स्थापना विशेषत:मेघालय शिलांग में की गई। जिसका मुख्य उद्देश्य पूर्वोत्तर राज्यों की पुलिस कर्मियों को प्रशिक्षित करना।
3. राज्य स्तर पर विशेष तथा राजस्थान में अधिकारी वर्ग व पुलिस की निम्न वर्ग हेतु प्रशिक्षण अकादमी स्थापित की गई। अधिकारियों हेतु- जयपुर में हरिश्चंद्र माथुर प्रशिक्षण अकादमी स्थित है। जो उनको आधारभूत प्रशिक्षण देती है।
4. पुलिस कांस्टेबल हेतु राजस्थान में जयपुर जोधपुर खेरवाड़ा में प्रशिक्षण विद्यालय उप अधीक्षक स्तर के अधिकारी के नेतृत्व में क्रियान्वित है।
   - राज्य पुलिस बल राज्य पुलिस बलों की दो शाखाएं होती है। (क) नागरिक पुलिस (ख) सशस्त्र पुलिस

(क) नागरिक पुलिस रोजमर्रा के कानून और व्यवस्था को बहाल करने और अपराधों को काबू करने के लिए जिम्मेदार होती है। जब तक दंगे फसाद जेसी स्थिति न हो।

(ख) सशस्त्र पुलिस को रिजर्व में रखा जाता है, जबकि दंगे फसाद जेसी स्थितिया आन्तरिक सहयोग की जरुरत न हो।

## राज्य पुलिस का पदानुक्रम

- डायरेक्टर जनरल ऑफ पुलिस DGP- राज्य पुलिस का प्रमुख
- एडिशनल डीजीपी ADGP
- इस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस IGP - जॉन का प्रमुख
- डिप्टी DY IGP - रेंज का प्रमुख
- सीनियर सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस SSP बड़े पुलिस जिलों का प्रमुख
- सुप्रीडेंट ऑफ पुलिस –SP जिला पुलिस का प्रमुख
- एडीशनल सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस ASP सब डिविजन का प्रमुख

  असिस्टेंट डिप्टी सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस

  **उच्च पद के अधीनस्थ अधिकारी के पद** - इस्पेक्टर - शहरी क्षेत्रों में पुलिस स्टेशनो के प्रमुख
- सब इंस्पेक्टर ग्रामीण पुलिस स्टेशन के प्रभारी
- सहायक सब इंस्पेक्टर चौकी प्रभारी
- हेड कांस्टेबल पुलिस स्टेशन चौकी प्रभारी
- कांस्टेबलों का वर्ग इस प्रकार राज्य पुलिस में उच्चाधिकारियों का भाग 01% उच्च अधिनस्थ अधिकारियों का 13% भाग तथा कांस्टेबल का 86 प्रतिशत भाग पाया जाता है।
- जिला पुलिस वह होता है। जिसकी घोषणा राज्य सरकार द्वारा की जाती है। यह पुलिस प्रशासन की सबसे महत्वपूर्ण निरीक्षणात्मक और कार्यात्मक इकाई है, क्योंकि जिला के ऑफिसर इंचार्ज एसपी के पास पुलिस बल की आंतरिक प्रबधन से जुड़े मामलों और कानून-व्यवस्था सम्बन्धी कर्तव्यों का पालन करने की स्वतंत्रता होती है। -- पुलिस स्टेशन पुलिस के कामकाज की बुनियादी इकाई होती है, जिसका प्रमुख स्पेक्टर या सब इंस्पेक्टर होता है इसकी निम्न कार्य है।
- प्रमुख कार्य CI एंड SI

- अपराधों को रजिस्टर करना, स्थानीय पेट्रोलिंग टीम, जांच कार्य, अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले क्षेत्र की सुरक्षा को सुनिश्चित करना, खुफिया सूचनाएं एकत्र करना है, कानून व्यवस्था से जुड़े हुए स्थितियों से निपटना पेट्रोलिंग और चोकसी के लिए अनेक पुलिस आउट पोस्ट्स हो सकते हे सामान्यत आवश्यहोने पर राज्य सरकार राज्य पुलिस प्रमुख की सलाह से जिले की जनसख्या अपराध की स्थिति और कम के दबाव के आधार पर जिले में जितने आउट पोस्ट्स बना सकती है।
- राज्य स्तर – राज्य सरकार राज्य पुलिस बलों पर नियन्त्रण रखती हे और उसकी देख रेख करती हे
- जिला स्तर पर ख्रजिला मजिस्ट्रेट भी सुपरिडेंट वि पुलिस को निर्देशित डे सकता हे और पुलिस प्रशासन को सुपरवाइजर कर सकता हे यह जिला स्तर पर डिहरी प्रणाली कहलाती हे।
- कमिश्नरी प्रणाली ख्र पुलिस नियन्त्रण की दोहरी प्रणाली से निजात पाने एव कार्य प्रक्रिया को पारदर्शिता त्वरित एवं कार्यकुशल बनाने हेतु राजस्थान में जयपुर एवं जोधपुर दो महानगरों में इस प्रणाली को लागू किया है। ताकि कानून और व्यवस्था की जटिल स्थिति में तुरंतफेसले दिए जा सकते हैं। जिसमें जिला पुलिस में दोहरी कमांड सरचना का महत्त्व हे की पुलिस पर नियंत्रण और निर्देशित का अधिकार पुलिस अधीक्षक SP और अजिला मजिस्ट्रेट दोनों पदों पर निहित है। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट और पुलिस में शक्तियों का पृथक्करण जैसे जिला मजिस्ट्रेट गिरफ्तारी का वारंट और लाइसेंस जारी कर सकता है। और पुलिस अपराध की जांच और गिरप्तार कर सकती है। जिला स्तर पर पुलिस के अधिकार कम होते हैं और वे जिला मजिस्ट्रेट के प्रति जवाबदेही हो जाते हैं।

एकीकृत कमांड संरचना के साथ शहर में पुलिस का एकमात्र प्रमुख "कमिश्नर ऑफ पुलिस" जो डिप्टी इस्पेक्टर जनरल रेंक या उच्च पद का अधिकारी होता है। वह कानून और व्यवस्था के मामले में तुरंत कार्यवाही करने की अनुमति देता है। पुलिस व्यवस्था व मजिस्ट्रेसी की शक्तियां केवल कमिश्नर में ही निहित होती है। उसकी राज्य सरकार और राज्य पुलिस प्रमुख को सीधी जवाबदेही होती है। स्थानीय प्रशासन होता डीएम या संभागीय आयुक्त के प्रति उसकी जवाबदेही कम होती है। स्पेशल /जॉइंट /एडिशनल डिप्टी / कमिश्नर इत्यादि कमिश्नर को एसिस्ट करते है। निरीक्षक पद से कांस्टेबल पद तक की संरचना संगठनात्मक ढांचा राज्य पुलिस की तरह होता है।

पुलिस सगठन में भर्ती प्रक्रिया– राज्य पुलिस बलों में दो प्रमुख तरीके हैं 1. सीधी भर्ती 2. पदोन्नति द्वारा

**सीधी भर्ती**– राजस्थान में सीधी भर्ती अधिकारी वर्ग व कमर्चारी निम्न स्तर पर गठित बोर्ड आयोग द्वारा की जाती है।

A अधिकारी वर्ग– राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा राजस्थान राज्य में पुलिस भर्ती दो स्तर पर की जाती है।

(क) राजस्थान राज्य प्रशासनिक सेवा आयोग द्वारा राजस्थान पुलिस सेवा RPS पद पर सीधी भर्ती में चयन प्रक्रिया से किया जाता है। उप निरीक्षक पुलिस भर्ती का भी आयोजन भी लोक आयोग अलग विज्ञापन से हो रहा है।

(ख) कांस्टेबल भर्ती – राजस्थान पुलिस मुख्यालय द्वारा आयोजन राज्य स्तरीय वरीयता क्रम से किया जाता है। परंतु संशोधन द्वारा वर्ष 2020 की कास्टेबल भर्ती में जिलेवार का प्रावधान किया गया। जिसमें जिला स्तर के युवाओं को भी मोका मिले

(ग) अपराध शाखा सीआईडी मैं सहायक उपनिरीक्षक की भी भर्तियो में पुलिस विभाग गृह विभाग मंत्रालय द्वारा की जाती है। इस प्रकार राज्य सरकार इन पदों पर प्रत्यक्ष भती हेतु जिमेवार एव पूर्णतया उत्तरदायी होता है।

(घ) पदोन्नति द्वारा भर्ती– पुलिस विभाग में विभागीय पदोन्नति का प्रावधान है। जिसके द्वारा विभाग पदोन्नत पद प्रक्रिया द्वारा इसके मनोबल को बढ़ाते हुए नई जिम्मेदारियां एवं जवाबदेही सुनिश्चित करती है।

**पदोन्नति प्रक्रिया** = अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक से पुलिस अधीक्षक पद

- अवर उप पुलिस अधीक्षक से अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक पद पर
- पुलिस निरीक्षक पुलिस– उप पुलिस अधीक्षक पद पर
- पुलिस उप निरीक्षक से पुलिस निरीक्षक
- सहायक उप निरीक्षक से उप निरीक्षक पद पर
- मुख्य आरक्षक से सहायक उप निरीक्षक पद पर
- कांस्टेबल पद से उप आरक्षक पद पर पदोन्नति

इस प्रकार की निर्धारित प्रक्रिया द्वारा पदोन्नति का प्रावधान है। परंतु विशिष्टकार्य करने पर गृह विभाग पुलिस विभाग इन पदों में से किसी भी पद विशेष पदोन्नति देकर उसे प्रोत्साहन एव सम्मानित किया जाता है। पर कांस्टेबल स्तर के कार्मिक आज भी दुखी है।

## कांस्टेबलों से संबंधित प्रमुख मुद्दे

इसमें संबंधित दो मुद्दे प्रमुखता (क) अहर्तक एवं प्रशिक्षण (ख) पदोन्नति व कार्य स्थिति

अहर्ता एवं प्रशिक्षण – राज्य पुलिस बलों में 86 प्रतिशत कांस्टेबल है, तथा एक कांस्टेबल की जिम्मेदारी व्यापक है; यथा कांस्टेबलों से यह अपेक्षा की जाती है। कि वह अपने क्षेत्र से खुफिया सूचनाएं एकत्रित करें और चौकसी जैसे कामों में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करें तथा महत्वपूर्ण घटनाओं से अपने उच्चाधिकारियों को रिपोर्ट करें अत: पध्यनाभेया समिति ने भी तथा सेकंड एआरसी ने भी टिप्पणी की थी, कि कांस्टेबलों की प्रवेश स्तर की योग्यत्ता 10वीं या 12वीं तक की शिक्षा होना चाहिए तथा प्रवेशउपरांत इनको सॉफ्ट स्किल का अधिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। जैसे संवाद परामर्श नेतृत्व कौशल आम लोगों का सामना करना पड़ता है।

**पदोन्नति व कार्य की अपेक्षाएं** - द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने इनकी पदोन्नति व कार्य अपेक्षा पर टिप्पणी की थी, एक स्टेबल को पदोन्नति के अवसर बहुत कम और कम करने की स्थिति बहुत खराब है। अत: वे अच्छा प्रदर्शन नहीं कर सकते हैं' इनके अलावा भारत में कई बार वरिष्ठ अधिकारी उनको घरेलू कामों के लिए ऑर्डरली के रूप में नियुक्त कर देते है। जिससे उनका मनोबल गिरता है। तथा प्रोत्साहन में कमी आती है। अत: सुझाव है कि इस ऑर्डरली व्यवस्था का नियमित अनिवार्यता अंत होना चाहिए। परंतु ब्रिटेन में पुलिस अधिकारी कांस्टेबल के पद से अपना करियर चुक करते हैं। और अनुसार पदोन्नत हो जाते हैं। भारत में भी नियमित रूप से पदोन्नति कार्य होना चाहिए।

**पुलिस व्यवस्था की समस्याएं** - मौजूदा समय में पुलिस व्यवस्था की अनेक समस्याएं है। परंतु समय पर तुरंत कार्रवाई की मांग है। प्रमुख समस्याएं निम्न प्रकार से है।

1. पुलिस की जवाबदेही - आम जनता हमेशा से ही पुलिस प्रशासन की नकारात्मक छवि पद एवं शक्तियों का दुरुपयोग करने की दृष्टि से देखती है। परंतु IPA की धारा 4 के अनुसार पुलिस न केवल अपने वरिष्ठ अधिकारियों के प्रति बल्कि कार्यपालिका के नियंत्रण में काम करती है। हालाकी द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी टिप्पणी की थी। कि कार्यपालिका द्वारा इस शक्तियों का दुरुपयोग किया जाता है। और मंत्री गण व्यक्तिगत और राजनीतिक कारणों के लिए पुलिस बलों का उपयोग करते हैं। इसीलिए विशेषज्ञों ने भी इस संबंध में सुझाव दिया जिसमें राजनीतिक कार्यकारिणी शक्तियों का कानून के तहत सीमित किया जाना चाहिए। ताकि पुलिस बिना किसी डर को अपने कर्तव्य का पालन कानून सम्मत तरीके से संपन्न कर सके।
2. पुलिस कर्मियों की संयुक्त राष्ट्र संघ ने के मानकों के अनुसार प्रति लाख व्यक्तियों पर 222 पुलिसकर्मियों/कांस्टेबल का प्रावधान है। परंतु भारत में यह संख्या 181 ही निर्धारित है परंतु विडम्बना है, कि निर्धारित 181 पुलिसकर्मियों में से केवल 137 पुलिसकर्मी ही तैनात हैं। तथा सर्वे के अनुसार एक पुलिसकर्मी 16 घंटों की नियमित सेवाएं देता है। अत: पुलिस भर्ती की बहुत ही आवश्यकता है। तथा भर्ती की पूर्ण पारदर्शिता से संबंध ढंग से संपन्न हो।
3. पुलिस व जनता के बीच पर्याप्त सहयोग की कमी - द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग समिति ने रिपोर्ट में बताया कि पुलिस एव आम जनता के बीच का संबंध बिल्कुल ही खराब स्थिति में हैं। सुझाव है- कि पुलिस को लेकर लोगों के मन में भ्रष्ट आचरण, अक्षम, राजनीतिक रूप से पक्षपातपूर्ण और गैर जिम्मेदाराना रवैए की छवि बनी हुई हैं। अत: इसे सुधार करना अनिवार्य है। पर पुलिस को जनता के सहयोग की आवश्यकता रहती है। परंतु इस असहयोग के कारण पुलिस अपनी जांच में फर्जी तरीके से गवाहों के नाम लिख देती है। सुधार एवं समन्वय की जरूरत है।

**आवास समस्या** - भारत गांवों का देश है ऐसे में गांव के दूरदराज क्षेत्रों में पुलिस प्रशासन के पुलिस स्टेशन पुलिस एवं पुलिस चौकी स्थापित हैं। जहां पर पुलिसकर्मी की ड्यूटी लगती है। तो आवास एक मौलिक एवं आधारभुत होती हैं। परन्तु यह ग्रामीण क्षेत्रो में अपर्याप्ता हैं। अत: राज्य सरकार को चाहिए, कि निर्धारित पुलिस पॉइंट्स पर उसके लिए पर्याप्त आवास सुविधा उपलब्ध करवाने चाहिए। शहरी क्षेत्रों में भी जनसंख्या घनत्व के कारण उक्त समस्या आवास उपलब्ध हो सकते हैं। परंतु उन आवासों का किराया चुकाने में उनका वेतन भी अपर्याप्त हो सकता हैं। अत: रोटी, कपड़ा, मकान के साथ आवास भी उपलब्ध कराना चाहिए।

**पुलिस इंफ्रास्ट्रक्चर/खराब बुनियादी ढांचा** - आधुनिक पुलिस व्यवस्था या स्मार्ट पुलिसिंग हेतु बुनियादी ढांचा मजबूत व अत्याधुनिक तौर तरीके से सुसज्जित होना चाहिए, परंतु इस समय भी उनमें अनेक कमियां एवं समस्याएं हैं।

प्रमुख ढांचा 1. हथियार 2. पुलिस वाहन 3. पुलिस संचार 4. नेटवर्क उच्च स्तर की गतिशीलता

**1. हथियार** - भारत के नियंत्रण एवं महालेखा परीक्षक ने भी यह पाया कि राज्य पुलिस बलों के पास आउटलेट एक हथियार उपलब्ध है, और अत्याधुनिक हथियारों की खरीद की प्रक्रिया भी बहुत धीमी हैं। जिसकी वजह से पुलिस के पास हथियार एवं गोला बारूद की कमी हैं। राजस्थान ऑडिट रिपोर्ट 2009 से 2014 में इसकी पुष्टि हुई, कि राजस्थान राज्य में अपनी विनिर्दिष्ट आवश्यकता की तुलना में आधुनिक हथियारों की उपलब्धता में 75% की कमी हैं। तथा खरीद के बाद भी 59% हत्यारों को पुलिस स्टेशनों तक नहीं पहुंचाया या वितरीत किया गया हैं। यही हाल पश्चिम बंगाल गुजरात में क्रमश 71% एवं 36% हथियारों की कमी हैं।

परंतु तस्करों समाज कंटको उग्रवादियों तथा आतंकवादियों के पास अत्याधुनिक हथियार उपलब्ध है यथा जनवरी 2021 में राजस्थान के पाली जिले में मनिहारी गांव के अब्बर सिंह कांड की घटना ने स्पष्ट पोल खोल कर रख दी कि हरियाणा हिसार के अंतरराज्यीय गिरोह के सरगना और भोला यादव द्वारा इसका प्रयोग किया गया ,ऐसी स्थिति में अब इनके पास ऐसे हथियारों की उपलब्धता की अति आवश्यकता हैं।

**2. पुलिस वहान** - पुलिस को अत्याधुनिक बीएसएफ जवानों की भी आवश्यकता है परंतु पुलिस के पास आज भी वह पुराना जकीरा ही है जो समाज कंटक को के वाहनों का मुकाबला नहीं कर सकते हैं। साथ ही इसमें पुलिस की कार्यकुशलता भी प्रभावित होती हैं। अत: नवीन साधनों का क्रय किया जाए पुलिस स्टेशन तक उनकी पहुंच होनी चाहिए ।

**3. पुलिस संचार नेटवर्क** 2002 में पोलनेट नाम से सरकार द्वारा एक प्रोजेक्ट लांच किया गया, जो रेडियो संचार व्यवस्था प्रणाली से काफी तेज हैं। परंतु कई राज्यों में पोलनेट कार्य नहीं कर रहा हैं। साथ ही जहां कार्य कर रहा है, वहां इन उपकरणों के प्रभावी संचालन हेतु रेडियो ऑपरेटर और टेक्नीशियन जैसे महत्वपूर्ण पद रिक्त पड़े हैं। अत: तुरंत प्रभाव से इन पदों को भरा जाना चाहिए हैं। ताकि पुलिस को प्रभावी सूचना तंत्र उपलब्ध हो सकती हैं।

***आधुनिकरण के लिए बजट का उपयोग ना होना*** = केंद्र और राज्य सरकारें दोनों राज्य पुलिस बलों के अत्याधुनिकरण के लिए बजट आवंटन करती है, जिसका उपयोग पुलिस प्रशासन अत्याधुनिक पुलिस स्टेशन निर्माण हेतु, पुलिस आवास निर्माण हेतु, हथियार की खरीद हेतु, संचार साधनों का करना तथा अत्याधुनिक वाहनों के क्रय हेतु किया जाता हैं। जिसमें पुलिस का ढांचा मजबूत हो सकता है, विकट समस्या तब हो जाती है, जब बजट आवंटन का उपयोग

नहीं किया जाता हैं। जिसमें वर्ष 2015 में केंद्र और राज्यों द्वारा अत्याधुनिक हेतु 9203 करोड रुपए के बजट का आवंटन किया गया परंतु आवंटित बजट में से मात्र 14% बजट का ही उपयोग किया गया और शेष बजट के उपयोग के अभाव में लेप्स हो गया हैं।

**निष्कर्ष में प्रमुख बाधा**- राजनीतिक व्यवस्था आती है अत: उसे दूर किया जाना चाहिए तथा पूर्ण उत्तरदाई जवाबदारी एवं पारदर्शिता के साथ इन बजट का उपयोग किया जाना चाहिए।

- पुलिस सुधार हेतु प्रयास एवं सुझाव पुलिस सुधार से संबंधित केंद्र सरकार ने विभिन्न समितियों आयोगों का गठन एवं सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों को जारी किए गए हैं जिनके आधार पर सुधार कुछ हद तक संभव हो सके हैं प्रमुख आयोग एवं समितियां राष्ट्रीय पुलिस आयोग 1977 से 81, रिबेरो समिति 1988 पद्नाभेया समिति 2000 में, पुलिस अधिनियम 2005, प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश 2006, मॉडल पुलिस अधिनियम 2006, द्वितीय प्रशासनिक सुधार समिति पुलिस अधिनियम मसौदा समिति 2015
- नीति आयोग नीति आयोग के सुझाव जनवरी 2015 योजना आयोग का गठन किया गया, जिसमें तुरंत प्रभाव से पुलिस सुधार हेतु अपने सुझाव दिए गए जिसमें राज्यों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे अपने राज्य के मंडल पुलिस अधिनियम 2015 को लागू करें इस हेतु राज्यों को राजकोषीय सहायता भी प्रदान की जाए।
- राज्य पुलिस बेड़े में महिला पुलिसकर्मियों की संख्या में पर्याप्त सख्या में बढ़ोतरी की जानी चाहिए। ---पुलिस कर्मियों के लिए अत्याधुनिक प्रशिक्षण व्यवस्था रिफ्रेशर पाठ्यक्रम को लाया जाए तत: खुला विश्वविद्यालय से जोड़ा जाए।
- प्राथमिक रिपोर्ट दर्ज करने की व्यवस्था में सुधार तथा E-FIR की व्यवस्था को उपलब्ध करना।
- नागरिकों की सुरक्षा से जुड़े इमरजेंसी सेवाओं के लिए राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर एक कॉमन इमरजेंसी कांटेक्ट नंबर की शुरुआत की जाए
- समय के साथ पनपने वाले नए-नए अपराधों साइबर अपराधों, साइबर खतरों और धोखाधड़ी से निपटने के लिए अलग से एक काडर बनाया जाए साथ ही पुलिस सुधार की प्रक्रिया को और आगे बढ़ाने के लिए हमें और अधिक प्रयास करते हुए समय बंद रूप से लागू करना होगा। तथा स्मार्ट पुलिस की अवधारणा को वास्तविकता में बदलने के लिए सरकार द्वारा पर्याप्त प्रयास नहीं किए जा रहे हैं। अत: सरकार को चाहिए कि देश और राज्यों में स्मार्ट पुलिस की रूप-रेखातमक ढांचे को लागू किया जाए।
- कानून एवं व्यवस्था को राज्य सूची से बाहर हटाकर समवर्ती सूची में रखने जैसी पहल करनी चाहिए, ताकि केंद्र को भी बराबर की जिम्मेदारी निश्चित हो सके।
- भ्रष्ट आचरण लालफीताशाही और पक्षपात ने पुलिस सुधारों एवं पुलिस प्रशासन को पंगु बना दिया है। इस व्यवस्था हेतु अलग से पुलिस लोकपाल जैसे किसी संस्था की आवश्यकता है। अत: उसका जिला स्तर पर गठन करते हुए आम जनता के प्रतिनिधि तथा स्वयंसेवी संगठनों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाना चाहिए।
- राष्ट्रीय पुलिस सुधार आयोग द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग मांडल पुलिस अधिनियम तथा नीति आयोग की सिफारिशों पर अमल करने के लिए एक आयोग गठित करते हुए आयोग की अभिशसाआओ को लागू किया जाना चाहिए।
- नफरी की समस्या है तो समस्या हेतु समयबद्ध उसे भर्ती प्रक्रिया को अपनाया जाए। आम जनता का सहयोग प्राप्त करने हेतु प्रणाली का विस्तार किया जाए। पुलिसकर्मियों को अत्याधुनिक संचार साधनों से लैस करते हुए BS6 मॉडल के वाहनों की भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। कर्तव्य पूर्ण सहयोग से उपलब्ध करवाई जाए एक निश्चित समय के बाद स्थानांतरण का भी प्रावधान हो ताकि पुलिस अधिकारी व पुलिसकर्मियों अपने अनुभव योग्यताओं आम जनता एवं क्षेत्रों में भी प्रदर्शित कर सके निश्चित रूप से पुलिस का आम जनता में विश्वास कायम होगा।

## संदर्भ ग्रन्थ


1. चतुर्वेदी अन्विलत, 2015 "भारत में पुलिस सुधार, Bureau of police Research and development ; PRS.
2. M. Laxmikant, 2011, Tata McGraw-Hill Parakashak pvt. lit. new delhi
3. Audit Report (General and social Audit ) For the year ended 31 march, 2014 for Rajasthan, Comptroller and Auditer General
4- Bureau of police Research and development; PRS.
5. Public Order, Second Administrative reform commission ,2007
6. Building SMART Police in india " background into the needed police force reform", NITI Aayog 2016
7. Model police menual bureau of police Research & Development; kerala police.

# नाटककार भवभूति की कृतियों में पर्यावरण चिन्तन


## डॉ० बाबूलाल मीना

*[1]एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत, महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर ( राजस्थान )*


संस्कृत काव्य में पर्यावरण को निरन्तर स्थान मिलता रहा है, वेदों में उसके विस्मय विमुग्धकारी रूप वेल-बूटों की तरह सज्जित हैं तो लौकिक संस्कृत में आदिकवि वाल्मीकि ने भी कविदृष्टि से प्रकृति का दर्शन कराया है। रामायण में इसे मानवीय भावों या जीवन परिस्थितियों के उद्दीपक के रूप में लिया तो कालिदास ने कल्पना या सादृश्य विधान का चित्रण ही प्रकृति के सहारे किया है। भारवि, माघ, बाणभट्ट, श्रीहर्ष आदि ये कवि संस्कृत की किसी भी शाखा से सम्बद्ध हों, सभी ने अपने-अपने ढंग से पर्यावरण को ग्रहण किया है।

पर्यावरण शब्द से तात्पर्य- परितः आवृणोति जीवजगदिति पर्यावरणम। समग्रामपि चेतनपदार्थानामस्तित्वं भौतिकपरिस्थितिषु समबलम्वितं दृश्यते। वातावरणप्रकृतिपरिवेशादिभिः शब्दैरपि एतदेव आख्यायते। सकलप्रपंचाधारभूतापृथ्वी, यत्र सर्वभूतानि निवसन्ति तान्येव जैविकाजैविकघटकानि पर्यावरणनाम्ना आख्यायन्ते।

प्रकृति और पर्यावरण प्रायः समान अर्थों में ही प्रयुक्त होते हैं। एक-दूसरे के घटक तत्त्वों में लगभग ऐक्य है इसलिए पर्यावरण के साथ-साथ प्रकृति शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। काव्य और प्रकृति का परस्पर प्रगाढ सम्बन्ध रहा तथा काव्यात्मक परिकल्पना के आदिम स्फुरण में भी जिन भौतिक या आधिभौतिक तत्त्वों ने प्रेरणा प्रदान की होगी, उनमें प्रकृति के मोहक अथवा विस्मयकारी रूपों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। मानवजीवन स्वयं भी तो प्रकृति के विशाल जीवन का ही अभिन्न अंग है तथा प्रकृति ने स्वयं ही अपने प्रतिबिम्बों को हृदय के विविध भावों के रूप में मूर्त्त कराया है। क्रान्तदर्शी ऋषियों की दृष्टि सर्वप्रथम प्रकृति के अनन्त में विस्मय तथा रहस्यमयी सौन्दर्य बिम्बों पर टिकती है। अनन्तर उन्हें मानवीकरण या दैवीकरण के प्रकृष्ट कलात्मक सांचे में ढालती है। भारतीय संस्कृति प्रकृति की गोद में वनों से ढके हुए तपोवन एवं आश्रमों में ही विकसित हुई। जहाँ भविष्यद्रष्टा ऋषि मन्त्रों के माध्यम से पर्यावरण की शुद्धि के लिए प्रार्थना किया करते थे-

*ऊँौ शान्तिरन्तरिक्षः शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः*

*शान्तिरौषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः।।*

संस्कृत नाटक के क्षेत्र में कालिदास के अनन्तर सबसे लोकप्रिय व प्रख्यात नाम भवभूति का ही है। लौकिक संस्कृत में वे ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्हें कालिदास की श्रेणी में रखा जा सकता है। एक सूक्ति के अनुसार तो उनका उत्तररामचरित शाकुन्तल से भी उत्कृष्ट माना गया है-

*उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।*

भवभूति की यह प्रशंसा कुछ अतिरंजित होने पर भी सर्वथा निराधार नहीं है। वस्तुतः भवभूति की प्रतिभा के कुछ ऐसे पक्ष हैं जिनमें कालिदास भी उनकी बराबरी नहीं कर सकते। मानव हृदय के तीव्र भावोद्वेगों, विक्षुब्ध अन्तरात्मा की गम्भीर वेदनाओं का जैसा मार्मिक चित्रण भवभूति ने किया है वैसा किसी अन्य ने नहीं। नाटक के क्षेत्र में भवभूति एक नूतन दृष्टि लेकर अवतीर्ण हुए तथा उन्होंने अपनी कृतियों में अनेक नये प्रयोग किये हैं, जो उनकी मौलिक व स्वतन्त्र प्रतिभा के परिचायक हैं। प्रकृति व पर्यावरण के चित्रण में भवभूति की दृष्टि नूतनता लिए हुए है। जहाँ कालिदास व अन्य कवि प्रकृति के मधुर व कमनीय रूपों के प्रेमी हैं, वहाँ भवभूति को उसके विकट, भयावह व उग्ररूपों से अनुराग है।

इनके तीन नाटक उपलब्ध होते हैं तथा ये ही सम्पूर्ण कीर्ति के आधार हैं। इनमें से दो महावीरचरित व उत्तररामचरित रामकथा पर आधारित हैं तथा तीसरा मालतीमाधव मालती व माधव की कल्पित प्रणय कथा पर। भवभूति चूँकि नाटककार के रूप में प्रख्यात हैं तो उन्हें अपने तीनों रूपकों में प्रकृति या पर्यावरण की एक विशिष्ट सीमा में आबद्ध रहना पड़ा है तथा उनके प्रकृति चित्र किस प्रकार विकास पाते हैं, इसका विवरण प्रस्तुत है-

### महावीरचरित में पर्यावरण

भवभूति की तीनों नाट्यकृतियों में पर्यावरण के चित्रण की रीति एवं सौन्दर्य स्तर में उनके परिपक्व मस्तिष्क तथा नाट्यकला की प्रखरता दृष्टिगत होती है। इनकी किसी भी नाट्यकृति में प्रकृति चित्रण की दृष्टि से कोई स्पष्ट भेदप्रतीति नहीं होती जो कालिदास के ऋतुसंहार और मेघदूत के बीच दिखाई देती है। महावीरचरित के परिप्रेक्ष्य में बात करें तो प्रकृति का यत्किंच रूप प्राप्त होता है उसमें कलात्मक दृष्टि से किसी प्रकार की न्यूनता नहीं मिलती है, वस्तु, भाव के साथ प्रकृति का सामंजस्य मिलता है-

*गर्जाजर्जरितासु दिक्षु बधिरे तत्स्फूर्जथुस्फूर्जितै-*

*र्व्याप्म भ्राम्यति दुष्प्रभंजनजवादभ्रेऽप्यदभ्रे मुहुः।*

*आक्षिप्यान्धयति र्द्रुमान्धतमसे चक्षुः प्रविश्य क्षपा*

*यत्रासीत्क्षपिता क्षरज्जलधरे त्वक्सारलक्षीकृते।।2*

उक्त श्लोक में लक्ष्मण ने दण्डकारण्य में आकाशमार्ग से दिखाई देने वाले बांसों के झुरमुट से संलग्न उस जीर्ण कन्दरा की ओर राम का ध्यान आकृष्ट किया है, जहाँ सीता विरहित होकर उन दोनों ने बिजली की कड़क, मेघाच्छन्न आकाश के भयंकर गर्जन, सघन वृक्षों द्वारा आपातित सूचीभेद्य अन्धकार तथा निरन्तर बरसते मेघों से युक्त एक रात बितायी थी। सीता के खो देने के पश्चात् राम के प्राणों में जो तूफान समा गया था, उनके भीतर और बाहर जो आकुलता, सघन आर्द्रता एवं अन्धकार घिर आये थे, उन सबका जीवन्त प्रतिनिधित्व करने वाला प्रस्तुत श्लोक भवभूति की विराट् एवं संवेदनशील प्रकृति का एक सुन्दर निदर्शन है। यहाँ कन्दरा का सूनापन प्रकृति के उस क्षोभ के चित्रों से और भी घनीभूत हुआ सा लगता है, राम के संतप्त हृदय की मूक एव अमूर्त ज्वालाएँ सदेह होकर प्रकृति के विराट् स्वरूप में प्रतिध्वनित होती हुई सी प्रतीत होती है। स्पष्ट है कि यहाँ राम या सीता के किसी भाव विशेष का आरोप प्रकृति पर नहीं किया गया है- प्रकृति की कल्पना उनके जीवन से सर्वथा स्वतन्त्र की गई है। फिर भी मानो वह राम के विषाद एवं विरह शोक के समास में स्थित है, राम के प्रति सहानुभूति एवं प्रीति के मधुर भाव संजोए हुई है। राम अपनी चिन्ता, व्याकुलता एवं आँसुओं में अकेले नहीं है; उसके आस-पास का पर्यावरण भी उनके शोक से उद्विग्न एवं तरल होकर मानो उनके प्रिया विरहित जीवन का संवेदनशील मित्र है। पंचवटी दर्शन के एक श्लोक में पर्यावरण को और भी सहचररूप में भवभूति ने प्रस्तुत किया है-

*एताः भुवः परिचिनोषि मिलत्तमालच्छायान्धकारिततुषारनिकुंजपुंजाः।*

*उन्मूर्च्छदच्छमलयाचलतुंगश्रृंगप्राग्भारनिष्पतितनिर्झरपूरभाजः।।3*

यहाँ राम ने 'एताः भुवः परिचिनोषि' कहकर वस्तुतः लक्ष्मण का ध्यान सघन तमालवृक्षों की छाया से अन्धकारमय शीतल निकुंजों तथा मलय पर्वत के उत्तुंग शिखरों से प्रवहमान उच्छलित निर्झरों से कहीं दूर खींचना चाहा है। निस्सन्देह दण्डक के ऐसे प्रकृति चित्र राम के लिए अत्यन्त मनोरम है, किन्तु यहाँ प्रकृति की रमणीयता से कहीं अधिक राम का तन्निविष्ट सीता शोक अभिप्रेत है।

## सागर और सेतु

कालिदास ने रघुवंश में जिस समुद्र की वर्णना 16 श्लोकों में की, भवभूति ने उस समुद्र की वर्णना में एक ही श्लोक प्रस्तुत किया -

*साक्षात्किलाष्टमूर्तेस्तिस्येषा मूर्तिरम्मयी प्रथमा।*

*गीतः सागर इति नृभिरपरिच्छेद्यात्मगाम्भीर्यः।।4*

उक्त श्लोक के माध्यम से भवभूति ने सागर का एक साधारण चित्र प्रस्तुत किया है क्योंकि विस्तृत कथा को मंच पर उपस्थित करते समय कई ऐसे चित्रों को या तो छोड़ देना पड़ता है या उनका दिङ्मात्र संकेत करके आगे बढना पड़ता है। हाँ, कथावस्तु के लिए अपेक्षित तत्त्वों का वर्णन करने में भवभूति कभी नहीं हिचकते। जैसे सागर पर निर्मित नल-सेतु सीता की प्राप्ति का निमित्त है, इसलिए इस सेतु के चित्रांकन में भवभूति संकोच नहीं करते हैं।

कथा के नाट्यमर्म को प्रकट करने के प्रक्रम में भवभूति अनन्त सागर को ही स्थूल समझते हैं, किन्तु उसके अपार विस्तार पर बने उस अपेक्षाकृत अत्यन्त छोटे तथा सीमित पुल को बड़े ही सशक्त शब्दों में व्यक्त करते हैं। सीता अपनी सहज जिज्ञासा में सेतु को धवलंसुअं विअ अहिणवतिणच्छण्णासु भूमिसु कह जाती हैं। यहाँ समुद्र के गहरे नीले जल को अभिनव तृणाच्छन्न भूमि कहकर व्यापक सौन्दर्य के साथ जल पर आस्तीर्ण सेतु को धवलांसुक की उपमा देकर एक नितान्त उपयुक्त एवं रम्य सादृश्य की अवतारणा की गई है। इससे स्पष्ट है कि भवभूति पर्यावरण के विभिन्न तत्त्वों के प्रभावपूर्ण प्रस्तुतीकरण को नाटकीय भावधारा के विकास का अभिन्न अंग बना लेते हैं।

भवभूति ने पर्यावरण को अपनी अद्भुत प्रतिभा के माध्यम से प्रस्तुत कर नाटकीय वातावरण को चित्रमय एवं संवेदक बना कर प्रस्तुत किया है। अयोध्या प्रत्यागमन के समय विभीषण राम का ध्यान कावेरी के तटवर्ती प्रदेशों की ओर आकृष्ट करते हैं-

*यत्पर्यन्तमहीध्रसीम्नि कुहलीमाध्वीकधारोद्गिर-*

*द्भृष्यत्पूगवनीधनीकृततलैस्तुंगैर्जरच्छाखिभिः।*

*लक्ष्यन्ते विविधाश्रमाः स्थिरतपः स्वाध्यायसाक्षात्कृत-*

*ब्रह्माणो निवसन्ति यत्र मुनयः कल्पस्थितेः साक्षिणः।।5*

कावेरी के पर्यन्तभाग में फैली हुई वन श्री आकृष्ट करती है। एक ओर कावेरी नदी के तीर से संलग्न सुदूर विस्तृत पर्वतों की प्रशान्त उपत्यकाएँ, ताम्बूली लता से आविष्ट तथा उसके मकरन्द पान से मदमत्त से दिखाई देने वाले सुपारी वृक्षों से सघन एवं विशालकाय पुराने पेड़ तथा दूसरी ओर उन्हीं एकान्त स्थलियों में यत्र-तत्र खड़े मन्वन्तर पुराण मुनियों के आश्रम। इन सबका परस्पर सामंजस्य पर्यावरण एवं मनुष्य के बीच प्रगाढ सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। किसी भी मंच पर प्रकृति के ऐसे सुविशाल अंचल को दृश्यबद्ध करना न तो सम्भव है और न काम्य ही, यह तो भवभूति जैसे कलाविद् की लेखनी का ही चमत्कार है कि नाटकीय वृत्त पर बिना कोई अनावश्यक भार दिये हुए भी अपनी सूक्ष्म शब्दतूलिका से पर्यावरण को प्रस्तुत कर दिया है।

## निर्झरिणी

भवभूति ने चित्रात्मक शब्दों की कोमल ध्वनि के माध्यम से विपिन, पर्वत, आश्रम आदि की उद्वेगरहित, सुकुमार तथा स्निग्ध प्रकृति को व्यंजित किया है। उनकी प्रकृति में उच्छलता, उद्वेग और विस्मयोत्पादक पौरूष के बिम्ब स्वतः ही नाचने-थिरकने लग जाते हैं। कहीं-कहीं प्रकृति जीवन के कमनीय पक्षों की उत्ताल गत्यात्मकता या प्रच्छन्न वीर्यवत्ता को भी कवि ने प्रस्फुटित किया है-

*इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्तप्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।*

*फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुंजस्खलनमुखरभूरिस्रोतसोनिर्झरिण्य:।।6*

प्रस्तुत श्लोक प्रकृति की चण्डिमा, आक्रोश व विद्रोह प्रकट न कर जम्बू व वेतसकुंज, पक्षीकूजन, कूलंकषा पहाड़ी, नदी की कुंज प्रतिहत तरंगों का मोहक वर्णन करता है। यद्यपि कोमलता का भवभूति ने प्रयास किया है परन्तु सम्पूर्णतया कोमल नहीं कहे जा सकते हैं, एक उदाहरण और देखा जा सकता है–

*स्थितमुपनतजृम्भारम्भबिम्बै: कदम्बै: कृतमतिकलकंठैस्ताण्डवं नीलकण्ठै:।*

*अपि च विघटमानप्रौढता पिंछनील: श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवाह:।।7*

इस श्लोक में सीता वियुक्त राम के आकुल हृदय के विरहोच्छ्वास को बताया है जिसे समिद्ध करने में यहाँ कदम्ब, तमाल, कोकिल, नीलकण्ठ एवं मेघों ने अपने अपने ढंग से योगदान किया है तो कहीं-कहीं बड़ी ही प्रचण्डता का वातावरण प्रस्तुत किया है–

*दधति कुहरभाजामात्र भल्लूकयूनामनुरसितगुरुणि स्त्यानमम्बूकृतानि।*

*शिशिरकटुकषाय: स्त्यायते सल्लकोनामिभदलितविशीर्णग्रन्थि निष्यन्दगन्ध:।।8*

तरुण भालुओं की गुर्राहट तो अपने-आप ही एक भयानक वस्तु है, पर्वत की गुफाओं से प्रतिध्वनित दिखाकर कवि ने उसकी तीव्रता एवं प्रचण्डता को मानो साकार कर दिया है। पर्वतवासी मधुर स्वर वाले पशु-पक्षियों की अपेक्षा भालू की गुर्राहट का उद्देश्य प्रकृति की विलक्षणता को दिखाता है। साथ ही गजभक्ष्य सल्लकी वृक्षों की भग्न शाखाओं से क्षरित होते रस की तीव्र गन्ध को फैलाते हुए दिखाया गया है। किन्तु यहाँ की इस गन्ध विकिरण के पीछे जंगली हाथियों के द्वारा तोड़ी गई, रोंदी गई तथा मसली गई सल्लकी की कोमल शाखाओं के हरे घाव का चित्र कहीं अधिक प्रभावोत्पादक है।

## मालतीमाधव और पर्यावरण

मालतीमाधव श्रृंगार रस का एक प्रकरण है, जिसमें श्रृंगार की पृष्ठभूमि एवं रति के उद्दीपन रूप में प्रकृति के तत्त्वों की व्यापक उद्भावना की गई है। महावीरचरित की तुलना में प्रस्तुत प्रकरण में पर्यावरण के तत्त्वों को काफी नवीनता के साथ प्रसारित किया गया है। मालतीमाधव में पर्यावरण का हर अंश मुख्यरूप से रति का परिपोषक उद्दीपक बनकर आया है। प्रकरण का नवम् अंक इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है, इसमें मालती के खो जाने पर माधव निराश होकर विन्ध्य के घने जंगलों में भटकता है। माधव अपनी विरह कथा को किसी नगर या जन संकुल स्थान में भी झेल सकता था, विन्ध्य के जंगल अनिवार्य नहीं थे फिर भी गहन कानन में उन्मुक्त वातावरण में जिस प्रकार उसके विरहमान को पनपने दिया जाता है। उससे न केवल भवभूति के प्रकृति-प्रेम, प्रत्युत उनकी प्रौढकला भी झलकती है।

यों तो हमारे आसपास का पर्यावरण सुख और दु:ख दोनों ही अवस्थाओं में हमारा संवेदनशील सहचर सिद्ध होता है, किन्तु दु:ख की काली बदलियों से घिरा हुआ मानवमन जितना परित्राण एवं अवलम्ब प्रकृति के सहृदय प्रांगण में प्राप्त करता है उतना अन्यत्र नहीं। मालतीमाधव के नवम अंक में माधव के दुस्सह वियोग की उपयुक्त पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति उपस्थित है–

*वानीरप्रसवैर्निकुंजसरितामासक्तवासं पय:*

*पर्यन्तेषु च यूथिकासुमनसामुज्जृम्भितं जालकै:।*

*उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरेरालम्ब्य सानूतित:*

*प्रागभारेषु शिखण्डिताण्डवविधौ मेघैर्विताना्यते।।9*

मकरन्द की उक्ति से प्रकृति के विविधरंगी कानन की रमणीयता के साथ-साथ माधव की विरहवेदना के विपरीत, प्रकृति के रासविलास के चित्रों से नायक की मनोव्यथा का तीखापन भी भासता है। कहीं-कहीं वर्णनात्मक पद्धति से वन प्रान्तर, पर्वत आदि की महिमान्वित छटा बड़े सीधे ढंग से व्यक्त की गई है–

*अयमभिनवमेघश्यामलोतुंगसानुर्मदमुखरमयूरीयुक्तसंसक्तकेक:।*

*शकुनिशबलनीडानोकहस्निग्धवर्ष्मा, वितरति बृहदश्मा पर्वत: प्रीतिमक्ष्णो:।।10*

यहाँ सौदामिनी अनगढ एवं कठोर पर्वत में भी हमें सौन्दर्य के दर्शन कराती है। नये-नये सांवले मेघों से भरी हुई ऊँची चोटियाँ, आनन्दातिरेक से आत्मविस्मृत सी होकर बोलने वाली मयूरी, पक्षियों के विचित्र नीडों से युक्त वृक्षपंक्ति तथा विशाल शैल खण्ड आदि पर्वत श्रृंगार की विविध सामग्री जैसी सामने उभरती है। जो वस्तुएँ स्वभावत: कोमल, मसृण व मनोहारी हों, उनको शब्दबद्ध करना कठिन नहीं है बल्कि पर्वत जो अपनी कठोरता के लिए ख्यात है उनसे भी मोहक संगीत का निष्कासन निश्चय ही भवभूति की शब्दतूलिका का ही चमत्कार है। ऐसे पर्वतों से जब निर्झर फूटते हैं या नदियाँ गिरती हैं तो वहाँ भी अलौकिक रूप विलास दिखाई देता है। ऐसे प्रपातों में प्रकृति की अल्हड तरुणाई को कवि ने बड़े ही मौलिकरूप से समर्थता ही है–

*यत्रत्य एष तुमुलध्वनिरम्बुगर्भगम्भीरनूतनघनस्तनितप्रचण्ड:।*

*पर्यन्तभूधरनिकुंजविजृम्भमाणो हेरम्बकण्ठरसितप्रतिमानमेति।।11*

सिन्धु नदी के इस तटप्रपात की संकुल ध्वनि की उपमा मेघ गर्जन से देते हैं तो सजल मेघ का सादृश्य लाकर प्रपात की ध्वनि को विशिष्टता दी है। भूध रनिकुंजविजृम्भमाण को देखें तो पर्वत की कन्दरा के लिए निकुंज शब्द लिया है जो कि हरे-भरे लता-गुल्मों एवं वनस्पतियों से आवेष्टित है। अत: एक ओर तो ऐसी गुफाओं की श्याम शाद्वलता हमारे सामने आती है और दूसरी ओर उनमें प्रपात के शब्दों का प्रतिध्वनन भी एक विशिष्ट प्रकार के अनुगूँज को मूर्त करता हुआ प्रतीत होता है। गजस्तनितवत् वनप्रान्तर में प्रसारित इस अनुगूँज में कवि ने गणेशकंठ की ध्वनि का सादृश्य ला और भी प्रीत बनाया है।

## ग्रीष्म ऋतु

भवभूति ने प्रकृति की कालगत भंगिमाओं में ग्रीष्मकालीन मध्यान्ह की चित्रमयता को बड़े ही सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है-

*काश्मर्याः कृतमालमुद्गतदलं कोयष्टिकष्टीकते*
*तीराश्मन्तकशिम्बिचुम्बिनमुखा धावन्त्यपः पूर्णिकाः।*
*दात्यूहैस्तिनिशस्य कोटरवति स्कन्धे निलीय स्थितं*
*वीरून्नीडकपोतकूजितमनुक्रन्दन्त्यधः कुक्कुभाः।।12*

ग्रीष्म में 'गंभीर' जैसे कितने वृक्ष होते हैं जिनके पत्ते झड़ जाते हैं उन नग्नप्रायः वृक्षों पर आवासी पक्षी आरग्वध जैसे वृक्षों के हरे-भरे सघन पत्तों की ओट में जाने के लिए सचेष्ट हैं। पूर्णिका नामक चिड़िया तटवर्ती तृणों में चोंच मार-मार कर अपने खाघ्द्य की तलाश करती है किन्तु ग्रीष्म की ज्वाला ने उसकी प्यास को भूख की तुलना में काफी बढा दिया है; फलतः वह पत्तों का स्पर्शमात्र करती है। चिलचिलाती दुपहरी में कालकण्ठक पक्षी वृक्षकोटर में छुपे हैं। उध र कुकुभ लता-गुल्मों में छिपे कबूतरों की ध्वनि निकाल कर दुपहरी को काटने में लगे हैं। इस उद्धरण में एक ओर ग्रीष्म की प्रचण्डता है तो दूसरी ओर विविध प्राणियों की अन्तः एवं बाह्य प्रकृति का मार्मिक रूपायन।

मानवजीवन का प्रकृति के साथ अनादिकाल से ही गहन सम्बन्ध रहा है। संस्कृत के कवियों ने इस चिरन्तन सत्य को बड़ी भावुकता व कलात्मकता के साथ अपनी सर्जना में उतारा है। संवेग या भावुकता के क्षणों में पर्यावरण का मानव भावों पर या मानवभावों का पर्यावरण पर आरोप-प्रत्यारोप अवश्यंभावी सा हो जाता है। भावुक माधव मालती के कोमल कर-स्पर्श की अनुभूति व्यक्त करता है-

*आमूलकण्टकितकोमलबाहुनालमाद्रांगुलीदलमनंगनिदाघतप्तः।*
*अस्याः करेण करमाकलयामि कान्तमारक्तपंकजमिव द्विरदः सरस्याः।।13*

कोमलांगी मालती का हाथ ईषत् रक्त है, अतः उसकी उपमा आरक्त पंकज से दी है; उसकी पतली नरम अंगुलियाँ कमलपंखुडी सम, भुजा नालदण्डवत् सुकुमार हैं, जो माधव के करस्पर्श मिलने के संवेग में पूरी की पूरी रोमांचित हो गई है। यहाँ मालती को पूर्णतः प्रकृति में ऐसा सराबोर बताया है कि माधव एवं मालती की तत्कालीन रागात्मक अनुभूतियाँ मूर्त्त हो कर हमारे मन-प्राणों में छा जाती हैं। स्वयं माधव कामाग्नि में झुलसता हुआ मानो कोई जंगली हाथी हो जो ग्रीष्म की प्रखर ज्वाला में झुलसता हुआ किसी पुष्कर से अपने स्थूल शुण्ड में कंटकित नाल से युक्त आर्द्र रक्तकमल को ग्रहण कर रहा हो तथा उससे अपने संतप्त शरीर या प्राणों में शीतलता का संचार कर रहा हो। प्रकृति के विलास भरे सौन्दर्य के अजस्र स्रोत में प्रेमी हृदय को अपनी प्रिया की एक-एक भंगिमा विभ्रम की झलक मिलती है। प्रिया के सामीप्य में प्रकृति की लीलाभूमि जहाँ समवेत रूप से प्रणयी के उच्छ्वसित प्राणों में प्रियतमा की मांसल अनुभूति का सर्जन करती है और लगता है कि प्रेमी के साथ प्रकृति नहीं वरन् उसकी प्रेमिका ही है। इस तरह एक सहचर के रुप में भी प्रकृति को दिखाया गया है। प्रिया के संयोग या वियोग में प्रकृति रूपों की एक से एक मनोहर छटाएँ संस्कृत नाटकों तथा काव्यों में प्रायः सर्वत्र मिल सकती हैं। प्रकृति के इन चित्रों की तरह कमनीय व मनोहर चित्र इस प्रकरण में और भी हैं तथापि महावीरचरित की अपेक्षा मालतीमाधव में काफी प्रसार और व्यंजना के साथ प्रकृति उपस्थित हुई है।

## उत्तररामचरित में पर्यावरण

यदि महावीरचरित में पर्यावरण स्वल्प स्थिति में है और मालतीमाधव में अतिशय विस्तार तो उत्तररामचरित में संतुलित स्थिति में है। यह संतुलन कवि की कला और अनुभूतियों का चरम बिन्दु है। इस नाटक में पर्यावरणीय तत्त्व प्रत्येक दृष्टि से वस्तु, नेता एवं रस के अनुषंगी एवं परिपोषक होकर आये हैं। उत्तररामचरित की में भवभूति ने वस्तु विकास में वनदेवता वासन्ती, नदीदेवता भागीरथी, तमसा, मुरला तथा पृथ्वी आदि दैवीकृत पात्रों के माध्यम से मनुष्य, प्रकृति और देवताओं के भाव-तादात्म्य का हृदयग्राही चित्रण भवभूति की कला व प्रतिभा का परिचायक है।

अपनी तीनों कृतियों में वे सर्वत्र अपेक्षाकृत गम्भीर, कठोर एवं गहन की ओर अधिक आकृष्ट हुए हैं। विशेषतः उत्तररामचरित तो उनके गम्भीर जीवनदर्शन का चूडान्त निदर्शन है। इसमें जिस करुणा की इतनी मार्मिक व्यंजना हुई है, वह वस्तुतः कवि के कालगत गाम्भीर्य का ही पर्याय है। यहाँ करुणा के विकट एवं गम्भीर उद्घोष में जिन तत्त्वों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता की है, उनमें पर्यावरणीय तत्त्वों का विशेष महत्त्व है। पूर्व के दोनों नाटकों में पर्यावरणीय तत्त्वों को कोई व्यक्तित्व न मिलकर एक परिमार्जक या अनुषंगी का ही काम मिला है किन्तु उत्तररामचरित में प्रकृति ठीक उसी भूमिका में उतरी है जैसी शाकुन्तल में है। नाटक में निर्वासित सीता के रक्षक के रूप में गंगा और पृथिवी दोनों का व्यक्तित्व उतना ही दिव्य और आकर्षक है जितना अरुन्धती और कौशल्या का। सप्तम अंक के अन्तर्नाटक मंय उनकी भूमिका मानव हृदय को छूकर भावविभोर करने वाली है। द्वितीय अंक में वन-श्री या वनदेवता वासन्ती के रूप में सदेह प्रकट होती है तो तृतीय अंक में सीता की सहचरी के रूप में तमसा और मुरला नामक नदियों का साहचर्य है।

इस प्रकार सीता और राम के व्यथित हृदय के आश्वस्त करने तथा उनके भावात्मक मिलन की सम्यक् पृष्ठभूमि तैयार करने में पर्यावरण के ही मूर्त एवं अमूर्त तत्त्व सहायक हैं- तमसा, मुरला, वासन्ती और पंचवटी के बन्धुरूप वृक्ष, मृग आदि इसी उद्देश्य की सिद्धि में मानव पात्रों की तरह ही प्रयुक्त हुए हैं। उत्तररामचरित का अधिकांश भाग प्रकृति के परिवेश में ही है। दूसरे और तीसरे अंक तो सम्पूर्णतः दण्डकारण्य में ही पिरोये गये हैं। चतुर्थ-पंचम अंकों की घटनाएँ वाल्मीकि के आश्रम या समीपस्थ प्रदेशों में घटित हैं। छठे अंक का युद्ध चित्र भी आश्रम के पास प्रकृति के विशाल प्रांगण में अंकित है। इस तरह भवभूति ने कानन में भी राम के साथ वन्यजीवन के प्रसंगों की भावभूमियाँ जगाई हैं, जिनका प्रकृति से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। कवि ने अपने पाठक व दर्शकों को करुण रस अवस्था तक पहुँचाने के लिए जिन कलात्मक उपकरणों का आश्रय लिया है, उनमें विकट, कठोर एवं गम्भीर प्रकृति का भी बहुत बड़ा हाथ है। सीता विरहित

राम जब रोते हैं तो पत्थर तक रोने लगते हैं, वज्र हृदय भी विदीर्ण हो जाता है-

*अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम।14*

तृतीय अंक की समर्थ पार्श्वभूमि के रूप में दण्डकारण्य की प्रकृति की मानवभावों के साथ उपयुक्त संगति देखी जा सकती है। शम्बूक को दण्डित करने के क्रम में राम अनजाने में ही प्रकृति की उस रमणीय लीलाभूमि में प्रवेश कर सुपरिचित नदी, निर्झर, पर्वत आदि का पुनः साक्षात्कार करते हैं-

*स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरुक्षाः,*
*स्थाने-स्थाने मुखरककुभो झांकृतैर्निर्झराणाम।*
*एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः*
*सन्दृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः।।15*

## दक्षिणारण्य प्रकृति

भवभूति ने प्रकृति के दण्डक, जनस्थान और पंचवटी नामक चरणों में उसके दो भिन्न स्वरों के दर्शन कराये हैं- एक तो राम आद्यन्त जिस प्रकृति के दर्शन करते हैं, वह मर्मस्पर्शी होते हुए भी कोमल और सरल है। दूसरे शम्बूक के मुख से प्रकृति का परुष और जटिल रूप प्रकट होता है परन्तु दोनों की अपनी -अपनी अर्थवत्ता है। राम के व्यक्तित्व हेतु सरल प्रकृति और प्राणों में छिपे बवंडर के लिए कठोरता और निविडता के रूप में प्रकृति वर्णन हैं। शम्बूक की प्रकृति का स्फुट प्रयोजन है। इसके अगम्य कठोर गह्वरों में सीता के पावन स्नेह की स्रोतस्विनी प्रवाहित कर देना, उसके संवेगी प्रवाह में विरोधी लहरों के घात-प्रतिघात से उत्पन्न ऐसा कलोल भर देना कि राम अनिर्भिन्न नहीं रह सकें-

*एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो*
*मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दक्षिणाः।*
*अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-*
*रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संगमाः।।16*

स्वयं शम्बूक अपने इस नाटकीय प्रयोजन में कुछ नहीं कह पाता, किन्तु उसके द्वारा वर्णित प्रकृति अपनी विकट भाव भंगिमाओं में सब कुछ प्रकट कर देती है जो भवभूति का कलात्मक लक्ष्य है। द्वितीय अंक में वर्णित प्रकृति के एक उद्धरण में वासन्ती द्वारा कठोरीभूत दिवस के विषय बताया गया है-

*कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन सम्पातिभि-*
*र्घर्मस्रंसितबन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम।*
*छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः*
*कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः।।17*

गर्मी के दिनों में जंगली नदियों की तटवर्तिनी शुभ्रजलराशि पर वृक्षों से जो अनायास पुष्पवृष्टि होती रहती है, उसके पीछे दो प्रबल हेतु हैं- हाथियों का अपने कण्डूयुक्त मस्तकों को उन वृक्षों से रगड़ना तथा गर्मी के कारण पुष्प-वृन्तों का शिथिल पड़ जाना। पुष्प वृष्टि की इस सामान्य क्रिया को कवि ने अतिशय मोहक बना दिया है। चतुर्थ चरण में कूंजते तथा कुट-कुट करते पक्षियों की चहल-पहल प्रयुक्त शब्दों की ध्वनिमात्र से प्रकट होती हुई सी लगती है। तीसरे चरण में तो कवि ने ग्रीष्म प्रकृति के एक भरे पूरे तथा अपेक्षाकृत उपेक्षित सौन्दर्य को थोड़े से गिने-चुने पदों के माध्यम से ही साकार कर दिया है। अपरिष्करमाण जैसे पद की संगति में विष्किर का प्रयोग कितना साभिप्राय और मनोहर है।

जनस्थान के मध्यवर्ती प्रशान्त-गम्भीर वनों की एक और विकट भंगिमा पर दृष्टिपात कीजिए-

*गुंजत्कुंजकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक-*
*स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौंचावतोऽयं गिरिः।*
*एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै-*
*रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः।।18*

यहाँ स्वभाव से ही ढीठ कौए भी उल्लुओं के अव्यक्त शब्दों से युक्त सनसनाते वेणुगुच्छों की तुमुल ध्वनि से डरकर निःशब्द होते दिखाये गये हैं। अन्तिम दो पंक्तियों में वनप्रकृति का एक कठोर एवं भयानक यथार्थ चित्रित किया गया है। पुराने चन्दनवृक्ष अपेक्षाकृत अधिक सुगन्धित होते हैं, अतः अपने प्राणों का लोभ छोड़कर भी स्वभाव से ही सुगन्ध के प्रेमी बड़े-बड़े जंगली सर्प उनसे लिपटे रहते हैं। उधर सर्पों के शत्रु मयूर भी उन वृक्षों पर फुदकते रहते हैं, किन्तु उनके फड़-फड़ उड़ते रहने से वे सर्प क्षुब्ध होकर भी चन्दन वृक्ष का मोह नहीं त्यागते और उसके कन्धों पर छअपट करते हुए रेंगते रहते हैं। प्रकृति का ऐसा विकट यथार्थ भवभूति जैसे महाकवि की ऊर्जस्वी कल्पना से ही इतना प्राणवन्त होकर प्रकट हुआ है।

संक्षेपतः अपनी तीनों ही नाट्यकृतियों में भवभूति एक विशिष्ट प्रकृति-कवि के रूप में प्रकट हुए हैं। उनके लिए प्रकृति मानव भावों की अलंकृति की सीमाओं

में ही नहीं दीखती; वे उसके व्यापक स्वच्छन्द जीवन की विविध भंगिमाओं का भी कलात्मक अंकन करते हैं। अपनी अन्त:प्रकृति के गाम्भीर्य के अनुरूप ही उन्होंने बाह्य प्रकृति के ताण्डव की ओर अधिक ध्यान दिया है और उसकी विकट मुद्राओं को अपनी ओजस्विनी वाणी प्रदान की है।

## सन्दर्भ सूची


1. काण्व संहिता - 36.17
2. महावीरचरितम् - 7.12
3. महावीरचरितम् - 7.11
4. महावीरचरितम् - 7.9
5. महावीरचरितम् - 7.13
6. महावीरचरितम् - 5.40
7. महावीरचरितम् - 5.42
8. महावीरचरितम् - 5.41
9. मालतीमाधवम् - 9.15
10. मालतीमाधवम् - 9.5
11. मालतीमाधवम् - 9.3
12. मालतीमाधवम् - 9.7
13. मालतीमाधवम् - 6.20
14. उत्तररामचरितम् - 1.28
15. उत्तररामचरितम् - 2.14
16. उत्तररामचरितम् - 2.30
17. उत्तररामचरितम् - 2.9
18. उत्तररामचरितम् - 2.29ण

# राजनीतिक सामाजीकरण एवं विकास : एक अध्ययन


## कृष्णा बैठा

*शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग*



सारांश –राजनीतिक विज्ञान विभाग, एस.एम.जे.एन. पी.जी. कॉलेज, हरिद्वार। सारांश: राजनीतिक सहभागिता आधुनिक राजनीति की एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं के लिए यह एक अनिवार्य तत्व रहा है। राजनीति से सम्बन्धित विषयों में नागरिकों की सहभागिता, उनकी भूमिका और निष्ठा का स्तर राज्य के राजनीतिक कार्यों से सम्बन्धित होता है। जितनी सहभागिता अधिक होगी, उतना ही लोकतंत्र को वास्तविक और सफल माना जाता है। 'जनता का, जनता के लिए और जनता के द्वाराष्ठ सरकार तभी स्थापित हो सकती है, जबकि लोगों की अधिक से अधिक राजनीतिक सहभागिता हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक सहभागिता का आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रख्रति, उनकी कार्य प्रणाली, कार्यक्षमता और प्रभावकारिता को समझने में निर्णायक समझा जाता है। अत: लोकतंत्र में शासन व्यवस्था के संचालन का मौलिक आधार तत्व जन–सहभागिता है और यही तत्व है जो निर्वाचित राजनीतिक सत्ता को विकासोन्मुखी और जन–उत्तरदायी बनाए रखता है।

राजनीतिक विकास की अवधारणा में व्यापकता होने के कारण विचारकों में मतभेद बना हुआ है। इसकी अवधारणा पर मतभेद का प्रमुख कारण इसकी व्याख्या पर विचारक विशेष का दृष्टिकोण है। कुछ विचारक राजनीतिक विकास को राजनीति की ऐसी स्थिति मानते हैं जो कि आर्थिक उन्नति में सुविधा पहुँचा सके। कई विद्वान औधोगिक समाजों के विशेष राजनीति के रूप में राजनीतिक विकास का अध्ययन करते हैं। कुछ विचारक राजनीतिक विकास को राजनीतिक सहभागिता का संकेतक मानते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि राजनीतिक विकास राज्य की संस्थाओं के प्रसंग में राष्ट्रवाद राजनीतिक विकास की आवश्यक परिस्थिति है। राजनीतिक विकास का आंशिक पहलू प्रशासकीय और वैधानिक विकास है। राजनीतिक विकास में एक राज्य की गैर–सत्ताधारी संस्थाएं भी आ जाती हैं। कई विचारकों का मानना है कि राजनीतिक विकास में कुछ सीमा तक यह भी समन्वित है कि अधिक से अधिक लोगों राजनीतिक सहभागिता हो। अत: इस बात की आवश्यकता महसूस की गई कि राजनीतिक विकास की संकल्पना का प्रयोग करके एक नए विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया जाए, जिससे राजनीतिक परिवर्तनों के विकास के प्रवाह को समझा जा सके।



**किवर्ड : राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक विकास**


स्वाधीनता प्राप्ति के इतने वर्षों पश्चात् भी भारत में विकास तथा आधुनिकीकरण के फल अभी भी हमारी आर्थिक व्यवस्था के अन्तिम छोर पर खड़े हुए व्यक्ति तक नहीं पहुँच पाये हैं। यद्यपि भारत में अपने पड़ोसी देशों के मुकाबले राजनीतिक प्रजातंत्र सफलता पूर्वक स्थापित हो चुका है। स्वाधीन भारत में सन्तुलित विकास न होने के कारण एक ऐसा समाज विकसित हुआ है, जिसके कुछ भाग विकसित समाजों के लक्षण प्रदर्शित करते हैं, जबकि आबादी का एक बड़ा भागऔर देश के अनेक क्षेत्र अभी भी सामाजिक–आर्थिक पिछड़ेपन और दरिद्रता के शिकार बने हुए हैं।

विकास की इन समस्याओं के कारण भारत में उपजे क्षेत्रीय असंतुलन ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक तनाव और आन्दोलन उत्पन्न कर दिये हैं। इन आन्दोलनों में हाल ही के वर्षों में सर्वाधिक चर्चित उत्तराखण्ड आन्दोलन हुआ है। यह आन्दोलन विकास की अदम्य इच्छा के कारण और आधुनिकीकरण की दौड़ में पिछड़ जाने की भावना के कारण उत्पन्न हुआ था। इस आन्दोलन ने भारतीय संघ के सत्ताईसवें राज्य उत्तराखण्ड को जन्म दिया, परन्तु आज भी राजनीतिक लक्ष्य को प्राप्त करने के बाद भी सामाजिक–आर्थिक मुद्देपहाड़ों की विकराल समस्याओं के रूप में हमारे सामने उजागर है जिनका कोई समाधान अभी तक नहीं खोजा गया है।

### राजनीतिक सहभागिता–

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् देश के विभिन्न भागों में उपजे जन–आंदोलन जनता में बढ़ती हुई राजनीतिक सहभागिता और विकास की इच्छाओं के परिणाम थे। प्रजातंत्र में राजनीतिक सहभागिता अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि जन सहभागिता के द्वारा ही सरकार को जन–सहमति प्राप्त होती है। यदि किसी समाज में आधिकांश जनता को राजनीतिक सहभागिता का अवसर नहीं दिया जाता है तो वहाँ जनाक्रोश उपजने लगता है। आधुनिक काल में हर शासन चाहे वह किसी भी रूप में हो तानाशाही या सैनिक शासन वे भी अपने स्वेच्छाचारी निर्णयों को राजनीतिक सहभागिता के किसी माध्यम द्वारा जन सहमति से आच्छादित करने का प्रयत्न करता रहता है। इस संबंध में पाकिस्तान के सैनिक तानाशाहों का उदाहरण दिया जा सकता है जो अपने कार्यों के लिए जनता के समर्थन का आवरण तलाशते रहते हैं। परन्तु एक सच्चा प्रजातंत्र जनता की सक्रिय राजनीतिक सहभागिता को अपना आधार और ऊर्जा बना कर ही गतिमान रह सकता है।

राजनीतिक सहभागिता की अवधारणा के अनेक अर्थ लिये जाते हैं। मैक्लोस्की के शब्दों में, हभागीदारी वह प्रमुख साधन है जिसके द्वारा किसी जनतंत्र में सहमति दी जाती है अथवा हटा ली जाती है और शासकों को शासितों के प्रति जिम्मेदार बनाया जाता है।

राजनीतिक सहभागिता के अंतर्गत कई प्रकार के कार्य सम्मिलित हैं परन्तु उनमें विविधता के बावजूद निर्णय लेने की भावना अतंर्निहित है अर्थात् सहभागिता एक विवेकपूर्ण कार्य है।

आमण्ड और वर्बा ने अपनी पुस्तक 'द सिविक कल्चर' में लिखा है कि ह्राजनीतिक सहभागिता राजनीतिक संस्ख्रति के विकास एवं समुदाय को आधुनिक और लोकतांत्रिक बनाने का महत्वपूर्ण तत्व है।'

लर्नर ने मध्य-पूर्व के अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि राजनीतिक सहभागिता आधुनिकीकरण का महत्वपूर्ण संकेत है। लर्नर ने कहा कि ह्जो व्यक्ति एक बार राजनीतिक क्रिया-कलापों में सहभागी होने का निर्णय कर लेता है वह इन क्रिया-कलापों पर अपना एक निश्चित अभिमत भी रखता है तथा उसके अंदर सहभागी होने की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।ह्र राजनीतिक भागीदारी में सम्मिलित क्रियाओं को लेस्टर मिलबेथ ने निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया है :

1. ग्लेडिएटर क्रियाएँ- इस वर्ग के अंतर्गत वे क्रियाएँ आती हैं जो राजनीतिक दलों की गतिविधियों का अंग हैं जैसे राजनीतिक पदों के लिए चुनाव, विधनसभा के चुनावों में भाग लेना, दल के कोश के लिए चन्दा एकत्रित करना, दल के बढ़ाने के लिए आंदोलन और दल की गतिविधियों के सम्पूर्ण क्षेत्र में लगातार सभाओं का आयोजन करते रहना इत्यादि।
2. संक्रमणकारी क्रियाएँ-इनमें वे क्रियाएँ सम्मिलित हैं जो दल के सहायक व शुभचिंतक करते रहते हैं जैसे नेताओं के भाषणों को सुनना, दल के कोश में चन्दा देना तथा दल के नेताओं में सम्पर्क बनाए रखना इत्यादि।
3. दर्शक क्रियाएँ-इनमें मतदान, दूसरों के मतों को प्रभावित करना, राजनीतिक वाद-विवादों में भाग लेना, राजनीतिक उत्तेजनाओं से प्रभावित होना अथवा राजनीतिक दलों के बिल्ले लगाना या इष्ठतहार बाँटना शामिल है।

मिलबेथ के विश्लेषण से भागीदारी की प्रकृति पर प्रकाश पड़ता है।

## राजनीतिक भागीदारी के प्रकार

इस विश्लेषण से राजनीतिक भागीदारी के दो प्रकार स्पष्ट होते हैं :-

1. सक्रिय प्रकार
2. निष्क्रिय प्रकार

यह वर्गीकरण समाज में राजनीतिक भागीदारी में समय, शक्ति और साधनों के व्यय के आधार पर किया जाता है सभी लोग राजनीतिक कार्यों में समय, शक्ति अथवा धन नहीं लगाना चाहते। ऐसे लोगों को सक्रिय भागीदारी नहीं कहा जा सकता, इनको निष्क्रिय भागीदार कहा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह सिर्फ तमाशबीन है जबकि राजनीतिक तमाशा करने वाले सक्रिय राजनीतिक भागीदार है।

राजनीतिक भागीदारी का एक अन्य वर्गीकरण उसके प्रयोजन के अनुसार किया गया है। प्रयोजन की दृष्टि से राजनीतिक भागीदारी के दो प्रकार हैं :

1. साधनात्मक राजनीतिक भागीदारी पहलेप्रकार में निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने का उद्देश्य होता है जैसे राजनीतिक दल की चुनावों में विजय अथवा संसद में कोई विधेयक पास करना अथवा विशिष्ट नेता का प्रभाव क्षेत्र बढ़ाना इत्यादि।

अभिव्यंजक राजनीतिक भागीदारी: अभिव्यंजक राजनीतिक भागीदारी का उद्देश्य कोई निश्चित लक्ष्य प्राप्त करना नहीं होता बल्कि संतोष प्राप्त करना अथवाअनुभूति का अभिव्यंजन करना मात्र होता है।

अलोकतंत्रीय व्यवस्थाओं में राजनीतिक भागीदारी-उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा कि राजनीतिक भागीदारी केवल लोकतंत्र का ही लक्षण है। वास्तव में वह अलोकतंत्रीय व्यवस्थाओं में भी किसी न किसी रूप में तो मिलती ही है। टी.जे. बैलोज, एस. ऐरिक्सन और एच.आर. विन्टर के शब्दों में वह एक प्रकार की राजनीतिक निष्क्रियता है जो कि शासन को सहायता प्रदान करती है परन्तु व्यक्ति को अपने सम्पूर्ण सत्र के राजनीतिकरण की अवहेलना करने योग्य बनाती है। एक सुरक्षा यंत्र के रूप में वह कुछ रीतियों से किसी न किसी प्रकार की व्यक्तिगत निजता और स्वायत्तता बनाए रहने का प्रयास करती है।'

प्रजातंत्र एक ऐसी शासन-व्यवस्था है जिसके अंतर्गत साधारण से साधारण व्यक्ति भी असाधारण कार्य कर सकता है क्योंकि यही एक ऐसी व्यवस्था है जो जनता की, जनता के लिए तथा जनता के द्वारा चलायी जाती है। सामान्यतया सभी राजनीतिक व्यवस्थाएँ 'जनता के लिए तथा जनता की' होती है।

यद्यपि राजनीतिक सहभागिता का अध्ययन प्रजातंत्र के अध्ययन से जुड़ा हुआ है, किंतु ऐसी बात नहीं है कि प्रजातंत्र ही केवल राजनीतिक सहभागिता के अवसर प्रदान करता हो। बीसवीं शताब्दी के सभी राजनीतिक तंत्र चाहे वे सर्वसत्तावादी हों, अनुदारवादी हो, या प्रतिक्रियावादी हों, अपने नागरिकों को राजनीतिक कार्यों में भाग लेने का अधिकार देते हैं और इस आधार पर वे इसे प्रजातांत्रिक देश की संज्ञा देते हैं। व्यक्ति द्वारा राजनीतिक तंत्र के विभिन्न स्तरों पर भाग लेने को राजनीतिक सहभागिता कहते हैं।

## राजनीतिक सहभागिता की विशेषताएँ-

राजनीतिक सहभागिता आगत तथा निर्गत दोनों ही हैं।

1. आगत:इसके अंतर्गत मांगे रखना उन मांगोंको पूरा करवाने तथा सरकार पर दबाव डालने के लिए समर्थन इकठा करने (संगठित करने का निर्णय लेना तथा समर्थन करना, इत्यादि कार्य आते हैं।
2. निर्गत: इसके अंतर्गत नियम निर्माण, नियम प्रयुक्ति तथा नियम अधिनिर्णयन कार्य आते हैं। प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की संस्थाएँ जैसे आरक्षण, जनमत-संग्रह तथा वापस बुलाना साधारण जनता को आगत तथा निर्गत कार्यों में भाग लेने के व्यापक अवसर प्रदान करती है। अप्रत्यक्ष प्रजातंत्र के अंतर्गत प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की अपेक्षा राजनीति में भाग लेने के अवसर सीमित होते हैं।

राजनीतिक सहभागिता को हम एक अधिक्रम के रूप में देख सकते हैं। राजनीतिक तंत्र के विभिन्न स्तरों पर व्यक्ति के हिस्सा लेने के कार्य की क्रियाओं को एक अधिक्रम के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह अधिक्रम में दिए गए प्रत्येक कार्य को करेगा इस प्रकार के कार्य चित्र 1:1 में दर्शाये गए हैं, अधिक्रम का ढांचा न केवल कर्ता के कार्यों (व्यवहार) को प्रदर्शित करता है अपितु व्यवहार से संबंधित कीमतों को भी व्यक्त करता है। जो अधिक्रम 1:1 में दिया गया है वह हर जगह नहीं होता। अधिक्रम का यह खाका समय, परिस्थितियों तथा देश के अनुसार बदल सकता है। इस अधिक्रम के अंतर्गत उन्हीं समान्य क्रियाओं को शामिल किया गया है जो प्रजातांत्रिक देशों में पाई जाती है। असाधारण या गैर-कानूनी कार्य या क्रियाओं को अलग से व्यक्त किया है।

## 1:1 कार्यों का अधिक्रम

असंवैधानिक तरीकेरू- घेराव, तोडफ़ोड़, हिंसा तथा आंदोलन।

संवैधानिक तरीके : राजनीतिक तथा प्रशासकीय पद पर कार्य करना। राजनीतिक तथा प्रशासकीय पद की चेष्टा करना। दल के लिए नए सदस्यों की भर्ती करना। दल के लिए धन इकठा करना। दल की महत्वपूर्ण राष्ट्रीय बैठक में भाग लेना। राजनीतिक संगठन की सक्रिय सदस्यता।

राजनीतिक संगठन की साधारण सदस्यता। राजनीतिक संगठन की सक्रिय सदस्यता। अर्थ राजनीतिक संगठन की साधारण सदस्यता। राजनीतिक दल की बैठक में भाग लेना। दल के प्रत्याशी को धन देना। राजनीतिक दलों के नेताओं तथा कर्मचारियों से सम्पर्क करना। सार्वजनिक सभाओं में भाग लेना। दल का बिल्ला लगाना। दूसरो को अपने पक्ष में मत देने के लिए कहना। औपचारिक रूप से राजनीतिक वाद-विवाद में भाग लेना। राजनीतिक बातचीत करना। राजनीति में सामान्य रूचि लेना। मतदान।

## राजनीतिक विकास-

राजनीतिक विकास की अवधारणा का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है, इसे अर्थशास्त्र में प्रचलित आर्थिक विकास की तरह एक संप्रत्यय भी माना जाता है और आर्थिक विकास के लिए एक आवश्यक दशा भी, कुछ विद्वानों का यह मानना है कि राजनीतिक विकास आर्थिक विकास के लिए आवश्यक वातावरण और दिशा का निर्माण करता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि राजनीतिक विकास किसी देश की आर्थिक उन्नति का संवाहक भी हो एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरीका के कई देशों में राजनीतिक विकास ने आर्थिक विकास को अवरुद्ध भी किया है। कई देशों को प्रजातांत्रिक व्यवस्था और चुनावों की प्रणाली खर्चीली और देश के सीमित संसाधनों पर एक बोझ लगती है।

लर्नर द्वारा राजनीतिक विकास को राजनीतिक आधुनिकीकरण का पर्याय माना जाता है तो बाइंडर इसे राष्ट्रीय राज्य की अवधारणा का एक संघटक मानता है। रिग्स ने राजनीतिक विकास की व्याख्या प्रशासनिक एवं कानूनी विकास के आधर पर की है तो आमंड, कोलमैन, ब्लैक और आइजेन्सटाड राजनीतिक विकास को सामाजिक परिवर्तन की बहु-दिशा युक्त प्रक्रिया के एक पहलू के रूप में विश्लेषित किया है।

एल्फ्रेड डायमण्ट ने राजनीतिक विकास की परिभाषा सामान्य रूप में देते हुए लिखा है कि राजनीतिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे एक राजनीतिक व्यवस्था में नवीन लक्ष्यों को निरंतर सफल रूप में प्राप्त करने की क्षमता रहती है।

आमण्ड और पावेल के अनुसार राजनीतिक विकास राजनीतिक संरचनाओं का अभिवृद्ध विभेदीकरण तथा राजनीतिक संस्कृति का बढ़ा हुआ लौकिकीकरण है। इस परिभाषा में यह अर्थ सन्निहित है कि राजनीतिक संरचनाओं के बढ़ते हुए विभेदीकरण और विशेशीकरण तथा संस्कृति के अधिकाधिक लौकिकीकरण से राजनीतिक व्यवस्था की निष्पादन शैली की कार्य दक्षता व प्रभावकारिता बढ़ जाती है जिससे उसकी क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

जाग्वाराइब ने लिखा है कि 'राजनीतिक विकास एक प्रक्रिया के रूप में राजनीतिक आधुनकीकरण तथा राजनीतिक संस्थाकरण का जोड़ है।

ल्यूसियन पाई ने अपनी पुस्तक ऐस्पेक्टस ऑफ पोलिटिकल डवलपमेंट में दस व्याख्याओं का उल्लेख किया है। जो इस प्रकार है :

1. आर्थिक विकास की राजनीतिक पूर्व शर्तके रूप में राजनीतिक विकास:राजनीति की एक ऐसी स्थिति को कहा गया है जो आर्थिक उन्नति, प्रगति और समृद्धि में सहायक हो।
2. औद्योगिक समाजों की विशेष राजनीति के रूप में राजनीतिक विकास: आर्थिक विकास से जुड़ा है। रस्टोव ने इन दोनों को परस्पर संबंधित बताकर राजनीतिक विकास को समझाया है।
3. राजनीतिक आधुनिकीकरण के रूप मेंराजनीतिक विकास: आधुनिकीकरण ही का एक रूप है। इसमें इन दोनों को समानार्थी मानकर राजनीतिक विकास की व्याख्या की गयी है।
4. राष्ट्रीय राज्य के प्रचालक के रूप में राजनीतिक विकास: राष्ट्रीयता की भावना के विकास और एक राष्ट्रीय राज्य के निर्माण से जोड़ दिया है।

5. प्रशासकीय और विधिक विकास के रूप में राजनीतिक विकास:इसमें राजनीतिक संरचनाओं का विभेदीकरण और विशेशीकरण तथा सर्वव्यापी कानूनों के माध्यम से विधि के शासन की स्थापनाको समझा जाता है।
6. जन-संचारण और सहभागिता के रूप मेंराजनीतिक विकास:इसमें जन-संचारण और लोगों की सहभागिता का बढ़ जाना सम्मिलित किया जाता है।
7. लोकतंत्र के निर्माण के रूप में राजनीतिक विकास : राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं को प्रतियोगी, स्वतंत्र तथा जन-सहभागिता के लक्षणों से युक्तकरने की प्रक्रिया है।
8. स्थायित्व और व्यवस्थित परिवर्तन के रूप में राजनीतिक विकास: राजनीतिक व्यवस्था की उस अवस्था को समझा जाता है जिसमें परिवर्तन की सुनिश्चित और व्यवस्थित प्रविधियां प्रचलित रहती है तथा जहाँ अनावश्यक राजनीतिक उथल पुथल नहीं होती है।
9. शक्ति संचारक के रूप में राजनीतिक विकास: में यह देखा जाता है कि राजनीतिक व्यवस्था विकास के लिए कितनी शक्ति समाज से जुटा पाती है।
10. सामाजिक परिवर्तन की बह-दिशायक्तप्रक्रिया के एक पहलू के रूप में राजनीतिक विकास: इसे परिवर्तन की सामाजिक प्रक्रिया से जोड़ा जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था के संगठन के संदर्भ में राजनीतिक विकास संरचनात्मक विभिन्नीकरण और कार्यात्मक विशेशीकरण का संकेतक है।

ल्यूसियन पाई के अनुसार राजनीतिक विकास की इस त्रिमुखी व्याख्या के आधारस्तम्भ समानता, क्षमता और विभिन्नीकरण है। वह उन्हीं राजनीतिक व्यवस्थाओं को राजनीतिक विकास के मार्ग पर अग्रसर मानता है जिनमें समानता का सिद्धांत लागू हो, राजनीतिक व्यवस्था और सरकार आने वाली माँगों, विवादों और राजनीतिक मामलों का निष्पादक करने में समर्थ हो। और इससे संबंधित संरचनाएं अलग-अलग और विशेशीकृत होते हुए भी पारस्परिकता वतालमेल रखती हों।

## राजनीतिक विकास की अवस्थायें-

राजनीतिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं या स्तरों का विचार अर्थशास्त्रियों के आर्थिक विकास की अवस्थाओं या स्तरों से प्रभावित रहा है, रस्टोव ने अपनी पुस्तक 'स्टेजेज ऑफ इकॉनॉमिक ग्रोथ' में आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों का उल्लेख किया है, राजनीतिक विचारक भी यह मानने लगे हैं कि राजनीतिक विकास की अनेक अवस्थाएँ होती है।

राजनीतिक विकास स्तरों के विचारों को निम्न प्रकार से सूचीबद्ध किया जा सकता है :

हंटिग्टन ने 'वर्ल्ड पालटिक्स' में प्रकाशित अपने लेख 'पॉलिटिकल डेवलेपमेंट एण्ड पॉलिटिकल डिके' में राजनीतिक विकास के तीन प्रमुख स्तर बतायें

1. सत्ता की बुद्धिसंगतता
2. नवीन राजनीतिक कार्यों का विभिन्नीकरण व विशेशीकरण
3. अभिवृद्ध सहभागिता

आइजेन्सटाड ने राजनीतिक विकास की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण की व्यापक प्रक्रिया का एक अंग मानकर उसे दो अवस्थाओं में विभक्त करता है:

1. सीमित आधुनिकीकरण
2. जन-आधुनिकीकरण

आमण्ड ने राजनीतिक विकास को चार विभिन्न स्तरों पर विश्लेषित किया है वे विभिन्न स्तर इस प्रकार है :

1. राज्य निर्माण 2. राष्ट्रीय निर्माण 3. सहभागिता 4. वितरण

ऑरगेन्सकीने अपनी पुस्तक 'स्टेजेज ऑफ पॉलिटिकल डवलपमेंट' में राजनीतिक विकास के चार स्तर बतायें

1. आदिम एकीकरण की अवस्था
2. औद्योगिकीकरण की अवस्था।
   - (क) बुर्जुआ या मध्यवर्गीय प्रतिमान
   - (ख) स्टालिन प्रतिमान
   - (ग) समन्वयी प्रतिमान
3. राष्ट्रीय लोक कल्याण की राजनीति
   - (क) जन लोकतंत्र प्रतिमान या मॉडल
   - (ख) नाजी प्रतिमान
   - (ग) साम्यवादी प्रतिमान
4. समृद्धि की राजनीति

जाग्वाराइब का अभिमत है कि हंटिग्टन, आइजेन्सटाड और आमण्ड ने राजनीतिक विकास के स्तरों का निर्धारण प्रकार्यात्मक आधर पर किया है जबकि ऑरगेन्सकी ने यथार्थ के आधर पर किया है। किन्तु राजनीतिक विकास के वास्तविक स्तर अनुक्रम को समझने के लिए इन दोनों को आधार बनाना आवश्यक है।

## निष्कर्ष :-

भारत में राजनीतिक विकास की प्रक्रिया बहुत लम्बी तथा परिवर्तनीय रही है। इन परिवर्तनों का प्रमुख कारण विभिन्न शक्तियाँ रही है। विभिन्न राजनीतिक दल, चुनाव, संचार-साधन, धर्म निरपेक्ष एवं जातिगत संगठन, विभिन्न विचारधाराएं आदि में समस्त प्रमुख शक्तियाँ है जिन्होंने विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन शक्तियों ने भारतीय परम्पराओं को नुकसान पहुँचाया है वहीं इन्होंने नवीन राजनीतिक स्वरूप एवं राजनीतिक मूल्यों व नवीन राजनीतिक विचारधारा का सूत्रपात भी किया है, एवं भारत को राजनीतिक दृष्टि से एक सूत्र में बाँधने का नवीन मार्ग भी प्रशस्त किया है।

रजनी कोठारी के अनुसार भारत के राजनीतिक विकास में दो तथ्य विशेष महत्वपूर्ण है :

1. भारत में स्वतंत्र प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था है।
2. भारतीय राजनीतिक विकास, आर्थिक विकास, प्रति व्यक्ति एवं राष्ट्रीय दर में वृद्धि, नवीन मूल्यों एवं विचारों का प्रचार- प्रसार नवीन संगठन आदि पर निर्भर है।

भारत में राजनीतिक विकास की प्रक्रिया अधिक जटिल है। भारत में सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक भिन्नताएं हैं। जिन्हें एक सूत्र में प्रस्तुत करना बहुत कठिन है। परम्परागत समाज में विभिन्नताओं में एकताओं को बनाए रखना जटिल होता है। विशेषकर बुद्धिजीवियों, नौकरशाहों तथा व्यवसायियों ने इन प्रयासों का विरोध किया है। भारतीय समाज व्यवस्था में ऐसा विरोध बहुत अधिक दिखाई देता है। स्वतंत्रता के पश्चात् राजनीतिक व्यवस्था के असफल होने का मुख्य कारण रहा है। भारत में इस प्रक्रिया में राजनीतिक नेतृत्व व सम्भ्रान्तजन को भी देखा जाना चाहिए।

एडवर्ड शील्स के अनुसार, भारत के राजनीतिक विकास में सम्मिलित राजनीतिक नेतृत्व तथा सभ्रांतजन वर्ग का बड़ा प्रभाग बुद्धिजीवियों द्वारा निर्मित है।

राजनीतिक सहभागिता किसी भी समाज के राजनीतिक विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संकेतक है। राजनीतिक रूप से विकसित समाजों में राजनीतिक सहभागिता का स्तर बहुत ऊंचा पाया जाता है। भारत में राजनीतिक विकास की समस्या राजनीतिक सहभागिता के विकास से संबंध है।

माइरन वीनर ने लिखा है कि भारत में राजनीतिक विकास की प्रमुख विशेषता जन-सहभागिता है।

हंटिग्टन भी 'जन सहभागिता को राजनीतिक विकास का महत्वपूर्ण लक्ष्ण मानता है।'

अत: भारत में राजनीति की प्रगति को जनता में निरंतर बढ़ती हुई राजनीतिक सहभागिता की भावना के विकास और एक संकुचित प्रजाभावी राजनीतिक संस्कृति के प्रजातांत्रिक सहभागी राजनीतिक संस्कृति में शनै: शनै: परन्तु निरंतर परिवर्तन की समस्या के संदर्भ में ही देखा जा सकता है।

## संदर्भ-ग्रंथ


1. मैक्लोस्की, एच., 'पॉलिटिकल पार्टीसिपेशन, इन 'इन्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सेज, कॉलर-मैक-मिलन न्यूयॉर्क, 1968, वोल्यूम-XII, पृष्ठ-253
2. आमण्ड, गैब्रियल ए.एण्ड जे सिडनी वर्बा, 'द सिविक कल्चर', प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन, एन.जे., 1961।
3. लर्नर डेनियल, 'द पासिंग ऑफ ट्रेडिशनल सोसायटी', मॉर्डनाइजिंग द मिडल ईस्ट, दी फ्री प्रेस, न्यूयॉर्क 1968, पृष्ठ-711
4. बैलोज, टी.जे., एरिक्सन एस. एण्ड विन्टर एच.आर. (संपा.) पॉलिटिकल साइंस, इंटरोडक्टरी एस्सेज एण्ड रीडिंग,डक्सबरी प्रेस, बेलमॉन्ट, केलीफोर्निया, 1971, पृष्ठ-123
5. डायमन्ट, अल्फेड, 'पॉलिटिकल डेवलपमेंटरू अप्रोचेज टू थ्यौरी एण्ड स्टेटेगी, इन मॉन्टगोमरी एण्ड सिफि-1,विलियम जे (संपा.), अप्रोचेज एण्ड डेवलपमेंट, 'पॉलिटिक्स, एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड चेन्ज, न्यूयॉर्क मैक-ग्रोहिल, 1966, पृष्ठ-15
6. आमण्ड, गैब्रियल ए0 एण्ड पॉवेल, 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स ए डेवलेपमेंट अप्रोच', बोस्टन, लिटिल ब्राऊन एण्ड कं0, 1966, पृष्ठ-25
7. जाग्वाराइब, हेलियो, 'पॉलिटिकल डेवलपमेंट', ए जनरल थ्यौरी एण्ड ए लैटिन अमेरिकन केस स्टडी, न्यूयॉर्क, हार्परएण्ड रॉ, 1973, पृष्ठ-193
8. शिल्स, एडवर्ड, 'इनफ्लुएन्स एण्ड विड्रॉवल इन, ''द इनटैलेक्च्युअल्स इन इंडियन पॉलिटिकल डेवलपमेंट इनपॉलिटिकल डिशिजन मेकिंग, पृष्ठ-29-56
9. वीनर, माइरन, 'पॉलिटिकल प्रॉब्लम्स ऑफ मॉडर्नाइजिंग, प्री- इंडिस्ट्रियल सोसायटीज,' इन 'एस्से ऑफ 'मॉडर्नाइजेशन ऑफ अंडर डेवलप्ड सोसायटीज, वोल्यूम-I, पृष्ठ-170
10. हंटिग्टन, सेम्युल पी., पॉलिटिकल डेवलपमेंट एण्ड पॉलिटिकल डिके, 'वर्ल्ड पॉलिटिक्स,' वोल्यूम, XVIII, 1965 पृष्ठ-386-430

# 'दृश्य से अदृश्य का सफर में व्यक्त मनोवैज्ञानिकता'


## प्रो० शर्मिला सक्सेना

*अध्यक्ष, हिंदी विभाग एवं डीन कला संकाय, डी. ई.आई. दयालबाग आगरा*


कोरोना काल की इस भयंकर आपदा के समय यशस्वी रचनाकार सुश्री सुधा ओम ढ़ींगरा का 'दृश्य से अदृश्य का सफर' उपन्यास कोरोनावायरस की विभीषिका के साथ-साथ पूरे विश्व में फैली हुई नकारात्मकता एवं मानव मन में उत्पन्न होने वाली अनसुलझी ग्रंथियों को सुलझाने का एक अप्रतिम प्रयास है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रमुख चरित्र डॉक्टर लता भार्गव हैं, जिन्होंने अपने पति डॉ. रवि भार्गव के साथ अपने काम से रिटायरमेंट ले लिया है। दोनों रेक्स हॉस्पिटल में डॉक्टर थे। भारतीय बिरादरी इन दोनों को 'रॉयल कपल' कहती है। डॉक्टर लता रेक्स हॉस्पिटल में साइकोलॉजिस्ट थीं। वह अपने विशेष केस अपनी डायरी में कहानी के रूप में लिखती थीं। इस उपन्यास में कोविड-19 की विभीषिका के साथ-साथ आपने अपनी डायरी के तीन विशेष केसों का उल्लेख किया है- डॉली पार्टन, बोलती बेनूर आँखें एवं रानी या दासी।

लेखिका स्पष्ट करती हैं कि आदिकाल से ही 'अदृश्य शक्तियाँ' मानव जाति के लिए चुनौती रही हैं। एक 'अदृश्य शक्ति' को पाने के लिए, जानने के लिए मानव जन्म जन्मांतर तक भटकता रहता है और कई ऐसी अदृश्य ताकतें होती हैं जिनको मिटाने के लिए वह जी-जान से जुटा रहता है। जिस 'अदृश्य' को पाने के लिए मानव भटकता है वह सकारात्मक ताकत है पर यह 'अदृश्य' नकारात्मक ताकतों से भरा हुआ है। मनुष्य इस 'अदृश्य' ताकत पर विजय पाने के लिए प्राणपण से लगा हुआ है। चीत्कार करती हुई मानवता को बचाने के लिए वैज्ञानिक दिन-रात शोध में लगे हुए हैं, डॉक्टर और उनके सहायक कर्मचारी अपनी जान की परवाह किए बिना दिन-रात मानवता की सेवा कर रहे हैं, लेकिन यह नकारात्मक 'अदृश्य ताकत' पूरी तरह मिटती नहीं दिखाई दे रही। इस उपन्यास में वह बताती हैं कि इस विभीषिका के दौर में सभी मनुष्य एक अनदेखे वायरस की उपस्थिति के कारण उत्पन्न हुए अवसाद से ग्रसित हैं जो कि उन्हें तिल-तिल कर मार रहा है। इस विभीषिका में न्यूयॉर्क और कैलिफोर्निया में मृतकों का आँकड़ा निरंतर बढ़ता जा रहा है। मृतकों की देह इंफेक्शन फैलने के भय से उनके परिवार-जनों को न सौंप कर 'रेफ्रिजिएटेड ट्रकों' में डाली जा रही थी-"जिनको दफनाना है उनके लिए कॉफिन तैयार करवाने और ग्रेव्यार्ड ढूँढ़ने हैं, जिसमें समय लगेगा। जिनका दाह-संस्कार करना है उन सबके लिए क्रिमेशन सेंटर में बहुत ज्यादा इंतजार है। हर हाल में ट्रकों में पड़े मृतकों को अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए प्रतीक्षा करनी है।'[1] यह प्रतीक्षा 6 से 8 घंटे लंबी भी हो सकती है। अमेरिका, इटली, ब्राजील, चीन, जापान एवं भारत हर जगह यही समस्या है। अमेरिका एवं विविध देशों में अंतिम क्रिया, मृतकों को दफनाने और जलाने के समय संबंधियों को ऑनलाइन लाना और अंतिम क्रियाकलापों में शामिल करवाना भी एक महत्वपूर्ण कार्य हो गया था।

इस उपन्यास में वह यह भी स्पष्ट करती हैं कि इस विभीषिका में समस्त मानव जाति को असीम धैर्य और साहस का सहारा लेना होगा तभी वह अप्राप्य को प्राप्त कर पाएगा। उसका मन तभी वश में आएगा जब मानव सकारात्मक रूप से सेवाभावी मन से अपने आप को व्यस्त रख संपूर्ण मानवता की सेवा में जुट जाएगा। 'स्वांत: सुखाय' का अजस्र आनंद प्राप्त करने का यही एकमात्र तरीका है। कालांतर में जिस प्रकार संसार और समाज में विभिन्न बीमारियाँ व महामारियाँ आई और गई हैं, उसी प्रकार एक दिन यह भी समाप्त हो जाएगी। धीरज और सावधानी के द्वारा ही इस बीमारी से लड़ा जा सकता है। आज मनुष्य को एक दूसरे के हौंसले व सहारे की बहुत आवश्यकता है। भूखों को भोजन, बीमारों को दवाइयाँ व अस्पताल और कदम कदम पर उनका सहयोग करना आज एक सच्चे मानव की पहचान है। निश्चित रूप से आज एक जागरूक मानव का परम कर्तव्य है कि वह समाज को सहारा दे। इस विभीषिका के दौर ने मनुष्य को तन मन धन से पूर्णत: तोड़ दिया है। संपूर्ण संसार में बढ़ती हुई महँगाई, गरीबी, भुखमरी और चारों ओर अनाथ बच्चों का करुण क्रंदन दिखाई दे रहा है। बच्चों का जीवन घर के बंद कमरों में कैद हो गया है। स्पष्ट रूप से कहें तो संसार में किसी को भी घर से बाहर बिना मास्क के निकलने की सुविधा प्राप्त होती दिखाई नहीं दे रही है। हमारा जीवन अनेकानेक भयावह कल्पनाओं में डूबता जा रहा है, जिसमें सर्वोपरि है अपनों को खो देने का भय।''

सम्पूर्ण विश्व में एक अजीब सी बेचैनी, परेशानी, असुरक्षा और अराजकता का माहौल बन गया है। लॉकडाउन के कारण सारा विश्व रुक गया है, जीवन की प्रत्येक गतिविधि थम सी गई है- "वर्क फ्रॉम होम और होमस्कूलिंग चल रही है। सारे-सारे परिवार घर पर बैठे हैं। जहाँ पारिवारिक तालमेल बढ़ा है, वहाँ काम भी अधिक हो गया है, क्योंकि बाहर से किसी तरह की सहायता नहीं आ रही। सहायक घर नहीं बुलाए जा रहे। सबको मिलकर घर का काम करना पड़ता है। सब कुछ बंद होने से छोटी नौकरियाँ चली गई हैं। बड़े-बड़े संस्थानों ने भी अपने कार्यकर्ताओं की छंटनी कर दी है। लोगों को असुरक्षित भविष्य चारों तरफ दिखाई दे रहा है। पूरा विश्व आर्थिक संकट से गुजर रहा है।"[2] सारा विश्व इस समय घोर संकट से गुजर रहा है। इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट मीडिया पर त्रासदी व अवसाद में लाने वाले समाचार ही दिखाई व सुनाई दे रहे हैं। अमीर-गरीब, छोटा व बड़ा सभीलोग इसकी चपेट में आ रहे हैं। कोविड-19 किसी का लिहाज नहीं कर रहा। लॉकडाउन से भी इसका बचाव नहीं किया जा पा रहा है। कई देशों ने संपूर्ण लॉकडाउन कर दिया और कई देशों ने लॉकडाउन नहीं किया। भारत में जब लॉकडाउन हुआ तो रेल, बस, हवाई जहाज इत्यादि आवागमन के सभी साधन बंद होने पर गरीब मजदूर अपने-अपने घर जाने के लिए सड़कों पर उतर आए और पैदल ही अपने गाँव की तरफ चल पड़े। एक अजीब सी अफरा तफरी का माहौल बन गया। स्वीडन और ब्राजील ने तो लॉकडाउन किया ही नहीं, उनके यहाँ मौत का आँकड़ा बढ़ने लगा। विश्व इस महामारी के लिए तैयार नहीं था। वैज्ञानिक, दवाइयाँ बनाने वाली कंपनियाँ एवं वैक्सीन बनाने वाली कंपनियाँ तेजी से अपना कार्य कर रही थीं, किंतु प्रत्येक देश को एक अलग तरीके का संघर्ष करना पड़ रहा था। सभी देश के डॉक्टर एवं उनके सहयोगी दिन-रातमानवता

की सेवा में जुटे हुए थे। भारत, अमेरिका आदि अन्य देशों में भी रिटायर्ड डॉक्टर और स्वास्थ्यकर्मी मानवता की सेवा के लिए अस्पतालों में वापस बुला लिए गए। अमेरिका के डॉ. रवि भार्गव भी मानवता की सेवा के लिए अस्पताल में वापस चले गए, वहीं डॉक्टर लता भार्गव घर पर रहकर ही नाना प्रकार से सहयोग कर रही थीं। डॉक्टर लता को 'ड्यूक हॉस्पिटल' और 'यूएनसी चौपल हिल हॉस्पिटल' से फोन आ गए थे। सभी लोग सहायता के आकांक्षी थे। इन अस्पतालों में रोगियों की बढ़ती संख्या को देखते हुए मास्क की कमी हो गई थी, जिसकी आपूर्ति के लिए उन्होंने डॉक्टर लता से संपर्क स्थापित किया। 'रेक्स हॉस्पिटल' में मास्क के ऊपर पहनने वाली शील्ड भी कम पड़ गई थीं, वह भी डॉक्टर लता से सहायता के आकांक्षी थे। डॉक्टर लता 10 दिन तक यह सब जुटाने में व्यस्त रहीं-"उन्होंने अपने शहर के भारतीय सीनियर सिटीजन ग्रुप के साथ सम्पर्क स्थापित किया और उन्हें मास्क सिलने की सलाह दी, सभी सहर्ष तैयार हो गए। एक भारतीय कपड़ा व्यापारी ने सस्ते दामों पर लता को कपड़ा उपलब्ध करवा दिया। भारतीय समुदाय के कल्चरल हॉल में दूर-दूर बैठकर सिलाई मशीन पर हजारों मास्क सिल दिए, जिनको बक्सों में बंद करके एक निर्धारित पार्किंग लॉट में छोड़ दिया गया, जहाँ से अस्पताल वाले उन्हें उठा ले गए।"[3]

डॉक्टर लता ने इसके साथ ही 'सूप किचन' जहाँ पर होमलेस लोग खाना खाते हैं, उनकी भी बहुत मदद की। कोविड-19 की वजह से रेस्टोरेंट्स संस्थाओं ने वहाँ खाना भिजवाना बंद कर दिया था। लॉकडाउन में स्वयंसेवकों का वहाँ जाकर खाना बनाना संभव नहीं था। नौकरियाँ छूट जाने के कारण कम आय वाले परिवार भी वहाँ खाना खाने लगे थे, परिणामत: खाने वालों की संख्या में अचानक इतनी अधिक बढ़ोतरी होने से 'सूप किचन' में भोजन का स्टॉक धीरे-धीरे समाप्त हो गया, तब डॉक्टर लता ने उन्हें डिब्बाबंद फूड भेजा। इसके पश्चात उन्होंने कुछ भारतीय स्वयंसेवकों के साथ मिलकर भारतीय समुदाय के कल्चरल हॉल और उसके रसोई घर में खाना तैयार करवाया और 'सूप किचन' वालों को 10 दिन तक भिजवाया। जहाँ मृत्यु का तांडव हो रहा हो वहाँ अपने आप को व्यवस्थित रखना एक बहुत बड़ी चुनौती है। डॉक्टर लता एक साइकेट्रिस्ट हैं। वह यह कार्य बखूबी कर पाती हैं। उन्हें जैसे ही समय मिलता है वह अपनी डायरी पढ़ने बैठ जाती हैं, जिसमें उन्होंने कुछ विशेष केस कहानी के रूप में दर्ज किए हैं और उसमें मनोरोगियों के नाम बदल दिए हैं।

डॉ. लता अपनी डायरी से पहला केस अर्थात् 'डॉली पार्टन'पढ़ना आरंभ करती हैं। कहानी का नाम पढ़ते ही डॉक्टर लता की आँखों में उसका चेहरा उतर आता है। डॉली पार्टन के नाम ने उनकी यादों के द्वार खोल दिए। वह 90 के दशक में अमेरिका के लोक संगीत की सुप्रसिद्ध गायिका रहीं थीं। अब वह बहुत बड़ी समाज सेविका हैं, जो बच्चों के लिए बहुत काम कर रही हैं। उनके अपना कोई बच्चा नहीं है। लोक-संगीत के प्रेमी डॉली पार्टन और केनी रॉजर का संगीत आज भी सुनते हैं। एक दिन डॉली अपने पति के साथ उनके ऑफिस में आई। अप्रतिम सौंदर्य की धनी, अप्सरा जैसी डॉली को देखकर वह उसे देखती रह गई। डॉली का पति उनके साथ ही बैठना चाहता था पर उन्होंने कहा कि जब वह डॉली से बात करेंगी तो उसे बाहर बैठना होगा। वह जानती थीं कि अपने पति के सामने डॉली उनसे खुलकर बात नहीं कर पाएगी। वह डॉली से कहती हैं- ष्तुम्हारा पति सोचता है कि तुम्हें कोई मानसिक बीमारी है। वह तुम्हारे पास आता है तो तुम्हें दौरा पड़ जाता है। डॉली तुम्हें देखने के बाद मैं ऐसा नहीं मानती।"[4] डॉ. लता उसे आश्वस्त करती हैं कि जिस अंधकार में तुम डूब रही हो उससे मैं बचाने की कोशिश करूँगी। अगर तुम आज बात नहीं करना चाहती होतो अगले हफ्ते का अपॉइंटमेंट ले लो। डॉली कहती है- "डॉ. लता, मुझे बचा लें। मुझे पागलखाने भेज दें, या अस्पताल में भर्ती करवा दें, इस आदमी के साथ मत भेजें। अगले हफ्ते तक तो मैं मर जाऊँगी या इसे मार दूंगी।"[5]

डॉ. लता ने कहा कि इस समय तुम्हें कहीं भी भेजना मेरे लिए बहुत मुश्किल है। यह सुनते ही वह कहने लगी-"यू आर आल्सो लाइक अदर पीपल। सभीरिश्ते अपनो को ठगते हैं दिल करता है सबको गोली मारकर खुद मर जाऊँ।"[6] कहते ही उसका बदन थर-थर काँपने लगा। आँखें छत को देखने लगीं। बाजुएँ टाँगे अकड़ गईं। इस प्रकार उसकी बिगड़ती हुई स्थिति को देखकर डॉक्टर लता आपातकालीन अलार्म बजा देती हैं तभी एकनर्सउसे ले जाती है तथा फोन करके इमरजेंसी वार्ड में भर्ती करवा देती है। इलाज के दौरान पता चलता है कि उसकी हालत बहुत गंभीर है। डॉक्टर नीरू आगे बताती हैं-"कई अंदरूनी चोटें हैं, कई दिनों से इंटरनल ब्लीडिंग होती रही है, जिससे इंफेक्शन फैल गया है। बार-बार सामूहिक बलात्कार हुआ है, योनि बुरी तरह डैमेज हो चुकी है।हैरान हूँ कि यह बच कैसे गई? मारपीट भी हुई है।"[7]

यह जानकर डॉक्टर लता बेचैन हो जाती हैं कि जिस लड़की को अभी इस देश में आए चार-पाँच दिन ही हुए हैं उसकी इतनी बुरी हालत कैसे हो गई। इसके पश्चात वह डॉली की मदद करने के लिए तैयार हो जाती हैं। वह उसका बयान वीडियो पर रिकॉर्ड करवाती हैं और उसके विषय में सारी जानकारी प्राप्त करती हैं। रेप करने वाले उसके जेठ व दो देवर थे जोकि भारत में रहते थे। उन्होंने अमेरिका आने से पूर्व कुछ नशीला पदार्थ पिलाकर उसके साथ यह दुष्कर्म किया था और फिर उसके पति को भी उल्टी-सीधी कहानी सुनाकर भड़का दिया था। अब यहाँ पर उसका पति उसकी किसी बात पर विश्वास नहीं करता और उसके साथ मारपीट करता है। जीवन बचाने के लिए ही वह अस्पताल आना चाहती थी। उसे अपनी बुरी हालत का अंदाजा था क्योंकि भारत में वह नर्स का कार्य करती थी। लड़की के उत्साह और हिम्मत को देखकर डॉक्टर लता को बल मिलता है और वह उसके इस देश में रहने के लिए मदद करती हैं। वह जानती हैं कि इस लड़की को यहीं सेटल करवाना ठीक होगा क्योंकि भारत में इसका जीना दूभर हो जाएगा। डॉक्टर लता डोली के लिए एक वकील करवाती हैं जोकि उसका केस लड़ता है। डॉली का वकील उसके पति के वकील के समक्ष कुछ शर्तें रखता है जिसे कि उसके पति का वकील मान लेता है। डॉली के वकील की प्रमुख शर्त है कि "डॉली का खर्च एक साल तक उठाया जाए ताकि वह नर्सिंग का एक वर्ष का कोर्स पूरा करके यहाँ की नर्स बन सके और मिस्टर हुड्डा, उसे जल्दी से जल्दी ग्रीन कार्ड दिलवाने में मदद करें। इसके बाद ग्रीन कार्ड मिलते ही समझौते से तलाक दे दिया जाएगा।"[8]

अंतत: उसका तलाक हो जाता है। उस दिन उसका पति उससे माफी माँगता है और कहता है कि "एक लड़की का शारीरिक शोषण हुआ मेरे घर पर और मैं उस पर ही दोष लगा रहा था।"[9] तुम्हारे साथ धोखा हुआ और मैंने अनजाने में ही तुम्हें बहुत अधिक तकलीफ दी। भविष्य में यदि तुम्हें इस देश में किसी भी प्रकार की कोई तकलीफ हो तो मुझे एक अच्छे मित्र की तरह याद कर लेना। धीरे-धीरे समय गुजर गया और उसका विवाह डॉक्टर माइकल के साथ हो गया। अब वह अपने तीन बच्चों के साथ अच्छी जिंदगी गुजार रही है।

'बोलती बेनूर आँखें' डॉक्टर लता का एक और महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक केस है जोकि उन्होंने नाम बदलकर कहानी के रूप में, अपनी डायरी में दर्ज कर रखा है। यह लड़की भी इत्र की तीखी सुगंध के साथ डॉक्टर लता के केबिन में प्रवेश करती है जोकि दिखने में फिल्म अभिनेत्री सायरा बानो के समान सुंदर है। डॉक्टर लता इसे सायरा के नाम से संबोधित करती हैं। इसकी फाइल में लिखा था कि "इसमें बदले की भावना बड़ी उग्र है, गुस्सा बहुत आता है। मानसिक

और शारीरिक आघात पहुँचे हैं, जिससे गुस्से में हिंसा पर उतर आती है।[10]

डॉक्टर लता सोचने लगती हैं कि यह कमसिन बाला हिंसक होती है, जरूर इसके साथ कुछ अप्रत्याशित घटा होगा। डॉक्टर लता बातों के माध्यम से उसके विषय में उससे प्रश्न पूछती हैं किंतु वह साफ झूठ बोलती जाती है। वह अपने मन की गाँठे डॉक्टर के सामने खोलकर नहीं रखना चाहती। डॉक्टर लता उसे बताती हैं कि इस देश में अगर एक कंपनी में तुम्हारे एटीट्यूड की बात फैल गई और तुम्हारे व्यवहार से लोग हर्ट होने लगे तो फिर तुम्हें किसी भी कंपनी में काम मिलना मुश्किल हो जाएगा। येन केन प्रकारेण वह उसको बोलने के लिए प्रेरित करती हैं। वह बताती है कि उसका जन्म दिल्ली में हुआ था और उसके माता-पिता दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन करते थे। वह अपने माता-पिता कि बहुत लाडली कन्या थी जिस कारण उसे अभिमान और अहंकार हो चला था। अत्यधिक खूबसूरत होने के कारण यह अभिमान इतना बढ़ गया था कि वह किसी के द्वारा अपनी बात काटना सह नहीं पाती थी। विश्वविद्यालय में वह अपनी पढाई के साथ-साथ एक अच्छी डिबेटर और एक अच्छी नाटककार के रूप में प्रसिद्ध थी।एक राजनीतिज्ञ के बेटे को वह पसंद आ जाती है और वह उसको अपना प्रेम निवेदन भिजवाता है। अत्यधिक घमंड के कारण न केवल वह उसका प्रेम निवेदन ठुकराती है बल्कि उसको अपमानित भी करती है, जिसे उसकी सर्वश्रेष्ठ मित्र उस राजनीतिज्ञ के पुत्र को बता देती है। इसके उपरांत वह विश्वविद्यालय के चुनाव में उस राजनीतिज्ञ के पुत्र के खिलाफ चुनाव लड़ने के लिए खड़ी हो जाती है। सायरा की माता उसे निरंतर समझाती हैं कि उसे इस चुनाव से अपना नाम वापस ले लेना चाहिए, उसे यह चुनाव नहीं लड़ना चाहिए। किंतु वह इस चुनाव को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेती है और चुनाव जीत भी जाती है। चुनाव जीतने के बाद उसके ऊपर एसिड अटैक होता है- "उसने अपनी ड्रेस के आगे के पूरे बटन खोल दिए और डॉक्टर साहिबा उसके शरीर का अग्रिम भाग देखकर स्तब्ध रह गयीं। वक्ष, पेट के नीचे तक का हिस्सा, जाँघें पूरी तरह से झुलसी हुई, जगह-जगह से माँस के लोथड़े सिले हुए, कई शल्य चिकित्सा के निशान, ढेरों टाँके लगे हुए, जिन्होंने सफेद-सफेद चकत्ते बना दिए। वक्ष भी कृत्रिम।"[11]

डॉक्टर साहिबा भावुक हो गई। सायरा कहती है कि मेरे लिए यह सब बताना बहुत कठिन था इसीलिए मैं बताने से कतरा रही थी। एसिड अटैकर चुनाव हारने वाला वही राजनीतिक का बेटा था। मंत्री जी को जब इसकी जानकारी हुई तो उन्होंने साम दाम दंड भेद से उन्हें डरा धमका कर विदेश भेज दिया जोकि उसे 2 वर्ष पूर्व ही पता चला। यह बात उसके माता-पिता ने उससे छुपाई थी। वह तो यही समझती थी कि उसके माता-पिता उसे अमेरिका में इलाज के लिए लाए हैं। एक दिन उसे अचानक यह सच पता चलता है कि उस मंत्री ने उनका घर तीन करोड़ रुपए में खरीद लिया था और अमेरिका का वीजा दिलवा दिया था। यहाँ आकर उसके मम्मी-पापा को एक कम्युनिटी कॉलेज में पढ़ाना पड़ा। भारत में पढ़ाने के अनुभव से ही अब वे यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। सायरा की बेस्ट फ्रैंड ने उसे धोखा दिया। वह गवाह बनने के लिए तैयार नहीं थी और बिना गवाही के लड़के को सजा दिलवाना मुश्किल थी। सायरा के पिता के कुछ दोस्तों ने उसे बताया, यदि मंत्री की बात पापा नहीं मानते तो वह उन्हें जरूर नुकसान पहुँचाता। भारत में बाप बेटा उन्हें चौन से नहीं रहने देते। इलाज के साथ-साथ सायरा ने यहाँ पी.एच-डी. की डिग्री भी प्राप्त कर ली थी। पिता उसे बताते हैं कि "बेटी हम कायर नहीं बस तुम्हारी सुरक्षाको लेकर मजबूर हो गए थे। तुम्हें बचाना चाहते थे।"[12]

निश्चित रूप से सायरा एक बहादुर लड़की है जिसने नकारात्मकता के बीच भी अपने आप को सकारात्मक रखा और अपनी पढ़ाई पूरी की। बाद में सायरा को पता चलता है कि उसकी बेस्ट फ्रेंड ने उसी लड़के से शादी कर ली है। अब वह समझ जाती है कि यह सारा खेल उस लड़की का ही रचाया हुआ था। सायरा और उसका परिवार यह चाहता था कि जब वह पूरी तरह ठीक हो जाएगी और समाज में अपना एक स्थान बना लेगी, तब 3 करोड़ रुपए मंत्री को लौटा दिए जाएंगे। लेकिन सायरा चाहती थी कि एक बार उस लड़के को सामने बैठाकर अपनी बेस्ट फ्रेंड की सच्चाई बताए जिसने पैसे और रुतबे के लिए उससे शादी की थी। सायरा को उस पर गुस्सा बहुत था, लेकिन उसका कुछ बिगाड़ न पाने की स्थिति में वह गुस्सा या नाराजगी अपनी बेबसी पर ही निकालती थी। वह बताती है कि-ष्हाँ,पिछले दो साल से यह शुरू हुआ। छोटी-छोटी बातों में उखड़ जाती हूँ। बस दिल करता है कि भारत जाऊँ और उन दोनों को उनके किए की सजा दूँ। मैं जानती हूँ कि मैं ऐसा नहीं कर सकती हूँ। मम्मी कहती हैं कि ईश्वर की लाठी बेजुबान होती है पर पड़ती बड़ी जोर से है। एक दिन देखना उन पर भी पड़ेगी। बदले की इस भावना से मैं अपने मन की शांति खो चुकी हूँ। मेरा चौन मिट गया है।"[13]

दो साल की काउंसलिंग समाप्त होने के बाद एक दिन वह डॉक्टर से मिलने आई। उस दिन वह पहले से भी अधिक सुंदर और संतुष्ट दिखाई दे रही थी। वह कहती है कि उसने यह अपॉइंटमेंट केवल बातचीत करने के लिए ली है। वह बताती है कि उसकी एक नई कंपनी में बड़ी पोजीशन पर नौकरी लग गई है और वह तीन माह बाद उसे ज्वाइन करना चाहती है। इन तीन महीने वह भारत में ही थी। अब अगले हफ्ते नई नौकरी जॉइन करेगी। भारत में जाकर उसे पता चला कि उस मंत्री के पुत्र की कार का एक्सीडेंट ट्रक से हो गया, जिसमें मिनिस्टर की पत्नी और उसके पोते की मृत्यु हो गई। उन तीनों की स्थिति भीअच्छी नहीं थी। यहाँ आने से पहले मैं अपने दोस्तों के साथ मंत्री के घर गई थी। बहुत कुछ कहना चाहती थी लेकिन तीनों को व्हील चेयर पर देखकर कुछ नहीं कह पाई। मिनिस्टर की पत्नी और पोता दोनों निर्दोष थे। मेरे मम्मी पापा और मैंने उन्हें बद्दुआ नहीं दी थी बस इतना ही कह पाई और तीन करोड़ लौटा कर यहाँ चली आई।[14] यह बता कर सायरा चली जाती है और उसकी बेनूर खाली आँखें डॉक्टर साहिबा के पास रह जाती हैं जोकि अपनी कहानी कह रही हैं। डॉक्टर साहिबा सोच में पड़ जाती हैं कि कहीं ईश्वर की लाठी की आड़ में किसी और की लाठी तो नहीं चल गई तभी उसकी आँखों ने उसका साथ नहीं दिया।

डॉक्टर लता की डायरी में शरानी या दासी "नामक केस भी एक कहानी के रूप में दर्ज है। उनके कमरे में सांवले रंग की कांजीवरम साड़ी में सुसज्जित एक दक्षिण भारतीय बेहद खूबसूरत महिला प्रवेश करती है जोकि दिखने में किसी स्टेट की रानी लगती है। उनकी फाइल में उसके बारे में कुछ भी नहीं लिखा था। वह 15 वर्षों से इस देश में रह रही थी, लेकिन उसकी जिंदगी बुरी तरह उलझी हुई थी। उसका पति न केवल उसे मारता पीटता था वरन भारतीय गहने कपड़ों में जकड़े हुए था। इस देश में वह उसे गंवार बनाकर रखना चाहता था और किसी से भी मिलने नहीं देता था। उसकी तीन पुत्रियाँ थीं जिन्हें वह उनसे अलग रखता था। बच्चियों के दिमाग में उसने उनकी माँ की अनपढ़ और गंवार वाली छवि अंकित कर दी थी। विवाह से पूर्व उनका किसी से प्रेम संबंध था, यह बात उनका पति जानता था और यह जानते हुए ही उसने उनसे विवाह किया था। उनके कई बार यह पूछने पर ही उन्हें भारतीय कपड़ों में ही रहने पर क्यों मजबूर किया जाता है? उत्तर देने की बजाय वह उन्हें थप्पड़ों से मारता था और कहता था कि- "तुम्हारी जगह घर में है, न दिल में न बाहर।[15] वह निरंतर

उन्हें टॉर्चर करता था। पढ़ी लिखी होने के बावजूद वह इस प्रकार की यातनाओं को सहन कर रही थीं। एक दिन किसी तेलुगू महिला के प्रोत्साहन पर वह पुलिस को बुला लेती हैं। पुलिस के आने पर वह रो रो कर बताती हैं कि-"मेरा पति जब भी शहर में होता है मेरा बलात्कार करता है। मैं चीखती चिल्लाती हूँ और मेरी सासू माँ सब कुछ जानते हुए भी इग्नोर करती हैं और मेरा पति मुझे सासू माँ के सामने ही मारता पीटता है। वह उसे कुछ नहीं कहतीं।"[16] यहाँ की पुलिस बहुत ही सहृदय है जोकि पीड़ितों की मदद करती है। पर वह उस समय रिपोर्ट दर्ज नहीं करा पाई क्योंकि पति ने उसके माता-पिता को भारत में फोन मिला दिया था। उसके माता-पिता ने तीसरे ही दिन उसे भारत बुला लिया था, वहाँ उसे अपने पति को दूसरा मौका देने के लिए समझाया बुझाया जा रहा था। वह अपने पिता को सारी सच्चाई बताती है और अपनी कुछ शर्ते रखती है जिन्हें पूरा करने पर ही वह अमेरिका वापसजाने के लिए तैयार होती है। वह अपने पिता से आर्थिक सुरक्षा की बात करती है, साथ ही क्रेडिट और डेबिट कार्ड की भी आकांक्षा करती है। उसके पिता यह सभी सुरक्षा देने का वचन देते हैं। साथ ही उसके और उसके पति के नाम एक कंपनी खुलवा देते हैं। किंतु इसके बाद भी उसका पति संतुष्ट नहीं होता। वह उसकी बच्चियों के सामने उसे पागल सिद्ध करना चाहता है, इसलिए उसके काम में उसके पूर्व प्रेमी को लेकर अपशब्द कहता है और वह क्रोधित होकर चिल्लाने लगती थी। उसकी बच्चियाँ धीरे-धीरे उससे दूर होती जा रही थीं और उसे पागल समझने लगी थीं। डाक्टर लता उसे आत्मविश्वास देती हैं और कहती हैं कि तुम सब कुछ कर सकती हो।तुम अन्याय के खिलाफ बुद्धिमत्ता से आवाज उठा सकती हो। डॉ. लता एक सुझाव देते हुए कहती हैं कि प्रिटेंड करो तुम्हारे कानों में रुई पड़ी हुई है जब भी वह कुछ कहता है तुम सुन नहीं रही और मुस्कुराती रहो। एक दो बार जब तुम उसके उकसाने पर उत्तेजित नहीं होगी तबउसे निराशा होगी। वह चिढ़कर कोई कदम उठाएगा जोकि तुम्हारे लिए फायदेमंद होगा। डॉ. लता की बात सुनकर उनका खोया हुआ आत्मविश्वास लौट आता है और वह अपनी बेटियों के लिए विदेशी परिधान पहनने लगती हैं। पति और सास के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करती हैं और पति के खिलाफ पुलिस में शिकायत दर्ज करा देती हैं।

धीरे-धीरे अपनी काबिलियत और मेहनत से वह बच्चों के सामने अपनासारा सच रख देती हैं और बच्चे भी तहेदिल से उन्हें स्वीकार कर लेते हैं। निश्चित रूप से आत्मविश्वास वह संबल है जिसके सहारे कोई भी व्यक्ति हारी हुई जंग को जीत सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉक्टर लता एक कुशल मनोवैज्ञानिक के रूप में संपूर्ण मानवता की सेवा कर रही हैं और हताश, निराश महिलाओं के लिए अमेरिका जैसे देश में संबल बनकर खड़ी हैं। वह न केवल महिलाओं के आत्मबल को जागृत करती हैं बल्कि परदेस में उन्हें जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है वह उन्हें दिलवाती हैं। कोरोना काल में आपकी कृति 'दृश्य से अदृश्य का सफर' डूबते मानव मन को एक सार्थक अवलंब प्रदान करती है। ऐसी श्रेष्ठ रचना का स्वागत हम सभी तहेदिल से करते हैं।

## संदर्भ सूची


1. सुधा ओम ढ़ींगरा, उपन्यास दृश्य से अदृश्य सफर, शिवना प्रकाशन, सीहोर मध्य प्रदेश, पृष्ठ-16-17
2. वही, पृष्ठ- 103
3. वही, पृष्ठ-70-71
4. वही, पृष्ठ-45
5. वही, पृष्ठ-45
6. वही, पृष्ठ-46
7. वही, पृष्ठ-47
8. वही, पृष्ठ-65
9. वही, पृष्ठ-67
10. वही, पृष्ठ-76
11. वही, पृष्ठ-86
12. वही, पृष्ठ-90
13. वही, पृष्ठ-91
14. वही, पृष्ठ-95
15. वही, पृष्ठ-123
16. वही, पृष्ठ-124

# प्राचीन भारत में दण्ड-व्यवस्था का स्वरूप


## कुंवर विक्रम सूर्यवंश

*शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर, विश्वविद्यालय, गोरखपुर*


मानव जाति के आरंभिक काल से ही दण्ड को समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। प्राचीन भारत में राज्य के अस्तित्व में आने से पूर्व मानव जीवन अत्यन्त ही भयावन था। हर तरफ अराजकता एवं अव्यवस्था की स्थिति बनी हुई थी। उस समय मत्स्यन्याय की स्थिति में सुरक्षा एवं स्वत्व का कोई अर्थ नहीं था।

प्राचीन भारत में राज्य के अस्तित्व में आने के साथ ही दण्डव्यवस्था का भी अस्तित्व दिखायी पड़ने लगता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में दण्डनीति का प्रयोग राजनीति शास्त्र में पर्याय के रूप में हुआ है। 'दण्डनीति' शब्द की व्याख्या भी प्राचीन साहित्य में की गयी है। 'महाभारत' में कहा गया है कि दण्ड के द्वारा लोग अच्छे रास्ते पर लाये जाते है। कामंदक मानते है कि दमन ही दण्ड है। राजा के पास दमन का अधिकार होता है, इसीलिए वह दण्ड की प्रतिमूर्ति है।

दण्डनीति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कौटिल्य कहते है कि आन्वीक्षकी त्रयी और वार्त्ता इन सभी विधाओं की सुख-समृद्धि दण्ड पर निर्भर है। शासन को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है।[1] महाभारत में लिखा गया है कि मनुष्यों को प्रमाद से बचाने और उनके धन की रक्षा के लिए संसार में जो मर्यादा स्थापित की गयी वह दण्ड है।[2] दण्डनीति अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराती है, प्राय: वस्तु की रक्षा करती है, रक्षित वस्तु की वृद्धि करती है और वही सवर्द्धित वस्तुओं को समुचित कार्यों में लगाने का निर्देश करती है। इसी पर संसार की सारी लोकयात्रा निर्भर है। इसलिए लोक को समुचित मार्ग पर ले चलने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।[3] कामंदक के अनुसार दमन ही दण्ड है। राजा दण्ड देता है, अत: राजा ही दण्ड है और उसकी नीति दण्डनीति है।[4]

मनु का मानना है कि दण्ड के भय से ही चल-अचल सभी प्राणि अपने-अपने भोग को भोगने में समर्थ होते है और अपने धर्म से विचलित नहीं होते है।[5] मनुस्मृति में दण्ड को ही राजा और धर्म कहा गया है। उसमें उल्लेख है कि दण्ड ही राजा है, वही पुरुष, नेता और शासक है और वही चारों आश्रमों के धर्म का प्रभुत्व है, वही समस्त प्रजा पर शासन करता है, सबकी रक्षा करता है और सोते हुए को जगाता है। इसलिए दण्ड को ही धर्म कहा गया है।[6] दण्ड न तो आवश्यकता और औचित्य से अधिक हो और न ही कम। उचित दण्ड के साथ न्याय करने वाला राजा पूजनीय होता है। कौटिल्य का मानना है कि अपराधी को अपराध के अनुसार और उसकी सामर्थ्य के अनुरूप ही दण्ड मिलना चाहिए। जब तक अपराधी का अपराध प्रमाणित न हो जाए, उसे दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए।[7] मनु संहिता के अनुसार दण्ड की उचित व्यवस्था राज्य में अवश्य होनी चाहिए। राजा को अधर्मपूर्वक दण्ड नहीं देना चाहिए। अधर्म से दण्ड देने पर संसार में अकीर्ति होती है और परलोक में स्वर्ग का नाश होता है।[8] जो राजा अदण्डनीयों को दण्ड देता है और दण्डनीयों को दण्ड नहीं देता, वह नरकगामी होता है।[9] अर्थात् यदि दण्ड का न्यायपूर्वक उपयोग किया जाय तो विधि व्यवस्था बनी रहती है और प्रजाजन कभी दु:खी नहीं होते है। यदि राजा भली-भाँति विचार कर दण्ड देता है तो धर्म, अर्थ और काम की वृद्धि होती है जो राजा नीच, कामी और अनुचित दण्ड देने वाला होता है वह उसी दण्ड से मारा जाता है।[10] साथ ही यदि राजा शास्त्र ज्ञान का ज्ञाता नहीं है तो उसे दण्ड का प्रवर्तन नहीं करना चाहिए और यदि वह ऐसा करता है, तो वह स्वयं नष्ट हो जाता है।[11] 'मत्स्यपुराण' में उल्लेख है कि राजा को अपने देश में अथवा पराये देश में वान प्रस्थाश्रमी, धर्मशील, ममतारहित, परिग्रहहीन एवं धर्मशास्त्रप्रवीण विद्वान पुरुषों की परिषद में भली-भाँति विचार-विमर्श कर दण्डनीति का प्रयोग करना चाहिए; क्योंकि सभी कुछ दण्ड पर ही प्रतिष्ठित है।[12] काम-क्रोध-अज्ञान-वश दिया गया दण्ड राजा की विवेकहीनता का परिचायक हैं। सोमदेव सुरि के नीतिशास्त्र के अनुसार अपराध के अनुसार दण्ड देना ही दण्डनीति है।[13]

सर्वप्रथम 'शतपथब्राह्मण' में 'दण्ड' शब्द को शक्ति के अर्थ में बताया गया है, साथ ही इसमें दण्ड के तीन उद्देश्यों को भी बताया गया है - अपराधों की निवृत्ति, धर्म की रक्षा तथा राजा द्वारा आदेशों का क्रियान्वयन करा कर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना। इस सिद्धान्त के अनुसार शक्ति के बिना न्याय निष्क्रिय होता है, इसी प्रकार यह सत्य है कि मनुष्य दण्ड के भय से कर्तव्य का पालन करता है। महाभारत के शांतिपर्व के अनुसार ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी एवं सन्यासी, ये सभी मनुष्य दण्ड के भय से अपने-अपने मार्ग पर स्थिर रहते है।[14] एक अन्य स्थल पर यह भी कहा गया है कि सारा जगत् दण्ड से विवश होकर ही रास्ते पर रहता है क्योंकि स्वभावत: सर्वथा शुद्ध मनुष्य मिलना कठिन है। दण्ड के भय से डरा हुआ मनुष्य ही मर्यादा-पालन में प्रवृत्त होता है।[15] 'महाभारत' में यह भी बताया गया है कि दण्ड ही धर्म और अर्थ की रक्षा करता है, वही काम का भी रक्षक है, अत: दण्ड त्रिवर्गरूप कहा जाता है।[16]

आवश्यकता उसकी उपयोगिता में निहित होती है, इसी प्रकार दण्ड की आवश्यकता इसलिए जरूरी है क्योंकि दण्ड के बिना धर्म, सम्पत्ति, सम्मान, कीर्ति इत्यादि सभी की हानि होती है। दण्ड की उत्पत्ति के दो सिद्धान्त की मान्यता है - दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त और मानवीय उत्पत्ति का सिद्धान्त।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में दण्ड की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गयी है। महाभारत में उल्लेख है कि पहले न कोई राज्य था, न राजा, न दण्ड था और न ही दण्ड देने वाला, समस्त मनुष्य का धर्म के द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा होती थी। सब मनुष्य धर्म के द्वारा परस्पर पालित और पोषित होते थे। कालान्तर राग-द्वेष के वशीभूत होकर लोग यह न जान सके कि क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है। मनुष्य मोह के वशीभूत होकर कर्तव्याकर्त्तव्य के ज्ञान से शून्य होने के कारण उनके धर्म का नाश हो गया और सब मनुष्य लोभ के वशीभूत हो गये। परिणामस्वरूप धर्म का लोप हो गया जिसके फलस्वरूप वैदिक ज्ञान विलुप्त तथा कर्मों का नाश हो गया। इस प्रकार जब वेद और धर्म का नाश होने लगा, तब देवतागण भयभीत होकर ब्रह्माजी के शरण में गये। सभी देवता हाथ जोड़कर निवेदन किया कि ''मनुष्य लोक में लोभ, मोह आदि दूषित भावों ने सनातन वैदिक ज्ञान को विलुप्त कर डाला है इसलिए हमें बड़ा भय

हो रहा है। जिसके परिणामस्वरूप ब्रह्माजी ने अपनी बुद्धि से एक लाख अध्यायों का एक ऐसा नीतिशास्त्र रचा, जिसमें धर्म, अर्थ और काम का विस्तारपूर्वक वर्णन था।[17] जिसमें वर्गों का वर्णन हुआ और यह प्रकरण 'त्रिवर्ग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इस ग्रन्थ में वेदत्रयी (कर्मकाण्ड), अन्वीक्षिकी (ज्ञानकाण्ड), वार्ता (कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य) तथा दण्डनीति - इन विपुल विधाओं का निरुपण किया गया है।[18]

इसी प्रकार 'मनुस्मृति' में भी दण्ड के दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त का समर्थन किया है। इसके अनुसार राजा की कार्यसिद्धि के लिए ईश्वर ने ब्रह्मा के तेजोमय दण्ड की सृष्टि की।[19] 'याज्ञवल्क्य' ने भी दण्ड के दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त का समर्थन किया है।[20] इन सभी तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि समाज में अराजकता, अव्यवस्था तथा मत्स्यन्याय को समाप्त कर शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए ही दण्डनीति की उत्पत्ति हुई है।

दण्ड की उत्पत्ति का दूसरा सिद्धान्त, दण्ड के मानवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त के अन्तर्गत दण्ड की उत्पत्ति मारीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, इन सात ऋषियों से मानी गयी है। ये सात ऋषि चित्रशिखण्डी कहलाते थे। इन्होंने मेरुपर्वत पर एक मत होकर जगत कल्याण, परमात्मा की प्राप्ति तथा संसार के सर्वोत्तम हित-साधना की प्राप्ति के लिए आदरणीय और प्राणभूत शास्त्र का निर्माण किया।[21] एक स्थान पर यह उल्लेख है कि सूर्यपुत्र मनु ने प्रजा की रक्षा के लिए ही अपने पुत्रों के हाथ में दण्ड सौंपा था, वही क्रमशः उत्तरोत्तर अधिकारियों के हाथ में आकर प्रजा का पालन करता हुआ जागता रहा।[22] इन सभी वर्णनों से दण्ड के मानवीय सिद्धान्त की पुष्टि होती है। राज्य के अस्तित्व में आने के साथ ही दण्डनीति प्रभाव में आयी और राजा की सृष्टि हुई। मत्स्यपुराण में बताया गया है कि दण्ड प्रणयन के लिये स्वयम्भू ने राजा की सृष्टि की।[23] इस प्रकार यह माना जाता है कि दण्ड का प्रयोग राज्य में किया जाता था।

दण्ड के स्वरूप के विषय 'महाभारत' में भीष्म में स्पष्ट किया है कि दण्ड सर्वत्र व्यापक है इसलिए वह भगवान विष्णु है। यह मनुष्य को आश्रय प्रदान करता है इसलिए वह नारायण है। दण्ड प्रभावशाली होता है इसलिए उसे प्रभु कहते है तथा वह सदा महत् रूप धारण करता है इसलिए वह महान् पुरुष है।[24] जिस प्रकार सूर्यदेव के उदय होते ही घोर अन्धकार का नाश हो जाता है उसी प्रकार दण्ड द्वारा मनुष्यों के अशुभव आचरों का निवारण किया जाता है।

कौटिल्य ने मत्स्यन्यास से मुक्ति पाने के लिए दण्ड को अनिवार्य कहा है। मनु के अनुसार दण्ड धर्म का स्वरूप है तथा ब्रह्मा का पुत्र है।[25] दण्ड का आधार शक्ति है परन्तु यह प्रजा का उत्पीड़न करने वाला नहीं बल्कि प्रजा का रक्षण करने वाला है। यह विधि का सर्वोच्च साधक और लोक कल्याण का हेतु है।[26] नारद स्मृति में कहा गया है कि दण्ड का आधार जन-कल्याण और न्याय के अनुकूल होना चाहिए।[27]

उत्तर वैदिक काल में कठोर दण्ड देने का विधान था। 'शतपथ ब्राह्मण' में उल्लेख है कि विद्रोहियों तथा चोरों को प्राणदण्ड दिया जाता था परन्तु अपराध स्वीकार करने पर क्षमा भी किया जा सकता था।[28] मौर्य काल में दण्ड प्रणाली अत्यधिक कठोर थी। कौटिल्य ने दण्ड के सम्बन्ध में कहा है कि राजा को खूब सोच-विचार करके ही अपराधी को दण्ड देना चाहिए। छोटे अपराधी, बालक, बूढ़े, बीमार, पागल, उन्मादी, भूखे, प्यासे, थके, अति भोजन किये, अजीर्ण के रोगी और निर्बल आदि व्यक्तियों को कोडेघ आदि मारकर शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए।[29] अर्थशास्त्र के अनुसार, ब्राह्मण को मृत्युदण्ड न दिया जाय बल्कि जैसे-जैसे वह अपराध करे वैसे-वैसे निशान उसके मस्तक पर दाग दिये जाएं जिससे उसे पतित की कोटि में रखा जा सके।[30] गुप्तकाल में दण्ड सरल हो गये थे। इस काल में सबसे बड़ा दण्ड अंगच्छेदन था, मृत्युदण्ड नही के बराबर था। 'महाभारत' में पांच प्रकार के दण्डों का वर्णन किया गया है - उद्वेजन, कारागृह, अंगविच्छेद, अर्थदण्ड और मृत्युदण्ड। मनुस्मृति में चार प्रकार के दण्ड का उल्लेख किया गया है।[31]

आठ प्रकार के दण्डों का उल्लेख प्राचीन काल के ग्रन्थों में किया गया है -

प्रथम वाग्दण्ड के अन्तर्गत अपराधी की भर्त्सना की जाती थी जिससे वह सन्मार्ग पर आ जाए। शुक्रनीतिसार में बताया गया है कि अपराधी को प्रथम वाग्दण्ड ही देना उचित है। अपराधी से कहना चाहिए कि तुम्हारा यह कार्य न्यायपूर्ण नहीं है, उससे यह कहना ही उसका अनादर एवं दण्ड है।[32]

द्वितीय धिग्दण्ड में जब अपराधी पर वाग्दण्ड का कोई प्रभाव नहीं पड़ता तब उसे धिक्कारने का दण्ड दिया जाता था। इसका उद्देश्य अपराधी को लज्जा महसूस करवाना जिसमें की वह सन्मार्ग पर लौट आये।

तृतीय अर्थदण्ड के अन्तर्गत अपराधी को अर्थदण्ड द्वारा दण्डित किया जाता था। वाग्दण्ड और धिग्दण्ड के निष्फल हो जाने पर यह दण्ड दियाा जाता था। इसमें अपराधों की गंभीरता के अनुपात में अर्थदण्ड का आरोपण किया जाता था। ऋण सम्बन्धी विवादों अस्वामीविक्रय, संविद्धयतिक्रम, स्वामीपालविवाद, वाक्पारुष्य आदि अपराधों में क्षतिपूर्ति के साथ धनदण्ड का प्रावधान किया गया था। 'मनुस्मृति' में अपराधों के लिए भिन्न-भिन्न अर्थदण्ड का उल्लेख है। जैसे लोभ में झूठी गवाही देने पर 100 पण, मोह में देने पर 250 पण, भय से देने पर 1000 पण, मित्रतावश देने पर 1000 पण, काम-वासना वश झूठी गवाही देने पर 2500 पण, क्रोधवश देने पर 1500 पण, अज्ञानवश देने पर 200 पण और मूर्खता के कारण देने पर 100 पण अर्थदण्ड निर्धारित था।[33] धनदण्ड की अदागयी न करने पर अपराधी को कारावास में भेज दिया जाता था। यदि अन्य कोई व्यक्ति वह धनपूर्ति कर दे तो अपराधी को मुक्त कर दिया जाता था।

चतुर्थ उद्वेजन दण्ड के अन्तर्गत अपराधी के मन में भय उत्पन्न करने के उद्देश्य से उसके शरीर में पीड़ा पहुँचाई जाती थी। कौटिल्य ने कुल अट्ठारह प्रकार के उद्वेजनकारी दण्डों का उल्लेख किया है जैसे छह डण्डे मारना, सात कोड़े मारना, हाथ-पैर बाँधर उल्टा लटका देना, नौ हाथ लम्बी बेंत से बारह बेंत लगाना, दोनों टांगों को बाँधकर करञज की छड़ी से बीस छड़ी मारना, बत्तीस थप्पड़ मारना, बाँये हाथ को पीछे बाँये पैर से और दाँये हाथ को पीछे दाँये पैर से बाँधना, दोनों हाथ आपस में बाँधकर लटका देना, दोनों पैर आपस में बाँधकर लटका देना, अंगुली के एक पोर को जला देना, घी पिलाकर पूरे दिन अग्नि या धूप में बैठना, जाड़ों की रात में भीगी खाट पर सुलाना।[34] अपराधी के माथे पर अपराध सूचक चिन्ह उसके माथे उसके माथे पर दाग दिया जाता था जिससे आमजन जान सके कि वह किस प्रकार का अपराधी है।

पंचम अंग विच्छेदन दण्ड जिसमें अपराधी का अंग काट दिया जाता था। कौटिल्य ने अंग विच्छेदन के दस स्थान निर्धारित किये थे - उपस्थ, उदर, जिव्हा, हाथ, पैर, आँख, नाक, जघन और शरीर।[35] कौटिल्य के अनुसार अन्त्यज जिस-जिस अंग से द्विजाति पर प्रहार करे, उसका वह अंग कटवा देना चाहिए।[36]

षष्टम देश निकाला दण्ड जिसमें अपराधी द्वारा जघन्य अपराध किये जाने पर उसे देश-निर्वासन का दण्ड दिया जाता था। मनुस्मृति में उल्लेख है कि मत्युदण्ड पाये हुए ब्राह्मण को मृत्युदण्ड न देकर देश निर्वासन का दण्ड दिया जाता था।[37] और अन्य वर्ण के लोगों को भी देश निर्वासन का दण्ड मिल सकता था।[38]

सप्तम कारागार दण्ड के अन्तर्गत अपराधी को कारागार में बंद कर दिया जाता था। कौटिल्य ने बन्धनागार तथा चारक नाम के दो कारागार का उल्लेख किया है। बन्धनागार में कैदी को हथकड़ी-बेड़ी लगाकर बंद स्थान पर रखा जाताा था। ऐसे कैदी से न तो कोई मिल सकता था न ही उसे देख सकता था। चारक कैदी घूम-फिर सकते थे। वे सार्वजनिक स्थानों पर भी जा सकते थे। कारागार में स्त्री एवं पुरुष कैदी के रहने की अलग-अलग व्यवस्था थी।

अष्टम् मृत्युदण्ड अंतिम उपाय था। जघन्य अपराधों के लिए मृत्युदण्ड का विधान था। कौटिल्य के अनुसार शस्त्र से हत्या करने वाले को मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिए।[39] कामंदक का कथन है कि बड़े अपराधों के लिये भी मृत्युदण्ड नहीं देना चाहिए, परन्तु राजद्रोही को निश्चित ही मृत्युदण्ड देना चाहिए। मनु के अनुसार यदि कोई ब्राह्मण वध के योग्य अपराध करता है तो उसे वध दण्ड न देकर उसके सिर के केशों का मुण्डन कराकर देश निष्कासन का दण्ड देना चाहिए क्योंकि उसके सिर के केशों का मुण्डलन करा देना ही उसके लिए प्राणान्तक दण्ड है।[40] जो व्यक्ति कामन न करती हुई कन्या को दूषित करता है वह वध के योग्य है।[41] पति का तिरस्कार करके पर-पुरुषों के साथ संभोग करने वाली महिला को कुत्तों से नोचवा देना चाहिए।[42] प्राचीन काल में मृत्युदण्ड की अनेक विधियां प्रचलित थी। जैसे कि अग्निदाह, विचित्रवध, जल में डुबो देना, भूमि में गड़वा देना, उबलते पानी या तेल भरे कड़ाह में डाल देना, शूलारोपण, शिरश्छेद, कुत्तों से नुचवाना, विष पिलवाना, हाथी से कुचलवा देना इत्यादि।

प्राचीन भारत का तत्कालीन समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था और इसकी रक्षा करना राजा का प्रमुख कर्तव्य था। यदि राजा आलस्यहीन होकर दण्ड का प्रयोग न करे तो सर्वत्र मत्स्यन्याय फैल जाये। जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है उसी प्रकार बलवान दुर्बलों को सताने लगेंगे।[43] महाभारत में उल्लेख है कि दण्ड ही सबको कर्तव्य पालन के लिये प्रेरित करता है। दण्ड के भय से स्थावर, जंगम और यहाँ तक कि देवता भी अपने भोग को भोगने के लिए प्रवृत्त होते है और अपने-अपने कर्तव्य से विचालित नहीं होते है।[44] दण्डनीति ही चारों वर्णों को उनके धर्मों में लगाती है और उन्हें अधर्म की ओर जाने से रोकती है।[45] दण्डनीति के अभाव में सभी वर्ण दूषित हो जाते है।[46]

दण्ड के भय से ही चोरी-डकैती आदि निन्दनीय कार्य नहीं होते है इस प्रकार सुरक्षित प्रजा के द्वारा ही राजा धन-धान्य से सम्पन्न होता है। राज्य में चतुर्दिक शांति और सुव्यवस्था के लिए दण्डनीति का होना महत्वपूर्ण माना जाता है।

## संदर्भ सूची


1. आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। तस्य नीतिर्दण्डनीतः।
   कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1,1,3,2; वाजस्पति गैराला अनु0, पृ0 15
2. असम्मोहाय मार्त्थानामर्थसंरक्षणाय च।
   मर्यादा स्थापिता लोके दण्डसंज्ञाविशाभ्पते।।
   महाभारत शांतिपर्व 15/10, पृ0 4454
3. अलब्ध लाभार्थाः लब्धपरिरक्षणी, रक्षितविवर्धनी, वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च।
   कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1/1/3/2, पृ0 15
4. दमो दण्ड इति रव्यातस्तस्माद्दण्डो महीपतिः।
   तस्य नीति दण्डनीतिर्नयनान्नीतिरुच्यते।।
   शुक्रनीतिसार, 1, 157
5. तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
   भयादभोगाय कल्पन्ते स्वधर्मात्र चलन्ति च।।
   मनु0-7, 15
6. स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः
   चतुर्णामाश्रमाणों च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः
   दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वादण्ड एवाभिरक्षति
   दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्म विदुर्बुधाः
7. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 4, 48
8. मनुस्मृति, 8, 127
9. मनुस्मृति, 8, 129
10. मनुस्मृति, 7, 27
11. मनुस्मृति, 7, 28
12. मस्त्यपुराण, 225, 4
13. नीतिसार, 9, 2
14. ब्रह्मचारी, गृहस्यच्श्र वानप्रस्थच्श्र भिक्षुकः।
    दण्डस्यैव भयादेते मनुष्या वर्त्मनि स्थिताः।
    महाभारत, शांतिपर्व, 15, 12, पृ0 4454
15. सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभों हि शुचिर्जनः।

दण्डस्य हि भयाद भीतो भोगायैव प्रवर्तते।।
महाभारत, शांतिपर्व, 15.3, पृ0 4456

16. दण्डः संरक्षते धर्म तर्थेवार्थे जनाधिप।
कामं संरक्षते दण्डस्त्रिवर्गो दण्ड उच्यते।। महाभारत, शांतिपर्व, 15.3, पृ0 4454
17. महाभारत, शांतिपर्व, 59, 14-29
18. त्रयी चान्वीक्षिकी चौव वार्ता च भरतर्षभ।
दण्डनीतिश्च्र विपुला विद्यास्तत्र निदर्शिताः।।
महाभारत, शांतिपर्व, 59, 33
19. मनुस्मृति, 7,14
20. याज्ञवल्क्य संहिता, 1, 13, 354
21. महाभारत, शांतिपर्व, 335, 27-32, पृ0 5335
22. महाभारत, शांतिपर्व, 122, 42, पृ0 4738
23. मत्स्यपुराण, 225
24. महाभारत, शांतिपर्व, 122, 42, पृ0 4738
25. मनुसंहिता, 7, 14
26. मनुसंहिता, 7, 28
27. नारद स्मृति, 18, 14-16
28. शतपथ ब्राह्मण, 2, 5, 2, 20
29. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 4, 83, 8, 1, पृ0 460
30. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 4, 83, 8, 1, पृ0 461
31. वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद धिग्दण्डं तदन्तरम।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम।।
32. शुक्रनीतिसार, 4, 1, 73
33. मनुस्मृति, 8, 120-121
34. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 4, 83, 8, 1, पृ0 461
35. मनुस्मृति, 8, 124
36. मनुस्मृति, 8, 297
37. मनुस्मृति, 8, 380
38. मनुस्मृति, 8, 219
39. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 4, 11
40. मनुस्मृति, 8, 379-380
41. मनुस्मृति, 8, 364
42. मनुस्मृति, 8, 371
43. महाभारत, शांतिपर्व, 15, 30, पृ0 4455
44. महाभारत, शांतिपर्व, 15, 32, 33
45. महाभारत, शांतिपर्व, 69, 76, पृ0 4607
46. मनुसंहिता, 7, 24

# मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में चित्रित स्त्री


## डॉ० राम किशोर यादव

*श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*



### सारांश

मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में स्त्री सर्वत्र विद्यमान है। स्त्री की समस्याओं को केन्द्र में रखकर लेखिका ने उनके जीवन के मर्म को रेखांकित किया है। ये सभी स्त्री पात्र अपने-अपने स्तर से संघर्षशील हैं। वे हार स्वीकार करनेवाली नहीं हैं। वे कई बार परिस्थितियों से समझौता करती हैं तो कई बार परिस्थितियों के ऊपर हावी रहती हैं। उनकी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक भूमिकाएं हमेशा प्रेरणा देती रहती हैं। वे चाहकर भी इस स्थिति को बदलने में सक्षम नहीं होतीं। इन्हीं स्त्री की पीड़ा और दंश को विभिन्न उपन्यासों में चित्रित किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की संख्या लगातार बढ़ रही है। इस लेख में कुछ प्रमुख उपन्यासों को ही आधार बनाया गया है जिसमें 'विषन', 'इदन्नमम्', 'अगनपाखी', 'अल्मा कबूतरी', 'कस्तूरी कुंडल बसै', 'चाक', 'स्मृतिदंश', 'बेतवा बहती रही', 'झूलानट', 'कहीं ईसुरी फाग' और 'सुनो मालिक सुनो' प्रमुख हैं। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा को भी केन्द्र में रखकर नारी की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। ये सभी पात्र अपने-अपने स्तर पर संघर्षशील हैं। उनकी बुनियादी समस्याएं एक हैं। वे स्वतंत्र, अधिकार एवं अस्मिता के लिए संघर्ष करती हैं। कुछ पात्र इसमें सफल होते प्रतीत होते हैं लेकिन ज्यादातर पात्र वेदना और पीड़ा झेलते नजर आते हैं। कुछ तो अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर लेते हैं। इन्हीं स्त्रियों की जीवन गाथा को लेखिका ने प्रस्तुत किया है। इस लेख में उन सभी बिन्दुओं पर दृष्टिपात करने की कोशिश है जो नारी को इस स्थिति में रहने के लिए बाध्य करते हैं।


सभी उपन्यासों को पढ़कर नारी की पीड़ा का आभास मिल जाता है। यह स्त्री के ऊपर हो रहे अत्याचार का प्रमाण है। वह अपनी व्यथा किससे कहे, कैसे कहे? उसकी सुनने वाला कौन है? कौन है जो उसे जीवन में सहारा देगा? सभी तो घात लगाकर बैठे हैं। सभी तो उसका शोषण करना चाहते हैं। चाहे वह शिक्षित स्त्री हो या अशिक्षित स्त्री, ग्रामीण स्त्री हो या शहरी। स्त्री के जीवन को व्यापकता में उजागर करके मैत्रेयी ने समाज के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनके विश्लेषण के पैमाने बदल गये हैं। उन्हें नये संदर्भों में परखने की जरूरत है।


मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में स्त्री सर्वत्र विद्यमान है। स्त्री की समस्याओं को केन्द्र में रखकर लेखिका ने उनके जीवन के मर्म को रेखांकित किया है। ये सभी स्त्री पात्र अपने-अपने स्तर से संघर्षशील हैं। वे हार स्वीकार करनेवाली नहीं हैं। वे कई बार परिस्थितियों से समझौता करती हैं तो कई बार परिस्थितियों के ऊपर हावी रहती हैं। उनकी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक भूमिकाएं हमेशा प्रेरणा देती रहती हैं। वे चाहकर भी इस स्थिति को बदलने में सक्षम नहीं होतीं। इन्हीं स्त्री की पीड़ा और दंश को विभिन्न उपन्यासों में चित्रित किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की संख्या लगातार बढ़ रही है। इस लेख में कुछ प्रमुख उपन्यासों को ही आधार बनाया गया है जिसमें 'विषन', 'इदन्नमम्', 'अगनपाखी', 'अल्मा कबूतरी', 'कस्तूरी कुंडल बसै', 'चाक', 'स्मृतिदंश', 'बेतवा बहती रही', 'झूलानट', 'कहीं ईसुरी फाग' और 'सुनो मालिक सुनो' प्रमुख हैं। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा को भी केन्द्र में रखकर नारी की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। ये सभी पात्र अपने-अपने स्तर पर संघर्षशील हैं। उनकी बुनियादी समस्याएं एक हैं। वे स्वतंत्र, अधिकार एवं अस्मिता के लिए संघर्ष करती हैं। कुछ पात्र इसमें सफल होते प्रतीत होते हैं लेकिन ज्यादातर पात्र वेदना और पीड़ा झेलते नजर आते हैं। कुछ तो अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर लेते हैं। इन्हीं स्त्रियों की जीवन गाथा को लेखिका ने प्रस्तुत किया है। इस लेख में उन सभी बिन्दुओं पर दृष्टिपात करने की कोशिश है जो नारी को इस स्थिति में रहने के लिए बाध्य करते हैं।


उपन्यास में जीवन को समग्रता में प्रस्तुत किया जाता है। इनमें वर्णित पात्रों के माध्यम से जीवन के विविध पक्षों को दर्शाया जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने मानवीय धरातल पर इनका चित्रण किया है। विभिन्न पात्रों के माध्यम से संपूर्ण जीवनवृत्त को उभारा गया है। वे पात्र किसी न किसी वर्ग की विशेषताओं से युक्त हैं। उनकी वर्गीय स्वरूप को भी महत्व दिया गया है। मैत्रेयी के स्त्री पात्र बिन बोले अपनी लड़ाई लड़ते हैं। इस प्रक्रिया में उन्हें अपना जीवन भी स्वाहा करना पड़ता है।

'स्मृतिदंश' मैत्रेयी पुष्पा का प्रथम उपन्यास है। भुवन इस उपन्यास के केन्द्र में है। एक भुवन नहीं तिलतिल कर मिटती भुवनों की कथा है। लेखिका के शब्दों में, एक भुवन की नहीं तिल-तिल कर मिटती भुवनों की कहानी है, जिन्होंने सुबह का सूरज नहीं देखा। विहंसती कोपलों के साथ आंख-मिचौली नहीं की। अपनी खुशियों का आंगन, सांझ के घिरते अंधियारे में अपनी सहज स्वाभाविक किलकारियों से नहीं भरा। जिन्हें अंधियारे में टिमटिमाता कोई चिराग नहीं देखा। अन्त में मरीचिका की तरह कहीं दीया जैसा झलकता लगा हो उससे पहले ही मन के भीतर की कई बत्तियां बूझ गयी थीं।''[1]

'स्मृतिदंश' में ऐसी नारी भुवन की कथा है जिसके पिता को सत्य बोलने के जुर्म में मौत के घाट उतार दिया गया था। सारे परिवार के लोगों की नृशंस हत्या कर दी गई थी। भुवन सिर्फ गुदड़ी में लिपटी हुई बच गई थी। अपने शैशवावस्था से लेकर युवावस्था तक दंश का शिकार है–भुवन। भुवन के पिता ईमानदार

थे। वे सत्य की कसौटी पर खरा उतरते थे। वे सोच-समझकर निर्णय करते थे। लेखिका के शब्दों में, ''निर्णय की तुला पर झूठ सच को दोनों पलड़ों में धर लिया था भुवन के पिता समर सिंह ने। आत्मा परमात्मा होती है इसका न्याय भी परमात्मा के सामने होता तो क्या करते वे?''[2]

भुवन का पालन-पोषण नाना के घर में होता है। बड़े होने पर उसका विवाह चांदपुर के कुंवर विजय सिंह के साथ होता है। कुंवर विजय सिंह की हालत को देखकर भुवन रोती है। अपने जीवन में आने वाले अंधेरे से वह दुखी रहती है। बड़े घराने के लोग अपने बेटे का विवाह अपने से छोटे घराने में तभी करते हैं जब उनमें खोट हो। भुवन इसका शिकार बनती है। भुवन की पीड़ा को लेखिका ने चित्रित किया है। अपनी देवरानी कुसुमा से स्नेह करती है। अंततः उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। शीतगढ़ी की चंचला भुवन घर के मंगल यज्ञ में अपने आप की आहुति दे देती है।

'बेतवा बहती रही' की नायिका उर्वशी है। विंध्याचल के पिछड़ी जाति के जीवन का सटीक विश्लेषण किया गया है। उर्वशी को उसके सौंदर्य के कारण कई शड्यंत्रों का शिकार होना पड़ता है। स्त्री के शाश्वत  पीड़ी को ही चित्रित करना लेखिका का उद्देश्य है। स्त्री की महाकाय वेदना का उत्कृष्ट रूप है। स्त्री की पीड़ी प्राचीन समय से चली आ रही है। उसे मुक्ति कहां मिलती है? सामाजिक संस्कारों में पली-बढ़ी स्त्री की जीवन गाथा को ही प्रस्तुत किया गया है। उर्वशी के पति की अकाल मृत्यु हो जाती है। उसका भाई उर्वशी की सम्पत्ति पर नजर गाढ़े बैठा है। वह अपनी बहन का दूसरी बार विवाह कर देता है। एक ऐसे व्यक्ति से उसका विवाह होता है जो भ्रष्ट सरपंच है। यहां उर्वशी का जीवन नारकीय बना रहता है। वैद्य की गलत दवा से उर्वशी की मृत्यु हो जाती है। वह अपने बच्चे देवेश को देख नहीं पाती है। मैत्रेयी पुष्पा  ने स्त्री के संदर्भ में कहा है, ''बेटी  तो मुख जोहती गइया है रे - काऊं खूंटा बांध दो। भोली बछिया सी चल देत हैख़ जितै चाहौ उतै ही।''[3]

इसमें नारी शोषण के कटु सत्य को उजागर किया गया है। उसके जीवन की तुलना बेतवा नदी से की गई है। उर्वशी की जीवन यंत्रणाओं, पीड़ाओं, आशा-आकांक्षाओं को अपने में समेटती जा रही है। स्त्री को निर्णय लेना पड़ता है। एक तरफ अपनी इच्छा तो दूसरी तरफ भाई का पूरा परिवार। वह किसे चुने? यह चुनौतीपूर्ण है। वह मजबूर होकर सोचती है, ''क्या अन्तर पड़ता है इससे अधिक तो उसके क्षणों का मोल नहीं। उस अकेली की जिंदगी और इतने जनों का सुख।''[4] उर्वशी के शब्द नारी की दया भावना को दर्शाता है।

'विज़न' में डॉ. नेहा के जीवन को उजागर किया गया है। वह एक कुशल डाक्टर है। इसके माध्यम से काम करने वाली स्त्रियों के जीवन के भीतर प्रवेश कर सम्पूर्ण सत्य का उद्घाटन करती है। जब ससुर उसका परिचय कराते हैं, ''मीट माई डॉउटर इन लॉ डॉ. नेहा शरण, स्पेशलिस्ट ऑफ नॉन स्टिचिंग सर्जरी।''[5]

डॉ. नेहा अपने गुरु के बताए मार्ग पर चलती है। ''ए फॉर एबिलिटी बी फॉर विहेवियर और सी फॉर कॉम्पिटेंस अर्थात् अस्पताल या क्लीनिक में तुम्हारी मौजूदगी, व्यवहार में मृदुता और निदान में कुशलता ही  सफलता की कुंजी है।''[6] वह सफल डॉक्टर तो है पर परिवार के सामंजस्य नहीं बैठा पाती है। उसके परिवार के लोग पुरानी परंपरा के हैं। उसे घर में सीता की तरह देखना चाहते हैं। यह आधुनिक युवती उसे कैसे स्वीकार कर सकती है। यहीं से उसका जीवन संघर्ष प्रारम्भ होता है। डॉक्टर अजय के साथ उसका विवाह होता है। लेखिका ने नेहा के द्वारा सामाजिक संरचना में व्याप्त स्त्री के प्रति लोगों की सोच को उजागर किया है। अंततः नई पीढ़ी के लिए नेहा प्रेरणास्रोत है। जीवन की धारा को अपने हिसाब से प्रवाहित करने वाली है। वह निडर है, कुशल है, चेतनशील है, विवेकवान है। स्त्री की अस्मिता का प्रमाण है नेहा।

'इदन्नमम्' मैत्रेयी पुष्पा का एक ऐसा उपन्यास है जो अपने लिए नहीं समष्टि के लिए आत्मार्पण की गाथा है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में, ''बिना किसी बड़बोले वक्तव्य के मैत्रेयी ने गहमागहमी से भरपूर इस कहानी को जिस आयासहीन ढंग से कहा है, उसमें नारी सुलभ चित्रात्मकता भी है और मुहावरेदार आत्मीयता भी।''[7] इसमें ग्रामीण अंचल की कथा है। ग्रामीण जीवन का जीवंत दस्तावेज है। इसमें धूप है, चांदनी है, नदी है, पर्वत है, गीत है, आहें हैं, कराहें हैं, सत् और असत् है, छल छदम् है, स्मृतियां एवं विद्रूपताओं का संपूर्ण रूप इसमें विद्यमान है। संपूर्ण परिवेश में हर दुख को झेलने वाली मंदाकिनी का जीवन चित्र वर्णित है। नारी की व्यथा का जीता-जागता प्रमाण है-मंदाकिनी। मंदा की दोहरी लड़ाई है। एक और औरत होने की तो दूसरी ओर वंचितों का अधिकार दिलाने की। मंदा इसमें सफल होती है। महेन्द्र सिंह की बेटी मंदाकिनी का जीवन संघर्षमय है। पिता की हत्या के बाद मां बहनोई रतन यादव के साथ भाग जाती है। अकेली मंदाकिनी को जिन हालातों से गुजरना पड़ता है उसका यथार्थ रूप 'इदन्नमम्'। मंदाकिनी कैलाशी मास्टर के बलात्कार का शिकार बनती है। स्त्री होना मंदाकिनी अस्तित्व का आत्मसंघर्ष है। ग्रामीण स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का एक रूप दृष्टव्य है-''अग्नि साक्षी करके ही आये थे तुम्हारे पूत के संग। सात भंवरे फिरके। लिहाज रखा उसने? निभाया संबंध? दूसरी बैठा दी हमारी छाती पर। उस दिन से कोई संबंध कोई नाता नहीं रहा हमारा। जो ब्याह करके लाया था उससे ही कोई ताल्लुक नहीं तो इस घर में हमारा कौन ससुर कौन जेठ।''[8]

स्त्री की पीड़ा को स्त्री के द्वारा दिखाया गया है। वह न चाहते हुए भी सामाजिक शोषण की शिकार बनती है। चाहे अनमेल विवाह हो, दूसरी बार विवाह करना पड़े या सौतन को झेलना पड़े। यह नारी की अनकही दास्तान है। इन सभी से मुक्ति के लिए संघर्षशील स्त्री छटपटा रही है। इसमें मंदाकिनी को चुनाव तक लड़ना पड़ता है। वहां दबंगों से सामना होता है। गांव के सभी लोगों का सहयोग मिलता है। स्त्री को राजनैतिक सत्ता सौंप कर निर्णय में साझीदारी बनाना चाहती है लेखिका। इसका यथार्थ रूप इदन्नमम् में विद्यमान है। छल-छद्म, शोषण, भ्रष्टाचार, गैरबराबरी पर आधारित राजनीति की नींव को हिला देती है मंदाकिनी। इसमें नारी के जीवन को सफल दिखाया गया है।

'चाक' में सारंग के माध्यम से स्त्री को व्याख्यायित किया गया है। सारंग का विद्रोहिनी, सहभागिनी एवं विवेकवान दिखाकर लेखिका ने क्रांति कर दी है। इदन्नमम् का विस्तार है 'चाक'। ब्रज प्रदेश के किसानों के जीवन का उनकी स्त्रियों दंबगपना का सटीक रूप है। स्त्री मुक्ति आंदोलन के माध्यम स्त्री की लड़ाई का प्रमाण है। यह स्त्री की विकास यात्रा का एक उत्कृष्ट रूप है जो हार नहीं मानती। किसी भी व्यवस्था से टकरा जाती है। यहां तक कि पति से टकराने से परहेज नहीं करती। 'चाक' में अतरपुर गांव की कथा कही गई है। वर्ण-व्यवस्था से युक्त इस गांव की पूरी तस्वीर 'चाक' पेश करता है। इसमें एक ऐसी स्त्री की यात्रा का वर्णन है जो स्त्रियों को जुल्म से मुक्ति दिलाना चाहती है। स्त्रियों की आवाज को मुखरित किया है सारंग नैनी ने। चाक रेश्म, सारंग, गुलकन्दी के साथ-साथ अतरपुर के संपूर्ण वातावरण में घटित स्त्रियों के जीवनदंश को उजागर करता है। उनकी अन्तहीन पीड़ा की जीवंत अभिव्यक्ति है। यह उनके शरीरों पर लिखा गया इतिहास है।

'चाक' में संस्कारों को तोड़ने की कोशिश की गई है। स्त्री का जीवन कैसा हो? उनकी मर्यादाएं कैसी हों? उन पर किस प्रकार का जातिगत बंधन एवं दवाब हो इन सभी प्रश्नों को 'चाक' समेटता है। 'चाक' की शुरुआत ही त्रासदी के साथ होती है। रेशम की हत्या से प्रारंभ होने वाला उपन्यास स्त्रियों के ऊपर हो रहे जुल्म का प्रमाणिक दस्तावेज है 'चाक'। वह अपने निर्णय पर कायम रहने वाली है। वह अपना गर्भपात नहीं कराना चाहती। अपने प्रेम उपरांत गर्भ के साथ सम्मानपूर्वक जीवन जीना चाहती है, पर ऐसी स्त्रियों को जीने कौन देता है? उनके ऊपर जो जातिगत दवाब रहते हैं। उन्हें पुरुष सत्तात्मक समाज की निर्णयों का पालन करना पड़ता है। रेशम का इस निर्णय मानने से इंकार करने की कीमत जान से चुकानी पड़ती है। यह एक रेशम की कथा नहीं, हर क्षण समाप्त हो रही रेशमों की कथा है। रेशम घोषणा करती है, ''मैं कह तो दिया है, पंचायत जोड़ लो, मैं कह दूंगी मुझे छेक दो। बच्चा मेरे पेट से पैदा होगा। घरवाले इसमें शामिल ही कहां हैं?''[9]

रेशम की पीड़ा से दुखी सारंग इन तमाम अत्याचारों से मुक्ति की लड़ाई लड़ती है। इस संघर्ष में वह अकेली है। अंततः श्रीधर प्रजापति जैसे प्रिंसिपल का साथ मिलता है। सारंग न सिर्फ पुराने रीति-रिवाजों से ही टकराती है, वह अपने पति से भी टकराती है। सारंग के शब्द हैं, ''...क्योंकि अब दामन बचाकर भी आग से नहीं बच पाओगे। तुम जिंदगी जी रहे हो। मेरे लिए जिंदगी और मौत बराबर हो गई है। तुम्हें बेदाग रहने की लालसा है और मैं दागदार जीवन से डरती नहीं।''[10]

सारंग के माध्यम नारी की पीड़ा को उजागर किया गया है। उसके आत्म संघर्ष के द्वारा ऐसी मुक्ति की तलाश है जिससे ग्रामीण वातावरण में व्याप्त शोषण का अंत हो। इसमें सारंग चुनाव में उतरकर प्रधान तक बनती है। लेखिका ने स्पष्ट संदेश दिया कि नारी की मुक्ति नारी के द्वारा ही संभव है।

'झूलानट' की नायिका शीलो है। शीलो के माध्यम से नारी जीवन को मुखरित किया गया है। शीलो सहज एवं सरल स्वभाव की है। वह सुंदर है पर समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की उसे समझ नहीं है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में, ''गांव की साधारण सी औरत है शीलो। न बहुत सुंदर, न बहुत सुगढ़... लगभग अनपढ़, न उसने मनोविज्ञान पढ़ा है, न समाजशास्त्र जानती है। राजनीति और स्त्री विमर्श की भाषा का भी उसे पता नहीं है। पति उसकी छाया से भागता है। मगर तिस्कार, अपमान और उपेक्षा की यह मार न शीलो को कुंए बावड़ी की ओर धकेलती है और न आग लगा कर छुटकारा पाने की ओर। वशीकरण के सारे तीर-तरकस टूट जाने के बावजूद उसके पास रह जाता है जीने का निःशब्द संकल्प और श्रम की ताकत। एक अडिग धैर्य और स्त्री होने की जिजीविषा।''[11]

शीलो के जीवन के माध्यम से स्त्री के ऊपर किये जाने वाले शोषण का रूप है–'झूलानट'। इसमें परिवार के लोग भी शामिल हैं। शीलो को जब पता चलता है कि उसका पति दूसरी औरत घर में बिठा लिया है तो वह अपना मार्ग बदलती है। उसका पति सरकारी नौकरी में है। इसमें दो पत्नियों को रखने का नियम नहीं है। मां ने बालकिशन को हिदायत दे दी थी कि किसी के सामने यह बात नहीं खुलनी चाहिए। जब पति शीलो से नहीं मिलता है। वह सुमेर चला जाता है तो शृंगार की सारी सामग्री वह फेंक देती है। ''मर्द की मर्दानगी है गांव समाज को भी उज्र नहीं होता। तभी न मौन रह जाते हैं लोग। इसमें न्याय अन्याय की बात कहां आती है?''[12]

शीलो का आकर्षण बालकिशन की तरफ होता है। वह बालकिशन की जिंदगी को बदल देती है। बालकिशन के साथ जब पति रिश्ता जोड़कर व्यंग्य करता है तब शीलो का जवाब है, ''बालकिशन तो ऐसे ही हमारे लिए हैं जैसे तुम्हारे लिए दूसरी औरत। बिन ब्याही मनमर्जी की। सच मानो बालकिशन भी इससे ज्यादा कुछ नहीं हैं।''[13] इसमें शीलो के व्यक्तित्व के कई पहलू छिपे हैं। लेखिका के शब्दों में, ''शीलो भाभी, फन पर चोटी लगी नागिन, समझ बूझ वाली स्त्री शीलो।''[14] शीलो जैसे पात्रों के माध्यम से लेखिका ने स्त्री के जीवन के भीतर चल रहे क्रिया-प्रतिक्रिया का चित्रण किया है।

'अल्मा कबूतरी' कबूतरी समाज की व्यथा कथा को रेखांकित करता है। अल्मा का जीवन कठिनाइयों से भरा है। अल्मा का पिता पुलिस का दलाल बेटा के बदले किसी कबूतरा को पकड़वा कर ऐसा खेल खेलता है। अल्मा को छोड़कर फटेहाल आना और पागल बनना संदर्भ से जुड़ता प्रतीत होता है। अल्मा को गिरवी तक रखना पड़ता है। दुर्जन के हाथ अपनी बेटी को गिरवी रखकर राम सिंह चला जाता है। ''अल्मा तू गिरवी धरी है, समझे रहना। भला इमसें बुराई भी नहीं हम कबूतराओं में तो यह चलन रहा है जेवर गहना, वासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते हैं। अब तू मेरी खरीदी हुईख्रख्रा।''[15] पुरुष समाज द्वारा उपभोग की गई नारी की जीवन गाथा को लेखिका ने प्रस्तुत किया है। अल्मा को किन-किन व्यक्तियों के समक्ष जाना पड़ता है यही कबूतरी समाज की दुर्दशा है। सूरजभान तलाशी लेने के बाद शरीर का रोम-रोम नापता है। लेखिका के शब्दों में, ''सूरजभान तलाशी लेने के बहाने इस देह का रोम-रोम नाप चुका था। उसके साथी परस राम ने शरीर का नग-नग टटोला था। नंगापन पहली बार लगता है बार-बार नहीं। इस बात को हर औरत जानती है।''[16]

अल्मा कबूतरी नारी की अन्तहीन पीड़ा को सामने लाता है। एक ऐसे समाज की पीड़ा जिसके पास न घर है, न जमीन है, न कोई शरण की स्थली है। वह क्या करे? किसके पास जाये? यही तो विडंबना है। फलस्वरूप वह नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। अल्मा कबूतरी के अन्य स्त्री पात्र भी इस समस्या से अछूते नहीं हैं। कदमबाई भी एक प्रमुख पात्र है। स्त्री के शरीर पर ढाये जाने वाले जुल्म का जीवंत दस्तावेज है अल्मा कबूतरी।

'कस्तूरी कुंडल बसै' में मैत्रेयी पुष्पा ने आत्मकथात्मक शैली को अपनाया है। इस उपन्यास को मां और बेटी के इर्द-गिर्द बुना गया है। लेखिका के शब्दों में, ''अपनी प्रेम, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियों में रची कथा में बहुत सी बातें ऐसी हैं जो मेरे जन्म से पहले ही घटती हो चुकी थीं।''[17]

कस्तूरी के माध्यम से स्त्री के जीवन में प्रवेश करके लेखिका ने 16 वर्ष की लड़की की साहस को दिखाया है। ब्याह न करना जैसे लड़की का कोई अपराध है। कस्तूरी को कुंवारी रहने से डर नहीं लगता था परंतु मां को क्या करे? मां तो गरीबी की मार झेल रही थी। बिना पिता के लड़की की दशा का उल्लेख मिलता है। ''लड़की की जवानी, बेटी की राह में अंधेरा करने वाली है।''[18] समाज में लड़की को लेकर तरह-तरह के भाव विद्यमान रहते हैं। लोगों का मानना है कि कुंवारी बेटी रखने से सात पीढ़ियां गिल जाती हैं। समय पर उसकी शादी कर देना ही अच्छा है। समाज के लोग कस्तूरी के मार्ग के भीतर तरह-तरह के भाव भर देते हैं। लगान देने में असमर्थ मां उसे आठ सौ रुपये में बेच देती है। यहीं से कस्तूरी के जीवन में संकट का पहाड़ खड़ा होता जाता है। स्त्री को तो लोग सती देखना चाहते हैं। वह सोचती है, ''जलकर मर जाने का कैसा व्रत? भस्म हो जाना भी कोई धर्म है? मरने के बाद लोग पूजे इसलिए जिंदगी खत्म कर दो।''[19] कस्तूरी अपने संघर्ष के मार्ग पर चलकर 20 परित्यक्त विधवाओं स्त्रियों का उद्धार करती है।

मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में स्त्री विमर्श दिखाई पड़ता है। वह पुरुष द्वारा किये गए बंटवारे को नहीं मानता है। अपनी नियति पहचानो मैत्रेयी लिखकर राजेन्द्र यादव ने हलचल मचा दी है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में, ''यहां स्त्री अपने ढंग से, अपने आपको देखे जाने का आग्रह करती है। वह न सिर्फ भावना है, न देह। वह दोनों को ही मिलाकर एक संपूर्ण स्त्री है और यही उसकी लड़ाई के क्षेत्र बदल जाते हैं।''[20]

'गुड़िया भीतर गुड़िया' मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा है। इसमें स्त्री के स्वच्छन्द भावना का प्रस्तुतीकरण मिलता है। अन्ततः वह पुरुष सत्ता को मानती प्रतीत होती है। अपने स्वत्व की तलाश करते कहती है, ''हमारी जैसी औरतें भूल जाती हैं अपना नाम, कुल, गोत्र और जाति। यही नहीं, अपनी नस्ल भी भूलने लगती हैं। हमख़ख़ मैं मिसेज शर्मा के सिवाय और क्या हूं, तेरे पिता की पत्नी, ख़ न औरत हूं, न मनुष्य... केवल पत्नी।''[21]

नारी के धर्म को भी लेखिका ने बखूबी चित्रित किया है। वह ईश्वर से फरियाद करती है, ''क्यों बनाया तूने स्त्री को? क्या इसलिए कि इतना दर्द कोई दूसरा सह नहीं सकता वह भी दूसरे की भागीदारी के बदले का दर्द।''[22]

सभी उपन्यासों को पढ़कर नारी की पीड़ा का आभास मिल जाता है। यह स्त्री के ऊपर हो रहे अत्याचार का प्रमाण है। वह अपनी व्यथा किससे कहे, कैसे कहे? उसकी सुनने वाला कौन है? कौन है जो उसे जीवन में सहारा देगा? सभी तो घात लगाकर बैठे हैं। सभी तो उसका शोषण करना चाहते हैं। चाहे वह शिक्षित स्त्री हो या अशिक्षित स्त्री, ग्रामीण स्त्री हो या शहरी। स्त्री के जीवन को व्यापकता में उजागर करके मैत्रेयी ने समाज के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनके विश्लेषण के पैमाने बदल गये हैं। उन्हें नये संदर्भो में परखने की जरूरत है। नये शास्त्र गढ़ने की जरूरत है। जहां स्वतंत्र होकर अपने अनुरूप जीवन को जीने में स्त्रियां सक्षम हों। यह जीवन का उत्कृष्ट रूप होगा। इसका मानवीय धरातल पर विश्लेषण करना बहुत ही महत्वपूर्ण है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


1. हंस, सितम्बर, 1998, पृ. 98
2. पुष्पा, मैत्रेयी-*स्मृतिदंश*, किताबघर, प्रथम संस्करण, 1990, नई दिल्ली, पृ. 11
3. पुष्पा, मैत्रेयी-*बेतवा बहती रही*, किताबघर, प्रथम संस्करण, 1992, नई दिल्ली, पृ. 32
4. वही, पृ. 40
5. पुष्पा, मैत्रेयी-*विज़न*, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, पृ. 163
6. वही, पृ. 165
7. पुष्पा, मैत्रेयी-*इदन्नमम्*, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1994, नई दिल्ली, पृ. 1
8. वही, पृ. 157
9. पुष्पा, मैत्रेयी-*चाक*, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1997, नई दिल्ली, पृ. 21
10. वही, पृ. 184
11. पुष्पा, मैत्रेयी-*झूलानट*, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1999, नई दिल्ली, पृ. 5
12. वही, पृ. 62
13. वही, पृ. 112
14. वही, पृ. 95
15. पुष्पा, मैत्रेयी-*अल्मा कबूतरी*, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2000, नई दिल्ली, पृ. 244
16. वही, पृ. 360
17. पुष्पा, मैत्रेयी-*कस्तूरी कुंडल बसै*, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2003, नई दिल्ली, पृ. 9
18. वही, पृ. 12
19. वही, पृ. 21
20. हंस, जुलाई, 2006, पृ. 1
21. पुष्पा, मैत्रेयी-*गुड़िया भीतर गुड़िया*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 1
22. पुष्पा, मैत्रेयी-*कस्तूरी कुंडल बसै*, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2003, नई दिल्ली, पृ. 307

# भारत में पंचायती राज व्यवस्थाः एक समीक्षात्मक अध्ययन


## अरूण कुमार

*असि० प्रोफेसर ( राजनीति विज्ञान ), राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी ( उ0प्र0 )*



**शोध सार**- विश्व के समस्त लोकतान्त्रिक व्यवस्था वाले देशों में भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था का स्वरूप सबसे विशाल एवं सुदृढ़ शासन व्यवस्था का हैं। हम सभी को ज्ञात है कि लोकतन्त्र सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर आधारित शासन व्यवस्था होती है। प्रायः शासन व्यवस्था के इस स्वरूप में यह स्वीकार किया जाता है कि लोकतन्त्र अपने वास्तविक स्वरूप को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता और न ही वह अपने ऊपरी स्तर पर सफल माना जा सकता है, जब तक कि निचले स्तर अर्थात स्थानीय स्तर पर लोकतान्त्रिक मूल्य एवं मान्यतायें शक्तिशाली न हों। यदि लोकतन्त्र का अर्थ जनता की समस्याओं एवं उनके समाधान की प्रक्रिया में आम जन मानस की पूर्ण एवं प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष एवं विशिष्ट लोकतन्त्र का प्रमाण उतना सटीक कहीं और देखने को नहीं मिलेगा, जितना स्थानीय स्तर पर हैं। शायद इसीलिए भारत में वर्षो पूर्व राजतन्त्रात्मक व्यवस्था के होते हुए भी स्थानीय स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था के स्वरूप को स्वीकार किया जाता रहा है। आज हमारे देश में पंचायती राज व्यवस्था की सम्पन्नता एवं सुदृढ़ता के लगभग छैः दशक हो चुके है। इस शोध पत्र में इसके विभिन्न स्तरों पर आये परिवर्तनों, तथा वास्तविक लोकतन्त्र के विशिष्ट लक्षणों जैसे- महिला सशक्तिकरण, आरक्षण, साक्षर पंचायत, विकेन्द्रीकरण तथा संवैधानिक दर्जा जैसे बिन्दुओं पर प्रकाश डालेगें।



**मुख्य शब्द**- प्रत्यक्ष लोकतन्त्र, विकेन्द्रीकृत शासन, हिस्सेदारी, स्थानीय स्वशासन, आरक्षण, साक्षर पंचायत।


**शोध प्रविधि**- प्रस्तुत शोध पत्र में शोधकर्ता द्वारा ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक व वर्णनात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। इसके साथ-साथ शोधकर्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है।

**शोध सामग्री**- शोधकर्ता द्वारा शोध सामग्री का संकलन द्वितीयक स्रोतों से किया गया है। इस सन्दर्भ में, इस विषय पर लिखी गयी विविध पुस्तकें, समाचार पत्र, पत्रिकायें व विविध प्रकार की वेबसाइटों का सहयोग शोध पत्र को पूर्ण करने हेतु लिया गया है।

## प्रमुख आधार बिन्दु-

1. पंचायती राज की संरचना व उससे सम्बन्धित विभिन्न आयोग,
2. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम,
3. प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की आधारशिला,
4. सामाजिक, आर्थिक व लैंगिक न्याय की आधारशिला,
5. पंचायती राज व्यवस्था की उपयोगिता व महत्व,

**प्रस्तावना**- भारत में पंचायती राज व्यवस्था का इतिहास बहुत पुराना है। शाब्दिक अर्थ में पंचायती राज का आशय पाँच जनप्रतिनिधियों के समूह के शासन से है। पंचायत शब्द मूलतः संस्कृत भाषा के 'पंचायतन' शब्द से उत्पन्न हुआ है। वैदिककालीन इतिहास ने हमें सर्वप्रथम पंचायती राज व्यवस्था से परिचित करवाया। वैदिक साहित्य इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि वैदिक काल से ही ग्राम सभाओं एवं ग्राम पंचायतों का गठन हो चुका था। इस समय सभा और समितियों का उल्लेख मिलता है और ये सभा तथा समितियां निष्पक्ष रूप से कार्य करती थी। अथर्ववेद में उद्धृत है- 'समानो मंत्रः समिति समानी, समानं मनः सह चित्तभेषाम' वैदिक काल के पश्चात् महाकाव्य काल, मौर्यकाल, गुप्तकाल तथा मुगलकाल में भी स्थानीय स्वशासन की इकाईयों को वरीयता मिलती रही। ब्रिटिश काल में लार्ड रिपन के कार्यकाल (1880-1884) को भारत में पंचायती राज का स्वर्ण काल माना जाता है। इस दौर में ग्राम स्तर पर निर्वाचित ग्राम पंचायतों की स्थापना को प्रोत्साहित किया गया। लार्ड रिपन का मानना था कि भारत के गाँव केवल शहरी लोगों का पेट भरने तथा माल गुजारी देने के लिए ही नहीं हैं। रिपन की योजना थी कि भारत में निचले स्तर से लेकर जिला स्तर तक स्थानीय स्वशासन स्थापित हो और उसमें गैर सरकारी निर्वाचित सदस्यों का बहुमत हो।

भारत जैसे विविधता से पूर्ण देश के लिए पंचायती राज व्यवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत गाँवों का देश है और यहाँ की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये महात्मा गाँधी ने स्वीकार किया कि 'हमारा संघ गाँवों का संघ होगा।' गाँधी जी का मानना था कि 'शहरों में लोग रहते हैं और गाँवों में देवता निवास करते हैं। यदि गाँव नष्ट होते हैं तो भारत नष्ट हो जायेगा, वह भारत नही होगा और विश्व में उसका सन्देश समाप्त हो जायेगा।' इसी मत के समानान्तर पूर्व प्रधानमन्त्री चौधरी चरण सिंह ने भी स्वीकार किया कि भारत की प्रगति और उन्नति का रास्ता गाँवों से होकर जाता हैं। हमारे संविधान निर्माता भी शायद इस तथ्य से परिचित थे कि गाँवों का उद्धार किये बिना भारत का उद्धार नहीं किया जा सकता और शायद इसी कारण से उन्होंने संविधान के भाग चार में वर्णित नीति निदेशक तत्वों में पंचायती राज व्यवस्था को समाहित करते हुये अनुच्छेद 40 में स्पष्ट किया कि- 'राज्य ग्राम

पंचायतों के गठन के लिए कदम उठायेगा तथा उन्हें ऐसे अधिकार एवं सत्ता प्रदान करेगा जो कि उनके द्वारा स्वशासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।' यद्यपि संविधान में ग्राम पंचायतों सम्बन्धी उपबन्ध तो किया गया परन्तु इसको संवैधानिक दर्जा नहीं दिया गया था।

पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण स्थानीय स्वशासन पद्धति का पर्याय है। यह भारत के सभी राज्यों में जमीनी स्तर पर लोकतन्त्र के निर्माण हेतु शासन द्वारा स्थापित की गयी है। इसे ग्रामीण विकास का दायित्व सौंपा गया है। इस तरह पंचायती राज व्यवस्था उन पंचायत समितियों को प्रतिबिम्बित करती है जो भारत को लोकतान्त्रिक पहचान देती है। पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत पंचायतों को नियम निर्माण, क्रियान्वयन और शासन सत्ता में सक्रिय भागीदारी प्राप्त होती है। चूँकि पंचायते सामान्य जनमानस से मिलकर बनती है, इसलिए पंचायती राज में आम आदमी नीतियों के निर्माण और उनके क्रियान्वयन में प्रत्यक्ष रूप से सहभागी होता है। इस सन्दर्भ में पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि 'यदि हमारी आजादी को जनता की आवाज की प्रतिध्वनि बनाना है तो पंचायतों को अधिकारिक शक्ति सम्पन्न बनाना होगा।'

भारतीय राजनीति के समकालीन चिन्तक प्रो. रजनी कोठारी ने माना था कि 'पंचायती राज की स्थापना राष्ट्रीय नेतृत्व का एक दूरदर्शी' कार्य था। इसमें भारतीय राज व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण हो रहा और देश की आन्तरिक एकता बढ़ रही है क्योंकि देश में एक स्थानीय संस्था आकार ले रही है।'

पण्डित जवाहर लाल नेहरू पंचायती राज व्यवस्था के समर्थक थे और उन्होंने ही स्वतन्त्रता के पश्चात् इस व्यवस्था को वास्तविक रूप देने का कार्य किया। पण्डित नेहरू का मानना था कि गाँव के लोगों को अधिकार सौपना चाहिए, उनको काम करने दो, चाहे वे हजार गलतियाँ करें। इससे घबराने की आवश्यकता नहीं है। पंचायतों को अधिकार दो ताकि लोग सत्ता में भागीदारी निभा सकें। पण्डित नेहरू का लोकतन्त्र एवं लोकतान्त्रिक मूल्यों तथा मान्यताओं में अटूट विश्वास था। वे गाँवों को अधिकार सौपनें के प्रबल समर्थक थे। वे चाहते थे कि गाँवों को गरीब जनता भी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में सहभागी बनें। उनका विचार था कि पंचायती राज व्यवस्था का मूलमन्त्र है सामुदायिक विकास अर्थात सभी का मिल जुलकर विकास। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत की गयी।

अपने प्रारम्भिक दौर में सामुदायिक विकास कार्यक्रम ज्यादा सफल नहीं हुआ क्योंकि आम जन मानस अपने आपको इन कार्यक्रमों से जोड़ नहीं पाया था। अत: यह बिना हिस्सेदारी वाला कार्यक्रम सिद्ध हुआ। इस कार्यक्रम की विफलता के पश्चात् 1953 में राष्ट्रीय विस्तार सेवा योजना की शुरूआत हुयी। सामुदायिक विकास कार्यक्रम व राष्ट्रीय सेवा योजना को सफल बनाने व जन सहयोग जुटाने के लिए बलवन्त राय मेहता समिति का गठन किया गया। 1957 को प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में इस समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण योजना की सिफारिश की। इसे बाद में पंचायती राज कहा जाने लगा। अपने प्रतिवेदन में इस समिति ने त्रिस्तरीय पंचायती राज योजना के प्रारूप को प्रस्तुत किया।

भारत में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान में हुयी और राजस्थान का नागौर जिला इस व्यवस्था को लागू करने वाला स्वतन्त्र भारत का प्रथम जिला बना। इसकी शुरूआत भी पण्डित नेहरू ने ही की। राजस्थान के साथ-साथ आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडू ने भी इस व्यवस्था को इसी वर्ष स्थापित किया। तत्पश्चात् उड़ीसा, पंजाब, कर्नाटक, असम व उत्तर प्रदेश में भारत के लगभग सभी राज्यों ने कानून बनाकर पंचायती राज व्यवस्था को स्थापित कर दिया, यद्यपि उनके स्वरूप में भिन्नता थी।

पंचायती राज व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण तथा इसकी सफलता के लिए बाद में विभिन्न समितियों का गठन किया गया।

1. अशोक मेहता समिति- दिसम्बर 1977 में जनता पार्टी की सरकार ने अशोक मेहता की अध्यक्षता में समिति का गठन किया। इसने द्विस्तरीय पंचायत व्यवस्था प्रथम खण्ड स्तर और द्वितीय जिला स्तर का सुझाव दिया। इस समिति ने एक तरह से देश में पतनोन्मुख पंचायती राज व्यवस्था को पुनर्जीवित करने का कार्य किया। इसने पंचायतों के पुनरुद्धार हेतु 132 सिफारिशें की लेकिन जनता पार्टी की सरकार भंग हो जाने के कारण केन्द्रीय स्तर पर इस समिति की सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं हुयी फिर भी कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और आन्ध्र प्रदेश ने इसकी कुछ सिफारिशों को लागू किया।
2. जी0वी0के0 राव समिति- 1985 में ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम की प्रशासनिक व्यवस्था के लिए योजना आयोग ने जी0वी0के0 राव की अध्यक्षता में समिति का गठन किया। वास्तव में यह समिति बिना जड़ की घास वाली समिति थी और इसका पंचायतों के सुदृढ़ीकरण से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था।
3. एल0एम0 सिंघवी समिति- 1986 में राजीव गाँधी सरकार ने 'लोकतन्त्र व विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं का पुनरुद्धार' पर लक्ष्मीमल सिंघवी की अध्यक्षता में समिति का गठन किया। इस समिति ने सर्वप्रथम पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा तथा उनके संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया।

इन समितियों के अतिरिक्त 1989 में पी0के0 थुंगन व 1990 में हरलाल खर्रा के नेतृत्व में समितियों का गठन किया गया और इन्होंने भी इस सन्दर्भ में अपने-अपने सुझाव दिये।

पंचायती राज व्यवस्था को मूर्त व संवैधानिक रूप देने का श्रेय पी0वी0 नरसिंहा राव के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार को जाता है। 22 दिसम्बर 1992 को संविधान में 73वां संविधान संशोधन कर इस सरकार ने मुख्यत: पंचायती राज व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण व उसके उज्जवल सफलता को सार्थक बनाने का कार्य किया। इस आशय हेतु लाये गये इस विधेयक को राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा ने 20 अप्रैल 1993 को अपनी सहमति प्रदान की। तत्पश्चात् 24 अप्रैल 1993 को इसे पंचायती राज कानून के रूप में सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया। इस अधिनियम द्वारा न केवल पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया अपितु संविधान के भाग 9 व अनुच्छेद 243 के अन्तर्गत इनको विश्लेषित करने के साथ-साथ अनुसूची 11 का निर्माण कर इनके कार्यक्षेत्रों को स्पष्ट किया गया।

अनुच्छेद 243(क) के अन्तर्गत ग्राम सभाओं को कार्य एवं शक्तियाँ प्रदान करने का उत्तरदायित्व प्रत्येक राज्यों की विधान सभाओं को सौंपा गया है। साथ ही 11वीं अनुसूची में उद्धत 29 विषयों के सन्दर्भ में सामाजिक न्याय एवं लैंगिक समानता सम्बन्धी कार्यों के क्रियान्वयन व मूल्यांकन के कार्यभार का दायित्व ग्राम सभाओं को दिया गया है। पंचायतों की संरचना सम्बन्धी उपबन्ध में इस व्यवस्था को स्वीकार किया गया कि जिन राज्यों की आबादी 20 लाख से ऊपर है, वहाँ त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था व 20 लाख से कम आबादी वाले राज्यों में द्विस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू होगी। 73वें संशोधन अधिनियम में इस बात

का प्रावधान किया गया कि पंचायत क्षेत्र की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की आबादी के अनुपात में प्रत्येक स्तर की पंचायत व्यवस्था में इस वर्ग के लिए स्थान आरक्षित होंगे, साथ ही साथ ग्राम पंचायत व किसी भी स्तर की पंचायतों के अध्यक्ष पद में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही साथ महिलाओं को सशक्त बनाने के उद्देश्य से पंचायतों के प्रत्येक स्तर पर कुल संख्या के कम से कम तिहाई स्थान महिलाओं के लिए सुरक्षित किये गये है। महिलाओं के आरक्षण सम्बन्धी प्रावधान में पंचायतों के अध्यक्ष पद भी शामिल है।

2009 में पंचायती राज मंत्रालय की ओर से 110वां संविधान संशोधन विधेयक लाया गया, जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया कि त्रिस्तरीय पंचायत चुनावों में सीटो तथा अध्यक्ष के 50 प्रतिशत पद महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। वास्तव में पंचायती राज व्यवस्था ने महिला नेतृत्व की स्थिति को सरल बनाने का कार्य किया है। इस पद्धति के माध्यम से दिये गये अधिकारों के कारण ही महिलाओं में राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ है और आज वे राजनीतिक मंचों पर सक्रिय भागीदारी को प्रदर्शित कर रही है।

इस अधिनियम के प्रावधानों को देश के समस्त राज्यों ने स्वीकार किया और उन्हें लागू किया। अधिनियम के प्रावधानों के बिन्दु इस प्रकार हैं-

- ग्राम सभा- यह अधिनियम पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राम सभा का प्रावधान करता है। यह निकाय मुख्यत: गाँव स्तर पर गठित पंचायत क्षेत्र के निर्वाचक सूची में पंजीकृत मतदाताओं की एक ग्राम स्तरीय सभा है जिसका मुखिया संरपंच होता है। इसका निर्वाचन गाँव के पंजीकृत मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होता है।
- त्रिस्तरीय प्रणाली- इस अधिनियम में सभी राज्यों के लिए त्रिस्तरीय प्रणाली का प्रावधान किया गया है, अर्थात ग्राम, माध्यमिक (प्रखण्ड) और जिला स्तर पर पंचायत सृजित की गई जिन्हें क्रमश: ग्राम पंचायत, पंचायत समिति व जिला परिषद नाम दिया गया।
- सदस्यों एवं अध्यक्ष का चुनाव- गाँव प्रखण्ड तथा जिला स्तर पर पंचायतों के सभी सदस्य जनता द्वारा सीधे चुने जायेंगे। इसके अलावा प्रखण्ड एवं जिला स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का चुनाव निर्वाचित सदस्यों द्वारा उन्हीं में से अप्रत्यक्ष रूप से होगा।
- पंचायतों का कार्यकाल- यह अधिनियम सभी स्तर पर पंचायतों का कार्यकाल पाँच वर्ष के लिए निश्चित करता है, फिर भी समय पूरा होने से पूर्व भी उसे विघटित किया जा सकता है।
- राज्य निर्वाचन आयोग - अनुच्छेद 243(ट) के अन्तर्गत चुनावी प्रक्रियाओं की तैयारी की देखरेख, निर्देशन, मतदाता सूची तैयार करने पर नियन्त्रण और पंचायतों के सभी चुनावों को सम्पन कराने की शक्ति राज्य निर्वाचन आयोग में निहित है। इसमें राज्यपाल द्वारा नियुक्त राज्य चुनाव आयुक्त शामिल है। इसके साथ-साथ अनुच्छेद 243(1) में राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान भी इस अधिनियम में है। इसके अध्यक्ष की नियुक्ति भी राज्यपाल द्वारा की जाती है।

पंचायती राज की उपयोगिता एवं महत्व- पंचायती राज व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से ही मौजूद रही है। जहाँ पहले पंचायतें जाति पंचायतों एवं पंच परमेश्वर की अनौपचारिक प्रक्रिया व सोच पर आधारित थी, वहीं स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इसे सुव्यवस्थित एवं कानूनी आधार दिया गया।

भारत गाँवों का देश है और गाँवों को सशक्त व समृद्ध बनाकर ही हम अपने देश को समृद्धशाली बना सकते हैं। महात्मा गाँधी जी का भी मानना था कि जब तक ग्रामवासियों को सत्ता में हिस्सेदार न बना लिया जायेगा तब तक भारत का विकास सम्भव नहीं है। वे आगे कहते हैं कि- ''सच्चा लोकतन्त्र केन्द्र में बैठकर राज्य चलाने वाला नहीं होता, अपितु यह तो गाँव के प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग से चलता है।''

यद्यपि स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण वाली परिस्थिति को लागू करने में समस्या थी परन्तु संविधान निर्माताओं ने संविधान में इसको स्थान देकर इसका भविष्य उज्जवल कर रखा था। यही कारण है कि अतिशीघ्र 1959 में ही पंचायती राज व्यवस्था की शुरूआत हुयी और ग्रामीण जनता के सत्ता में भागीदारी का मार्ग प्रशस्त्र हुआ। आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी समस्याओं को प्रधानों के माध्यम से सरकारों तक पहुँचा सकते हैं व उनका निवारण करवा सकते हैं।

## महत्वपूर्ण बिन्दु-

- भारत में पंचायती राज संस्थाओं ने स्वस्थ प्रजातान्त्रिक परम्पराओं को स्थापित करने के लिए ठोस आधार प्रदान किया। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है।
- ये संस्थायें भारत का भावी नेतृत्व तैयार करती है। विधायकों एंव मन्त्रियों को प्राथमिक अनुभव एवं प्रशिक्षण में संस्थायें ही प्रदान करती है जिससे वे ग्रामीण भारत की समस्याओं से अवगत होते हैं।
- पंचायती राज व्यवस्था में शासक और जनता दोनों का संवाद सीधे रूप से होता है।
- इन संस्थाओं ने प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का आधार खड़ा किया है। दूसरे शब्दों में कहे तो ये संस्थायें प्रजातन्त्र की प्रयोगशालायें है।
- पंचायतों में समाज के निचले तबके के लोगों को आगे लाने के लिए जो आरक्षण पद्धति को स्वीकार किया गया है, उससे गाँवों में सामाजिक न्याय की स्थापना हुयी।
- इसी तरह महिलाओं को पंचायती राज व्यवस्था में व्यापक हिस्सेदारी दी गयी जिससे लैंगिक समानता समाज में विद्यमान हुयी।

**निष्कर्ष**- स्वतन्त्रता के पश्चात् पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से समाज के सर्वाधिक पिछड़े व निचले तबके के लोगों की प्रथम व्यापक राजनीतिक लोगों को प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की कार्यप्रणाली से परिचित करवाया है। आज गाँवों के विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी पंचायतों में आ गयी है और लोगों की ग्राम सभाओं के माध्यम से राजनीतिक सक्रियता में वृद्धि हुयी है। पंचायतें अनुसूचित जाति, पिछड़े वर्ग व महिलाओं के राजनीति में प्रतिनिधित्व को मूर्त रूप देने में सहायक सिद्ध हुयी है। आज नेतृत्व के लिए ज्यादा योग्य व व्यवस्था को समझने वाले लोग प्रतिस्पर्धा में आ रहे है तथा ग्रामीण विकास एवं सामाजिक सुधारों को उत्साहवर्धक ढंग से आगे बढ़ा रहे हैं।

पंचायती राज व्यवस्था ने एक ओर जहाँ ग्रामीण स्तर पर युवाओं एवं महिलाओं के नेतृत्व को उभारा है, राजनीतिक महत्वाकांक्षा को जगाया है जिससे यह वर्ग लोकतन्त्र में औपचारिक भागीदारी करने तथा जागरूक नेतृत्व देने में सक्षम हुआ है वही दूसरी ओर यह संस्थायें गाँव, समाज में स्थानीय सामुदायिक संसाधनों के प्रति स्वामित्व का भाव जगाने में असफल साबित हुयी है।

महिला सशक्तिकरण की पोल इससे खुल जाती है कि ज्यादातर महिलायें नाम मात्र के लिए प्रधान बनती है और समस्त कार्य उनके पति करते हैं। कहना न होगा कि वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था की सारी की सारी सफलता पंचायत प्रतिनिधि व विकास अधिकारियों की जागृति, ईमानदारी, कुशलता, विवेक, मंशा और सरकारी अनुदान के रहमोकरम पर आकर टिक गयी है। आज यह व्यवस्था गाँवों को प्रशासनिक क्रियान्वयन की इकाई बनाने पर अमादा है जबकि गाँव सांस्कृतिक इकाई है। पंचायती राज भूल गया है कि गाँव सम्बन्धों की नींव पर बनते हैं।

यदि हम पंचायतों को सही मायने में लोकप्रतिनिधि इकाई के तौर पर व्यवस्थित करना चाहते है तो राज व सत्ता को त्यागकर लोक और प्रतिनिधि सभा का प्रयोग करना होगा। आवश्यक है कि ग्राम सभाओं को भूमि समेत अपने सभी स्थानीय संसाधनों के प्रबन्धन, उन्नयन, विवाद निपटारा, क्रय-विक्रय व कर वसूली के अधिकार सौंप दिये जायें। दलगत राजनीति से पंचायतों को दूर रखा जाये जिससे वह सामुदायिक प्रतिनिधित्व के संकल्प का एकाकार कर सकें।

## सन्दर्भ ग्रन्थ-


1. मुन्नी पड़लिया (2012) : भारत में पंचायती राज, अनामिका पब्लिकेशंस एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. अंजली, वर्मा (2014) : भारत में पंचायती राज, ओमेगा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।
3. रजनी, कोठारी (1961) : पंचायती राज की असेस्मेण्ट, इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, नई दिल्ली।
4. धर्मवीर, चन्देल (2012) : भारत में पंचायती राजः सिद्धान्त एवं व्यवहार, अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर।
5. एस0एस0 अल्तेकर (1955) : स्टेट एण्ड गर्वमेंट इन एनसियेन्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस।
6. सुरेन्द्र, कटारिया (2017) : पंचायती संस्थान, अतीत और भविष्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
7. रमेश कुमार (अप्रैल 2016) : 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 कुरूक्षेत्र पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
8. कपिल देव (2018) : पंचायती राजः वर्तमान सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, ूण्पहदपजमकण्पद
9. दैनिक नवज्योति डेली हंट : भारत में पंचायती राज व्यवस्था एक परिचय।
10. एस0आर0 महेश्वरी (1998) : भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायन अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
11. रत्ना घोष एवं आलोक कुमार (2002) : भारत में पंचायती व्यवस्था, शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद।
12. डॉ0 नीतू रानी, (2018) : पंचायती राज व्यवस्था, सिद्धान्त एवं व्यवहार, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. प्रमोद कुमार अग्रवाल (2009) : भारत में पंचायती राज, प्रभात प्रकाशन, लखनऊ।
14. अनूप कुमार (2016) : भारत में पंचायती राज, गियोल बुक वर्ल्ड, नई दिल्ली।
15. डॉ0 धर्मवीर चन्देल (2013) : पंचायती राज एवं महिला सहभागिता, नेहा पब्लिशर्स, दिल्ली।
16. www.sansarlochan.in
    www.wikipedia.org
    www.deshbandhu.com
    www.wonderhindi.com
    www.amarujala.com

# स्वातंत्र्योत्तर नेहरूवादी राजनीति में पत्रकारिता का स्वरूप


## निधि सिंह

*शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जे० पी० विश्वविद्यालय, छपरा*


आजादी के पूर्व भारत में राजनीति और पत्रकारिता के बीच काफी सोहार्दपूर्ण संबंध था चूंकि दोनों औपनिवेशिक शासन को समाप्त करने और स्वराज प्राप्ति के समान उद्देश्य के प्रति प्रतिबद्ध होने के कारण एक दूसरे के संपूरक और सहभागी थे। राजनीति के हितोच्चारण के एक उपकरण के रूप में पत्रकारिता कार्यरत थी। भारतीय राजनीति को मुखरित करने के लिए पत्रकारिता एक साधन था। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीति और पत्रकारिता के अंत:संबंध में आमूल परिवर्तन हो गया। सुशासन के मद्देनजर विधि का शासन स्थापित करने हेतु भारतीय संविधान का निर्माण, राजनीति स्थिरता हुतु राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया तथा आर्थिक प्रगति हेतु यथोचित नीतियों का निर्धारण और विविध कार्यक्रमों का कार्यान्वयन भारतीय राजनीति का मूल उद्देश्य बन गया जो पत्रकारिता के लिए आलोच्च विषय बन गया। तथापित नई राजनीतिक व्यवस्था और पत्रकारिता के बीच कोई टकराहट की स्थिति उत्पन्न नहीं हुआ। अलबत्ता राजनीति और पत्रकारिता, दोनों का परिष्कृत सवयप् उभर कर सपामे आया।

राजनीति और पत्रकारिता के बीच 1947 से 1960 की कालावधि में सामंजस्य और सहयोग का वातावरण माना गया है। छठे दशक तक पत्रकारिता का लक्ष्य भारत की पुनर्रचन और आजादी की विरासत की रक्षा का था। भारत की आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता जिस विरासत की वाहक है, उसका उदाहरण दुनियाँ में कहीं नहीं मिलता। इसीलिए जीवन-मूल्यों, राष्ट्रवाद, धर्मनिरपेक्षता, समतामूलक समाज की रक्षा के लिए भारतीय राज्य-व्यवस्था की पुनर्रना का प्रश्न स्वतंत्रता के बाद की पत्रकारिता के लिए अहम रहा। यह सब छठे दशक तक चलता रहा।

उल्लेखनीय है कि प्रेस की स्वतंत्रता के संबंध में भारतीय संविधान में कोई विशेष प्रावधान नहीं किया गया है। लेकिन बाद में सर्वोच्च न्यायालय के कई फैसलों में कहा गया कि प्रेस के पास अलग से कोई विशेषाधिकार नहीं होता है। यह सामान्य अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की तरह ही होता है। प्रेस की स्वतंत्रता संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ं) में उल्लिखित बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का ही एक अभिन्न अंग है। इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने एक मुकदमें में महान न्यायविद् सर विलियम ब्लैकस्टोन की इस उक्ति को उद्धृत किया-

''प्रेस की स्वतंत्रता का अर्थ प्रकाशनों पर कोई भी रूकावट न होकर प्रत्येक स्वतंत्र व्यक्ति को निर्विवाद रूप से अपनी भावना को लोगों के सपामे व्यक्त करने का अधिकार होता ह।''[1]

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू उदारवादी विचारधरा के थे। जिन्होंने सन् 1950 में कहा, ''प्रेस का गलत उपयोग होने के संभावित खतरों के बावजूद मैं इसे दबाने या नियंत्रित प्रेस की जगह पूरी तरह स्वतंत्र प्रेस पसंद करूँगा।''[2] इस तरह स्वतंत्रता के प्श्चात् नई अपेक्षाओं और राजनीति के नए प्रतिमानों के साथ पत्रकारिता ने अपने नए मापदंडों, भाषा, शैली तथा नीतियों का विकास किया।

नेहरू युग में पत्रकारों व राजनीतिज्ञों के बीच परस्पर सहयोग का कारण लंबे समय तक स्वाधीनता संग्राम में उनका समाजीकरण रहा है। स्वाधीनता संग्राम में सभी बड़े नेताओं की प्रेस से घनिष्ठता थी और वे पत्रकारों एवं संपादकों के सतत संपर्क में रहते थे। निरंतर संवाद चलता रहात था। एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है कि ''स्वतंत्राता पूर्व गांधी और बाद में नेहरू ने प्रेस संबंधी विचारों को एक दिशा देने का कार्य किया।''[3]

अत: राजकीय मामलों में खुलकर भागीदारी को पत्रकारों द्वारा व्यवसाय के नैतिक मापदंछों और अनुशासन के विपरीत कार्य नहीं माना जाता था। पत्रकार और राजनीतिज्ञों के बीच सामान्यत: सामाजिक आधार एवं वैचारिक समानता थी। नेहरू ने अनेक स्तरों पर पत्रकारों का उपयोग किया। हरीश खरे के अनुसार, ''सरकार की सहायता करने में कोई हीनता की भावना नहीं थी। राष्ट्र-निर्माण का कार्य एक राष्ट्रीयता एवं सर्वग्राही उपक्रम था।''[4]

संविधान सभा में 'द हिंदू' के वरिष्ठ संपादकीय कर्मी बी० शिवा राव को संविधान सभा में सदस्य बनाया गया था। आगे चलकर नेहरू ने पत्रकारों को उपयोग राजदूतों के रूप में उनकी नियुक्तियां करके किया। इनमें जी० पार्थसारथी, के० शिवांकर, प्रेम भाटिया आदि नाम प्रमुख हैं।[5]

पं० नेहरू का 'ब्लट्ज' के संपादक आर० के० करंजिया के साथ 'आत्मीय संबंध' था।[6] श्री करंजिया उनसे आमतौर पर प्रतिमास साक्षात्कार ले लिया करते थे।[7] करंजिया को सन् 1958 में संसद् सदस्य आचार्य जे० बी० कृपलानी के प्रति अभद्र भाषा के प्रयोग के लिए संसद् में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने का आदेश दिया गया था। विशेषाधिकार हनन का मामला था। करंजिया लिखते हैं- ''मैं संसद भवन पहुंचा, जहां मुझे अपनी भर्त्सना का सामना करना था। नेहरूजी को इस घटना से काफी पीड़ा थी। वे नहीं चाहते थे कि सदन में मुझे बुलाकर फटकारा जाए, परंतु वे विवश थे। उन्होंने यह रूतर सुनिश्चित किया कि मुझे अधिक परेशानी का सामना न करना पड़े। इसके लिए उन्होंने अपने दामाद फिरोज गांधी, हुमायूं कबीर सहित कुछ प्रभावशाली सांसदों को इशारा कर दिया था

कि मुझे सम्मान के साथ सदन में लाया जाए। उन्होंने तत्कालीन अध्यक्ष श्री आयंगर से अनौपचारिक तौर पर कहा भी था कि मुझे कुछ भी नहीं होना चाहिए।"[8]

करंजिया ने आदर्श पत्रकारिता का कोई उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया था। वे आक्रामक पत्रकारिता करते थे। नेहरू के विरोधियों एवं सोवियत संघ के प्रति सहानुभूति नहीं रखनेवालों पर लगातार आक्रमण करते रहते थे।

नेहरू ने उन्हें हर मुकाम पर संरक्षण प्रदान किया। वस्तुत: वे जानते थे कि इस प्रकार की पत्रकारिता भी राजनीति में सहायता होती है। नेहरू ने करंजिया के सोवियत संघ समर्थक होने का भी लाभ उठाया था। उन्होंने गैर-सरकारी स्तर पर करंजिया का रूसी राष्ट्रपति ख्रुश्चेव, क्यूबा के राष्ट्रपति फिदेल कास्त्रों और मिस्र को राष्ट्रपति नासिर से संबंध बनाए रखने में संदेशवाहक के रूप में उपयोग किया था।[9]

पत्रकारों का राजकीय कार्यों में सहयोग लेना नव स्वतंत्र देश के राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया का अंग माना जाता था। इसी प्रकार पत्रकारों के मन में भी अपने व्यवसाय की सीमा, नैतिक मूल्यों या आदर्श के उल्लंघन का कोई अपराध-बोध नहीं होता था। राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया को सम्मिलित कार्य माना जा रहा था।[10] कई अवसरों पर पत्रकारों ने कठिन राजनीतिक परिस्थितियों को निपटाने में सरकार का सहयोग किया था। ऐसा ही एक अवसर था-राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर गांधी-हत्या के बाद लगे प्रतिबंध के बाद उत्पन्न जटिल परिस्थति का। संघ के शांतिपूर्ण सत्याग्रह ने सरकार को और भी प्रतिरक्षात्मक स्थिति में खड़ा कर दिया। तब 'केसरी' के संपादक जी॰ बी॰ केतकर का उपयोग गृहमंत्री सरदार पटेल ने राजनीतिक टकराव को कम करने के लिए किया था। उन्होंने मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री रविशंकर शुक्ल को लिखा था-

''केसरी के संपादक केतहकर आज (9 जनवरी, 1949) मुझसे मिलने आए थे। मैंने केतकर से कहा कि आपसे बात करें, अगर केतकर तैयार हो जाएं तो उन्हें कुछ शर्तों के साथ गोलवलकर से जेल में मिलने की अनुमति दे दी जाए। वह उनपर (गोलवलकर पर) बिना शर्त (सत्याग्रह) वापस लेने के लिए दबाव डालें।''[11] केतकर मध्य प्रदेश के दूसरे नेता द्वारका प्रसाद मिश्र के भी विश्वस्त थे। केतरक ने सफलतापूर्वक गोलवलकर एवं पटेल के बीच संवाद जोड़ने का काम किया था। लेकिन पटेल से कहीं अधिक नेहरू पत्रकारिता के दमखम को राजनीति में उपयोग करते रहे। चंद्रशेखर 'मेरी जेल छायरी' में ऐसे ही दो पत्रकारों की नेहरू की नीति-निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी का उल्लेख करते हुए लिखते हैं -

''चलपति राव एवं शंकर दोनों ने जवाहरलालजी के सहयोगी के रूप में काम किया। उनकी नीतियों का न केवल प्रतिपादन किय ावरन् उन्हें हर प्रकार से आदर का स्थान दिलाने हेतु जनमत तैयार करने में अथक परिश्रम किया।''[12] शंकर पिल्लै 'शंकर्स वीकली' को प्रकाशित एवं संपादित करते थे एवं चलपति राव 'नेशनल हेराल्ड' के संपादक थे। नेहरू अपनी उदारवादी छवि को अपनी बहुमूल्य संपत्ति मानते थे। अत: उस छवि के अनुकूल उनका व्यवहार होता था। पटेल स्वयं सूचना एवं प्रसारण मंत्री थे। परंतु उन्होंने प्रेस का इस्तेमाल न तो अपनी छवि बनाने के लिए किया, न ही प्रेस को दबाने की कभी चेष्टा की। वे ''अपनी नीतियों की आलोचना का अन्याीा नहीं लेते थे।''[13] शंकर पिल्लै को शारदा प्रसाद ने उद्धृत करते हुए लिखा है कि ''नेहरू उनसे कहा करते थे कि मुझे भी मत बख्शो शंकर।''[14] शारदा प्रसाद ने नेहरू की प्रेस के प्रति भूमिका का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ''नेहरू का प्रेस के प्रति दृष्टिकोण साम्राज्यवादी नहीं होकर 'स्कूल मास्टर' जैसा था। नेहरू विदेशी पत्रकारों नारमैन काउजिंस, किंगस्ले मार्टिन और आंद्रे मालरॉक्स के साथ भारतीय पत्रकारों की अपेक्षा अधिक सहजता महसूस करते थे। शारदा प्रसाद ने भारतीय पत्रकारों का नेहरू के प्रति रोष का यह भी एक कारण माना है कि उनके अनुसार दक्षिणपंथी, गांधीवादी, पटेलवादी, सुभाषवादी, राजाजी के समर्थक एवं कट्टर वामपंथी पत्रकारों की अच्छी संख्या थी और वे सभी अपने-अपने सैद्धांतिक कारणों से नेहरू की आलोचना किया करते थे। शारदा प्रसादके अनुसार, ''दूसरे प्रकार की पत्रकारिता का प्रतिनिधित्व 'द हिंदू', 'राजस्थान पत्रिका' और 'हिंदुस्तान टाइम्स' के संपादक व स्वामी करते थे। उन सबके मन में नेहरू के प्रति सम्मान का भाव तो था, लेकिन नेहरू के साथ वे भी असहजता एवं अनिश्चिता महसूस करते थे।[15] वे प्रेस से कभी प्रतिबद्धता की अपेक्षा नहीं करते थे।''[16]

## संदर्भिका


1. सिन्हा, राकेश (2007) *राजनीतिक पत्रकारिता,* दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, पृ॰ 59.
2. मानेकर, डी॰ आर॰ (1973) द *प्रेस अंडर प्रेशर,* नई दिलली : इंडियन बुक कंपनी, पृ॰ 25.
3. राव, एम॰ चलपति (1974) द *प्रेस, नई दिल्ली* : नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ॰ 160
4. खरे, हरीश (2006) 'पॉलिटिकल रिपोर्टिंग', आशारानी माथुर (संपादित), *दी इंडियन मीडिया,* कलकत्ता : रूपा पब्लिकेशंस, पृ॰ 38.
5. पूर्वोक्त, पृ॰ 39.
6. पूर्वोक्त
7. जोशी, रामशरण; 1995- *कठधरे में*, दिल्ली : सारांश प्रकाशन, पृ॰ 11.
8. पूर्वोक्त, पृ॰ 205.
9. पूर्वोक्त
10. सिंह, एस॰ निहाल (1999) *योर स्लिप इज शौविंग*, नई दिल्ली : यू॰ बी॰ एस॰ पब्लिशर्स
11. खरे, हरीश, पूर्वोल्लेखित, पृ॰ 39.
12. मिश्रा, डी॰ पी॰ (1978) *लिविंग एन एरा,* खंड-2, नई दिल्ली : विकास पब्लिकेशंस, पृ॰ 62.
13. चंद्रशेखर (1977) *मेरी जेल डायरी*, नई दिल्ली, पृ॰ 452.
14. साहनी, जे॰ एन॰ (1994) ट्रुथ एबाउट दी इंडियन प्रेस, मुंबई : द एलायड पब्लिशर्स, पृ॰ 215.
15. शारदा प्रसाद, एच॰ वाई॰ (2003) *आई वोंट बी राइटिंग*, नई दिल्ली : क्रॉनिकल बुक्स, पृ॰ 265.
16. पूर्वोक्त, पृ॰ 264.

# जिला सरकार की परिकल्पना व अनुप्रयोग : एक विमर्श


## राजू कुमार पाण्डेय

*शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जे॰ पी॰ विश्वविद्यालय, छपरा*


भारतीय संविधान में किया गया 73वाँ संवैधानिक संशोधन यह प्रावधान करता है कि ''राज्य के विधान मण्डल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान कर सकेंगे जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक समझें।''[1] भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243 (जी) तथा भारतीय संविधान की अनुसूची ग्याहर व बारह पंचायती राज संस्थाओं को 29 तथा नगर निकायों को 18 विषय, स्थानीय महत्व के विशय मानकर इनके बारे में निर्णय लेने, नीति निर्माण कर शासन संचालन का अधिकार प्रदन करते हैं। इन प्रावधानों से यह प्रकट होता है कि भारतीय संविधान में 73वाँ तथा 74वाँ संशोधन जिला स्तर पर एक स्वशासी एवं, स्वायत सरकार बनाने के हामी दृष्टिगोचर होते हैं। कालान्तर में स्थानीय महत्व के विषयों की एक पृथक सूची बनाकर वर्तमान में केन्द्र तथा राजय सरकारों के बीच शक्ति विभाजन (Division of Powers) हेतु किये गये प्रावधान, सूयी-व्यवस्था (List System) में संशोधन कर एक नयी सूची स्थानीय सूची (Local List) और जोड़ी जा सकती है।

इससे स्पष्ट होता है कि 'जिला सरकार' भारतीय संघ के तीसरे स्तर के रूप में उभर कर आ सकती है। 'जिला सरकार' और राज्य सरकार में वे ही सम्बन्ध हो सकते हैं जो सम्बन्ध आज केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच विद्यमान है। 'जिला सरकार' स्थानीय हित एवं महत्व से जुड़े विषयों के मामलों में, नीति बनाने एवं निर्णय लेने तथा उनके क्रियान्वयन में स्वायत्त होंगी परन्तु फिर भी राजय में कार्यरत जिला-सरकारों में समन्वय तथा सामन्जस्य स्थापित करने हेतु उन पर सामान्य नियंत्रण, र्प्यवेक्षण एवं निरीक्षण से सम्बन्धित कार्य राजय सरकारें सम्पादित करेंगी। राजय सरकारें सम्पूर्ण राजय के हितों एवं संपूर्ण राज्य के महत्व से संबंधित विषयों के बारे में शासन संचालन के बारे में नीति बनाने तथा निर्णय लेने का कार्य अपने हाथों में रखेंगी तथा ग्रामीण एवं नगरीय हितों एवं स्थानीय महत्व के विषयों के बारे में नीति-निर्माण एवं निर्णय लेने संबंधी मामले 'जिला सरकारों' को हस्तान्तरित कर शासन एवं सत्ता का वास्तविक एवं यथार्थ विकेन्द्रीकरण कर सकती है। इस व्यवस्था से शासन एवं सत्ता यथार्थ विकेन्द्रीकरण कर सकती है। इस व्यवस्था से शासन एवं सत्ता जन सामानय के अधिक समीप पहुंच पायेंगी और इस प्रक्रिया से जनसामान्य शासन कार्यों से अधिक से अधिक जुड़ सकेगा और उसकी शासन एवं सत्ता में भागीदारी बढ़ सकेगी।

कालान्तर में राज्य विधान मण्डल 'जिला सरकारों' को स्थानीय महत्व के विषयों में शासन संचालन संबंधी कानूनी शक्तियों देने संबंधी कानून बना सकती है तथा राजय सरकारों की सहमति से संविधान में तत्संबंधी संशोधन भी किये जा सकते हैं और इस प्रकार 'जिला सरकार' को संवैधानिक स्तर प्रदान किया जा सकता है। अभी हाल ही में ब्रिटेन के काउण्टीज (Counties) में छोटे मंत्रीमंडल (Cabinet) का गठन कर काउण्टी प्रशासन के स्थान पर काउण्टी शासक का प्रावधान किया गया है। ऐसे मंत्रीमंडलों में 4-5 मंत्रियों का प्रावधान किया जाता है। इस संबंध में उल्लेखनीय है कि 73वें संवैधानिक संशोधन अनुच्छेद के 243 जी में पंचायतों की स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने देने अथवा नहीं देने संबंधी निर्णय राजय सरकारों के विवके पर छोड़ दिया गया है।

वस्तुत: 73वें संवैधानिक संशोधन को इसकी विशेषताओं के आधर पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :

## ( 1 ) अनिवार्य, आर ( 2 ) ऐच्छिक

अनिवार्य वे है जो संविधान का हिस्सा है और ऐच्छिक वे, जिन्हें पूर्ण रूप से राज्य सरकारों के विवके पर छोड़ दिया गया हैं उल्लेखनीय है कि 73वें तथा 74वें संवैधानिक संशोधनों के द्वारा पंचायती राज संस्थाओं तथा नगर निकायों को स्वायत्त शासन की संस्थाएँ बनाना अथवा न बनाना राजय सरकारों की इच्छा पर छोड़ दिया गया हैं कोई संस्था स्वायत्त शासन की संस्था होगी, यह मुख्यत: निम्न चार बातों पर निर्भर करता है :

1. संस्थागत अस्तित्व : स्थानीय स्तर पर नीति एवं निर्णय-निर्माण निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा हो,
2. संस्थागत क्षमता : नीति एवं निर्णयों को क्रियान्वित करने हेतु कानूनों, नियमों आदि बनाने का अधिकार स्थानीय संस्था को ही हो,
3. संस्थागत साधन सम्पन्नता : स्थानीय संस्थायें जो भी कार्य कलाप करें, उन सब कार्यकलापों के सम्पादन हेतु संस्थाओं के पास अपने स्वयं के प्र्याप्त साधन एवं आय तथा वित्त के साधन हो।
4. उत्तरदायित्व एवं जवावदेहिता : स्थानीय कार्यकारी संस्थायें (Executive Bodies) अपने सभी कार्यों के लिए स्थानीय स्तर पर जन निर्वाचित निकायों के प्रति उत्तरदायी एवं जवाबदेह हो।[2]

वर्तमान में ये सब अवस्थायें 73वें तथा 74वें संवैधानिक संशोधनों में नहीं की गयी है। संशोधन अधिनियमों ने ये सारे दायित्व राज्य सरकारों के विवके एवं

इच्छा पर छोड़ दिये हैं मध्य प्रदेश में यहाँ कुछ मामलों में उपरोक्त चारों बातों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में लाने के प्रयास-स्वरूप मध्य प्रदेश विधानसभा ने कुछ पुराने कानूनों में संशोधन किये हैं तथा कुछ नये कानून बनाकर 'जिला सरकार' को कार्य करने एवं शासन संचालन हेतु कुछ विभागों से संबंधित जिम्मेदारी सौंपी गयी है[3] तथा आय एवं वित्त के कुछ स्वतंत्र साधन भी सौंपे जाने संबंधी उपक्रम किये जा रहे हैं लेकिन अभी ये सब केवल तात्कालिक एवं संक्रमणकालीन व्यवस्था है भी इसी दिशा में बहुत कुछ सोचा जाना और तदनुरूप किया जाना शेष है। इस प्रकार राज्यों में 'जिला सरकारें' गठित की जायेगी अथवा नहीं यह राजय सरकार के विवके एवं इच्छा पर निर्भर करेगा।

इसी प्रकार यहां यह भी उल्लेखनीय है कि जिला सरकारी का गठन केवल स्थानीय विकास संबंधी कार्यों के सम्पादन के लिए किया जायेगा। जैसा कि प्रशासनिक सुधार आयोग ने सन् 1969 में यह सिफारिश की थी कि जिला प्रशासन का पुनर्गठन करने की आवश्यकता है। इस पुनर्गठन में विकास एवं जनकल्याण से संबंधित योजनाओं एवं कार्यक्रमों का हस्तान्तरण जिला प्रशासन से पंचायती राज संस्थाओं एवं नगर निकायों को कर दिया जाना चाहिये।[4]

प्रारंभ में इन संस्थाओं को विकास, सामाजिक न्याय एवंज न कल्याण संबंधी कार्य एवं दायित्व सौपे जा सकते हैं, लेकिन सदैव केवल इन्हीं कार्यों के सम्पादन के लिए इन संस्थाओं का गठन किया जायेगा, भविष्य में स्थानीय महत्व एवं हितों से संबंधित दायित्व नहीं सौंपे जायेंगी- ये प्रावधान करना इन संस्थाओं के साथ न्याय करना नहीं होगा।

इन संस्थाओं को एक 'स्थानीय सरकार' का स्वरूप, कार्य, शक्तियाँ एवं दायित्व हस्तान्तरित करना वास्तविक विकेन्द्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा। ये संस्थाएं मात्र विकास, सामाजिक न्याय तथा जनकल्याण तक सीमित न रह जायें, अपितु कालान्तर में ये नियमित सरकार के रूप में कार्य करे, यह 73वें तथा 74वें संवैधानिक संसाधनों की मंशा दिखायी देती है। इसी प्रकार का एक मन्तव्य बहुत पहले अशोक मेहता समिति के प्रतिवेदन पर अपनी असहमति टिप्पणी देते हुए ई. एम. एस. नम्बूदरीपाद ने कहा था कि ''केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर लोकतंत्रा है पर इससे नीचे स्तर पर अफसरशाही का शासन है। यह खेद की बात है कि पंचायती राज संस्थाओं को सभी प्रशासनिक कार्यों से अलग रखने और उन्हें केवल विकास कार्यों तक ही सीमित रखने संबंधी विचार ही मेरे साथियों के दिलों और दिमाग पर छाया हुआ हैं आवश्यकता इस बात की है कि जब केन्द्र सरकार रक्षा, विदेश, मुद्रा, संचार आदि से संबंधित विषयों के शासन संचालन हेतु, राज्य सरकारों राज्यों से संबंधित विषयों के शासन के संचालन हेतु जिम्मेदार ठहरायी गयी है तो स्थानीय हित एवं महत्व के विषय जिला स्तरीय शासन को क्यों नहीं सौंपे जा सकते।[5]

इस प्रकार 'जिला सरकार' भारतीय संघ शासन के सबसे नीचे अर्थात् तीसरे स्तर की सरकार होनी चाहिये। पंचायत समितियां तथा ग्राम पंचायतें अपने-अपने स्तरों पर 'जिला सरकार' के तत्वावधान में अपने से संबंधित कार्यों एवं दायित्वों का वहन करती रहेंगी। 'जिला सरकार' उनके कार्यों एवं दायित्वों में समय-समय पर परामर्श उपलब्ध करवाती रहेगी तथा उन्हें आवश्यक साधन एवं वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाने में भी सहायक होगी। इसी प्रकार 'जिला प्रशासन' "जिला सरकार" का 'कार्यकारी निकाय' होगा।"जिला सरकार" द्वारा निर्मित नीतियों, लिये गये निर्णयों तथा बनायी गयी योजनाओं के क्रियान्वयन का भार जिला प्रशासन पर होगा। इस प्रकार "जिला सरकार" राजय सरकार द्वारा हस्तान्तरित स्थानीय महत्व एवं हितों से संबंधित कार्यों का वहन करती हुई पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतों में समन्वय स्थापित करती हुई जिला प्रशासन पर अपना नियंत्राण एवं र्प्यवेक्षण निष्पादित कर उसकी सचिवीय सहायता से स्थानीय कार्यों का सम्पादन करेंगी।

"जिला सरकार" जिला स्तर पर वर्तमान व्यवस्थाओं में बुनियादी परिवर्तन की पक्षधर है।"जिला सरकार" की अवधारणा में यह बात अन्तर्निहित है ि कइस व्यवस्था में इस बात पर जोर देने का प्रयास किया जायेगा कि जिला स्तरीय मामलों में निर्णय लेने, नीति-निर्माण करने तथा योजना-निर्माण से संबंधित सभी निर्णय जिला सरकार द्वारा लिये जाये तथा तदनुरूप उनका क्रियान्वयन "जिला सरकार" की देखरेख में जिला प्रशासन द्वारा किया जावे। अब तक जिला स्तरीय तथा स्थानीय महत्व के विषयों के बारे में नीति-निर्माण एवं निर्णय लेने का कार्य राज्य स्तर एवं संभाग स्तर पर होता रहा है, लेकिन 'जिला सरकार' के अस्तित्व में आ जाने पर यह कार्य स्वयं 'जिला सरकार' द्वारा ही सम्पादित किये जायेंगे।

'जिला सरकार' जिला स्तर पर किए जाने वाले कार्यों को तो संपादित करेगी ही, साथ ही इनक ार्यों के संबंध में जो नीति-निर्माण अथवा निर्णय राज्य सरकार के स्तर पर लिए जाते हैं उनमें भी इसकी महत्वपूर्ण ाूमिका होगी।"जिला सरकार" स्थानीय विकास, जन-कल्याण और स्थानीय महत्व के विषयों के बारे में नीति-निर्माण करेगी तथा आवश्यक निर्णय लेगी तथा जिला स्तर पर आने वाली समस्याओं के समाधान, निराकरण एवं निदान हेतु प्रयासरत रहेगी।"जिला सरकार" की व्यवस्था का उद्देश्य विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाना है तथा विकेन्द्रीकरण के क्रियान्वयन को यथार्थ रूप में सुनिश्चित करना है। यह सत्ता के विकेन्द्रीकरण का महत्वपूर्ण चरण है।"जिला सरकार" लोकतंत्र को जन सामान्य के द्वार तक (Damocracy at the door of people) पहुँचा कर स्थानीय स्तर पर राजनीतिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन करने के पक्ष में है। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की अनेक अवधारणाओं को अपने में गूंथे और संजोए हुए "जिला सरकार" की अवधारणा अधिकारों को जनहित में निचले स्तर तक पहुँचाने की दिशा में निर्णायक कदम है। ये कदम लोकतंत्र में गाँधीवाद की 'लोकशक्ति' या 'लोकराज' की अवधारणा के शिखर का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

"जिला सरकार" की अवधारणा शासनिक एवं प्रशासनिक ढांचे रूपी भवन का नूतन रूप में शिल्प-विधान, सृजन एवं संयोजन करने की पक्षपाती है। यह प्रशासन में 'लोकशक्ति' और 'लोकनीति' को संपुष्ट करने वाले अभिनव आयाम के रूप में परिलक्षित हो रही है। यह एक तरह से शासन-प्रशासन की भूमिका को नवीन दृष्टि से निर्धारत करने की पहल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

## संदर्भ

1. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 243 जी
2. महीपाल (1995) ''नई पंचायती राज व्यवस्था : तब और अब'', कुरुक्षेत्र, वर्ष 40, अंक 6, अप्रैल, पृ॰ 8
3. 'जिला सरकार' को राज्य विधान सभा ने कुल 32 विभागों से संबंधित कार्य हस्तांतरित किए हैं इन 32 विभागों एवं उनके कार्यों का उल्लेख छठतवें अध्याय में विसतार से किया गया है।
4. प्रशासनिक सुधार आयोग का जिला प्रशासन पर प्रतिवेदन, 1969
5. पंचायती राज पर अशोक मेहता समिति प्रतिवेदन (1978) पर ई॰ एम॰ एस॰ नंबूदरीपाद की असहमति टिप्पणी

# पर्यावरण पर आधुनिक कृषि के प्रभावों का भौगोलिक विश्लेषण


## हरि शंकर गुप्ता

*सहायक आचार्य ( भूगोल ), राजकीय महाविद्यालय, तिजारा, जिला अलवर राजस्थान*



## शोध पत्र सारांश

आधुनिक कृषि वह है जिसमें प्रक्रिया की सफलता प्रौद्योगिकी के उपयोग, संसाधनों तक पहुंच, प्रबंधन, निवेश, बाजारों की विशेषताओं और सरकारी स्तर पर उपलब्ध सहायता पर निर्भर करती है। इस तरह के अभ्यास से उन कारकों के बेहतर नियंत्रण की अनुमति मिलती है जो कृषि फसलों की प्रक्रियाओं और जानवरों के प्रजनन में हस्तक्षेप करते हैं। इस तरह, प्राप्त परिणाम इन कारकों की प्रबंधन सफलता पर निर्भर करेगा। हालांकि, पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्वों के साथ और पर्याप्त सिंचाई के साथ उपजाऊ मिट्टी को बनाए रखना इसके लिए प्रौद्योगिकी और उपयुक्त मशीनरी की मदद से प्राप्त किया जा सकता है। मोटे तौर पर, भोजन की वैश्विक मांग एक वास्तविक चुनौती का प्रतिनिधित्व करती है, क्योंकि विकसित देशों में मध्यम वर्ग की आबादी बेहतर आय कृषि के बदले में प्राप्त करती है। इस तरह की गतिविधि निर्वाह कृषि के साथ न्याय संगत है, जो कुछ क्षेत्रों में गायब होने के लिए प्रतिरोधी है। जैसा कि हम जानते हैं कि आधुनिक कृषि ने न केवल भोजन की क्षमता और जैव ईंधन के उत्पादन में वृद्धि की है, बल्कि एक ही समय में हमारी पर्यावरणीय समस्याओं में भी वृद्धि हुई है क्योंकि इस कृषि प्रणाली में उच्च किस्म के संकर बीज हैं और प्रचुर मात्रा में सिंचाई के पानी, उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। आधुनिक कृषि का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अध्ययन प्रस्तुत लेख में किया गया है।



**मुख्य शब्द :** आधुनिक कृषि की तकनीक, उच्च निष्पादन बीज, सिंचाई का प्रयोग, उर्वरक प्रयोग, कीटनाशकों का उपयोग, फसल का चक्रीकरण, कृषि के साथ पशुपालन, आधुनिक मशीनरी एवं प्रौद्योगिकी, स्थायी कृषि का विकास, पर्यावरण पर कृषि के प्रभाव, मृदा प्रदूषण, भूजल प्रबंधन, जल भराव एवं लवणता एवं कीटनाशक का अत्यधिक उपयोग।


## परिचय

कृषि आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन है क्योंकि यह कृषि और पशुपालन के माध्यम से खाद्य, खाद्य, फाइबर और कई अन्य वांछित उत्पादों जैसे उत्पादों के उत्पादन की प्रक्रिया है। यह मानव उपयोग के लिए पौधों और जानवरों के विकास के प्रबंधन की एक कला है।

कृषि एक ऐसी अभिनव शैली और कृषि प्रणाली है जिसमें स्वदेशी ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान, आधुनिक उपकरण और खेती के तरीकों के महत्वपूर्ण पहलू जैसे क्षेत्र की तैयारी, क्षेत्र चयन, खरपतवार नियंत्रण, पौधों की सुरक्षा, फसल कटाई प्रबंधन, फसल कटाई आदि शामिल हैं। उपयोग को आधुनिक कृषि कहा जाता है। इस तरह की कृषि में, संसाधनों को अनुकूलित किया जाता है जो किसानों की दक्षता और उत्पादकता को बढ़ाता है।

## उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्य इस प्रकार हैं।

1. कृषि की आधुनिक तकनीकी का अध्ययन किया गया।
2. पर्यावरण पर कृषि आधुनिकीकरण के प्रभावों अध्ययन किया गया।

## परिकल्पना

1. वर्तमान में कृषि में पर्यावरण की समस्याओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है।
2. आधुनिक कृषि के विकास एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रयास किए जा रहे हैं।

## अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक आकड़ो का प्रयोग किया गया है। आकड़ो के संकलन कृषि विभाग, कृषि विकास मंत्रालय, अनुसूची, व्यकिगत सम्पर्क, डायरी, पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्र एवं विभिन्न वेबसाइट एवं पुस्तकों के माध्यम से किया गया है। इस अध्ययन की प्रकृति वैज्ञानिक है।

## आधुनिक कृषि की तकनीक

फसलों के विकास के लिए अपनाई गई नई प्रौद्योगिकियां अपने साथ कई तत्व लाती हैं, जिनके बीच हम उल्लेख कर सकते हैं: उच्च उपज वाले बीज, सही सिंचाई के तरीके, उर्वरक, कीटनाशक, एक ही समय में कई प्रकार की फसलों के रोपण, जिसे फसल रोटेशन कहा जाता है।इस प्रकार की ख़्रषि द्वारा कार्यान्वित इन तकनीकों में से प्रत्येक का विस्तृत विवरण नीचे दिया गया है:

**1. उच्च निष्पादन बीज :** इस प्रकार के बीजों को अंग्रेजी में ध्लट बीजों के रूप में मान्यता प्राप्त है, इसके संक्षिप्त रूप में, उनकी अपनी विशेषताएं हैं जो उन्हें सिंचाई जल, पोषक तत्वों का बेहतर लाभ उठाने में सक्षम बनाती हैं। प्रति रोपित क्षेत्र में प्राप्त उत्पाद की मात्रा पारंपरिक बीज की तुलना में अधिक है।

हालांकि, वे बहुत नाजुक हैं और वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए, हमें उनके साथ विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि फसल प्रबंधन में कोई भी बदलाव एक सफल फसल न होकर उत्पादन और उत्पादकता को कम करता है।

**2. सिंचाई का प्रयोग :** यह ज्ञात है कि बढ़ती फसलों के लिए पानी आवश्यक है, इसलिए इसे ख़्रषि जीवन का रक्त कहा जाता है। पानी खेती के पैटर्न, फसल संयोजन, फसल की तीव्रता और लगाए गए भूमि की सीमा और प्रत्येक फसल के लिए मौसमी ताल के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इसलिए, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि पर्याप्त सिंचाई के बिना उच्च उपज वाले बीज का उपयोग करना संभव नहीं है, और न ही उचित निषेचन किया जा सकता है।

**3. उर्वरकों का प्रयोग :** उर्वरकों का उपयोग आधुनिक कृषि के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है। उनके साथ आप उच्च उपज वाली बीज संस्ख़्रति की उत्पादकता बढ़ा सकते हैं।

हालांकि, जैव-उर्वरकों का चयन करना महत्वपूर्ण है क्योंकि वे पर्यावरण के लिए टिकाऊ और अधिक अनुकूल हैं। कई मामलों में यह अभ्यास उच्च उपज वाले बीज में नाइट्रोजन-फिक्सिंग बैक्टीरिया को शामिल करने के साथ प्राप्त किया जाता है।

**4. कीटनाशकों का उपयोग :** कीटनाशक रासायनिक पदार्थ हैं जो फसलों पर हमला करने वाले कीटों को नियंत्रित करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। हालांकि, उनमें से कई फसलों को दूषित करते हैं जिससे स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं।

आधुनिक कृषि में, किसान कीटनाशकों के उपयोग के लिए एक स्थायी विकल्प के रूप में एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) को अपना रहे हैं।

इस प्रकार का प्रबंधन फसलों पर हमला करने वाले कीटों को नियंत्रित करने के लिए तकनीकों की एक श्रृंखला को शामिल करने की अनुमति देता है लेकिन पर्यावरण को कम नुकसान के साथ।

इस प्रथा का एक उदाहरण है, कीटों के प्रति प्रतिरोधी फसलें लगाना, कीटों के साथ जैविक नियंत्रण का उपयोग करना, उन्हें खाने वाले क्षेत्रों को नष्ट करना जहां वे घोंसले बनाते हैं। इस तरह से रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग अंतिम उपाय है।

**5. फसल का चक्रीकरण :** फसल रोटेशन विभिन्न प्रकार की फसलों को एक स्थान पर लगाए जाने की अनुमति देता है ताकि मिट्टी पिछली फसल द्वारा हटाए गए पोषक तत्वों को ठीक कर सके।

इस तकनीक को आधुनिक ख़्रषि में सबसे शक्तिशाली में से एक माना जाता है, क्योंकि यह एक ही क्षेत्र में एक ही प्रकार की फसल लगाने के परिणामों को साल-दर-साल टाला जाता है।

फसल चक्रण का एक अन्य लाभ कीटों का जैविक नियंत्रण है, क्योंकि उनमें से कई, एक विशिष्ट फसल की तरह, हर साल एक ही सतह पर लगाए जाते हैं ताकि उनके विकास और विकास के लिए पर्याप्त भोजन की गारंटी हो सके।

कुछ किसानों द्वारा मोशन में लगाए गए फसल रोटेशन का एक उदाहरण सोयाबीन और अन्य फलियों की खेती है। इस अभ्यास के लिए धन्यवाद, किसान मिट्टी में पोषक तत्वों को फिर से भरने में सक्षम हैं ताकि अगले सीज़न में, वे उसी स्थान पर मकई लगाएंगे जिसमें पहले से ही पर्याप्त पोषक तत्व हैं।

**6. कृषि के साथ पशुपालन :** आधुनिक कृषि और पशुधन की खेती एक दूसरे पर निर्भर करती है और उन मूल्यवान संसाधनों का एक हिस्सा बनाती है जो भूमि प्रदान करती है। इस प्रक्रिया में प्रत्येक पौधे या जानवर की एक विशिष्ट भूमिका होती है।

कुछ अध्ययनों ने निर्धारित किया है कि एक किलोग्राम मांस का उत्पादन करने के लिए 3 से 10 किलोग्राम अनाज की आवश्यकता होती है। इस अर्थ में, अधिकांश किसान अपने परिवारों को खिलाने के लिए या उन्हें विपणन करने के लिए पशुधन बढ़ाते हैं, जो तेजी से प्रतिस्पर्धी है।

लेकिन पर्यावरण प्रदर्शन, खाद्य स्थिरता और संरक्षण स्तरों के बीच संतुलन हासिल करने के लिए, उपयुक्त प्रोत्साहन होना आवश्यक है जो पशुधन के अभ्यास को प्रोत्साहित करता है।

इस प्रोत्साहन का एक तत्व जैविक ज्ञान और ख़्रषि पद्धतियाँ हैं जो विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्रों, क्षेत्रों, मिट्टी के प्रकार और राहत पर लागू होती हैं।

भले ही पशुधन की वृद्धि के कारण होने वाली कई समस्याओं को नियंत्रित करना मुश्किल हो, लेकिन सही प्रोत्साहन के आवंटन के साथ, समाज के प्रति ख़्रषि उत्पादन के लाभों को बढ़ाने में सहयोग करना संभव है।

इसलिए, एक सामान्य लक्ष्य को विकसित करने के लिए ख़षि या पर्यावरण के कार्यालयों या मंत्रालयों की समन्वित भागीदारी आवश्यक है, जो भूमि के उपयोग और प्रबंधन के बारे में दोनों संस्थाओं की चिंताओं को दूर करके सतत विकास को प्राप्त करने की अनुमति देता है।

हालांकि, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि उपयुक्त निवेश के बिना, फसल की पैदावार के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण के लिए प्राप्त लाभ टिकाऊ ख़ षि के लिए संक्रमण को प्राप्त करने के लिए अपर्याप्त हो सकते हैं।

**7. आधुनिक मशीनरी :** यह आधुनिक कृषि के भीतर बहुत महत्व का तत्व है, क्योंकि पहले से इलाज किए गए पहलुओं की तरह, उनके बिना एक अच्छी खेती प्रक्रिया विकसित करना संभव नहीं है।

आधुनिक मशीनरी और प्रौद्योगिकी तक पहुंच आधुनिक ख़षि की सफलता के लिए कारक निर्धारित कर रहे हैं। दोनों तत्व एक बड़ी मदद प्रदान करते हैं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति ख़षि प्रक्रिया के निर्धारित चरण में निर्णायक भूमिका निभाता है।

मिट्टी की तैयारी, सिंचाई, बुवाई के बीज, फसल संग्रह, निषेचन और कीट नियंत्रण के लिए, इन सभी गतिविधियों में प्रक्रिया की सफलता सुनिश्चित करने के लिए आधुनिक मशीनरी की भागीदारी आवश्यक है।

**8. आधुनिक प्रौद्योगिकी :** कृषि प्रौद्योगिकी को इस क्षेत्र के सबसे प्रभावशाली और क्रांतिकारी क्षेत्रों में से एक माना जाता है क्योंकि यह जनसंख्या की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए पर्याप्त खाद्य उत्पादन प्राप्त करने पर केंद्रित है।

यद्यपि यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रौद्योगिकी तेजी से विकसित होती है। आधुनिक किसान अपने पूर्वजों ने जो किया उससे बेहतर काम कर सकते हैं।

प्रौद्योगिकी ने मशीनों के संचालन, कंप्यूटर सिस्टम, ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जीपीएस), स्वचालित प्रबंधन कार्यक्रमों, ईंधन की खपत को कम करने, बीज और उर्वरकों के नुकसान को बदल दिया है।

**9. स्थायी कृषि का विकास :** आधुनिक ख़षि किसानों को उनके अभ्यास की स्थिरता को ध्यान में रखते हुए अपने लक्ष्यों की योजना बनाने की अनुमति देती है। इसका मतलब प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना और उनकी रक्षा करना है, जो बढ़ती आबादी को भोजन और ईंधन प्रदान करते हैं, सभी उत्पादकों और उपभोक्ताओं के लिए एक आर्थिक रूप से व्यवहार्य तरीका है।

हालांकि, सब कुछ अच्छे प्रबंधन पर निर्भर करता है जो आधुनिक कृषि प्रणाली को बनाने वाले प्रत्येक तत्वों से बना होता है। यदि उनमें से कोई भी विफल हो जाता है, तो वांछित उपज या उत्पादकता प्राप्त करना संभव नहीं होगा और परिणामस्वरूप उपलब्ध भोजन की गुणवत्ता और मात्रा घट जाएगी।

इस कार्य में सफल होने के लिए, कृषि अनुसंधान, विकास और विस्तार के साथ-साथ बेहतर वस्तुओं और सेवाओं के कार्यान्वयन और प्रक्रियाओं के अभ्यास में सुधार के लिए निवेश करना आवश्यक है, जो अनुसंधान से प्राप्त होते हैं।

## पर्यावरण पर आधुनिक कृषि का प्रभाव

जैसा कि हम जानते हैं कि आधुनिक ख़षि ने न केवल भोजन की क्षमता और जैव ईंधन के उत्पादन में वृद्धि की है, बल्कि एक ही समय में हमारी पर्यावरणीय समस्याओं में भी वृद्धि हुई है क्योंकि इस ख़षि प्रणाली में उच्च किस्म के संकर बीज हैं और प्रचुर मात्रा में सिंचाई के पानी, उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। आधुनिक कृषि का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी चर्चा नीचे की गई है।

**1. मृदा अपरदन :** अपने मूल स्थान से भूमि के कणों की क्रिया और दूसरी जगह पर एकत्रित होने को मिट्टी का कटाव या मिट्टी का कटाव कहा जाता है। आधुनिक ख़षि में, अत्यधिक पानी की आपूर्ति के कारण, खेत के ऊपर उपजाऊ मिट्टी निष्कासित हो जाती है। जिसके कारण मिट्टी की उर्वरता कम होने लगती है और मिट्टी की उर्वरता में कमी के कारण उत्पादकता घटने लगती है। यह ग्लोबल वाह्मग को भी बढ़ाता है क्योंकि अत्यधिक कार्बन की आपूर्ति के कारण जल निकायों की गाद के कारण मिट्टी कार्बन वातावरण में जारी होती है।

**2. भूजल का प्रदूषण :** भूजल सिंचाई के लिए महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक है। आधुनिक ख़षि में अत्यधिक नाइट्रोजन उर्वरक का उपयोग मिट्टी में नाइट्रेट के स्तर को बढ़ावा देता है जो भूजल को दूषित करता है। यदि भूजल में नाइट्रेट का स्तर 25 मिलीग्राम / एल से अधिक है, तो ब्लू बेबी सिंड्रोम जैसी गंभीर बीमारियां अधिकांश शिशुओं के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती हैं।

**3. जल भराव और लवणता :** जल निकासी का उचित प्रबंधन ख़षि के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन किसान उत्पादकता बढ़ाने के लिए अधिक पानी की आपूर्ति करते हैं, जिससे जल जमाव होता है जो मिट्टी की लवणता को बढ़ाता है और मिट्टी की उत्पादकता को कम करता है।

यूट्रोफिकेशन तब होता है जब किसी जलाशय या जल स्रोत को ख़त्रिम या गैर-ख़त्रिम पदार्थों जैसे नाइट्रेट्स और फॉस्फेट से समृद्ध किया जाता है। इस संवर्धन के कारण, पानी में बायोमास अत्यधिक हो जाता है जिसके कारण पानी में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है।

**4. कीटनाशक का अत्यधिक उपयोग :** कीटनाशकों को नष्ट करने और फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए आधुनिक ख़षि में कई कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, पहले आर्सेनिक, सल्फर, लेड और मरकरी का इस्तेमाल कीटों को मारने के लिए किया जाता था। तब कीटनाशक Dichloro Diphenyl Trichloroethane (DDT) का उपयोग बाद में किया गया था, लेकिन इसने हानिकारक कीट के साथ-साथ लाभकारी कीट को भी नष्ट कर दिया। ये कीटनाशक बायोडिग्रेडेबल होते हैं जिन्हें मानव खाद्य श्रृंखला में जोड़ा जाता है जो मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। इसलिए, आज के युग में, ख़षि के लिए जैविक खाद के उपयोग पर जोर दिया जा रहा है।

## निष्कर्ष

इस शोध से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि ख़्रषि क्षेत्र में आधुनिकीकरण के साथ साथ नियामक संस्थानों द्वारा प्रदान किए जाने वाले कार्यक्रमों और नीतियों को लागू करने के लिए सरकारी संस्थानों और निजी कंपनियों को सलग्न होना चाहिए, और बदले में उन लोगों को प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए जो नवाचार करने का जोखिम उठाते हैं। इसलिए, कृषि में आधुनिकीकरण के लिए आधुनिक कृषि भूगोल के माध्यम से, कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए संकरण, कीटनाशकों और मिट्टी की उर्वरता का उपयोग बढ़ाने के लिए तकनीकी सुधार किए जा रहे हैं और साथ ही मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

## संदर्भ पुस्तक सूची


- कोली हरिनारायण (1996) : पर्यावरण एवं मानव, संसाधन, पोईन्टर पब्लिसर्स, जयपुर (राज).
- कुमार, प्रमीला एवं श्री कमल शर्मा (1985) : कृषि भूगोल, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल.
- पाण्डेय जे.एन.एवं एस.आर.कमलेश (1999) : कृषि भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर (उ.प्र.).
- शर्मा बी.एल. (1979) : राजस्थान में शस्य भूमि उपयोग तीव्रता एवं उत्पादकता, भूदर्शन
- प्रियदर्शनी, एस, (2016), आधुनिक कृषि तकनीकों के लक्षण।
- मानस (2011), उच्च उपज के साथ विभिन्न प्रकार के बीज।
- ग्रेस कम्युनिकेशंस फाउंडेशन, (2017), कीटनाशकों स्थिरता का अध्ययन।
- चिंतित वैज्ञानिकों का संघ, (एन डी)
- (एन डी) कृषि में नवाचार।
- नई दुनिया विश्वकोश, (2016), कृषि तकनीक

# गुरु नानक वाणी में प्रस्तुत पंजाबी संस्कृति : एक अध्ययन


## अमृतपाल कौर

*( रिसर्च फैलो ), गुरु नानक अध्ययन विभाग, गुरु नानक देव युनिवर्सिटी, अमृतसर ( पंजाब )*


संस्कृति इतिहास का उतना ही पुराना विष्य है, जितना मनुष्य। साधारण शब्दों में समस्त व्यवहार को सभ्याचार कहा जाता हैं। भाषा के तौर पर यह शब्द ''सभ्य+अचार'' का जोड़ है परंतु समाज और मानव विज्ञान ने इसे बड़े ही कठिन शब्दों में परिभाषित किया है। संस्कृत भाषा में संस्कृति का समानार्थक शब्द संस्कृति सम+करी शब्दों का जोड़ है। कोष के अनुसार इसके अर्थ हैं -जिसका संस्कार किया गया हो, जो निखारा और साफ किया हुआ, पकाया हुआ, ठीक किया हुआ हो।[1]

संस्कृति का घेरा बहुत विशाल है। मनुष्य की आदतों, पारिवारिक जीवन, भोजन, रहन-सहन, जन्म से मौत तक के सभी कर्म-व्यवहार संस्कार, खुशी गमी, रीति रिवाज, मनोरंजन, सृजनात्मक कलाएं, धर्म, राजनीति आदि समस्त जीवन जांच सभी कुछ संस्कृति के क्षेत्र में आ जाते हैं। धर्म और संस्कृति का सबंध बहुत ही निकटवर्ती है। धर्म का सरोकार मनुष्य से होता है और मनुष्य समाज में विचरता है। समाज आगे बढ़ने के लिए कुछ नया सोचता है। इसे नई संस्कृति चेतना या जाग्रति कहा जाता है और नई चेतना आये बिना ही संस्कृतिक कीमतों में परिवर्तन संभव नहीं है। यह नई चेतना उत्पन्न करना आम जन साधरण के बस की बात नही बल्कि इस महान कार्य के लिए कोई युग पुरुष ही आगे आते हैं। इस खोज पत्र में मैं गुरु नानक वाणी में पेश पंजाबी संस्कृति : एक अध्ययन के विषय में विचार चर्चा करूंगी।

गुरु नानक देव जी एक महान युग पुरुष थे, जिन्होंने अपने समय में सांस्कृतिक माहौल में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास किया। जिस काल में वे हुए थे, पंजाबी संस्कृति असीमित प्रभावों और अंतर विरोधों में फसा हुआ था। हर तरह की स्वतंत्रता धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक भ्रष्ट हो रखी थी। समाज में आम आदमी भ्रष्ट धार्मिक आगुओं के अत्याचारों को सहन करने के लिए मजबूर था। विदेशी शासक जनता के ऊपर अत्याचार और दमन वाला व्यवहार अपना रहे थे जिस कारण आम आदमी दोहरी गुलामी करने के लिए मजबूर था। इस समय के माहौल में गुरु नानक का आगमन बडा ही क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। ऐसे राजनीतिक, ऐतिहासिक परिवेश में प्रकट हो कर गुरु नानक देव जी ने न केवल पंजाबियों के मनों में जीने की उमंग पैदा की बल्कि विदेशी शासकों के गलभे और रूढीग्रस्त संस्कृति की जंजीरों के विरूद्ध लड़ने मरने का हौसला भी पैदा किया।

गुरु नानक का संबंध चाहे मूलरूप से पंजाब की धरती से था, परन्तु उनकी वाणी का भाषायी मुहावरा और संबोधन सर्वभारतीय संदर्भ की साखी भरता है। बाबर के हमले के दौरान हुई तबाही और बर्बादी का चित्र गुरु नानक वाणी में समस्त हिंदुस्तान के नक्शे को सामने रखता है, प्रमाण के तौर पर गुरू नानक वाणी की पंक्तियां पेश हैं-

*पाप की जे लै काबलहु धाइआ*
*जोरी मंगै दानु वे लालो।।*[2]
*गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 722*

गुरु नानक देव जी ने अपने समय के राजतंत्र के विरुद्ध आवाज बुलंद की। उस समय राजा के विरुद्ध बोलने की आज़ादी नहीं थी। राजा जो कहता था, करता था, वही कानून होता था। परन्तु गुरु नानक देव जी ने राजा के विरुद्ध अपने बेबाक अंदाज़ में उनके प्रजा विरोधी व्यवहार की आलोचना की। 'मांझ की वार' में आप कहते हैं -

*कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडारिआ।*
*कूडु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।।*[3]
*गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 145*

गुरु नानक साहिब ने यहाँ अपने समय के पंजाबी समाज की खत्म हो रही स्थिति के संकट की पेशकारी बड़े ही प्रमाणिक रुप में की है। राजा का धर्म अपनी प्रजा की पालना और सुरक्षा करना होता है, परन्तु जब राजा अपने राजधर्म से मुख मोड़ कर रक्षक की जगह भक्षक बन जाएं तो उस समय प्रजा की स्थिति कैसी होगी, यह बात सरल रुप में ही समझी जा सकती है। गुरु नानक साहिब ने अपने समय में राजे के साथ-साथ प्रजा पर भी तीखी प्रतिक्रिया पेश करते हुए लिखा है -

*अंधी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु।।*[4]

*गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 469*

इस प्रकार इस सामन्ती युग की लूट-खसूट और अन्यायपूर्वक, अत्याचारी व्यवस्था में गुरु नानक वाणी निसन्देह ही क्रांतिकारी चिन्तन की गवाही भरती है।

इसके साथ-साथ गुरु नानक साहिब ने तथाकथित धार्मिक कर्मकांडों को अपनी आलोचना का विषय बनाया। उस समय समाज की बागडोर धर्म के तथाकथित ठेकेदारों ने संभाली हुई थी। गुरु नानक साहिब ने धर्म के इन ठेकेदारों को चुनौतियां दी और लोगों के मनों में उनके विरुद्ध विद्रोह की भावना स्थापित की। गुरु नानक वाणी में फोके कर्मकांड और दिखावे की धार्मिकता का दृढ़ता से खंडन किया गया है, उदाहरण के तौर पर -

*तीरथ नाता किआ करे*
*मन महि मैलु गुमानु।।*[5]
*गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 61*
*नावण चले तीरथी*
*मनि खोटै तनि चोर।।*[6]
*गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 789*

गुरु नानक साहिब ने इस प्रकार के बाहरमुखी तीर्थ स्थान की जगह आन्तरिकमन तीर्थ का प्रतीकात्मक आदर्श स्थापित किया -

*अंतरगति तीरथि मलि नाउ।।*[7]
*गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 4*

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब ने दिखावे की धार्मिकता के लिये तरह-तरह के भेष धारण करने की भी सख्त आलोचना की है। गुरु नानक वाणी के अनुसार सतनाम् परमात्मा की प्राप्ति के लिये तीर्थ, भेख, पाखण्ड, व्रत, मौन धारण करना आदि सभी दिखावटी कर्म हैं। गुरु नानक जी ने भेखधारी, साधुओं, ब्राह्मणों, मोलवियों और योगियों को अपनी आलोचना का विषय बनाया। साधु लोग भगवा वस्त्र धारण करके, ब्राह्मण धोती टीका लगाकर, मौलवी नीले वस्त्र पहन कर और योगी विभूति लगाकर भोले भाले लोगों को ठगते थे। गुरु जी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा कि ऐसे कर्म अप्रमाणिक हैं। केवल अलग-अलग भेष धारण करने से ही कोई अध्यात्मक साधना में सफल नहीं हो सकता, बल्कि सच्चे मन से गुरु की साधना करके मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। गुरु जी ने अपने कर्मों और वाणी के द्वारा भेखधारी वर्गों का खण्डन किया। इस प्रसंग में वह कहते हैं कि-

*गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई.....*
*धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई।*
*अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई।*
*छोडीले पाखंडा।। नामि लइऐ जाहि तरंदा।।*[8]
*गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 471*

गुरु नानक साहिब ने मानव को समझाया कि प्रभु का नाम सिमरण करने के लिए, मुक्ति प्राप्त करने के लिए घर-बार त्यागने या स्त्री से नफरत करने की आवश्यकता नहीं, बल्कि घर परिवार के बीच रहकर ही परमात्मा की प्राप्ति सही अर्थों में सम्भव है। उन्होंने ग्रहस्थ जीवन की प्रधानता को स्थापित करके स्त्री के महत्व को समाज में स्थापित किया। उनके अनुसार किसी भी समाज, संस्कृति की महानता और प्रासंगिकता ग्रहस्थ जीवन की सर्वोचता में शामिल है। स्त्री की स्थिति को गुरु नानक साहिब ने अपनी वाणी में बड़े ही खूबसूरत ढंग से रुपमान किया है। इस बात का प्रमाण निम्नलिखित पंक्तियों से बड़े ही सरल ढंग से प्राप्त हो जाता है -

*भांडि जंमीऐ भांडि निंमहऐ भांडि मंगणु वीआहु*
*भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु*
*भंडु मुआ भंडु भालीऐ भांडि होवे बंधानु*
*सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान।।*[9]
*गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 473*

गुरु नानक वाणी में स्त्री के कामनी रुप की नहीं बल्कि उसके अर्धांगनी रुप को अधिक महत्व दिया गया है। 'आसा की वार' में वर्णन मिलता है कि एक स्त्री ही है, जिससे पुरुष पैदा होता है। राजा, महाराजा भी इस स्त्री की कोख से ही पैदा हुए हैं। समस्त मानवता स्त्री की कोख से ही पैदा हुई है। सिर्फ प्रभु परमेश्वर ही ऐसा है जो स्वय: है अर्थात् अपने आप से पैदा हुआ है। मध्यकालीन पंजाबी समाज के संस्कृतिक संदर्भ में गुरु नानक वाणी में प्रगट किए गए स्त्री के प्रति विचार समस्त भारतीय साहित्य को क्रांतिकारी रंग देने वाले हैं।

गुरु नानक वाणी का संस्कृतिक अध्ययन मध्यकालीन पंजाबी समाज में जात-पात एंव वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज व्यवस्था को भंग करके सरल सांझी और समानता वाली समाजिक व्यवस्था की स्थापना की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। उस समय के समाज में ब्राह्मण और खत्री श्रेष्ठ माने जाते थे। वैश्य और क्षुद्र श्रेष्ठ वर्गों की सेवा में अपना जीवन व्यतीत करते थे। उनके साथ अछूतों से भी बुरा व्यवहार किया जाता था और किसी भी वस्तु, स्थान

के ऊपर उनका कोई अधिकार नहीं था। श्रेष्ठ वर्ग का उनके साथ कोई संबंध नहीं था। मानव का मानव से ऐसा व्यवहार देखकर गुरु नानक साहिब को यह अमानवीय लगा और उन्होंने खुलकर नीच वर्ग के साथ खड़े होकर उनके अधिकारों के प्रति आवाज बुलंद की –

*सभु को ऊचा आखीऐ नीचु न दीसै कोइ*

*इकनै भांडे साजिऐ इकु चानणु तिहु लोइ।।*[10]

*गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 62*

गुरु नानक साहिब ने न केवल पंजाबियों को बल्कि समस्त भारत के निवासियों को धर्म की सीमित दीवार से ऊपर उठकर इन्सानियत की भावना पैदा करने का उपदेश दिया। गुरु साहिब ने अपनी वाणी और शिक्षा के माध्यम से यह उपदेश दिया कि कोई भी धर्म बड़ा या छोटा नहीं, बल्कि हर धर्म अपनी-अपनी सोच के द्वारा अपने समर्थकों को अच्छा इन्सान बनने की प्रेरणा देता है। उन्होंने अपनी वाणी में जगह-जगह हिन्दु को 'अच्छा हिन्दु' और मुस्लमान को 'अच्छा मुस्लमान' बनने की प्रेरणा दी। गुरु नानक साहिब ने अपने समय के सभी धर्मो की एकता पर बल दिया। उन्होंने इस एकता का आधार मानवीय एकता और समानता को मानते हुए हिन्दुओं और मुस्लमानो को समीप लाने का प्रयास किया। गुरु जी ने 'न कोई हिन्दु न मुस्लमान' का संदेश दिया और कहा कि सभी एक ईश्वर की संतान हैं। कोई बड़ा-छोटा, अमीर-गरीब नहीं, बल्कि सभी मनुष्य समान हैं। इस प्रकार उन्होंने समाज से ऊँच-नीच, जात-पात, अमीर-गरीब आदि भेदभाव समाप्त करके समस्त मानव जाति को समानता और मिल जुल कर रहने का उपदेश दिया।

संस्कृति के क्षेत्र में गुरु नानक साहिब की एक देन परम्परागत शिक्षा प्रणाली को खत्म करना था। उन्होंने छोटी आयु में ही यह जान लिया था कि परम्परागत शिक्षा प्रणाली पाठक के मन में अहंकार और ईष्या पैदा करती है। उन्होंने अध्यापकों की आलोचना करते हुए कहा कि यह स्वंय अज्ञानी होकर ज्ञान बांटने का ढोंग करते हैं और विद्यार्थी के मन पर चोट करते हुए कहा कि वह भी अपने पेशे में सफल होने के लिए विद्या को तोते की तरह रटता है। 'आसा की वार' और 'पट्टी' जैसी प्रबंधकीय वाणियों में उन्होंने शिक्षा प्रणाली संबंधी क्रांतिकारी विचार पेश किए हैं।

शिक्षा प्रणाली के संबंध में गुरु नानक साहिब की एक ओर महान देन अपनी मातृ भाषा पर बल देना है। उन्होंने फारसी को 'मलेश भाखा' कहकर इस भाषा के तोते जैसे रटन पर व्यंग्य किया। इस भाषा को बोलने वाले विदेशी जालिम हाकिमों को उन्होंने 'अभाखिया' जैसा कहा है। इसी प्रकार फारसी भाषा पढ़कर मुस्लमान हाकिमो के पसंदीदा बनने वाले मौकाप्रस्त लोगों पर व्यंग करते हुए कहा –

*घरि घरि मीआ सभनां जीआं बोली अवर तुमारी।।*[11]

*गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 1191*

गुरु नानक साहिब ने पंजाब की संस्कृति को अमीर बनाने वाली गुरुमुखी लिपि को अपनी वाणी के लिए चुना और इसे साहित्यक स्तर पर लाने में अहम योगदान दिया। शब्द भंडार के पक्ष से गुरु नानक साहिब की वाणी उत्तरी भारत में सभी भाषाओं का प्रतिनिधित्व करती है। बेशक गुरु नानक वाणी का मूल आधार पूर्वी पंजाबी ही है परन्तु संस्कृत, प्राकृतों, अभ्रंशों, फारसी, अरबी के ही बहुत सारे लोक प्रचलित शब्द गुरु नानक वाणी में मौजूद हैं। गुरु नानक साहिब ने अनेक नए समास, मुहावरे, बिम्ब और अलंकार पंजाबी भाषा को प्रदान किए। गुरु नानक एक महान शायर थे और उनके काव्य संग्रह में अनेकों मौलिक बिम्ब और अलंकार बनकर निकलते रहते थे। गुरु नानक वाणी का एक ओर मीरी गुण शब्द और संगीत का सुमेल है। उन्होंने समस्त वाणी 19 रागों में लिखी। विश्वभर में शायद ही किसी और कवि ने इतने रागों में इतनी महान वाणी की रचना की होगी।

इस प्रकार गुरु नानक साहिब ने वाणी के माध्यम से पंजाबी संस्कृति में प्रगतिशील जीवन दृष्टि के बीज बीजे। उन्होंने संस्कृति की वेला विहा चुकी कदरे कीमतें न मानते हुए उसकी जगह मानववादी प्रतिमान की संरचना की। उनकी वाणी ने पंजाब में ही नहीं बल्कि समस्त भारत में एक ऐसे नए राष्ट्र को जन्म दिया, जो जुल्म और अत्याचार के विरुद्ध मुकाबला करने के लिए हर समय तैयार रहती है। गुरु नानक आधुनिक पंजाबी संस्कृति के निर्माता हैं और उनके शब्द आज भी पंजाबी संस्कृति की हर संस्था में गूंजते हैं।

## सन्दर्भ ग्रंथ सूचि


1. मानक हिन्दी कोष, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1966, पृ. 243
2. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, डॉ जोध सिंह, द सिक्ख हैरीटेज पब्लीकेशन्स, पटियाला, 2003

# हिन्दी साहित्य एवं अनुवाद : अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में


## डॉ० ( श्रीमती ) कंचना सक्सेना

*शोध पर्यवेक्षक, सह-आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा*

## ऋतु वर्मा

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा*



## सारांश

विश्व में अनुवाद की परम्परा पुरानी रही है। मानव इतिहास के विभिन्न देशकालों में व्यक्ति अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति अनेक भाषाओं में करता रहा है। इन भाषाओं के मध्य संवाद का कार्य 'अनुवाद' द्वारा किया जाता है अत: किसी एक भाषा की सामग्री का किसी अन्य भाषा में रूपान्तर करना 'अनुवाद' है। वर्तमान परिपेक्ष्य में यह अनुवाद ही भूमण्डलीकरण का आधार है। आज विश्व मानचित्र पर भारत एक बड़ी अर्थव्यवस्था बन कर उभर रहा है, ऐसे में हिन्दी भाषा एवं साहित्य के अनुवाद की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। आज हिन्दी भाषा एवं भारतीय संस्ख्रति को जानने समझने के लिए विश्व में उत्सुकता का माहौल है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाशा के अध्ययन-अध्यापन का कार्य किया जा रहा है। अनेक भारतीय पौराणिक ग्रंथों का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। वस्तुत: 'अनुवाद' मानवता एवं विश्वबंधुत्व की स्थापना में अहम् भूमिका का निर्वाह करता है।



**मुख्य शब्द** - अनुवाद, हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य, हिन्दी साहित्यकार


## मूल प्रतिपादन

विश्व साहित्य की संकल्पना में 'अनुवाद' सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। 'अनुवाद' भिन्न-भिन्न संस्ख्रतियों के लोगों के मध्य आपसी संवाद, समझ एवं प्रेम का भाव उत्पन्न करता है। आज विश्व के कोने-कोने में भारतीय मूल के लोग निवास कर रहे हैं। प्रवासी भारतीयों की संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है। प्रवासी भारतीय विश्व के अनेक देशों में महत्वपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक एवं वैज्ञानिक पदों पर कार्य कर रहे हैं। ये प्रवासी भारतीय हिन्दी भाषा, सभ्यता एवं संस्ख्रति के संवाहक हैं। आज विश्व में भारतीय सभ्यता व संस्ख्रति को जानने समझने के लिए हिन्दी भाषा को सीखने की ललक बढ़ गई है, यही कारण है कि अनेक हिन्दी साहित्यिक ख्रतियों एवं पौराणिक ग्रंथों का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है।

अनुवाद को विभिन्न विद्वानों द्वारा परिभाषित किया गया है जैसे -

"एक भाषा की पाठ्य-सामग्री को दूसरी भाषा की समतुल्य पाठ्य-सामग्री द्वारा प्रतिस्थापित करना अनुवाद कहलाता है।"[1] जे.सी.कैट फोर्ड

"भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद है इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के निकटतम (कथनथ: और कथ्यत) समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग। इस प्रकार अनुवाद निकटतम, समतुल्य और सहज प्रति-प्रतीकन प्रक्रिया है।"[2] भोलानाथ तिवारी

"अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सार्थक अनुभव (अर्थपूर्ण संदेश का अर्थ) को एक भाषा-समुदाय से दूसरे भाषा-समुदाय में संप्रेषित किया जाता है।"[3] डी.पी. पट्टनायक

"एक भाषा या भाषा-भेद से दूसरी भाषा या भाषा-भेद में प्रतिपाद्य को स्थानान्तरित करने की प्रक्रिया या उसके परिणाम को अनुवाद कहते हैं।"[4] आर. आर. हार्टमन और स्टार्क

"अनुवाद एक सम्बन्ध का नाम है जो दो या दो से अधिक पाठों के बीच होता है। ये पाठ समान स्थिति में समान कार्य सम्पादित करते हैं। दोनों पाठों का सन्दर्भ समान होता है और उनसे व्यंजित होने वाला संदेश भी समान होता है।"[5] एम.ए. हैलिडे

वस्तुत: अनुवाद के माध्यम से न केवल हम किसी देश के साहित्य, सभ्यता, संस्कृति व परिवेश को जानते व समझते हैं अपितु अनजाने में ही हम स्वयं को एवं स्वदेश को भी तुलनात्मक दृष्टि से बेहतर जान-समझ पाते हैं। इस प्रकार अनुवाद विभिन्न भाषा, साहित्य एवं संस्कृतियों के मध्य समझ पैदा करता है तथा आत्म साक्षात्कार का भी अवसर प्रदान करता है। आज विश्व की अनेक भाषाओं में साहित्य लिखा जा रहा है एवं अनुवाद ही उसकी सर्वत्र और सर्वदा उपलब्धता का आधार है। जब किसी रचना का अनुवाद अनेक भाषाओं में किया जाता है तो उस रचना का प्रभाव भिन्न-भिन्न संस्कृतियों पर भिन्न-भिन्न देखा जा सकता है। इस प्रकार अनुवाद द्वारा किसी रचना की बहुस्वरता और अंतरपाठीयता का विकास होता है।

भारत में सन् 1857 की क्रान्ति ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की चिंगारी को हवा दी। तत्कालीन साहित्यकारों, लेखकों एवं विद्वानों ने विश्व में हो रहे सत्ता परिवर्तन, क्रान्तियों एवं आविष्कारों से भारतीय जनमानस को परिचित कराने हेतु पत्रकारिता एवं अनुवाद का माध्यम अपनाया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने शेक्सपीयर के नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का 'दुर्लभ बंधु' नाम से अनुवाद किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से विभिन्न विषयों के अनुवाद छाप कर भारतीयों को दुनिया भर की जानकारी उपलब्ध कराई। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जोसेफ एडिसन ख्रत 'प्लेजर्स ऑफ इमेजिनेशन' का अनुवाद 'कल्पना का आनंद' नाम से किया एवं एडविन अर्नाल्ड रचित 'लाइट ऑफ एशिया' का अनुवाद 'बुद्ध चरित' नाम से किया तथा हेकेल द्वारा रचित 'दि रिडिल ऑफ द यूनिवर्स' का अनुवाद 'विश्व प्रपंच' नाम से किया। प्रेमचंद ने लियो टॉलस्टॉय की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद किया तथा श्रीधर पाठक ने ओलिवर गोल्डस्मिथ द्वारा रचित 'डेसरटेड विलेज' का 'ऊजड़ ग्राम' तथा 'द हर्मिट' का 'एकांतवासी योगी' नाम से अनुवाद किया। हिन्दी साहित्य के इन बड़े एवं युगान्तकारी रचनाकारों के अनुवाद कार्यों के फलस्वरुप धीरे-धीरे हिन्दी में विश्व साहित्य के अनुवाद की एक समृद्ध परम्परा का र्निमाण हुआ। इस प्रकार अनुवाद हिन्दी साहित्य के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय वातायन बन गया।

आगे के हिन्दी साहित्यकारों ने अनुवाद की परम्परा को विस्तार दिया। हरिवंश राय बच्चन ने रूसी कविताओं एवं शेक्सपीयर के नाटकों का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया। नामवर सिंह ने भी एक 'अनुदित रूसी कविताओं का संकलन' सम्पादित किया है। भीष्म साहनी ने पच्चीस रूसी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। रघुवीर सहाय ने शेक्सपीयर के 'मेकबेथ' को 'बरनम वन' नाम से अनुदित किया। रामधारी सिंह दिनकर ने डी. एच. लारेंस की कविताओं का हिन्दी अनुवाद किया है। निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव, कुंवर नारायण, अमृत मेहता, प्रभात नौटियाल, विष्णु खरे, उदय प्रकाश, अक्षय कुमार दुबे, विष्णु खरे, मुद्रा राक्षस, गंगा प्रसाद विमल, ख्रष्ण कुमार, नीलाभ, सूरज प्रकाश आदि साहित्यकारों ने अनुवाद के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है।

जैसे-जैसे भारतीय मूल के लोगों की विश्व भर में आबादी बढ़ी है वैसे-वैसे हिन्दी भाषा एवं साहित्य की भी पहचान विश्व भर में कायम हुई है। अब तक हिन्दी की अनेक साहित्यिक कृतियों का विभिन्न विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है जैसे पित्रोव ने 'गीता' का रूसी भाषा में अनुवाद किया। बारान्निकोव ने तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' का रूसी भाषा में अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई आदि मध्ययुगीन हिन्दी कवियों की रचनाओं के रूसी भाषा में अनुवाद हुए हैं। प्रेमचंद, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, अमृतलाल नागर, वृंदावनलाल वर्मा, इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र कुमार, भीष्म साहनी,मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, फणीश्वरनाथ रेणु, रांगेय राघव, अमृतराय, उपेंद्रनाथ अश्क की कहानियों के रूसी भाषा में अनुवाद हुए हैं। प्रेमचंद के 'गोदान' और 'कर्मभूमि', रेणु कृत 'मैला आँचल' एवं यशपाल के 'झूठा-सच' तथा 'दिव्या' का भी रूसी भाषा में अनुवाद हो चुका है। निराला, दिनकर,पंत,बच्चन तथा रघुवीर सहाय जैसे आधुनिक हिन्दी कवियों के भी कविता संग्रह रूसी भाषा में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक आधुनिक कवियों की कविताओं का रूसी भाषा में अनुवाद हो चुका है तथा अनेक का अनुवाद कार्य जारी है। जापानी भाषा में भी आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं का अनुवाद विपुल मात्र में हुआ है। डॉ. श्रीमती मारग्रेट गात्वलाफ ने प्रेमचंद,यशपाल, कुलभूषण एवं कृश्णचंद्र की कहानियों का तथा प्रेमचंद के 'निर्मला' एवं भीष्म साहनी के 'बसंती' उपन्यासों का जर्मन भाषा में अनुवाद किया है। श्री सेतान्दवीर ने 'सूरदास कृष्णायन' नाम से दो खण्डों में सूरदास के पदों का जर्मन भाषा में अनुवाद किया है। डॉ. मारियोल्ला ऑफरेदी ने प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास तथा कुंवर नारायण की काव्य रचना 'आत्मजयी' का इतालवी भाषा में अनुवाद किया है तथा डॉ. चेचीलिया कोरिसयो ने फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' का इतालवी भाषा में अनुवाद किया है।

डॉ. अटकिन्स ने 'रामचरितमानस' का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है। भारतीय उपनिषदों का मैक्समूलर ने अंग्रेजी में अनुवाद किया है। चार्ल्स विल्किन्स ने 'गीता' का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है। डॉ. रूपर्ट स्नेल ने अज्ञेय, प्रेमचंद एवं अमृतराय आदि की रचनाओं का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है। प्रो. वेगेल ने प्रेमचंद की कहानियों का डच भाषा में अनुवाद किया है। क्नुत क्रिस्तियानसेन ने प्रेमचंद की कहानियों का नॉर्वेजियन भाषा में अनुवाद किया है। फिनलैण्ड के बर्तिल तिक्कनेन ने क्लोस कातुर्नेन के सहयोग से 'गोदान' का फिनिश भाषा में अनुवाद किया है। शॉपेनहावर ने भारतीय उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया है। श्रीमती शार्लोत वोदवील ने 'रामचरितमानस', 'ढोला-मारू रा दूहा', 'सूरसागर', 'पद्मावत' तथा कबीर की रचनाओं के काव्य-अंशो का फ्रेंच भाषा में अनुवाद तथा विवेचना की है। डॉ. एवा अरादी ने प्रेमचंद तथा आधुनिक हिन्दी कहानीकारों की कहानियों तथा बंगा इमरै ने मीरा के पदों का हंगेरियन भाषा में अनुवाद किया है। प्रेमचंद के 'गोदान' तथा रेणु के 'मैला आँचल' के रोमानियाई भाषा में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। प्रेमचंद के 'गोदान' तथा 'निर्मला' उपन्यासों का बल्गारिया की भाषा में भी अनुवाद हो चुका है। डॉ. ओदोलेन स्मेकल ने प्रेमचंद रचित 'गोदान' तथा राजेंद्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' का चेक भाषा में अनुवाद किया है। प्रेमचंद्र, जैनेंद्र कुमार,फणीष्वरनाथ रेणु,उषा प्रियवंदा, जयशंकर प्रसाद, ख्रष्ण चंद्र, मनु भण्डारी आदि की रचनाओं के पोलिश भाषा में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. मारिया क्षिष्तोफ बृस्की ने लक्ष्मीनारायण लाल और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के नाटकों का पोलिष भाषा में अनुवाद किया है। सूत्कोव्स्का ने कबीर तथा श्री परनोव्स्की ने 'मैला आँचल' का पोलिष भाषा में अनुवाद किया है। प्रो. डॉ. वीनंद कैलवर्त ने हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के कुछ अंशों का डच भाषा और अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है। 'महाभारत', 'रामायण', 'गोदान' एवं 'झांसी की रानी' के अनुवाद उजबेकिस्तान की भाषा में किए गए हैं। श्री चंद्रप्रकाश प्रभाकर 'मौतीरि' ने 'गोदान' सहित अनेक हिन्दी साहित्य की रचनाओं का बर्मी भाषा में अनुवाद किया है। प्रेमचंद की कहानियों एवं उपन्यासों जैसे 'निर्मला', 'गोदान', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'गबन' का अनुवाद चीनी विद्वानों द्वारा किया गया है। प्रो. जिन दिंग हान ने तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस', यशपाल कृत 'झूठा-सच' का चीनी भाषा में अनुवाद किया है। प्रो. यिन होंगे युएन ने वृंदावनलाल वर्मा रचित 'झांसी की रानी' और इलाचंद्र जोशी रचित 'सन्यासी' का अनुवाद चीनी भाषा में किया है। श्री थाङ् रन हू ने जैनेन्द्र रचित 'त्यागपत्र' का चीनी भाषा में अनुवाद किया है। डॉ. चांङ् चुङ् ख्वै द्वारा महादेवी वर्मा, निराला, अज्ञेय, दिनकर, बच्चन, भवानीप्रसाद मिश्र तथा नरेन्द्र शर्मा के काव्यांशों का अनुवाद किया गया है।

## निष्कर्ष

साहित्य के अनुवाद का क्षेत्र व्यापक है। अनेक प्रकार की समस्याओं एवं आक्षेपों के बावजूद विश्व में सभी साहित्यिक भाषाओं के बीच अनुवाद की पुष्ट परम्परा रही है। हिन्दी साहित्य का विश्व की अनेक भाषाओं में तथा विश्व की विभिन्न भाषाओं का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रचुर मात्रा में हुआ है। हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं को विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय भाषा साहित्यों के अनुवादों से नवीन ख्रष्टि प्राप्त हुई है और इससे हिन्दी साहित्यकारों की रचनात्मकता को विस्तृत आयाम मिला है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में संस्कार संक्रमण का महत्वपूर्ण कार्य भी विभिन्न भाषाओं से अनुवादों के कारण ही संभव हो सका है। हिन्दी के आलोचना साहित्य पर तो अनुवाद का बड़ा असर पड़ा है। नाटक और फिल्म के क्षेत्र में भी अनुवाद का वृहद् योगदान है। उपनिवेशी प्रभाव के कारण हिन्दी साहित्य में अंग्रेजी से अनुवाद की प्रमुखता रही है। भारत की रुस से मैत्री सम्बन्ध के कारण रूसी भाषा से भी प्रचुर मात्रा में अनुवाद कार्य हुए हैं। लम्बे समय तक ब्रिटिश उपनिवेश रहने के कारण हमारी आधुनिक सभ्यता अनुदित सभ्यता कहलाती है। भारत में आधुनिकता एवं अनुवाद का विकास एक साथ हुआ है। वैश्वीकरण के दौर में पनप रही वैचारिकी में अनुवाद की महत्वपूर्ण भागीदारी है क्योंकि आज अनुवाद संस्ख्रतियों के मिलन एवं संघर्ष का पर्याय बनता जा रहा है। भूमण्डलीकरण के संदर्भ में अनुवाद आज पश्चिमीकरण, जातीय विविधता, आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण एवं बहु-सांस्ख्रतिकता आदि तत्वों के निर्माण का प्रमुख घटक बन गया है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में इसकी अहम् भूमिका है किन्तु हमें इसके नकारात्मक पक्ष को भी ध्यान में रखना होगा जैसे अनुवाद जिस प्रकार किसी भाषा को समृद्ध कर उसका विकास करता है उसी प्रकार बहुत अधिक अनुवाद लक्ष्य भाषा समाज के भीतरी स्वरूप को भी प्रभावित करता है जिससे उस भाषा साहित्य की आंतरिक बहुआयामी प्रणाली में बदलाव होता है, यहाँ तक कि उस भाषा का ढाँचा और मुहावरा तक बदल जाता है। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हिन्दी भाषा के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है जिसके कारण भारत की सभ्यता एवं संस्कृति पश्चिम की अनूदित बनती चली गई।

## संदर्भ


1. कैटफोर्ड जे.सी., लिंग्विस्टिक थ्योरी ऑफ ट्रांसलेशन एण्ड एस्से इन अप्लाइड लिंग्विस्टिक्स 1965, पृष्ठ 20
2. तिवारी भोलानाथ, अनुवाद विज्ञान, दिल्ली 1972, पृष्ठ 18
3. पट्टनायक डी.पी., लिंग्विस्टिक्स एण्ड ट्रांसलेशन लेख आस्पेक्ट्स ऑफ अप्लाइड लिंग्विस्टिक्स 1968, पृष्ठ 57
4. हार्टमन आर. आर. तथा स्टार्क, एफ.सी. डिक्शनरी ऑफ लैंग्वेज एण्ड लिंग्विस्टिक्स 1972, पृष्ठ 242
5. हैलिडे एम.ए., ट्रांसलेशन द लिंग्विस्टिक साइंस एण्ड लैंग्वेज टीचिंग 1994, पृष्ठ 124

# जनप्रतिनिधियों का राजनीति संस्कृति स्वरूप संबंधी विचार विमर्ष


## डॉ० जितेन्द्र पाटीदार

*शोध प्रारूप, एम.ए. एम.फिल.पीएच.डी., राजनीति विज्ञान, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुरा, जिला, नीमच, म.प्र.*



## सारांष

राजनीति संस्कृति में किसी देश की राजनीतिक प्रणाली के प्रति वहां के लोगों के दृष्टिकोण, विश्वास, लगन तथा मूल्यों में समाहित है और राजनीतिक प्रणाली के संदर्भ में लोगों के राजनीतिक विश्वास भावनाएं और दृष्टिकोण होते हैं, उन्हें सामूहिक रूप में राजनीति विज्ञान का एक महत्वपूर्ण तथा नवीन दृष्टि अनुरूप अनुयाई है। यह मनोविज्ञान और समाजशास्त्र को एकीकृत करने का प्रयास करता है ताकि राजनीतिक विश्लेशण सही प्रयुक्त हो सके और राजनीति शास्त्र के साहित्य में राजनीति व संस्कृति का आगमन 1956 से स्वीकार किया जाता है एवं राजनीति संस्कृति में ऐसे दृष्टिकोण विश्वास, सत्य और कला मिलती है जो संपूर्ण जनसंख्या में प्रचलित है। इसमें वे प्रवृत्तियां और नमूने भी सम्मिलित हैं जो उस जनसंख्या के विभिन्न भागों में अभिव्यक्त हैं और राष्ट्र की राजनीतिक संस्कृति मुख्य रूप से शासकों राजनीतिक संस्थाओं तथा राजनीतिक प्रक्रियाओं की औचित्यपूर्ण को प्रकट करती है और संस्कृति विचारों, मूल्यों और उददेश्यों का समूह है।



**मूल शब्दः** प्रतिनिधि, राजनीति, संस्कृति, स्वरूप, विचारधारा।


## प्रस्तावना

राजनीतिक संस्कृति एक विकासशील व गत्यात्मक अवधारणा है। इसकी प्रकृति परिवर्तनशील तथा विकासोन्मुखी होती है। इसका निर्माण ऐतिहासिक विकास की पृष्ठभूमि में होता है। राजनीति व्यवहार और राजनीतिक संस्कृति का आपस में गहरा संबंध है। इससे व्यक्ति और समूह के राजनीतिक आचरण का बोध होता है। यह प्रगतिशील और समन्वयकारी होने के कारण रूढिवादी समाज की संस्कृति विरासत होती है। यह राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाले दबाव समूह व राजनीतिक दलों की गतिविधियों से भी काफी प्रभावित होती रहती है। इसके उपर कुछ आंतरिक तथा बाह्य शक्तियों का भी प्रभाव पडता है तथा राजनीति, संस्कृति में समयानुसार परिवर्तन, संशोधन, सुधार एवं विकास होता रहता है और राजनीति संस्कृति का विशेष स्वभाव इसकी गतिशीलता है, जडता नहीं। यह एक राजनीतिक संस्कृति कई उपसंस्कृतियों को भी समेटे हुए रखती है। उसको राजनीतिक एकता के प्रतीक देखा जाता है और हम धीरे-धीरे ऐसे स्मृतिहीन समाज में बदलते जा रहे हैं जिसके लिये विकास का मतलब चिकनी चौडी सडकें चमचमाते मॉल और उंची इमारतें भर हैं। हम यह भी सोचने को तैयार नहीं कि यह विकास किन शर्तों पर हो रहा है और अंततः कैसे वह हमें आक्रामक सरोकार विभिन्न व आत्महीन उपभोक्ता समाज में बदलकर छोड दे रहा है। इस समाज में श्रेष्ठता की एकमात्र कसौटी कारोबारी किस्म की सफलता है और आगे बढने की आपाधापी में हर किसी को छल सकने की कुशलता है। यही वजह है कि लडाई चाहे सांप्रदायिक के खिलाफ हो या सामाजिक न्याय के पक्ष में या भ्रष्टाचार के खिलाफ। वह सिर्फ नारों में बदलकर रह जा रहा है। वह धरातल पर न लडा जा रहा है और न उसे लडने का कोई इरादा दिख रहा है। ऐसे विभिन्न समाज जब अपनी मुक्ति की राह खोजते हैं तो वे बस किसी मसीहा का इंतजार करते हैं। दरअसल सबसे पहले उन्हें ही कुचला जाता है। जिन्होंने उनका रास्ता बनाया है इसलिये लोकतंत्र में महापर्व में वासत्विक संस्कृति की अनुपस्थिति का खामियाजा सिर्फ लेखको व संस्कृति कर्मियो को नहीं पूरे समाज को भुगतना पडता है और इसी प्रकार राजनीतिक संस्कृति के मनोविज्ञान और व्यक्तिनिष्ठ पलों की सामूहिक रूप मे अभिव्यक्ति होती है और राजनीतिक संस्कृति समाज की अपेक्षाकृत अधिक मान्यता सांस्कृतिक व्यवस्था के बीच अंतर विश्लेशणात्मक होता है और राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का एक अभिन्न पहलू है इसलिए राजनीति संस्कृति मे व्यक्ति के राजनीतिक विश्वासों को प्रमुखता प्राप्त होती है और व्यक्ति के ऐसे सामान्य विश्वासों को ही समाज की सामान्य संस्कृति कहा जाता है।

## राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा, महत्व

आज का युग लोकतंत्रीय कल्याणकारी राज्यों का युग है। लोकतंत्र का उदारवादी स्वरूप आधुनिक लोकतंत्र की विशेषता एवं सच्चाई है जिससे बचने का जोखिम किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को खतरे में डाल सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि जनता की शासन प्रक्रिया में अधिक से अधिक भागीदारी सुनिश्चित हो और आज जनसंचार के साधनों तथा बदलते विश्व परिवेश ने सभी देशों को इस बात के प्रति आगाह कर दिया है कि वे नागरिक संस्कृति से उदासीन न रहे। अतः इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति में भागीदारी और सहनशीलता का स्तर काफी उंचा होता है। इसमें निर्णयकारी संरचनाएं ही निर्णयों की प्रभावकारिता के लिये उत्तरदायी होती है। इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति न हो तो शासक वर्ग को मनमानी करने की अनुमति देती है और नहीं उस मनमानी को सहन

किया जा सकता है। इस प्रकार की संस्कृति ब्रिटेन तथा अमेरिका में विकसीत हो चुकी है और प्रत्येक देश की राजनीति, संस्कृति अलग अलग प्रकार की होती है। इसका प्रमुख कारण इसके निर्धारक तत्वों में मिलने वाला अंतर होता है। राजनीतिक संस्कृति का सामान्य संस्कृति से भी घनिष्ठ संबंध रहता है। इसी कारण सामान्य संस्कृति के निर्धारक तत्व राजनीतिक संस्कृति को भी प्रभावित करते हैं अर्थात् किसी भी राजनीतिक संस्कृति की जडें इतिहास के अंदर गडी होती है और राजनीतिक व्यवस्था और संस्कृति अतीत से अपना नाता कभी नहीं तोड सकती है और साम्यवादी क्रांतियां भी रूस और चीन में अतीत के अनुभवों को भूला नहीं सकी है। ब्रिटेन में अतीत व आधुनिकता का सुंदर मेल है, वहॉ पर कुलीनतंत्रीय आस्थाओं का लोकतंत्रीय आस्थाओं के साथ हो, सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। वह अन्यत्र दुर्लभ है और औमण्ड ने सभी राजनीतिक संस्कृतियों के मिश्रित होने की बात कही है और उसके पीछे मूल कारण राजनीतिक संस्कृतियों का परंपराओं से जुडे रहने का अस्तित्व है। तत्पश्चात् राजनीतिक विचारधाराऍं भी राजनीतिक संस्कृति को निर्धारित करने वाली होती है। विकासशील देशों में तो विचारधाराओं के अनूकूल राजनीतिक संस्कृति का निर्माण किया जाने लगा। भारत में गांधी जी व नेहरू जी की विचारधारा का भी उतना ही प्रभाव है जितना सुभाश व तिलक की विचारधारा का है। इसी कारण भारत की राजनीतिक संस्कृति में मिश्रितपन पाया जाता है। अत: विचारधारा भी राजनीतिक संस्कृति की प्रमुख निर्धारक तत्व है और राजनीति संस्कृति को स्थिरता प्रदान करती है और आधुनिक समय में राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा राजनीति विज्ञान की महत्वपूर्ण अवधारणा मानी जाती है। राजनीति संस्कृति के आगमन से राजनीतिक सामाजिकरण व राजनीतिक विकास की दिशा व गति का ज्ञान होने लगा है। इसके आगमन से तुलनात्मक अध्ययन में गति आई है और राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति पर ही आधारित होती है। सामान्य संस्कृति, राजनीतिक संस्कृति का प्रमुख नियामक तत्व माना जाता है और राजनीतिक संस्कृति को सामान्य संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता है। सामान्य संस्कृति को ही राजनीतिक संस्कृति का मौलिक तथा स्थाई आधार माना जाता है। विकासशील देशों की राजनीति संस्कृति, सामान्य संस्कृति के लोकिकीकरण से दूर रहने के कारण ही विकसित देशों की राजनीतिक जागरूकता बढाता है और राजनीतिक व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करता है और राजनीतिक संस्कृति में आनुभविक विश्वासों, अभिव्यात्मक प्रतीकों और मूल्यों की वह व्यवस्था निहित है जो उस परिस्थिति अथवा दशा को परिभाशित करती है जिसमें राजनीतिक क्रिया संपन्न होती है और राजनीति संस्कृति को निर्माण समाज की उन अभिव्यक्तियों, विश्वासों तथा मूल्यों के समूह से समायोजित होती है।

## राजनीति संस्कृति का स्वरूप और उपसंस्कृति

सामान्यतया यह धारणा प्रचलित है कि स्थिर और विकसित समाजों में राजनीतिक संस्कृति का स्वरूप होती है। वास्तव मे यह धारणा भ्रांतिपूर्ण है। ऐसे देश में भी विभिन्न गुट पाए जाते हैं जहां एक गुट तथा अन्य गुटों में भेद स्पष्ट उभर आते हैं। वहां राजनीति उपसंस्कृति का मौजूद होना माना जा सकता है। उपसंस्कृति पूर्णतया पृथक अभिकृतियों, विश्वासों तथा मूल्यों का समूह नहीं होती है बल्कि ऐसे दृष्टिकोणों का समूह होती है जिनके कुछ तत्व दूसरी उपसंस्कृतियों में मौजूद रहते हैं। इस तरह भारत में दक्षिण के राज्य विशेषकर तमिलनाडु में तमिल लोगों की यह मान्यता है कि उनकी अपनी पृथक संस्कृति है। इस संस्कृति को उपसंस्कृति कहा जा सकता है और एक ही राजनीति संस्कृति में ऐसी अनेक उपसंस्कृति हो सकती है और वास्तव में अधिकांश राजनीतिक संस्कृतिया विशम रूप में रहती है अर्थात् किसी भी समाज में एक सी राजनीतिक संस्कृति नहीं पाई जाती है और भारत का उदाहरण ले लो तो यह स्पष्ट देखने को मिलेगा कि वहॉ अभिजन वर्ग की संस्कृति आम जनता की संस्कृति से बहुत भिन्नता रखने लगी तत्पश्चात् संविधान का 1976 का 42 वां संशोधन इन दोनों उपसंस्कृतियों के बीच तेजी से बढती हुई दरार को काटने का प्रयत्न किया जा रहा है और विकासशील राज्यों में अनेक राजनीतिक समस्याऍं केवल इस कारण ही उत्पन्न हो रही है कि अभिजन अपनी संस्कृति के अलगपन को बनाए रखना चाहते हैं और ऐलन बाल ने राजनीति संस्कृति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि क्या समाज के सदस्य राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाते हैं और सरकार सक्रियता के बारे में बहुत थोडा जानते हैं और निर्णयकारी प्रक्रिया में भाग लेने की आशा नहीं रखते। इसके अनुसार राजनीतिक संस्कृतियों का वर्गीकरण किया जा सकता है। इनके अनुसार किसी राजनीतिक समाज में विशिष्ट मूल्यों तथा अभिकृतियों पर कितना बल दिया गया है। इसके आधार पर संपूर्ण सांस्कृतिक प्रतिरूप के बारे में जाना जा सकता है और संस्कृतियो को परंपरागतता और आधुनिकता के रूप में भी देखा जाता है। ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति परंपरा तथा आधुनिकता का मिश्रण है और उच्च स्तरीय राजनीतिक सांस्कृतिक संस्कृतियों का अध्ययन जनमत को मापने के आधुनिक तरीकों और सर्वेक्षण शोध की उन्नत तकनीकों का विकास करना होगा।

## निष्कर्ष एवं सुझाव

राजनीति संस्कृति उपागम राजनीतिक व्यवस्था के मनोवैज्ञानिक पहलुओं से संबंध रखता है और राजनीतिक संस्कृति किसी भी समाज की सामान्य संस्कृति का ही अंग होती है परंतु संस्कृति और राजनीति एक दूसरे पर निर्भर होते हुए भी निरंतर एक अंत: कियात्मक संबंध से जुडी रहती है और भारत जैसे देश के संदर्भ में जहॉ पश्चिमी प्रजातंत्र के नमूने पर आधुनिक राजनीतिक प्रणाली को अपनाया गया है जबकि सामाजिक ढॉचा अभी भी परंपरावादी तथा सामंतवादी है। राजनीतिक संस्कृति उपागम अध्ययन का एक महत्वपूर्ण उपागम सिद्ध हुआ है और भारत की राजनीतिक संस्कृति का संरचनात्मक पक्ष विकसित राजनीतिक व्यवस्था के समान है लेकिन व्यावहारिक रूप से परंपरागत तत्व विद्यमान है। भारतीय संसदीय प्रणाली का हम उदाहरण लेते हैं जो सरंचनात्मक रूप से ब्रिटेन की संसदीय व्यवस्था से मिलती है परंतु व्यवहार में भारतीय सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित मिलती है। भारतीय राजनीतिक संस्कृति के परंपरागत तत्वों में संप्रदायवाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद, अलगांववाद आदि सम्मिलित है और राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का एक भाग है जिसमें समाज की विरासतें विद्यमान होती है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


- शर्मा, जयप्रकाश :- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, प्रकाशक हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, सन् 1999 पृ. 22

- पाण्डेय, एस.एन., श्रीकांत :- सांस्कृतिक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रकाशक मेरठ साहित्य भंडार एन. बी. रोड उदयपुर, सन् 1865 पृ. 96
- वर्मा, एस. पी. :- आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत, प्रकाशक, अरेरा हिल्स भोपाल, सन् 1998 पृ. 30
- जे. सी. जोशी :-राजनीतिक समाजशास्त्र, पब्लिकेशन, वी. के. जोहर, नई दिल्ली, सन् 1885 पृ. 100
- जोशी, वाय. एम. :- राजनीतिक समाज के विविध आयाम, प्रकाशक रावत पब्लिकेशन हैदराबाद, सन् 2000 पृ. 28
- अवस्थी, आनंद प्रकाश :- भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, ए. बी. रोड लखनउ, सन् 2006 पृ. 45
- अलतेकर, अनंत सदाशिव :- प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, प्रकाशक वाराणसी, सन् 2005 पृ. 03
- सिंह, योगेंद्र :- भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण, प्रकाशक ए. बी. रोड जयपुर, सन् 1890 पृ. 100

# भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी साहित्य


## डॉ० दिनेश्वर कुमार महतो

*सहायक शिक्षक, उत्क्रमित +2 उच्च विद्यालय, दिगवार, हजारीबाग*



## शोधसारांश

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के लेखक हैं और यह समय भारतीय समाज में सबसे गहरे संक्रमण का साक्षी रहा है। इस दौर में भारतीय समाज में सबसे गहरे संक्रमण का साक्षी रहा है। इस दौर में भारतीय समाज पहली बार अंग्रेजों की संस्कृति से परिचित हुआ और उसके प्रति असमंजस, आकर्षण और विस्मय जैसे भाव को महसूस किया और यही पृष्ठभूमि भारतीय नवजागरण का आधार बनी। भारतेन्दु युग हिंदी नाट्य साहित्य का प्रथम चरण है। यह दौर सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवर्तनों का था। एक वर्ग पाश्चात्य संस्ख्रति का समर्थन कर रहा था तो दूसरा विरोध और अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव बढ़ रहा था। ऐसे में नई मान्यताओं और दृष्टिकोण को सृजनात्मक दिशा देने की आवश्यकता थी। यह कार्य भारतेन्दु ने अपने नाटकों के माध्यम से किया है। भारतेन्दु के नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ जनसामान्य को जागृत करना तथा उनमें आत्मविश्वास जगाना था। भारतेन्दु युगीन नाटकों में प्राचीन-नवीन शैलियों का सामंजस्य दिखाई देता है।



**विषय सूचक पदावली :** भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हिंदी साहित्य, भारतीय समाज, जन जागरूकता, सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक परिवर्तन।


भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य के ऐसे अमर कलाकार हैं, जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व में भारतीय अतीत का गौरव, वर्तमान की पीड़ाएँ और भविष्य के स्वप्न अन्तर्निहित है, तत्कालीन समाज अवनति के कगार पर खड़ा था। एक ओर अंग्रेजी शासन में भ्रष्टाचार, अलगावाद, प्रान्तीयता और भेदभाव की भावना को बल दिया जा रहा था तो दूसरी ओर भारतीय जनमानस की गुलाम मानसिकता, अंधविश्वास, पाखंडो व आडम्बरों के कारण नैतिक और आध्यात्मिक अवनति भी निरंतर हो रही थी। इन्हीं परिस्थितियों की चोटों से भारतेन्दु के अंदर का साहित्यकार उभरा और जीवन, समाज, राष्ट्र, साहित्य, भाषा के विस्तृत संदर्भ में विकसित हुआ।

"भारतेन्दु एक ऐसे महाप्राण साहित्यकार थे, जिन्होंने अपने बहुमुखी सृजन द्वारा न केवल साहित्य के भण्डार में विपुल अभिवृद्धि की, बल्कि अपने स्निग्ध और मंजुल प्रकाश से उसे नयी राहों की ओर प्रेरित भी किया। मात्र 34 वर्ष की अल्पायु में उन्होंने 175 छोटे-बड़े ग्रंथों का प्रणयन कर अपनी अभूतपूर्व सृजनशीलता का परिचय दिया है। लेकिन इससे भी बड़ा कार्य, जो उनके द्वारा सम्पन्न हुआ, वह था सहयोगी साहित्यकारों का एक विराट संगठन जिसके माध्यम से जनजागरण की ज्योतिशिखा प्रज्वलित कर उन्होंने सचमुच 'जीवन और साहित्य के बीच गाँठ बाँध दी।'[1] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी नाटक की विकास यात्रा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाटककार रहे हैं और उनकी दृष्टि में नाटक की सार्थकता मंचित होने में ही है। भारतेन्दु का उद्देश्य पढ़े-लिखे लोगों पर प्रभाव पैदा करना नहीं था बल्कि गरीब और निरक्षर जनसाधरण को नवजागरण की चेतना से जोड़ना था। इस उद्देश्य की पूर्ति उन्हीं नाटकों से हो सकती थी जो जनता के बीच सरलतापूर्वक व सफलतापूर्वक खेले जा सकें, न कि पाठ्य नाटकों से। यही कारण है कि वे सिद्धांतत: भी और व्यवहारत: भी अपने नाटकों के मंचन से जुड़े रहे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'अंधेर नगरी' नाटक 1881 ई. में लिखा तथा उसी वर्ष इसका मंचन किया। इन्होंने अपने नाटक संबंधी विचारों को 'नाटक' नामक निबंध में लिपिबद्ध किया है जिससे हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना का सूत्रपात होता है। अनेक देशी-विदेशी ग्रंथों का अध्ययन करके, प्राचीन और नवीन नाट्य कलाओं का सम्मिश्रण करके भारतेन्दु ने नाटक संबंधी विचारों को प्रतिपादित किया। उन्होंने नाट्य विषयों का विस्तार किया और नाटक को राष्ट्रीय उत्थान व सामाजिक संस्कार का माध्यम बनाया। जीवन के यथार्थ को नाटकों में अंकित करने के कारण उन्हें नाटक में यथार्थवाद का जन्मदाता माना जाता है। इस दृष्टि से 'अंधेर नगरी' उनकी नाट्य दृष्टि का सफल प्रतिपादन करते हैं। भारतेन्दु ने हिन्दी में 'प्रहसन' लिखने का सूत्रपात किया और अपने प्रयासों से प्रहसन कला को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। इन्होंने प्रहसन द्वारा भारत में व्याप्त अशिक्षा, सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, पाखंडों इत्यादि पर करारा व्यंग्य किया है।

भाषा के क्षेत्र में भी भारतेन्दु ने सराहनीय कार्य किया। भारतेन्दु ने पद्य में ब्रज तथा गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग किया। वास्तविक आधुनिक हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा इन्हीं के द्वारा हुई। इन्होंने पारंपरिक काव्य भाषा को दुरूह तथा दुर्बोध शब्दावली से मुक्त कर सरल एवं सहज शब्दों का प्रयोग व लोकप्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा की सौन्दर्य वृद्धि कर कविता की प्रभावोत्पादकता को बढ़ाया। इससे कविता साहित्य जनसाधरण तक पहुँचा। एक तरफ इन्होंने उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया तो दूसरी तरफ तत्सम, तद्भव शब्दों का प्रयोग कर राजा शिवप्रसाद तथा राजा लक्ष्मण सिंह के भाषिक प्रयोगों का सामंजस्य किया।

भारतेन्दु ने अपनी संपादन-कला से पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण आयाम जोड़े। 'बालाबोधिनी', 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका'

आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन करके साहित्य के संदेशों को जन-जन तक पहुँचाया। भारतेन्दु ने अपनी पत्रिकाओं में साहित्येतर विषयों तथा समस्याओं पर विचार किया। शिक्षा, व्यवसाय, अकाल, महामारी, परतंत्रता की पीड़ा, उद्योग आदि अनेक समस्याओं पर उन्होंने खुलकर विचार व्यक्त किए। उन्होंने स्वदेशी भावना को पुष्ट करने के लिए अनेक अपीले भी प्रकाशित की। वे सच कहने या लिखने का साहस करने वाले लोगों की प्रशंसा करके उन्हें सत्य मार्ग पर अटल रहने का प्रोत्साहन देते रहे। व्यापक पाठक समुदाय तैयार करने के लिए भारतेन्दु ने समाज के सभी वर्गों के वैचारिक तथा भाषिक स्तर को ध्यान में रखा। इन्होंने हिन्दी गद्य के पठन-पाठन की आदत विकसित की।

यह कहना कतई गलत न होगा कि उन्नसवीं सदी के हिन्दी समाज का लोकवृत भारतेन्दु के इर्द-गिर्द ही गढ़ा जा रहा था। रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु युग नामक अपनी पुस्तक में लिखा है- "जिसका घर साहित्यकारों के सम्मेलन का सभाभवन हो, जिसने अपने चारों तरफ बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, श्रीनिवासदास काशिनाथ आदि लेखकों का व्यूह रचाया हो जिसने 'कविवचन-सुधा' से लेकर 'सारसुधा निधि' तक पचीसों अखबारों और पत्रों से हिन्दी में नयी हलचल मचा दी हो और स्वयं नाटक, निबंध, कविताएँ, व्याख्यान, मुकरियाँ आदि से अपने युग को चमत्कृत करके 36 साल की अवस्था में ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी हो - दरअसल उसका जीवन कहानी न होगा तो किसका होगा?[2]

आलोचकों की नजर में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का दूसरा सबसे बड़ा योगदान हिन्दी भाषा को नई चाल में ढालने का माना जाता है। उनसे पहले हिंदी भाषा में दो तरह के 'स्कूल' चलते थे। एक राजा लक्ष्मण सिंह की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी और दूसरा राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' की फारसीनिष्ठ शैली का। दोनों ही शैलियाँ अपनी अति को छू रही थीं। एक हिन्दी भाषा में संस्ख्रत के शब्दों को चुन-चुनकर डाल रही थी तो दूसरा फारसी के शब्दों को। हरिश्चन्द्र बाबू ने इन दोनों प्रवृत्तियों का मिलन कराया। उन्होंने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में 1873 से हिन्दी की नई भाषा को गढ़ना शुरू किया। इसके लिए उन्होंने खड़ी बोली का आवरण लेकर उसमें उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया। वहीं तत्सम और उससे निकले तद्भव शब्दों को भी पर्याप्त महत्व दिया। इसके साथ ही उन्होंने कठिन और अबूझ शब्दों का प्रयोग वर्जित कर दिया। भाषा के इस रूप को हिन्दुस्तानी शैली कहा गया, जिसे बाद में प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों ने आगे और परिष्कृत किया। हालांकि कविता में वे खड़ी बोली के बजाय ब्रज का ही इस्तेमाल करते रहे।

हरिश्चन्द्र बाबू का व्यक्तित्व और ख्रतित्व बहुआयामी था। उन्होंने आधुनिक हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विद्याओं में योगदान दिया विशेषकर गद्य साहित्य में। आधुनिक हिन्दी साहित्य के सभी विद्याओं के बीज इनकी रचनाओं में मिल जाते हैं। इन्होंने अपने को किसी एक विद्या तक सीमित नहीं रखा था। वे 'कुछ आपबीती, कुछ जगबीती' नामक उपन्यास भी लिख रखे थें, लेकिन असमय निधन से वे यह काम पूरा न कर सके, ऐसी अद्वितीय प्रतिभा दुर्भाग्य से अपने जीवन के चौथे दशक में 6 जनवरी, 1885 को दुनिया से कूच कर गई।

## संदर्भ संकेत

1. सुकवि-समीक्षा-केसरी कुमार, पृ. 117
2. शर्मा रामविलास : 'भारतेन्दु युग', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ. 169

# वर्तमान समय में ई-गवर्नेंस के माध्यम से ग्रामीण परिवेश का चहुमुखी विकास 'एक अध्ययन'


## डॉ. कविता अग्रवाल

*प्राध्यापक, राजनीति विभाग, शासकीय कमलाराजा कन्या स्नातकोत्तर, स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर ( म.प्र. )*

## चन्दना शर्मा

*शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर ( म.प्र. )*



### शोध-सार

किसी विषय के संबंध में विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि एकत्रित तथ्यों (Data) को सुव्यवस्थित करके उनका विश्लेषण एवं व्याख्या की जाए। तथ्यों के विश्लेशण और व्याख्या के बिना अनुसंधान या शोध कार्य अपूर्ण तथा अधूरा माना जाएगा। पी.वी. यंग ने वैज्ञानिक विश्लेषण को शोध का रचनात्मक पक्ष (The Creative aspect of research) कहा है, क्योंकि शोधकर्ता कोई भी प्रयोग सिद्ध परिणाम निकालने के लिए संकलित तथ्यों की सावधानीपूर्वक जांच करता है। साथ ही, तथ्यों का विश्लेषण करने के दौरान ही वह अपनी पुरानी अवधारणाओं (Conceptions) की परीक्षा तथा नवीन व चुनौती देने वाली अवधारणाओं को ढूंढ़ निकालने में सफल होसकता है।

विश्लेषण द्वारा विषय के संबंध में जो अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है, उससे अवधारकों की पुनर्परीक्षा करता है। अत: पुराने सिद्धांतों या नियमों की परीक्षाकरने नवीन सिद्धांतों या नियमों को प्रतिपादित करने या पुराने सिद्धांतों या नियमों को गलत प्रमाणति करने के लिए एकत्रित तथ्यों का विश्लेशण व व्याख्या आवश्यक है।

समाज के वातावरण से प्राप्त अनुभव अनसंधानकर्ता को अनुसंधान समस्या के प्रतिपादन में सहायता करते हैं। सरकार की प्राथमिकताएं ज्यादातर जिन संवेदनशील विषयों को लेकर होती है, उन विषयों का चयन भी अनुसंधानकर्ता करता है। जो सरकार को संवेदनशील विषय व घटनाओं के प्रति जाग्रत करता है। सामाजिक विज्ञान से संबंधित कई सिद्धांत जो अत्यंत महत्वपूर्ण व प्रख्यात हैं। वे भी कई प्रकार से शोध समस्या के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। अनुसंधानकर्ता की कल्पना व तर्कशक्ति भी महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त कुछ अवलोकित सामाजिक घटनाएं भी सामाजिक शोध समस्या के निर्माण में सहायक सिद्ध होती हैं।

वर्तमान समय में शोध को व्यवहारिक बनाने के लिये ई-गवर्नेंस की अधिक प्रासंगिकता एवं प्रचुरता है, जिसमें शोध के विभिन्न क्षेत्रों का विकासात्मक और विश्लेषणत्मक पक्ष को ई-गवर्नेंस के माध्यम से लोकयुकत बनाया जाता है जिसमें समाज की संस्कृति, विकास और शोध इन सबका आपस में समन्वय रहता है।


### शोध प्रपत्र

ग्रामीण भारत में नई खोज और नई तकनीक के जरिए तस्वीर बदल रही है। इस बदलाव में गाँव के लोग खुले मन से सहयोग कर रहे हैं। वहीं केन्द्र एवं राज्य सरकारों की ओर से भी नई-नई तकनीक के जरिए गांवों को हाईटेक सुविधाओं से लैस किया जा रहा है। गाँवों में तरक्की की नई राह साफतौर पर दिखाई पड़ रही है। पेश है सरकारी स्तर पर होने वाली नई खोज एवं नई तकनीक के असर हैं।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में हर दिन एक नई खोज हो रही है। नई तकनीक के जरिए ग्रामीण भारत तरक्की की राह पर अग्रसर है। सरकार की ओर से भी इस दिशा में निरंतर प्रयास किया जा रहा है। सभी के संयुक्त प्रयास से जहाँ तकनीकी विकास हो रहा है वहीं ग्रामीणों की नई खोज को दिखा भी मिल रही है। इब इस बात की जरूरत महसूस की जा रही है कि कृषि कार्य में लगे अधिकांश को उच्चतर उत्पादकता वाले गैर-कृषि व्यवसायों में लगाने की योजना बनानी चाहिए।[1] भारत में 1.25 बिलियन नागरिकों को आज अपने भविष्य के बारे में पहले से कहीं अधिक उम्मीदें हैं। ऐसी स्थिति में कृषि एवं ग्रामीण विकास सहित विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ रही तकनीक को गति देने की जरूरत है। स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल तथा स्वच्छता संबंधी कार्यक्रमों में भी खोज किए जाने की जरूरत है। हालांकि इन क्षेत्रों में लगातार नई-नई तकनीक अपनाई जा रही है। जिसकी वजह से ग्रामीण भारत की तस्वीर बदलती नजरआ रही है। फिर भी इस प्रयास को और तेज करने की जरूरत शिद्धत से महसूस की जा रही है। केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें ग्रामीण भारत में अपनाई जा रही नई तकनीक में संसाधन उपलब्ध कराएं तो इसे चार चांद लग सकते हैं।

वर्तमान समय में ई-गवर्नेंस का प्रयोग शोध के क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, स्वच्छता, विद्युत क्षेत्र में तकनीकी विकास और भूमि अभिलेखों का आधुनिकीकरण इन सबका संबंध ई-गवर्नेंस से है।

## शिक्षा एवं ई-गवर्नेंस

भारत के ग्रामीण इलाके में अब आधुनिक तकनीक से शिक्षा प्रदान की जा रही है। कम्प्युटर के साथ ही प्रोजेक्ट के जरिए शिक्षा दी जा रही है। यह एक तरह से ग्रामीण भारत में शिक्षा के क्षेत्र में नई खोज है। इस तरह भारत के शैक्षिक विकास को देखें तो शहर से लेकर गांव तथा शिक्षा का विकास हो रहा है।[2] पहले जहाँ चार-छह गांवों के बीच एक प्राथमिक विद्यालय होता था वहीं अब हर गांव व मजरे में विद्यालय स्थित हैं। सर्व शिक्षा अभियान (एसएएस) से हम प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य के नजदीक हैं तथा शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीआई) 2009 सभी बच्चों के लिए आठ साल की प्राथमिक शिक्षा का मूल अधिकार प्रदान करता है।

मध्याह्न भोजन स्कीम से यह सुनिश्चित हुआ है कि बच्चों की स्कूल मे उपस्थिति बढ़ी है। तमिलनाडु में सफलता पूर्वक प्रयोग की गई नई एवं नवीन पहलों जैसे कि मल्टीग्रेड शिक्षण को पूरे देश में अपनाए जाने की तैयारी है।

ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा को प्रगतिशील बनानेके लिए ई-गवर्नेंस का बहुत बड़ा महत्व है जिससे गांव का प्रत्येक विद्यार्थी शिक्षित होकर राष्ट्र एवं समाज की रक्षा कर सके।

## स्वास्थ्य के क्षेत्र में ई-गवर्नेंस का महत्व

वास्तव में स्वास्थ्य मानव क्षमता का दूसरा महत्वपूर्ण आयाम है। ग्रामीण इलाके में स्वास्थ्य सुविधा के क्षेत्र में भी काफी महत्वपूर्ण बदलाव आया है। पहले जहाँ तमाम बीमारियों से सैकड़ों लोग दम तोड़ देते थे वहीं भारत में हेपेटाइटिस का टीकाकरण किया जा रहा है। एड्स, टी.वी. जैसे रोगों का इलाज किया जा रहा है। गंभीर बीमारियों का आपरेशन ग्रामीण इलके के अस्पतालों में भी होता है। लेजर तकनीक से आपरेशन करके मरीजों की जान बचाई जा रही है।

करीब 10 साल पहले तक भारत में जिन रोगों को लाइलाज समझा जाता था। अब उनका इलाज ग्रामीण इलाके में स्थित सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर आसानी से हो रहा है। ग्रमीण इलाके के सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र अल्ट्रासाउंड एक्सरे के साथ ही विभिन्न प्रकार से पैथोलॉजिकल जांच से भीसुसज्जित नजर आ रहे हैं। ऐसे में मरीजों को इलाज के लिए बड़े शहरों में भागदौड़ नहीं करनी पड़ रही है बल्कि वे ग्रामीण इलाके में आसानी से इलाज करा ले रहे हैं। यह एक तरह का बडा बदलाव है।

ई-गवर्नेंस स्वास्थ्य के क्षेत्र में अपना विशिष्टि योगदान दे रहा है जिससे ग्रामीण क्षेत्र में लोगों को स्वच्छता, स्वास्थ्य और पर्यावरण के प्रति जागरूक हो रहे हैं।

## विद्युत क्षेत्र और ई-गवर्नेंस

शहर से लेकर गाँव तक बिजली सबसे महत्वपूर्ण है, लेकिन अब इसके विकल्प के रूप में सौर ऊर्जा को अपनाया जा रहा है। देश की पहली मेगा सोलर पॉवर परियोजना का रास्ता साफ हो गया है। 4,000 मेगावाट क्षमता की यह परियोजना राजस्थान में जयपुर के पास लगाई जाएगी। इसे सरकारी क्षेत्र की छह प्रमुख कंपनियों भेल, पावर ग्रिड, सोलर एनर्जी कारपोरशन, सतलुज जल विद्युत निगम, हिन्दुस्तान साल्ट्स और राजस्थान इलेक्ट्रॉनिक्स मिलकर लगा रही है।[3] इसके लिए समझौता ज्ञापन (एमआयू) पर हस्ताखर किए गए। इस प्रोजेक्ट के बाद ऐसी अन्य सोलर पॉवर परियोजनाएं लगाने का काम भी जल्द शुरू होगा। परियोजना के पहले चरण में एक हजार मेगावाट बिजली का उत्पादन किया जाएगा जो वर्ष 2017 तक शुरू हो जाएगा।

## भूमि अभिलेखों का आधुनिकीकरण एवं ई-गवर्नेंस

भूमि अभिलेखों के आधुनिकीकरण की वजह से भारत के किसानों की एक बड़ी समस्या का समाधान हुआ है। भूमि के अधिकारों के असंदिग्ध अभिलेख कानूनी दृष्टि से मजबूत उच्च खेत उपज में निवेश की नींव है। दूसरी ओर अराजकतापूर्ण भूमि प्रबंधन के परिणामस्वरूप छोटे-मोटे अतिक्रमण और व्यर्थ मुकद्मेबाजी होती है, जिसकी बड़ी कीमत गरीबों को चुकानी होती है। ई-गवर्नेंस के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि अभिलेखों का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। जिसके माध्यम से किसानों को नई व्यवस्थाओं से परिचय कराया जाता है और भारत सरकार की नई नीतियाँ भी उससे आगे जुड़ जाती हैं।

## ई-गवर्नेंस एवं संचार

ग्रामीण भारत में संचार के क्षेत्र में भी काफी महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। संचार के क्षेत्र में नई तकनीक आने की वजह से ही अब कच्चे घरों में भी मोबाइल घंटियाँ बज रही हैं।[4] 12वीं पंचवर्षीय योजना में इसे हाइटेक तकनीक से सुदृढ़ीकरण करने की योजना बनाई गई है। इसके तहत 2017 तक 1200 मिलियन कनेक्शन का प्रावधान किया गया है। वर्ष 2017 तक 175 मिलियन का ब्राडबैंड कनेक्शन लगाया जाएगा। इसके साथ ही राष्ट्रीय ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क से गांवों को सुसज्जित किया जा रहा है।

## डाक विभाग एवं ई-गवर्नेंस का सम्बन्ध

भारतीय डाक विभाग को प्रौद्योगिकी चलित विभाग के रूप में रूपांतरित किया जा रहा है। इसने डाक विभाग का कायाकल्प कर दिया है और डाक विभाग के अब राष्ट्र में प्रौद्योगिकी चालित विभाग के रूप में जाना जाता है। इसके लिए सरकार ने आईटी आधुनिकीकरण परियोजना मंजूर की है जिस पर कुल 4,909

करोड़ रूपये परिव्यय हो रहे हैं। इस विशिष्ट परियोजना के तहत देश में फैले सभी 1,55,000 डाकघरों को नेटवर्क से जोड़ दिया जाएगा। डाकघर बचत बैंक का कोर बैंकिंग किया जाएगा। आईटी आधुनिकीकरण परियोजना होने की आशा है। डाकघर के सभी विभागों को कोर बैंकिंग सोल्यूशन (सीबीएस) की सुविधा भी दी जा रही है। परियोजना के तहत डाकघर के बचत बैंक (पीओएसबी) के लिए एटीएम बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, फोन

बैंकिंग, राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक निधि ट्रांसफर (एनईएफटी) एवं रियल टाइम ग्रोस सेटलमैंअ (आरटीजीएस) सेवाओं की शुरूआत की है। इस तहत मेल नेटवर्क ऑपटिमाइजेशन परियोजना (एमएनओपी) के भाग के रूप में डाक के वितरण के नेटवर्क का पुनर्गठन किया गया है और इसकी प्रक्रिया को फिर से डिजाइन किया गया है।

## किसानों की फसल की जानकारी, ई-गवर्नेंस के द्वारा

किसानों की फसलों को बचाने के लिए नई खोज की गई है। फसल लेने के बाद फसल की देखभाल, परिवहन तथा भण्डारण की पर्याप्त सुविधाएं उपलब्धन होने के कारण लगभग 30 से 40 फीसदी फल तथा सब्जियाँ खराब हो जाते हैं। ऐसे में प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के क्षेत्र में निवेशकों को आकर्षित करने के लिए निरंतर नीतियां बनाना अनिवार्य हैं। इसी के तहत सरकार की ओर से कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीईडीए) के सहयोग से आवश्यक तकनीकी तथा वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जा रही है। एपीईडीए ने जल्दी खराब होने वाले खाद्य उत्पादों का निर्यात बढ़ाने के लिए कई कदम उठाए हैं।[5]

## संदर्भ सूची


1. जोशी हेमंत, ग्रामीण क्षेत्रों में जारी है प्रौद्योगिकी का नवप्रवर्तन, पृ.3
2. मलिक सिंह, जगपाल, अत्याधुनिक तकनीकों का ग्रामीण विकास में योगदान, पृ.8
3. यादव नारायण अमित, नई खोज एवं तकनीकी में सरकारी पहल, पृ.13
4. द्विवेदी कल्पना, डिजिटल प्रौद्योगिकी के जरिए ग्रामीण विकास, पृ.17
5. नारायण सूरज एवं रावत सुधीर, कॉल सेंटर : किसानों का सच्चा साथी, पृ.21

# सरोज स्मृति पर सम्यक् दृष्टि


## डॉ० हरिश्चन्द्र अग्रहरि

*अतिथि विद्वान ( हिन्दी ), शासकीय महाविद्यालय, जैतवारा, सतना ( म.प्र. )*


सरस्वती के वरद पुत्र महा प्राण निराला जी का जन्म वसन्त पंचमी 1895 में और उनका अवसान 1961 में हुआ। छायावाद की बृहदत्रयी के सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला मानवतावाद के प्रतिष्ठापक महाकवि है। निराला यथार्थ में मानव जीवन की संकीर्णताओं का विरोध करके मानव को पूर्ण मुक्त करना चाहते थे। उनका जीवन और सृजनात्मक शक्ति जीवन की लघु सीमा में बंधे क्षुद्र भावों को लेकर इस पृथ्वी पर प्रेम का प्रशस्त मार्ग प्रस्तुत करता है। निराला को समाज की सारी दीनता, हीनता और दुर्बलता से साहनुभूति है। पराधीन राष्ट्र, विदेशी उत्पीड़न, महान शोषण, देशी एवं विदेशी लोगों के बीच चलते हुए संघर्ष से निराला जी अछूते नहीं थे। निराला अतीत को स्वर्णिम समझते है। निराला अपने साहित्य के माध्यम से वर्तमान पराधीनता के अपमान को भूलने के लिए अतीत के स्वर्ण युग का सहारा लेते है और वर्तमान की हार का उत्तर अतीत की जीत से देते है। वे अतीत के पुनुरूत्थान से देश को एक जातीय, मानवीय तथा राष्ट्रीय पुनुरूत्थान की भावना से अनुप्राणित कर देते है। उनके प्रमुख काव्य संग्रहों में अनामिका, परिमल, तुलसीदास, नये पत्ते, कुकुरमुत्ता, आराधान, सान्धकाकली, गीतकुंज, अणिमा, बेला, आदि-आदि है जिनमें निराला जी के विविध आयामों का चित्रण है। निराला का संवेदनशील कवि आरम्भ से ही पीड़ित, शोषित समाज को अपनी सहानुभूति देता रहा है क्योंकि वे स्वयं शोषण व्यवस्था के शिकार है। भिक्षुक और विधवा कविता निराला के इन्ही विकसित संवेदनों का परिचय देते है। उनकी लम्बी कवितायें महाकाव्यात्मक स्वरूप लिये है। कुकुरमुत्ता, राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास और सरोज स्मृति इनमें छायावादी कविता के युगान्त और प्रगतिवाद के उन्मेष का उदय भाव है।

**सरोज स्मृति** निराला के जीवन की बड़ी टूटन का दस्तावेज है। इस कविता में उनके व्यक्गित व्यक्तित्व-जीवन के चित्र उभरते है। अपनी प्रिय पत्नी से उनका अनुराग, बेटी सरोज से उनका ममत्व और अपने उन अनुभवों का चित्रण इस कविता में है। उनके कविता लेखन, सम्पादकों द्वारा प्रकाशन से मनाही। उनकी अपनी यांत्रिक पीड़ा, कुण्डली में लिखे दो विवाह, पुत्री द्वारा कुण्डली को फाड़ देना, बेटी सरोज के विवाह का प्रश्न, अपनी ही जाति के लोगों से उनका वितृष्णा भाव, शादी में दहेज प्रथा के विरोधी, पंडितों द्वारा विवाह के मंत्र न पढ़ने पर स्वयं ही बेटी विवाह में विवाह मंत्र पढ़ना, बेटी सरोज के सौन्दर्य का, उसके ज्ञान का चित्रण करना, और उसके महा मरण पर उनका विकल होना, और सम्पूण्र जीवन में दु:ख की आवृत्ति का स्मरण में आना उनके जीवन पर जो ब्रजपात हुए उन सबकी कहानी सरोज स्मृति में दिखलाई देती है।

सरोज स्मृति हिन्दी कविता में शोक गीतिकी के रूप में सृजित है। इस रचना का आरम्भ और समापन सरोज के स्मरण और देहावसान के स्मरण से है। इस कविता में निराला के उस व्यक्तित्व का दर्शन होता है जिसमें वे कर्मण्ड या धनार्जन में अक्षम नही थे। वे सरस्वती को बेचकर पैसे का अर्जन नही करना चाहते थे। एक रचनाकार की माँ सरस्वती के प्रति इससे अच्छी और धारणा क्या हो सकती है। वे अपनी बेटी को सब कुछ देना चाहते थे लेकिन उसे कुछ न दे पाने का भाव अर्थात् उनकी अन्तरंग पीड़ा इस कविता में दिखलाई देती है-

*धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,*
*कुछ भी तेरे हित न कर सका।*[1]

निराला की इस सरोज स्मृति कविता को हिन्दी के विद्वानों ने शोक गीत की श्रेणी में रखा है। परन्तु प्रसिद्ध विद्वान ए. अरविन्द्राक्षन ने इसे शोक गीत को पार कर जाने वाली रचना कहा है। 'निराला ने शोक को यानी अपने दु:ख को मानवीय संघर्ष के साथ जोड़ा है। इसीलिए यह एक शोक गीत नही है। सरोज स्मृति व्यथा की अभिव्यक्ति है और व्यथा के यथार्थ की भी अभिव्यक्ति। इसीलिए यह कविता निराला के दु:ख की स्मृतिगाथा भी है और संघर्ष की इतिहास गाथा भी।'[2] इस कविता में स्मृति चित्रों के आंकलन और प्रस्तुतिकरण में निराला जी के आत्मसंघर्ष को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनके जीवन की घटित त्रासद् घटनाएँ तो है ही इसमें पत्नी की मृत्यु और बेटी का नानी के यहाँ चले जाना। इसमें पति और पिता का भी संघर्ष भी है। निराला जी सरोज को जीवित कविता मानते है। बेटी की मृत्यु को काव्य का विषय बनाकर निराला जी ने अपनी व्यथा जो तीव्र उल्लेख किया है वह इन पंक्तियों में स्पष्ट उभरा हुआ दिखता है-

*जीवित कविते, शत-शर-जर्जर*
*छोड़कर पिता को पृथ्वी पर*

*तू गई स्वर्ग-क्या यह विचार-*
*जब पिता करेंगे मार्ग पार*
*यह अक्षम अति, तब में सक्षम*
*तारूँगी कर गह दुतर तम*[3]

जिस तरह निराला ने कविता को छंद से मुक्ति दिलाई उसी तरह उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन में रूढ़ियों से संघर्ष किया और ऐसे ब्राहम्णों की खिल्ली उड़ाई जो ब्रहाम्ण के नाम पर कंलक है, कुल के अंगार है। उन्होंने प्रथाओं का भी खूब विरोध किया। जीवन का महासमर वे लगातार भले हारते रहे हो लेकिन उनकी कविता पीढ़ी-दर-पीढ़ियों को एक स्वच्छ ईमानदार रचनाकार के रूप में प्रेरणा देती रहेगी। व्यथा के ताप का विस्तार कविता को मनुष्यधर्मी बना देता है। सरोज स्मृति कविता में यह भाव बार-बार उभरकर सामने आता है।

सरोज स्मृति में निराला के व्यक्तित्व के अनगढ़पन और विसंगतियों का जितनी सम्पूर्णता से प्रतिफलन हुआ है उतनी सम्पूर्णता अन्य किसी रचना में नही। सरोज स्मृति अपनी संवेदनात्मकता के कारण अन्य रचनाओं से बहुत आगे है। निराला यदि सरोज के मरण को महामरण की संज्ञा देते है तो वे उसे ज्योति, शरण, तरण की संज्ञा भी देती है। उन्होंने सरोज के व्यक्तित्व को जिस ढंग से उभारा है वह अन्यत्र दुर्लभ है। अपने सामाजिक परिवेश का निराला जी ने जिस ढंग से विरोध करते हुए पुत्री सरोज का विवाह किया और खुद मंत्र पढ़े उससे बहुत से सामाजिक विधान अपने आप टूट गये। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि इन विधानों को तोड़ने के दौरान वे भी कही न कहीं टूटे अवश्य है।

*हो गया ब्याह, आत्मीय स्वजन*
*कोई थे नहीं, न आमंत्रण*
*था भेजा गया, विवाह-राग*
*भर रहा न घर निशि-दिवस-जाग।*
ऊ ऊ ऊ
*माँ की कुल शिक्षा मैनें दी,*
*पुष्प-सेज तेरी स्वयं रची,*
*सोचा मन में, 'वह शकुंतला*
*पर पाठ अन्य यह, अन्य कला।*[4]

निश्चित रूप से यह वृत्ति निराला की अपनी विद्रोही प्रकृति की थी क्योकि उन्हें समाज की घिनौनी रूढ़ियों से बेहद चिढ़ थी। निराला जी ने इस कविता में जो बिड़म्बनायें और विसंगतियाँ चित्रित की है वे कविता की संघटना को मार्मिक अर्थवान और सम्पूर्ण बनाती है। निराला ने इस कविता के माध्यम से इस समाज को एक और भी बहुत ही अच्छी सीख दी है जो विषमताओं में भी दूसरों का अन्न छीनता है वह मनुष्य नही है।

*क्षीण का न छीना कभी अन्न,*
*मै लख न सका वे दृग विपन्न*
*अपने आंसुओं अत: बिम्बित*
*देखे है अपने ही मुख-चित।*[5]

यह उनकी अनन्य साहित्य साधना का भाव ही है जिसमें वे स्वार्थो को अपने पास कमजोरी रूप में नही रख पाये। वे भले ही खिन्न मन और खोय मन की क्षुद्रता बोध में डूबे रहे हो लेकिन उन्होंने किसी को भी विक्षुब्ध नही किया। वे जीवन भर असमर्थ और अभावग्रस्त बने रहे लेकिन आत्मसम्मान और तेजस्वता से विमुख नही हुए। सरोज स्मृति में उनकी दीनता गौरव को ही दर्शाती है। सरोज स्मृति कविता की छोटी सी दुनियां में कवि के भीतर और बाहर की कई छोटी-बड़ी दुनियायें भरी हुई है। सरोज स्मृति कविता में सम्यक् दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि यहाँ वाल्यकाल की स्मृति और तत्कालीन संपादकों के प्रति व्यंग्य, रूढ़ियों का विरोध, तटस्थता की पराकाष्ठा, विनोद व्यंग्य, व्यक्तित्व की पूरी छलक साफ-साफ दिखलाई देती है जिसमें निराला का अजेय और ओजस्व व्यक्तित्व सृजन के माध्यम से छांकता है।

इस कविता में अन्य वियोग-गीतों की भांति केवल भावाकुलता एवं भावोच्छ्वास ही व्यक्त नही हुए है, अपितु कवि ने तत्कालीन समाज पर भी करारा व्यंग्य करते हुए अपनी क्रान्तिकारी भावना को व्यक्त किया है। 'इस कविता में कवि की स्वतंत्र आत्मा अपनी गरिमा एवं महिमा से मंडित है और रचना कौशल एवं प्रबन्ध सौष्ठव भी प्रभावोत्पादक है।'[6] निराला का अपना जीवन आर्थिक अभावों से गुजरा था। अत: उनका दीनों के प्रति सहानुभूति का भाव सहज ही था। 'वैसे यदि वे चाहते तो अपने मानव-मूल्यों से गिरकर अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकते थे, किन्तु इसके लिए उन्हें उनकी मानववादी चेतना ने रोका।'[7]

## संदर्भ सूची

1. अपरा, निराला, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1984
2. निराला एक पुर्नमूल्यांकन, संपादक डॉ. ए. अरविन्द्राक्षन, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा, 2006
3. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, 1977
4. छायावाद की वृहद्त्रयी में मानववादी चेतना का स्वरूप, डॉ. शरद कुमार मिश्र, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005

**(Footnotes)**

1. अपरा, निराला, पृ. 147
2. निराला एक पुर्नमूल्यांकन, संपादक डॉ. ए. अरविन्द्राक्षन, पृ. 117
3. अपरा, निराला, पृ. 146
4. अपरा, निराला, पृ. 157
5. अपरा, निराला, पृ. 147, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1984
6. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ. 224
7. छायावाद की वृहद्त्रयी में मानववादी चेतना का स्वरूप, डॉ. शरद कुमार मिश्र, पृ. 155

# हवेली संगीत एवं पंडित जसराज का अंतः संबंध


## स्नेहा कुमारी

*शोध छात्रा, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, ति. मां. भा. वि. वि., भागलपुर*


हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में 'हवेली संगीत' को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'हवेली' फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ भव्य एवं सुख सुविधा की ख़ष्टि से बना हुआ सुंदर निवास स्थान होता है। पुष्टिमार्गीय संप्रदाय के लोग मंदिरों को हवेली की संज्ञा देते हैं। महाराष्ट्र एवं मध्य प्रदेश आदि क्षेत्रों में भी मंदिरों को हवेली कहा जाता है।

हवेली संगीत सच्चे अर्थों में भक्ति संगीत था। जिसका उद्देश्य प्रेय के द्वारा श्रेय की प्राप्ति करना था। भक्ति संगीत के यह पद और कीर्तन हीं हमारे शास्त्रीय संगीत के ध्रुवपद - धमार जैसी गायन शैलियों के मूल स्त्रोत हैं। लक्ष्मी नारायण गर्ग जी के शब्दों में भक्ति परक पद या विष्णु पद शास्त्रीय संगीत के ध्रुवपद - धमार पद्धति के जनक हैं।[1]

सदियों से संगीत ने दो केंद्रों के माध्यम से अपने आप को कायम रखा है। इसमें पहला नाम अगर राज दरबार का आता है, तो दूसरा नाम निश्चित तौर पर मंदिरों का ही आता है। सामान्यत: लोग भजन एवं कीर्तन को एक ही मान लेते हैं। क्योंकि दोनों का संबंध भक्ति संगीत से है। परंतु जब संगीत की ख़ष्टि से इसकी गहराई को जानने की कोशिश की जाती है तो दोनों में अंतर पाया जाता है। वैष्णव संप्रदाय में भजन एवं कीर्तन दोनों को महत्व प्रदान किया गया है, परंतु दोनों के क्षेत्र अलग-अलग हैं। भजन के ताल - लय आदि बहुत ही सरल होते हैं। जिसे सुनकर लोग स्वं ही उसे गाने लगते हैं। परंतु वैष्णव संप्रदाय में जिन कीर्तनों का समावेश किया जाता है। वह ध्रुवपद शैली का उच्च कोटि का संगीत होता है। जिसकी ख़तियां चौताल में निबद्ध होती हैं।

संवत 1602 में पुष्टिमार्गीय संगीत या हवेली संगीत की परंपरा महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठल दास जी के समय प्रसिद्धि की ओर अग्रसर हुआ। इन्होंने श्री कृष्ण को सर्वस्व मानकर स्वयं को उनके चरणों में समर्पित कर दिया। विट्ठल स्वामी जी ने अपने तथा अपने पिता के क्रमश: 4-4 सबसे योग्य एवं प्रतिभावान शिष्यों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की। इनके नाम हैं :-

1. कुंभन दास - संवत 1525 से 1640
2. सूरदास -संवत् 1535 से 1640
3. परमानंद दास -संवत 1550 से 1641
4. ख़ष्ण दास - संवत 1553 से 1636
5. गोविंद स्वामी - संवत 1562 से 1642
6. नंददास -संवत 1570 से 1640
7. स्वामी- संवत् 1573 से 1642
8. चतुर्भुज दास- संवत 1575 से 1642

जब हम इतिहास के पन्नों में हवेली संगीत की गहराई को ढूंढने का प्रयास करते हैं तो हमें इसका प्रमाण वैदिक संगीत में भी प्राप्त होता है, परंतु बाद के समय में हमारे देष भारत ने अनेकों विदेशी आक्रमणों को झेला। इनविदेशी आक्रमणों ने भारत की प्राचीनशास्त्रीय कला एवं संस्कृति को झकझोर कर रख दिया। तो हम यह निश्चित तौर पर कह सकते हैं, कि इसका प्रभाव हवेली संगीत पर भी पड़ा। लेकिन इस उथल - पुथल की परिस्थिति में पुष्टिमार्गीय संप्रदाय के ने अपने धर्म का प्रचार प्रसार करने हेतु राधा-ख़ष्ण की लीलाओं पर आधारित अत्यंत भावमय एवं रसमय कीर्तनों के गायन का सहारा लिया। जिससे एक ओर जहाँ ख़ष्ण भक्ति की धारा प्रवाहित हुई, वहीं दूसरी तरफ संगीत के सुर एवं ताल में निबद्ध विष्णुपद और कीर्तनों का विकास हुआ। ये सभी पद ख़ष्ण लीलाओं पर आधारित था। संगीत को साक्षात ईश्वर का पर्याय माना जाने लगा। आध्यात्मिकउद्गारों के प्रकटीकरण को माध्यम मानकर संगीत की उपासना भी की गई।

पूर्व से लेकर पश्चिम तक वर्तमान में या अतीत में, संगीत का संबंध सदैव धर्म और आध्यात्मिकता से रहा है। उत्तर प्रदेश में तुलसी, राजस्थान में मीरा, बंगाल में चौतन्य, उड़ीसा में जयदेव, महाराष्ट्र में समर्थ रामदास, गुजरात में नरसी भक्त आदि भक्तों ने अपने कीर्तनओं से समस्त भारत देश को भक्ति- विभोर कर दिया था।[2]

धार्मिक संगीत, शास्त्रीय संगीत या विशुद्ध कलात्मक संगीत दिव्य माने जाते हैं तथा पूर्ण रूप से अध्यात्मिक प्राप्ति को समर्पित है। निम्नलिखित ष्लोक के माध्यम से इस तथ्य की अभिव्यक्ति और भी स्पष्ट ढंग से हो जाती है :-

*''वीणा वादन तत्वज्ञः श्रुति जाति विषरतः।*
*तालज्ञष्चाप्रयासेन मोक्षमार्ग नियाच्छिति।।*
*(यदि धर्म प्रकरण, श्लोक - 5)*[3]

पुष्टिमार्गीय संप्रदाय के अंतर्गत सेवा के दो क्रम है- नित्य सेवा एवं वर्षोत्सव सेवा। जहाँ प्रातः काल से शयन पर्यंत सेवाक्रम को नित्य सेवा कहते हैं, जिसमें मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, रत्थापन, भोग संध्या- आरती एवं शयन के समय है। प्रातः काल बालकृष्ण को शयन लगाया जाता है। इसे मंगला की झांकी कहते हैं। इसमें जागरण, खण्डिता - भाव अनुराग और दधि- मंथन के पद गए जाते हैं। इसके बाद सिंगार की झांकी होती है। जिसमें भगवान को वस्त्र आभूषण धारण कराए जाते हैं। इस समय बाल छवि, बाल क्रीड़ा और वेशभूषा के पद गाए जाते हैं। ग्वाल- बाल सहित क्रीड़ा और वेशभूषा के पद गाए जाते हैं। ग्वाल- बाल सहित क्रीड़ा की झांकी को 'ग्वाल' कहते हैं। इसमें गोचारण, गोदोहन, माखनचोरी, चौहान, चकचोरी आदि के पद गाए जाते हैं। दोपहर के बाद शयन से उठने के दर्शन को उत्थापन की झांकी कहते हैं। इसमें वनलीला, गोटेरन आदि के पद गए जाते हैं। इसके बाद भोग की झांकी होती है। जिसमें मुरली- माधुरी, रूप माधुर, गाय - गोप और गोपियों से संबंधित पर गाए जाते हैं। इसमें वात्सल्य भाव से यशोदा का ख्रष्ण को बुलाना, कृश्ण का वन से वापस लौटना, गोदोहन आदि के पद पाए जाते हैं। अंत में रात्रि को शयनझांकी होती है, जिसमें अनुराग, गोपीभाव, निकुंज लीला आदि के पदों का गायन होता है।[4]

वर्तमान समय में ख्याल गायकी के क्षेत्र में पंडित जसराज एक ऐसे कलाकार हैं, जिन्हें अनेकों मंदिरों आदि में अपने स्वरों से भगवान की पूजा अर्चना करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पंडित जी को धर्म एवं अध्यात्म से बहुत लगाव है। बचपन से हीं पं. जी पूजा अर्चना आदि किया करते थे। पंडित जी का 1946 ईस्वी में भगवान श्री ख्रष्ण की भक्ति की ओर झुकाव उत्पन्न हुआ। उनके अनुसार 1946 ईस्वी में उन्होंने एक सपना देखा। जिसमें बाल ख्रष्ण भगवान दरबार लगाकर बैठे हैं बड़े-बड़े कलाकार भी उस सभा में उपस्थित हैं। जैसे उस्ताद फैयाज खान, उस्ताद बड़े गुलाम अली खां आदि। परंतु भगवान श्री ख्रष्ण ने सब कलाकारों की तरफ उंगली दिखाने की मुद्रा में कहा जसराज जो तुम गाते हो वह मुझ तक जल्दी पहुंचता है। पूजा-पाठ नैवेद्य इनका है, उन्होंने बाकी सब की ओर इशारा करके कहा। तुम तो गाओ।[5]

इसके पश्चात् पुनः दो-तीन दिन बाद पंडित जी ने स्वप्न में भगवान श्री ख्रष्ण को देखा। वे जसराज से कह रहे हैं। तुम परेशान क्यों होते हो। मैं तुम्हारे साथ ही रहता हूँ।इस घटना के बाद पंडित जी का विश्वास उनके प्रति इतना पक्का हो गया, कि वह प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर का निवास मानने लगे। यही कारण है कि वे अपने हर कार्यक्रम का आरंभ 'ओम श्री अनंत हरिनारायण ' से करने लगे एवं अपने श्रोताओं को प्रणाम करते कार्यक्रम को प्रारंभ करने लगे।

पंडित जसराज के पिता मोतीराम जी वल्लभाचार्य जी की 16 वीं पीढ़ी के वंषज श्री श्याम मनोहर गोस्वामी जी के मंदिर में गायन हेतु जाया करते थे। वहाँ वे अष्टपदी गाते थे, जो उड़िया कवि जयदेव की रचना गीत गोविंद में समाहित है। इसी परंपरा को निभाते हुए पंडित जसराज जी श्याम मनोहर गोस्वामी के निकट आए एवं इन्हें भी हवेली संगीत को जानने समझने का मौका मिला। पंडित जसराज को 1977 ईस्वी में पूर्व पंचशती के अवसर पर श्रीमती रवि प्रभा वर्मन तथा श्री विजय वर्मन ने हवेली संगीत से इनका परिचय करवाया। इस अवसर पर पंडित जी को इन्होंने हवेली संगीत गाने की सलाह दी एवं पंडित जी ने श्री श्याम मनोहर गोस्वामी जी से हवेली संगीत के विभिन्न आयामों को समझा। प्रथमेश जी इनके साथ पखावज बजाने आए तथा अन्य कलाकारों ने इन्हें कीर्तन सुनाया एवं सिखाया। पंडित जी ने सूरदास के विभिन्न पदों का अध्ययन कर उसे सीखा।

इसके पश्चात् पंडित जी ने सूर पदावली भी सीखी। 'पंडित जसराज कहते हैं, कि श्री श्याम मनोहर गोस्वामी तथा अन्य कीर्तन कारों ने जब इन रचनाओं को खोल कर उनके विभिन्न आयामों से उनका परिचय करवाय, तब उन्हें पता चला कि यह शास्त्र कितना गहन है, और अब तक उनका परिचय न होने से वह शास्त्रीय संगीत के मूल मंत्र से ही वंचित रहे थे'।[6]

पंडित जसराज का मानना है, कि वह पहले भी स्पष्ट गाते थे। परंतु हवेली संगीत को जानने के पष्चात् उन्होंने 'सास- ननद मेरी जनम की बैरिन' आदि से हटकर बंदिशों का चयन करना प्रारंभ कर दिया। हवेली संगीत ने अपना प्रभाव विभिन्न घरानों के कलाकारों डाला है। जैसे आगरा घराने के जाने-माने कलाकार इनायत खान ने हवेली संगीत से प्रभावित होकर कुछ बंदिशों का निर्माण किया। जो श्रोताओं द्वारा बहुत ही ज्यादा पसंद की गई।

1980 के दशक के अंत में एवं 1990 के दशक के प्रारंभ में पंडित जसराज ने अनुराग सीरीज में अष्टछाप कवियों के पदों को गाया। जिसमें अनुराग, ख्र ष्णा अनुराग तथा शिव अनुराग आदि सम्मिलित है। अनुराग को हवेली संगीत की परंपरा के अंतर्गत रखा गया है। इसके बाद 2001 ईस्वी में पंडित जसराज की हवेली संगीत नामक एल्बम सार्वजनिक की गई। इस एल्बम में पंडित जी के साथ पखावज पर भवानी शंकर जी द्वारा संगति की गई है। तथा हारमोनियम मुकुंद पेटकर जीने बजाया है। वायलिन पर संगति कलाराम नाथ द्वारा की गई है। गायन में पंडित जसराज के साथ तृप्ति मुखर्जी एवं सुमन घोष सहयोग कर रहे हैं। इस कैसेट में पंडित जी ने सर्वप्रथम 'चिंतन संतन आहा तारो ' भजन का गायन करते हैं। इसके पश्चात् 6 मिनट 3 सेकंड 'ओम नमो नारायण' का गायन किया गया है। इसके पश्चात् 8 मिनट 57 सेकंड 'हो चरण पथ की छैंया' हवेली संगीत गाया गया है। 25 मिनट 11 सेकंड 'घटा भरा देहु लखुनी तव देहु' हवेली संगीत को गाया गया है। हवेली संगीत एल्बम के द्वितीय संस्करण को जुलाई 2006 ईस्वी में सार्वजनिक किया गया है। इसमें परमानंद स्वामी रचित 'मीठे हरि जु को बोलना' सर्वप्रथम गाया गया है। इसके बाद ख्रष्ण दास रचित 'लाल गोपाल गुलाल हमारा 'तत्पश्चात् 'बृजे बसंतम' एवं अंत में वल्लभाचार्य रचित 'नवनीत चोरण' गाया गया है। इस प्रकार हम यह समझ सकते हैं, कि पं. जी की गायकी से हवेली संगीत का कितना गहरा और मजबूत संबंध है।

## संदर्भ ग्रन्थ सूचि

1. संगीत मणि - डॉ. महारानी शर्मा, श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ - 101

2. धार्मिक परंपराएँ एवं हिंदुस्तानी संगीत, रेनू सचदेव, राधा पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या - 42
3. संगीत एवं धार्मिक परंपरा एक अवलोकन, डॉ. भारती शर्मा, संजय प्रकाशन दिल्ली
4. सूर साहित्य में संगीत प्रवाह, डॉ. राजीव वर्मा, अमर ग्रंथ पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 86 - 87
5. रसराज पंडित जसराज, सुनीता बुद्धिराजा, वाणी प्रकाषन, पृष्ठ संख्या - 439
6. रसराज पंडित जसराज, सुनीता बुद्धिराजा, वाणी प्रकाषन, पृष्ठ संख्या - 443

# छात्राध्यापकों के संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन


## प्रज्ञा सिंह

*एम0एड्0, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर*



## संक्षिप्त सारांश

शिक्षा ही वस्तुतः किसी राष्ट्र की प्रगति का मानदण्ड है। कोई भी राष्ट्र अपने दक्ष मानवीय संसाधनों द्वारा समूह बनता है। शिक्षा व्यक्ति के सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है जो उसे अपने जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करती है। शिक्षा मानव सभ्यता की सर्वाधिक मूल्यवान धरोहर है। समस्त विश्व को एक सूत्र में पिरोने तथा मनुष्य और मनुष्य के बीच सद्भाव की स्थापना में शिक्षा की बड़ी-बड़ी भूमिका है जिसे नकारा नहीं जा सकता है। किसी भी क्रिया की तरह शिक्षा भी तथा व्यवहार दोनों का संश्लेस है। वास्ताविक अनुभवों की प्रक्रिया में हमारे सम्मुख अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इनके समाधान का पहला पक्ष होता है इस पर विचार करना तथा दूसरा पक्ष है उपयुक्त सिद्धान्तों का निर्माण करना। शिक्षा के विभिन्न पक्षों का तादात्म्य जीवन के इन्हीं आधारभूत प्रश्नों के समाधान खोजने का प्रयत्न करता है।



**मुख्य शब्दः** संवेगात्मक बुद्धि, मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, ब्त् मूल्य इत्यादि।


## प्रस्तावना

शिक्षक वास्तव में बच्चों के भविष्य को आकार देते है। अतः हमारे राष्ट्र के भविष्य का निर्माण भी करते हैं। इस नैक योगदान के कारण ही भारत में शिक्षक समाज बहुत सम्मानित होता है, और प्राचीन विद्वा नही प्राचीन समाज में शिक्षक बनते थे। विद्यार्थियों को निर्धारित ज्ञान, कौशल और नैतिक मूल्य प्रदान करने के लिऐ समाज शिक्षक या गुरुओं को उनके जरुरत की सभी चीजें प्रदान करता था। अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, महत्ती, पदास्थापन, सेवाशत्तों और शिक्षकों के अधिकारों की स्थिति वैसी नहीं है जैसी होनी चाहिये और इसके परिणामस्वरुप शिक्षकों की गुणवत्ता और उत्साह वांछित मानकों को प्राप्त नही कर पाता है शिक्षकों के लिये उच्चतर दर्जा उनके प्रति आदर और सम्मान के भाव को पुर्नजीवित करना होगा ताकि शिक्षण व्यवसाय में बेहतर लोगों को शामिल करने हेतु उन्हें प्ररित किया जा सके। हमारे छात्रों और हमारे राष्ट्र के लिये सर्वोत्तम सम्भव भविष्य सुनिश्चित करने के लिये शिक्षकों की प्रेरणा और सशक्तीकरण की आवश्यकता है।

शिक्षक और समुदाय के बीच सम्बन्ध बने और वह अपने समुदाय से जुड़ा रहे जिससे विद्यार्थियों को रोल मॉडल और शैक्षिक वातावरण मिल सके, इसे सुनिश्चित करने के लिये अत्यधिक शिक्षको के स्थानीय की हानिकारक व्यवस्था को रोकनी होगी। विषय के विशेषज्ञ शिक्षको को ज्यादा से ज्यादा अवसर प्रदान किया जाय। ऐसी स्थिति में शिक्षक का वैवाहिक जीवन भी प्रभावित होता है। जिसमें संवेगात्मक बुद्धि, समायोजन में सहायक होती है और मूल्य उसे संतुलित रहने में सहायक होते हैं। यही आधार प्रस्तुत अध्यापक हेतु शोधकर्त्ता को जिज्ञासित किये ।

## अध्ययन के औचित्य

अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता समस्त शिक्षा व्यवस्था की रीढ़ है। अध्यापक जितने कुशल तथा सुयोग्य होगे, शिक्षा व्यवस्था भी उतनी ही उत्तम होगी। शिक्षा की व्यापक परिधि के अन्तर्गत शोधकर्त्ता का मूल विषय शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे छात्राध्यापकों से सम्बन्धित है जो बी0एड्0 पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे है। सभी अध्यापक जन्मजात कुशल नहीं होते अतः शिक्षण में दक्षता तथा पूर्णता के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् बड़े पैमाने पर कुशल और योग्य शिक्षकों की कमी को पूरा करने के लिए अध्यापक शिक्षा संस्थान स्थापित किए गये हैं। जहाँ भावी शिक्षकों का निर्माण किया जाता है।

स्वायत्त शिक्षा संस्था के रुप में अध्यापक शिक्षा का नियमन राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा किया जा रहा है। यह संस्था प्रारम्भ में राष्ट्रीय शैक्षिक विकास और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के अधीन कार्य कर रही थी। किन्तु अब यह भारत सरकार का स्वायत्त निकाय है जिसकी स्थापना राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् अधिनियम (1993) के अन्तर्गत 17 अगस्त, 1995 में की गयी थी। इसका उत्तरदायित्व भारतीय शिक्षा प्रणाली के मानक, प्रक्रियाएँ एवं धाराओं की स्थापना और निरीक्षण करना है। विभिन्न विषयों के शिक्षण में विवाहित तथा अविवाहित छात्राध्यापकों की मनोवृत्ति में क्या अन्तर आता है, यह एक रोचक विषय रहा है। आमतौर पर यह माना जाता है कि विवाहोपरान्त व्यक्ति अधिक जिम्मेदार, व्यवहार कुशल तथा परिपक्व बनता है। इस दृष्टि से क्या विवाहित तथा अविवाहित अध्यापकों के शिक्षण व्यवहार में कोई स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है? भारतीय परंपरा में विवाह को वर्णित सोलह संस्कारों में स्थान दिया गया है। जिसके पश्चात् व्यक्ति गृहस्थआश्रम में प्रविष्ट होता है तथा वह अपने घरेलू तथा नागरिक, सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करने की ओर प्रवृत्त होता है। विभिन्न शिक्षण विषयों के सन्दर्भ में इस दृष्टि से उसमें कौन-कौन सी प्रमुख व्यवहारगत विशेषताएँ उत्पन्न होती है तथा उसके कक्षा-शिक्षण व्यवहार में अविवाहित अध्यापकों की तुलना में क्या सार्थक अन्तर उपस्थित है शोध के विषय के रुप में यह अध्यापन बहुत प्रासंगिक तथा समीयोज है।

## साहित्यावलोकन

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से अनुसंधानकर्त्ता को अपने क्षेत्र के सीमानिर्धारण करने में सहायता मिलती है।, उसे अन्य व्यक्तियों द्वारा किये गये कार्य से पूर्ण परिचय हो जाता है तथा वह अपने शोध के उद्देश्यों को पूर्णरुपेण स्पष्ट व्यक्त कर सकता है। शोधार्थी पहले से ही सम्पन्न शोध कार्यों को दोहराने से बच सकता है तथा अपने अनुसंधान की योजना बनाने के लिए आवश्यक अर्न्तदृष्टि भी मिलती है।

सम्बन्धित साहित्य के मुख्य स्रोतों में लेखक अपने कार्य को सीधे ही पुस्तकों शोध विषयक लेखों, शोध पत्रो, अपने अनुसंधानकार्य आदि के माध्यम से प्रतिवेदित करता है । प्रत्येक शोध की संरचना शोध को वह ढाचा होती है जिस पर समस्त अनुसंधान आधारित होता है। सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण को पूर्व मान्यता यह है कि हर अनुसंधान कुछ पूर्व धारणाओ तथा पूर्व शोधों आदि से सम्बन्धित होता है । अत: पूर्व अनुसंधानो के सर्वेक्षण से हमें भावी अनुसंधान में सहायता मिलती है ।

प्रस्तुत शोध की समीक्षा शिक्षण के सन्दर्भ में सवेंगात्मक बुद्धि छात्रो के समायोजन तथा मूल्यों आदि विभिन्न पक्षों पर केन्द्रित है। इससे सम्बन्धित क्षेत्रों में विविध प्रकार के अनेकानेक अध्ययन हुए है। प्रस्तुत सर्वेक्षण इन्ही अध्ययनों का सारांश प्रस्तुत करता है । प्रस्तुत अध्ययन के लिए शोधकर्त्ता ने अनेक स्रोतों से सूचना एकत्र की है। जिसके आधार पर प्रस्तुत सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा वर्णित है।

**शर्मा व अन्य ( 2019 ):** ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में मूल्य निर्णय क्षमता का अध्ययन में पाया कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में नैतिक व सामाजिक मूल्य निर्णय उच्च पायी गयी जबकि शैक्षिक राष्ट्रीय व आर्थिक मूल्य निर्णय क्षमता अपेक्षाकृत कम पायी गयी। बालकों व बालिकाओं में नैतिक मूल्य निर्णय क्षमता समान पायी गयी अर्थात् उनमें सार्थक अन्तर नही है, अत: शून्य परिकल्पना स्वीकार की गयी। बालिकाओं में सामाजिक मूल्य निर्णय क्षमता बालकों से अधिक पायी गयी अर्थात् सार्थक अन्तर है, अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी। बालकों व बालिकाओं में शैक्षिक मूल्य निर्णय क्षमता समान पायी गयी अर्थात् सार्थक अन्तर नहीं हैं। अत: शून्य परिकल्पना स्वीकार की गयी। बालकों व बालिकाओं में राष्ट्रीय मूल्य निर्णय क्षमता समान पायी गयी अर्थात् उसमें सार्थक अन्तर नहीं है; अत: शून्य परिकल्पना स्वीकार की गयी। बालकों में आर्थिक मूल्य निर्णय क्षमता बालिकाओं की अपेक्षा अधिक पायी गयी अर्थात् बालिकाओं की अपेक्षा अधिक पायी गयी अर्थात् उनमें सार्थक अन्तर है; अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी।

**यादव, कमलेश ( 2020 ):** ने अपने अध्ययन में विकलांग बच्चों के व्यक्तित्व-समायोजन में उनके माता-पिता एवं अभिभावकों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका हैं। इसलिए अभिभावकों को अपने विकलांग बच्चों के व्यक्तित्व के चहुँमुखी विकास हेतु विशेष प्रयास करना चाहिए। इसके लिए इन बच्चों का संवेगात्मक विकास, शिक्षा, रोजगार एवं सामाजिक विकास की आवश्यकताओं को समझकर आवश्यक कौशलों का विकास करना अनिवार्य हैं। विकलांग बच्चों को शिक्षा एवं पुर्नवास के लिए बने कानूनों एवं अधिकारी की सफलता अभिभावकों की जागरूकता पर निर्भर करती हैं। अत: अभिभावकों का यह उत्तरदायित्व है कि अपने विकलांग बच्चे के आवश्यकताओं को समझें और उन्हें अपने व्यक्तित्व का विकास करने में उनकी सहायता करे ताकि वे कुशल एवं आत्मनिर्भर नागरिक की भाँति समायोजित जीवन व्यतीत करते हुए राष्ट्र को अपना अधिकतम योगदान दे सकें।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण करने के पश्चात् उसे सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता होती है। क्योंकि बिना सुव्यवस्थित किये उस साहित्य सर्वेक्षण का कोई महत्व नहीं होता है। और न ही उससे कोई लाभ प्राप्त होगा। अत: साहित्य को व्यवस्थित करना एक कला है। अत: हर सर्वेक्षण की एक स्पष्ट व्यवस्था होनी चाहिए। प्रत्येक सर्वेक्षण प्रकरण का ऐतिहासिक विकास देता है, एवं इसका हाल का स्तर एक साक्ष्य प्रस्तुत करते है तथा यह दिखलाते है कि किस प्रकार प्रस्तावित अध्ययन विचारणीय विषय है तथा किस प्रकार दूसरे पहलू को समझने में सहायता करेगा यद्यपि कोई भी विषय सभी दृष्टिकोण से सर्वोत्तम नहीं होता है। सर्वेक्षण हमेशा चयनात्मक, सुव्यवस्थित तथा समस्या से स्पष्ट रुप से सम्बन्धित होना चाहिए।

अत: सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण किसी अनुसंधानकर्त्ता की वास्तविक योजना तथा उसके बाद कार्यान्वयन का एक महत्वपूर्ण पूर्वाक्षेपित वस्तु है। सम्बन्धित साहित्य पूर्व के अनुसंधान के लेखों का सारांश प्रस्तुत करता है। प्रभावशाली अनुसंधान अतीत के ज्ञान पर निर्भर होता है। यह पुनरावृत्ति को समाप्त करता है। अध्ययनों के उदाहरणों द्वारा जो काफी सहमति दर्शाते हैं तथा विपरीत निष्कर्ष भी होते है। यह अनुसंधान हेतु एक पृष्ठिभूमि प्रदान करता है। व्यवस्थिति सर्वेक्षण वर्तमान ज्ञान को तेज करने और समझ को परिभाषित करने में सहायता करता है। यह क्षेत्र में अध्ययनों के विषय में सूचना प्राप्त करने में सहायता करता है। अनावश्यक आवृत्ति से रक्षा करता है। अनुसंधान को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने में मार्गदर्शन करता है।

गोलमैन (2020);

1. आत्म जागरुकता- निर्णयों को निर्देशित करने के लिये आंत की भावनाओं का उपयोग करते हुए किसी की भावनाओं को पढ़ने और उनके प्रभाव को पहचानने की क्षमता।
2. स्व प्रबन्धन- इसमें किसी की भावनाओं और आवेगों को नियंत्रित करना और बदलती परिस्थितियों के अनुकूल होना शामिल है।
3. सामाजिक जागरुकता- सामाजिक नेटवर्क को समझते हुये दूसरे की भावनाओं को समझने, समझाने और प्रतिक्रिया करने की क्षमता।
4. समय प्रबन्धन- समय का प्रबन्धन करते हुए, दुसरों को प्रेरित करने, प्रभावित करने और विकसित करने की क्षमता।

याटेस, जे0 एम0 (2021); "ने "द रिलेशनशिप बिटवीन इमोशनल इंटेलीजेन्स एण्ड हेल्थ हैबिट्स ऑफ हेल्थ एजूकेशनल स्टेडेण्ट्स" पर अध्ययन किया। पुरुषों एवं महिलाओं के संवेगाात्मक बुद्धि और स्वास्थ्य आदतों के बीच सम्बन्ध को ज्ञात करने के लिए संवेगात्मक लब्धि सूची, संवेगात्मक बुद्धि सर्वे (इ0आई0पी0एस0) तथा स्वास्थ्य आदत सर्वे (एच0एच0एस0) का प्रयोग किया गया। परिणाम यह दर्शाता है कि स्वास्थ्य शिक्षा आयु में, स्वास्थ्य आदतों तथा संवेगात्मक बुद्धि में सम्बन्ध होता है।"

क्लेन्स डी0आर0 एण्ड वेयरमैन (2021); "ने उसे छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि तथा आन्तरिक व्यक्तिगत दक्षता के मूल्यांकन के लिए एक अध्ययन किया जिनका नामांकन 'आन्तरिक व्यक्तिगत व्यवहार द्वारा संवेगात्मक बुद्धि तथा आन्तरिक व्यक्तिगत दक्षता को बढ़ाना' नामक पाठ्यक्रम में था जो ट्वेण्टी जार्जिया स्टेट यूनिवर्सिटी के "द साइकोलॉजी ऑफ इण्टरपर्सनल बिहैवियर" में अण्डर ग्रेजुएट के लिए नामांकित थे। परीक्षण के लिए उसने बार-आन का ई0क्यू0-आई तथा आन्तरिक व्यक्तिगत दक्षता प्रश्नावली (आई0सी0क्यू0) का प्रयोग पाठ्यक्रम के शुरुवात और अन्त में किया। तुलना के लिए नियंत्रित समूह के 9 व्यक्तियों

ने ई0क्यू0आई को तथा 6 व्यक्तियों ने आई0सी0क्यू0 को पूरा किया। परिणाम स्वरुप पाया गया कि इण्टरपर्सनल बिहैवियर कोर्स का संवेगात्मक बुद्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जबकि प्रयोग पर आई0सी0क्यू0 स्कोर में पूर्व परीक्षण की तुलना में बाद के परीक्षण में सुधार हुआ।"

एस0आर0हेनिंग (2021); "ने "द रिलेशनशिप बिटवीन सोसियल एण्ड इमोशनल इंटेलीजेंस इन चिल्ड्रेन" पर अध्ययन किया। इस अध्ययन का उद्देश्य बच्चों में सामाजिक और संवेगात्मक बुद्धि के बीच सम्बन्ध का मापन करना था प्रयोज्यों की आयु 9–12 वर्ष तथा संख्या 59 थी। छात्रों ने सामाजिक दक्षता के मापन हेतु सोसियल स्किल्स रेटिंग सिस्टम्स स्टेडेन्ट्स (एस0एस0आर0एस0) तथा ई0क्यू0–आई0 का यूथ संस्करण को पूरा किया। अभिभावकों ने एस0एस0आर0एस0एस0 के अभिभावक संस्करण को पूरा किया परिणाम स्वरुप पाया गया कि–ई0आई0क्यू0 का यूथ संस्करण का एस0एस0आर0एस0 के स्टूडेन्ट संस्करण में उच्च सहसम्बन्ध (0.73) था और अभिभावक संस्करण के साथ सहसम्बन्ध (0.59) था।"

मेयर पी.डी. (2021); "भावनात्मक बुद्धि की शोध आधारित अवधारणा की जांच करता है। इस अध्याय में चर्चा किये गये विषयों में निम्नलिखित शामिल है। मन की त्रयी, व्यक्तित्व के अन्य भाग, भावनात्मक लक्षण, संज्ञानात्मक लक्षण, सूचना के रुप में भावना, भावनात्मक धारणा, भावनात्मक एकीकरण, भावना को समझना, भावनाओं का प्रबन्धन, भावनात्मक बुद्धिमत्ता को क्षमता के रुप मापना, मल्टीफैक्टर इमोशनल इन्टेलीजेंस का विवरण, फलांकन, निष्कर्ष साथ ही यह निष्कर्ष निकाला गया कि अनुभूति और प्रभाव के क्षेत्र नें भावनात्मक बुद्धि के एक नये सिद्धान्त के लिये कुछ आधार प्रदान किये है।"

**अध्ययन का उद्देश्य:** प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्ता द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि "पुरुष तथा महिला छात्राध्यापकों की शिक्षण विषय के आधार पर संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।"

**शोध अध्ययन की परिकल्पना:** उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि छात्राध्यापकों के संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।"

**शोध विधि:** प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। जिसमें वर्तमान से सम्बन्धित घटनाओं का विशलेषणात्मक विवरण होता है इसकी सर्वेक्षण विधि के तहत आंकड़ों का संकलन करते हुए निरीक्षण किया जाता है। जिसमें आंकड़ों की सहायता से वर्तमान घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। सर्वेक्षण का इंगलिश रूपान्तर Survey दो शब्दों Survey से मिलकर बना है। मूल रुप से, Sur (Sor) तथा अमतल (veeir) पर आधारित है, जबकि Sor का अर्थ over तथा अममपत का अर्थ जव सववा होता है। इस प्रकार Survey का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्राय: सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेंत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है, जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण।

**समष्टि:** प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि समस्त बी0एड्0 प्रशिक्षण संस्थानाओं के छात्राध्यापक थे। समष्टि की विशेषतायें निम्नलिखित है। समष्टि परिमित तथा अपरिमित दो प्रकार की होती है। जिसमें प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि परिमित प्रकार की है क्योंकि छात्राध्यापक की संख्या सीमित होती है। प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि समांगी प्रकार की है क्योंकि बी0एड्0 प्रशिक्षण संस्थानाओं के छात्राध्यापक का चयन की योग्यता का मानक एक ही होता है। किसी अध्ययन की वह सम्पूर्ण ईकाई समष्टि कहलाती है। जिस पर शोध कार्य आधारित होता है।

**प्रतिदर्श:** प्रस्तुत अध्ययन के प्रतिदर्श का आकार 300 होगा। किसी बड़ी राशि में से चुनी हुई एक छाटी सी मात्रा को प्रतिदर्श या नमूना है। यह माना जाता है कि प्रतिदर्श के सांख्यिकीय गुण पूरी राशि के सांख्यिकीय गुणों का प्रतिनिधित्व करते है।

**न्यादर्श:** शोधकर्त्ता द्वारा समय धन के अभाव के कारण आगमनात्मक प्रविधि अपनाते हुए समष्टि से एक छोटा समूह अध्ययन हेतु चयनित किया जाता है। जिसे न्यादर्श कहते है। न्यादर्श पूरी समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जनपद के यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा कुल तीन सौ छात्राध्यापकों का चयन किया गया था जिनके वितरण का आधार क्षेत्र, लिंग, विषय तथा वित्तपोषण था। अनुसंधान में प्राय: प्रचलित विधि का प्रयोग सम्भव नही होता, क्योंकि इस विधि के द्वारा अध्ययन धन, समय व सुविधा के दृष्टिकोण से सापेक्षिकत: अत्याधिक खर्चीला व जटिल होता है। इसके विपरीत, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अप्रसचलिक विधि द्वारा अध्ययन पर्याप्त मात्रा में सुगम, सरल, अल्प–व्ययी तथा शुद्ध रहता है। अप्राचलिक विधि के अध्ययन का आधार प्रतिदर्श होता है।

प्रतिदर्श एक समष्टि का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिलम्ब रहता है। पी0 वी0 यंग के शब्दों में एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु–चित्र होता है।

यदि समष्टि का स्वरुप सजातीय रहता है, तब प्रतिदर्श के चयन में विशेष कठिनाई नहीं होतीं, परन्तु जब समष्टि का स्वरुप विषम जातीय रहता है, तब प्रतिदर्श की इकाईयों के चयन के लिए प्रतिचयन प्रक्रिया का उपयोग करना पड़ता है।

*तालिका : न्यादर्श का समग्र वितरण*

| पुरुष | | | महिला | | | पुरुष | | | महिला | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| विज्ञान वर्ग | सामाजिक विषय | भाषा वर्ग | विज्ञान वर्ग | सामाजिक विषय | भाषा वर्ग | विज्ञान वर्ग | सामाजिक विषय | भाषा वर्ग | विज्ञान वर्ग | सामाजिक विषय | भाषा वर्ग |
| 25 | 25 | 25 | 25 | 25 | 25 | 25 | 25 | 25 | 25 | 25 | 25 |
| योग– 300 | | | | | | | | | | | |

**शोध उपकरण:** प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु निम्नलिखित शोध उपकरण प्रयुक्त किया गये थे–

**संवेगात्मक बुद्धि मापनी:** अंकुल हिंडे, संजोत पिइे तथा उपिन्दर धार द्वारा निर्मित संवेगिक बुद्धि मापनी नामक परीक्षण का प्रयोग किया गया है जो कि +2 स्तर के छात्रों की संवेगिक बुद्धि का मापन करती है। यह मापनी हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के संस्थानों के लिये बनायी गयी है।

**उपकरण का निर्माण:** इस परीक्षण में कुल 34 पद है जो कि +2 स्तर व महाविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों की विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित जानकारी के द्वारा सांवेगिक बुद्धि का मापन करती है। प्रारम्भ में इसमें 106 पद थे जिनको 50 विशेषज्ञों के समूह जो परास्नातक थे एवं अपने क्षेत्र में 10 वर्षों से अधिक अनुभव रखते हों, को दिया गया है। इसमें से चयनित पदों को 300 लोगों पर प्रशासन किया गया। इसके बाद अन्तिम दौर पर इसमें से 34 पदों का चयन किया गया। यह प्रश्नावली पांच पदो के रुप में है यथा-पमर्णतया सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, पर्णतया असहमत।

**उपकरण की विश्वसनीयता:** इस अध्ययन में प्रयुक्त परीक्षण की विश्वसनीयता अर्द्ध विच्छेदन विधि के अनुसार 0.88 है।

**उपकरण की वैधता:** उपकरण की वैधता के लिए पद-विश्लेषण किया गया। पदविश्लेषण के पश्चात् उपकरण की वैधता उच्च स्तर की पायी गयी जो कि 0.93 है। निर्णायकों एवं विशेषज्ञों के आधार पर पाया गया कि इस प्रश्नावली में चयनित पद संवेगात्मक बुद्धि सेप्रत्यक्ष रुप से सम्बन्धित है।

**उपकरण का अंकन:** अंकन की विधि बहुत सरल है। पाँच बिन्दुओं की मापनी का अंकन करता है। सर्वप्रथम प्रयोज्यों द्वारा उत्तर दिये गये प्रश्नावली को ले लिया जाता है तत्पश्चात् उनकी अनुक्रिया के अनुसार पूर्ण सहमत पर 5 अंक, सहमत पर 4,अनिश्चित पर 3, असहमत पर 2, पूर्णअसहमत पर 1 अंक प्रदान किया जाता है। अन्त में इन अंकों का योग ही उत्तरदाता के सांवेगिक बुद्धि का प्राप्तांक होता है।

उद्देश्य से सम्बन्धित विश्लेषण तथा व्याख्या:- प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता द्वारा उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि " पुरुष तथा महिला छात्राध्यापकों का शिक्षण विषय के आधार पर संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना" इस उद्देश्य के अध्ययन हेतु कुल छ: शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी जिनका परीक्षण क्रमश: निम्नलिखित है।

**परिकल्पना:** प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य हेतु परीक्षण के लिये शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि- "छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।" इसके परीक्षण के लिये अधोलिखित विश्लेषण तालिका बनायी गयी-

*तालिका 1: संवेगात्मक बुद्धि सम्बन्धी सी0आर0 मूल्य विश्लेषण तालिका*

| समूह | संख्या | मध्यमान | मानक विचलन | मानक त्रुटि | सी0आर0मूल्य | P |
|---|---|---|---|---|---|---|
| विवाहित | 150 | 45.43 | 10.89 | 1.35 | 0.93 | N.S. |
| अविवाहित | 150 | 44.18 | 9.18 | | | .05 |

df (298) at .05 =k 1.96

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि छात्राध्यापकों को संवेगात्मक बुद्धि की मध्यमान 45.43 और मानक विचलन 10.89 है जबकि छात्राध्यापकों के मध्यमान 44.18 और मानक विचलन 9.18 है जिससे अभिकलित मानकत्रुटि 1.35 तथा सी0आर0 मूल्य 0.93 है। जो df (298) के 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.96 से कम है जिसके आधार पर बनायी गयी शून्य परिकल्पना "छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।" स्वीकार हो जाती है और स्पष्ट होता है कि संवेगात्मक बुद्धि से प्रभावित नहीं होती है। प्रस्तुत अध्ययन क विरोधी परिणाम सिंह (2021) का अध्ययन है। इसके सम्भवत: कारण है कि यह जीवन की एक प्रथा है जिसके लिये हम सांवेगिक रुप से तैयार रहते है।

## शोध निष्कर्ष

विश्लेषणोपरान्त प्रस्तुत अध्ययन से यह शोध निष्कर्ष प्राप्त किया गया कि- छात्राध्यापकों के संवेगात्मक बुद्धि, समायोजन व मूल्यों में समानता पायी जाती है।

## शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत अध्ययन भावी अध्यापकों को आधार मानकर किया गया हैं क्योंकि भारत को यदि हम स्त्री लिंग में भारत माता कहते है तो पुल्लिंग के रुप में जगत गुरु के नाम से भी जाना जाता है। अध्यापक का पेशा बड़े त्याग व कर्तव्य निष्ठता का होता है जिसके लिये आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक-प्रशिक्षण विभाग विश्वविद्यालयों के सशक्त व समर्थ बनाये जाये जिससे भावी अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाय तो उनमे भारतीय मूल्य (सामाजिक, धार्मिक, ज्ञान, पर्यावरणीय तथा एक दूसरे के प्रति लगाव और एकात्मकता भाव) स्थापित हो सकें। हमारा भावी अध्यापकों की आत्मा में भारतीयता भरी हो ताकि वे अपने भारतीय समाज को भली-भाँति समझ सके औंर पोषित करने वाले बने।

नई शिक्षा-नीति 2020 कहती है कि 'भारत का ज्ञान' में आधुनिक भारत और इसकी सफलताओं और चुनौतियों के प्रति प्राचीन भारत का ज्ञान और उसका योगदान शामिल होगा, और शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि के सम्बन्ध में भारत की भविष्य की आंकाक्षाओं की स्पष्ट भावना शामिल होगी इन तत्वों को पूरे स्कूल पाठ्यक्रम में जहाँ भी प्रासंगिक हो यहाँ वैज्ञानिक तरीके से और एक सटीक रुप से शामिल किया जायेगा। विशेष रुप से भारतीय ज्ञान प्रणाली को आदिवासी ज्ञान एवं सीखने के स्वदेशी और पारम्परिक तरीकों से कवर किया जायेगा और गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, योग, वास्तुकला, चिकित्सा, कृषि अन्जीनियरिंग, भाषा विज्ञान साहित्य, खेल के साथ-साथ शासन, राजव्यवस्था संरक्षण आदि विषयों में शामिल किया जायेगा जनजातीय एथनो आषधीय परम्पराओं वन प्रबन्धन, पारम्परिक जैविक फसल की खेती, प्राकृतिक खेती आदि में विशिष्ट पाठ्यक्रम भी उपलब्ध कराये जायेगे। भारतीय ज्ञान प्रणालियों पर एक आकर्षक पाठ्यक्रम भी एक वैकल्पिक रुप में माध्यमिक विद्यालय में छात्रों के लिये उपलब्ध होगा।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. गोलमैन (1995); "व्हाट इट कैन मैटर मोर दैन आई.क्यू.? ए.आई.सी. एच. ई." इन्होंने संवेगात्मक बुद्धि के 04 मॉडल का जिक्र किया है।
2. याटेस, जे0 एम0 (1999); "द रिलेशनशिप बिटवीन इमोशनल इंटेलीजेन्स एण्ड हेल्थ हैबिट्स ऑफ हेल्थ एजूकेशनल स्टेडेण्ट्स" डिजर्टेशन ऐब्स्ट्रैक्ट इण्टरनेशनल, 60-90 ए. 3284.
3. क्लेन्स डी0आर0 एण्ड वेयरमैन (2000); "एसेसिंग इमोशनल इंटलीजेन्स एण्ड इण्टरपर्सनल कम्पीटेंस इन स्टूडेन्ट" पी0-एच0डी0, जार्जिया स्टेट यूनिवर्सिटी, अटलाण्टा, जार्जिया.
4. एस0आर0हेनिंग (2001); "द रिलेशनशिप बिटवीन सोसियल एण्ड इमोशनल इंटेलीजेंस इन चिल्ड्रेन" पी-एच0डी0 थीसिस, टेन्सी यूनिवर्सिटी.
5. मेयर पी.डी. (2002); "भावना, बुद्धि और भावनात्मक बुद्धि जे.पी. फोर्गस;एड) में" प्रभाव और सामाजिक अनुभूति की पुस्तिका पेज (410-431) लारेंस एर्लबौम एसोसियट्स पब्लिशर्स.
6. पी0 क्रिक (2003); "इमोशनल इंटेलीजेन्स, सोसियल कम्पीटेन्स एण्ड सक्सेज इन हाईस्कूल स्टेडेन्ट्स" पी-एच0डी0 थीसिस, वेस्टर्न केण्टयूकी यूनिवर्सिटी, बाउलिंग ग्रीन.
7. के0डी0 पार्कर (2004); "इमोशनल इंटेलीजेंस, एण्ड ऐकेडमिक सक्सेस: एग्जेमाइनिंग व ट्रांजिशन फ्राम हाई स्कूल टू यूनिवर्सिटी" रिसर्च पेपर, साइकोलॉजीकल एसोशिएशन, बैंकावार.
8. सी0 रेकर एण्ड जे0डी0ए0 पार्कर (2005); "ने इमोशनल इंटेलीजेंस, मुड एण्ड प्राब्लम बिहैवियर अन चिल्ड्रेन एण्ड एडोलसेन्ट फेस्टर सेसन प्रजेण्टेड एट ए0पी0ए0 107वीं अनुएल कन्वेशन, बोस्ट, एम0ए0.
9. एम0 पी0 एलेन (2006); "इन्वेस्टीगेटिंग इंटेलीजेन्स इन चिल्ड्रेन: एक्सप्लोरिंग इट्स रिलेशनशिप टू कागनिटिव इंटेलीजेन्स" पी-एच0डी0 डिजर्टेशन एब्स्ट्रैक्ट्स, इण्टरनेशनल 60-09, 3254.
10. वी0 सी0 शनवाल (2007); "ए स्टडी ऑफ कोरिलेट्स एण्ड नर-चुरेंस ऑफ ई0आई0 इन प्राइमरी स्कूल चिल्ड्रेन" पी-एच0डी0 एजूकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, न्यू देलही.

# भारत में कृषि के विकास में कृषि प्रबंधन की भूमिका


## प्रियंका

*असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, नेहरू कॉलेज छिबरामऊ, कन्नौज, उ0प्र0*



## सारांश

कृषि प्रबंधन का अर्थ कृषि आगत के रूप में सम्मिलित सभी अवयवों का विवेकपूर्ण तरीके से आकलन कर एक निश्चित लक्ष्य की पूर्ति के लिए निर्णय लेने से है। अर्थात यदि किसी किसान का लक्ष्य गेहूं उत्पादन से लाभ अर्जित करना है तो उसे उपरोक्त पहलुओं पर उसी अनुरूप विचार करना होगा। कृषि प्रबंधन को और स्पष्ट करते हुए कहा जाए तो यह कृषि क्रियाकलाप यथा मृदा तैयार करना, बीज बोना, खाद उर्वरक का प्रयोग, सिंचाई, खरपतवार से मुक्ति, हारवेस्टिंग तथा फसल भंडारण को उचित ढंग से संपन्न करने की बात करता है। ऐसा करके ही कृषि विकास को सही दिशा दी जा सकती है और किसानों की आय दुगुनी करने के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। कृषि प्रबंधन के लिए सरकारी-स्तर से भी तमाम प्रयास किए जा रहे हैं। इन प्रयासों के उल्लेख के पूर्व कृषि प्रबंधन के मुख्य अवयवों पर एक विस्तृत दृष्टि डालनी आवश्यक है।



**कुंजी शब्द**-कृषि प्रबंधन, मृदा तैयार करना, बीज बोना, खाद उर्वरक का प्रयोग, खरपतवार से मुक्ति, हारवेस्टिंग तथा फसल भंडारण, भारतीय अर्थव्यवस्था।


भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि है क्योंकि यह न केवल 125 करोड़ से अधिक जनसंख्या वाले देश को खाद्यान्न आपूर्ति करता है बल्कि कुल कार्यबल के आधे हिस्से को रोजगार भी प्रदान करता है। देश की प्रगति के इन दो आकड़ों के हिसाब से देखें तो 2017-18 का आर्थिक सर्वेक्षण कहता है कि कृषि क्षेत्र में वृद्धि दर जहां 2 प्रतिशत के आसपास रही वहीं इसी दौर में उद्योग और सेवा क्षेत्र में क्रमशः 4.4 प्रतिशत तथा 8.3 प्रतिशत की वृद्धि दर रही। वहीं आधे से अधिक श्रमबल की संलग्नता के बावजूद कृषि का कुल जीडीपी में मात्र 17 प्रतिशत का ही योगदान है।

भारत भौगोलिक रूप से कृषि-अनुकूल प्रदेश की श्रेणी में आता है तथा यहाँ विविध प्रकार के फसल उत्पादन हेतु नैसर्गिक परिस्थितियां मौजूद है। समुचित कृषि प्रबंधन से कृषि क्षेत्र में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है जिससे देश के कुल सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान भी बेहतर होगा।

भारत में कृषि या अन्न उत्पादन को सरलतापूर्वक संपन्न हो जाने वाला 'उद्यम' मान लिया जाता है जबकि वास्तविकता यह है कि कृषि एक जटिल उद्यम है। कृषि में एक तरफ जहां उचित जलवायु के अनुरूप फसल चयन तथा मृदा की अनुकूलता जैसे तकनीकी पक्षों का अन्वेषण अनिवार्य होता है वहीं उच्च उत्पादकता वाले बीज तथा खरपतवारनाशी कीटनाशकों का संतुलित उपयोग करना भी उत्पादन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। साथ ही, सिंचाई के साधनों के प्रकार व उनकी उपलब्धता से न केवल फसल की उत्पादकता प्रभावित होती है बल्कि उससे उत्पादन लागत पर भी प्रभाव पड़ता है। इन मध्यवर्ती निवेशों के बाद उत्पादित अन्न के भंडारण तथा बाजार तक उसकी समुचित पहुँच तथा उत्पादित अनाज की सही कीमत मिलने के बाद की कृषि एक प्रक्रिया के रूप में पूरी होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह की ये तमाम निवेश कृषि में तब हो पाएंगे जब कृषकों के पास पर्याप्त वित्त की उपलब्धता हो। अब, अगर उपरोक्त प्रक्रिया पर गौर करें तो इस बात का सहज अनुमान हो जाता है कि सफल उद्यम के रूप में कृषि तभी स्थापित हो सकती है जब इसके सभी अवयवों का उचित समन्वय हो। कृषि समन्वय की यही प्रक्रिया 'कृषि प्रबंधन' कहलाती है।

कृषि प्रबंधन में सबसे आधारभूत चीज मृदा प्रबंधन है। किसी भी फसल उत्पादन की प्रारंभिक शर्त ही यही है कि मिट्टी उसके अनुकूल होनी चाहिए। अर्थात यदि हम किसी भी मिट्टी में कोई भी फसल बो रहे हैं तो इससे सही उपज प्राप्त नहीं हो सकती। वस्तुतः हर मृदा की विशिष्ट भौतिक और रासायनिक विशेषताएं होती हैं जो किसी खास फसल की उत्पादकता के अनुकूल होती हैं। अगर इस तारतम्यता का उल्लंघन किया जाए तो उत्पादकता प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए काली मृदा में जहां पोटाश और मैग्नीशियम जैसे तत्वों की प्रचुरता होती है वहीं इसमें नमी धारण करने की बेहतर क्षमता होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण यह मृदा कपास की खेती के लिए उपयुक्त होती है। इसी प्रकार जलोढ़ मृदा गेहूं, धान की खेती के लिए और लैटेराइट मृदा चाय, कॉफी और काजू जैसी फसलों के अनुकूल है। अतः इस अनुकूलता का पालन किया जाना चाहिए।

मृदा प्रबंधन का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है समय के साथ इसकी उर्वरता बरकरार रखना। अगर एक ही मृदा में लगातार एक ही फसल बोई जाए तो इससे मृदा के पोषक तत्वों का ह्रास हो जाता है, इसीलिए फसल चक्रण को अपनाना महत्वपूर्ण है। फसल चक्रण को अपनाने में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दो से अधिक पोषक तत्वों की मांग वाली फसलों का चक्र न हो। उदाहरण के लिए धान और गेहूं का फसल-चक्र अधिक पोषक तत्वों की मांग करता है जिससे मृदा की उर्वरता घटती है। मृदा उर्वरता को बढ़ाने के लिए हरित खाद वाली फसलों को उपजाना भी एक बेहतर विकल्प है।

कृषि कार्य हेतु जल एक आवश्यक तत्व है। यद्यपि प्राकृतिक संसाधन के रूप में जल की प्रचुरता है लेकिन इसी अनुपात में यह हमारे उपयोग के लिए उपलब्ध नहीं है। यही बात भारतीय कृषि पर भी लागू होती है। यदि भारतीय कृषि हेतु जल की उपलब्धता की बात करें तो यह मुख्यतः दो रूपों में प्राप्त होता

है। एक तो कृषि का पूर्णतया वर्षा पर आश्रित होना तथा दूसरे खेतों तक सिंचाई साधनों की पहुंच होना। दूसरा माध्यम इस रूप में अधिक महत्वपूर्ण है कि इससे आवश्यकतानुरूप और उचित समय पर कृषि कार्यों में जल का उपयोग किया जा सकता है जबकि बारिश पर निर्भरता उत्पादन की सुभेद्यता को बढ़ाती है। भारतीय संदर्भ में देखें तो यहां खाद्यान्न उपज वाली कृषि भूमि का मात्र 50 प्रतिशत ही सिंचाई साधनों से युक्त है। कुल सिंचाई युक्त कृषि भूमि की बात करें तो यह मात्र 34.5 प्रतिशत ही है। अर्थात् सीमित रूप से ही कृषि कार्यों हेतु जल की उपलब्धता है, इसलिए इसका समुचित प्रबंधन जरूरी है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि सिंचाई साधनों में लगभग 45 प्रतिशत हिस्सा ट्यूबवेल का है, अर्थात बड़े पैमाने पर भू-जल का उपयोग किया जा रहा है जिससे लगातार भूजल-स्तर गिर रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 1 से 2 मीटर भूजल-स्तर कम हो रहा है। अतः जरूरत इस बात के प्रबंधन की है कि अधिक से अधिक बहते जल का उपयोग किया जाए ताकि जल सुरक्षित भी रहे और सिंचाई लागत भी कम लगे।

स्वामीनाथन आयोग ने भी कृषि प्रबंधन में जल प्रबंधन के महत्व को रेखांकित करते हुए 'सिंचाई आपूर्ति वृद्धि और मांग प्रबंधन' शीर्षक के अंतर्गत बताया है कि पहले से स्थित तालाबों और कुओं को पुनर्जीवित करना होगा तथा स्प्रिंकल व ड्रिप सिंचाई का उपयोग करते हुए मांग प्रबंधन को पूरा करना होगा। साथ ही, आयोग यह सुझाव भी देता है कि भूजल के विवेकपूर्ण उपयोग के लिए 'जल साक्षरता' अभियान चलाया जाना चाहिए।

वस्तुतः जल प्रबंधन से आशय यह है कि एक तो जल का उतना ही उपयोग किया जाए जितने की आवश्यकता है तथा दूसरे, जल की सीमित उपलब्धता वाले क्षेत्रों में वैसे ही फसलों का उत्पादन किया जाए, जिन्हें कम जल की जरूरत होती है। उदाहरण के लिए कम जल की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में दलहन और तिलहन का उत्पादन किया जाना चाहिए। साथ ही, जहां जल की अधिक जरूरत हो, वहां ऐसी तकनीकों को अपनाना चाहिए जो अधिक से अधिक जल की बचत कर सकें।

जिस प्रकार मानव शरीर को विभिन्न पोषक तत्वों की जरूरत होती है, वैसे ही फसलों को भी इसकी आवश्यकता होती है। ये पोषक तत्व पौधों के जीवन तथा उसकी वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं। फसलों को मुख्य रूप से नाइट्रोजन, फॉसफोरस, पोटाश तथा सल्फर जैसे पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।

यद्यपि उर्वरकों के उपयोग से फसल उत्पादकता में वृद्धि होती है तथापि इसके असंतुलित उपयोग से न केवल उत्पादकता प्रभावित होती है बल्कि लंबे समय में भूमि की उर्वरता भी घटती जाती है। हरितक्रांति के बाद, जिस प्रकार से फसल उत्पादन प्रतिरूप में बदलाव आया है, उससे उर्वरकों की खपत तीव्र गति से बढ़ी है और उसी रफ्तार में मृदाक्षरण भी बढ़ा है।

उत्पादन कितना भी अधिक क्यों न हो, जब तक फसलों की बाजार तक पहुँच नहीं होगी तब तक उसे उचित कीमत प्राप्त नहीं हो सकती। किसानों को अगर सीधे बाजार से जोड़ दिया जाए तो उन बिचौलियों को समाप्त किया जा सकता है जो अभी तक उपज का सही मूल्य वास्तविक कृषकों तक पहुंचने नहीं देते। इसमें कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग और कॉरपोरेट फार्मिंग जैसे प्रयास काफी कारगर साबित हो सकते हैं क्योंकि इसमें किसान निजी कंपनियों अथवा व्यक्तियों से सीधे समझौतों के माध्यम से अपनी फसलों के लिए उचित आगत (इनपुट) और गारंटीयुक्त मूल्य प्राप्त कर सकता है। निजी उद्यमियों को भी कृषि गतिविधियों की ओर आकर्षित कर इसमें बेहतर निवेश व तकनीक का लाभ लिया जा सकता है। यह और भी महत्वपूर्ण तब हो जाता है जब हमें यह ज्ञात हो कि कृषि क्षेत्र निवेश की कमी की समस्या से जूझ रहा है और इसमें अभी भी निवेश कुल जीडीपी का महज 0.3 प्रतिशत ही है। इस तरीके के प्रयास ना केवल कृषि पैदावार की उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं बल्कि फसलों के वाणिज्यीकरण, विविधीकरण और मूल्यवर्धन आदि के द्वारा इसे लाभोन्मुखी भी बना सकते हैं। जिसके लिए वर्तमान सरकार ने इसे कानूनी जामा पहनाया है।

वर्तमान सरकार का लक्ष्य है कि सन् 2022 तक किसानों की आय को दुगना करना है। ऐसे में सरकार द्वारा अनेक ऐसे नीतिगत निर्णय और कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं जो समुचित कृषि प्रबंधन के माध्यम से कृषि विकास को बढ़ावा दे रहे हैं।

कृषि के प्रबंधन में सबसे बड़ी समस्या है वित्त की। कृषि कार्य में अनौपचारिक माध्यम से लिए जाने वाली ऋण की वार्षिक ब्याज दर 60 से 120 प्रतिशत तक होती है। इससे बचने के लिए अनेक सरकारी प्रयास किए गए हैं। 'किसान क्रेडिट कार्ड' के माध्यम से जहां फसल उत्पादन और विपणन के लिए ऋण प्रदान किया जाता है वहीं 'ब्याज अनुदान योजना' के तहत समय से भुगतान करने वाले किसानों को प्रतिवर्ष 3 प्रतिशत का अतिरिक्त ब्याज अनुदान प्रदान किया जाता है।

'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' कृषि प्रबंधन के क्षेत्र में सबसे बड़ी पहल है क्योंकि यह किसानों को न केवल प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षित करता है बल्कि कृषकों को आय स्थायित्व प्रदान कर कृषि क्षेत्र की निरंतरता को बनाए रखता है। इस योजना के तहत किसानों से नाममात्र यथा रबी फसलों के लिए 2 प्रतिशत, खरीफ फसलों के लिए 1.5 प्रतिशत तथा वाणिज्यिक फसलों के लिए मात्र 5 प्रतिशत का प्रीमियम लिया जाएगा।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना में सिंचाई के माध्यम से जल प्रबंधन हेतु यह महत्वपूर्ण योजना संचालित की जा रही है। इसका उद्देश्य 'प्रति बूंद अधिक फसल' नीति को अपनाना, सूक्ष्म सिंचाई पद्धति को अपनाना तथा सतत जल-संरक्षण पद्धति को बढ़ावा देना है। इसके अतिरिक्त, यह सिंचाई क्षेत्र में निजी निवेश को भी आकर्षित करेगा तो जल की उपलब्धता के अनुकूल फसल चयन को जमीनी-स्तर पर लागू करने के लिए प्रयास करेगा। इसी के तहत विश्व बैंक समर्थित 'नीरांचल वाटरशेड प्रोग्राम' भी संचालित किया जा रहा है जिसका उद्देश्य प्रत्येक खेत तक सिंचाई की पहुंच सुनिश्चित करना है।

राष्ट्रीय कृषि बाजार कृषि प्रबंधन का एक अनिवार्य हिस्सा है कि किसानों की विक्रय बाजारों तक पहुंच सुनिश्चित हो। इलैक्ट्रॉनिक राष्ट्रीय कृषि बाजार(ई-नाम) की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई है। इससे किसान अपनी उपज सीधे बाजार तक पहुंचा सकेंगे और बिचौलियों की समाप्ति से उन्हें अधिक कीमत मिल सकेगी। वस्तुतः ई-नाम एक आनॅलाइन प्लेटफार्म है जिससे देश की 585 मंडियां जुड़ चुकी हैं। इस प्रकार देश भर के व्यापारी सीधे स्थानीय किसानों से जुड़कर उत्पादों की खरीद कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त, इस ऑनलाइन प्लेटफार्म से 'ग्रामीण खुदरा कृषि बाजार' को जोड़ दिया जाएगा जिससे कृषि विपणन क्षेत्र का विकास

होगा और किसानों का उपभोक्ताओं से सीधा जुड़ाव हो जाएगा।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना में मृदा की उर्वरता बनाए रखने के लिए तथा उर्वरकों के सही उपयोग के लिए किसानों को प्रत्येक 3 वर्षों पर मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी किया जाता है। इससे सैम्पलिंग की मानकीकृत पद्धति के माध्यम से मृदा संबंधी समस्याओं का भी पता लगाया जाता है।

भारत सरकार द्वारा कीट प्रबंधन हेतु 'एसएमपीएमए' जैसी विस्तृत योजना संचालित की जाती है। इसका उददेश्य कीटनाशकों के कारण होने वाले पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करना है। साथ ही, यह कीटनाशकों के संतुलित प्रयोग को प्रोत्साहित करता है। देशभर में 35 केंद्रीय एकीकृत कीट प्रबंधन केंद्रों के माध्यम से इस योजना का संचालन किया जाता है।

कृषि क्षेत्र के समुचित विकास के लिए आवश्यक है कि फसल उत्पादन के विविध मॉडल को अपनाया जाए। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर 'पंडित दीनदयाल उन्नत कृषि योजना' संचालित की जा रही है। इसके तहत जैविक कृषि को बढ़ावा दिया जाना है तथा इस हेतु ग्रामीण भारत को व्यावसायिक सहायता प्रदान करना है। साथ ही सेवा क्षेत्र की तरह स्टार्टअप को बढ़ावा देने के लिए 'एग्री उड़ान' योजना को संचालित किया जा रहा है। सबसे बढ़कर ऐसे अनेक ऑनलाइन प्रयास किए जा रहे हैं जिसका उपयोग कर किसान बेहतर कृषि निर्णय ले सकें। 'ई-कृषि संवाद' एक ऐसा ही मंच है जिसके माध्यम से किसान अपनी समस्याओं के समाधान हेतु सीधे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से संपर्क कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, 'एगमार्क नेट' पोर्टल कृषि विपणन संबंधी जानकारियों का प्रसार करता है। ऐसी अनेक योजनाएं चल रही हैं जिनके मूल में कृषि प्रबंधन है।

**निष्कर्षतः** हम कह सकते हैं कि कृषि के साथ प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से पूरा देश जुड़ा हुआ है इसलिए बिना इस क्षेत्र की उन्नति के विकसित देश होने का स्वप्न पूरा नहीं हो सकता। और कृषि का विकास तभी हो सकता है जब इसका प्रबंधन ठीक से हो। कृषि प्रबंधन पर अधिक गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि यही कृषि विकास का मूल है। सरकारी प्रयास यद्यपि काफी विस्तृत क्षेत्र को समेटते हैं तथापि स्वयं किसानों को भी कृषि को अधिक पेशेवर ढंग से करने की आवश्यकता है।

## संदर्भ सूची-


1. इंडियन इकोनामी-एस.के.मिश्रा, वी.के.पुरी, संस्करण 2004, पृ0 916
2. दत्त एवं सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, नई दिल्ली-110055, 2012
3. कुरुक्षेत्र, अगस्त 2018
4. कुरुक्षेत्र, फरवरी 2019
5. एग्रीकल्चरल इकोनॉमी-बी.पी. त्यागी, पृ0 827
6. योजना, सितंबर 2018
7. योजना, अक्टूबर 2012

# सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में व्यक्त दलित स्त्री चेतना


## डॉ० अखिलेश कुमार वर्मा

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, रामनगर पी0जी0 कॉलेज, रामनगर, बाराबंकी ( उ0प्र0 )*



### सारांश

सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा दलित स्त्री चिन्तन के विविध पक्षों का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करती है। एक सुशिक्षित स्त्री को पुरुष के अहं से टकराते हुए किस प्रकार अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ता है, सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा विवाह, परिवार और जाति व्यवस्था के भीतरी प्रत्येक पक्ष को उजागर करते हुए दलित स्त्री की वास्तविक स्थिति का बोध कराती है। रचनाकार सुशीला टाकभौरे स्त्री शोषण को शिकंजे के दर्द की तरह मानती हैं। यह दर्द सदियों पुराना है जिसकी जकड़न में रहते हुए उसकी स्थिति में सुधार नहीं हो सकता।


समाज का सम्यक विकास सभी क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष की समान सहभागिता से होता है। जहाँ यह विभाजन विषम है वहाँ का समाज अधिक पिछड़ा और पाखण्डी मिलेगा। संसाधनों और नेतृत्व पर पुरुष के एकाधिकार ने समस्या विकट बना दी है। स्त्रियों के सामान्य व्यवहारों पर अनेक तरह के प्रतिबंध हमारी सोच के प्रतीक हैं। इनसे संवादहीनता हमारी संस्कृति है। इस मानसिकता पर उस समय चोट लगी थी जब ज्योतिबा फूले और सावित्रीबाई फूले ने बालिकाओं और दलितों के स्कूल चलाकर इतिहास की धारा को मोड़ दिया था। बालिकाओं पर बन्धनों की सामाजिक स्वीकृति से उनके सहज जीवन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ''बेचारी बेटियाँ तो जैसे घर के काम करने के लिए पैदा होती हैं.....बेटियाँ मानो जीवित मनुष्य नहीं, मूक प्राणी हों। उनसे हमेशा आज्ञापालन और अनुकरण की अपेक्षा की जाती है। परिवार में पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी बेटों को महत्व देकर पुरुष सत्ता को महत्व देती हैं, उसे बढ़ावा देती हैं।''[1] पारिवारिक व्यवहारों के तहत बेटियों को बचपन में ही दु:खों की भट्टी में पकाकर कष्ट सहने को तैयार कर दिया जाता था। गाँव से पढ़ाई के लिए जाने में भी माता-पिता अपने मान-सम्मान के लिए चिंतित हो जाते हैं। बेटी की शिक्षा से इज्जत कैसे जाएगी? यह सवाल दलित लेखिका सुशीला टाकभौरे के मन में आया तो उन्होंने 1971 में कॉलेज न भेजने के परिवार के निर्णय का विरोध किया। ''मैं कॉलेज जाऊँगी, कॉलेज नहीं भेजेंगे तो मर जाऊँगी, खाना नहीं खाऊँगी, पानी नहीं पियूँगी, कुछ काम नहीं करूँगी, घर का सब सामान तोड़-फोड़ डालूँगी।''[2] जातीय भेदभाव और बार-बार रोक-टोक की परम्पराओं ने लेखिका सुशीला टाकभौरे के आत्मविश्वास को डगमगा दिया था जिससे दब्बूपन ने उन्हें घेर लिया था। ''मुझे लीक से हटकर कुछ देखने की आदत नहीं थी। पढ़ाई करना और परीक्षा देना, कॉलेज जाने का मेरा वही उद्देश्य था। किसी अन्य बात पर कभी ध्यान नहीं दिया।.....कब आया यौवन, जान न पाया मन, शिकंजे में जकड़ा जीवन, कभी मुक्त भाव का अनुभव ही नहीं कर पाया। जिन्दगी एक निश्चित की गई लीक पर चलती रही। वह उमंग कभी मिला ही नहीं जो यौवन का एहसास कराती।''[3]

बी0ए0 अन्तिम वर्ष की परीक्षाओं के बाद 1974 में लेखिका का विवाह अपने से दोगुनी आयु के सुंदरलाल टाकभौरे के साथ हुआ।'' हिन्दू धर्मग्रन्थ मनुस्मृति में निर्देश है कि लड़की की उम्र से तीन गुना बड़ी उम्र के वर से विवाह किया जा सकता है।.....स्त्रियाँ यह संताप चुपचाप भोगती हैं। बचपन निर्बल-अबला के सांचे में ढाली गई कमजोर मानसिकता के कारण वे इस अन्याय का विरोध नहीं कर पातीं। मैं भी इसी तरह कमजोर थी।''[4] प्रेम के सम्बन्ध में लेखिका कहती है कि माता-पिता जिसके साथ विवाह करेंगे वही सही होगा। नागपुर के आदर्श ज्ञान प्रकाश हाईस्कूल, गाँधी बाग में शिक्षक टाकभौरे गम्भीर स्वभाव के बौद्धिक व्यक्ति थे। लेखिका को वे अजनबी लगे थे। इसी उपेक्षा भरे माहौल में रहकर बी0एड0 किया, प्रसूति वार्ड में नौकरी की, स्कूल में अध्यापिका नियुक्त हुई। परम्परा में जिसे विवाह कहा गया, लेखिका ने उसे एक शिकंजे के रूप में महसूस किया और इसे निभाते हुए यह शिकंजा मजबूत होता चला गया, लेकिन जीवन संघर्षों ने इससे बाहर निकलने का रास्ता दिखा दिया था।'' मन वेदना से भर गया, गला रुंध गया, आँखें भीग गईं।.....तब तक आँखों से आँसू बहने लगे थे लेकिन न किसी ने मेरे आँसुओं की परवाह की, न ही मेरी भावना को समझा कि मेरे दिल पर कैसी चोट लगी है।''[5] मारपीट करना एक स्वाभाविक क्रिया बन गई थी। घर के लोग प्रतिदिन ऐसी परिस्थितियों की रचना करते जिससे रचनाकार का उत्पीड़न हो। पति का प्यार और सुख-संसार सपने की भाँति थे। उन्हें अनुभव हुआ कि जुल्म करने वाले से जुल्म सहने वाला ज्यादा गुनहगार होता है। सास-ननद द्वारा दान-दहेज और घरेलू काम पर कटाक्ष और अपमान को सहने को मजबूर थी, वह इनकी बातों का जवाब देने की अपेक्षा चुपचाप सुनती, सहती रहती थी क्योंकि पति उसके प्रति संवेदनशील नहीं था।

पितृसत्ता के व्यवहारों में स्त्रियाँ उत्पीड़ित हैं मगर वे इसे अपना भाग्य मानकर संताप झेलती रहती हैं। ''पुरुष चाहे जिस हाल में रहे, अपनी पत्नी के सामने स्वयं को शक्ति और अधिकार सम्पन्न सर्वेसर्वा मानते हैं। इस एकाधिकार के तहत ही वे पत्नी पर जुल्म करते हैं। यह मेरे जीवन का अलग प्रकरण है। आर्थिक शोषण और घरेलू हिंसा की मैं शिकार थी।.....मेरे साथ घर में मारपीट, गाली-गलौच सब कुछ हुआ। बाल पकड़कर खींचना, लातों से मारना, गर्दन पर मुक्के बनाकर मारना, पीठ पर घूंसे मारना-मैंने सबकुछ सहा, बेंत के निशान कई दिनों तक मेरे शरीर पर रहते थे।''[6] स्त्रियाँ बहुआयामी शोषण का सामना करने को मजबूर हैं। इनके शोषण को मर्यादित बना दिया गया है जिसके पीछे दण्ड विधान काम करते हैं। ''दलित पुरुष ब्राह्मणशाही की दासता से मुक्ति के लिए

आन्दोलन कर रहे हैं, समता, स्वतंत्रता और सम्मान का अधिकार पाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। मगर दलित स्त्रियाँ अपने अधिकारों के लिए दोहरा संघर्ष करती हैं। मनुवादी पुरुष सत्ता से और मनुवादी जाति-व्यवस्था से।''[7] महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि पुरुष स्त्री को बराबर क्यों नहीं मानता? उसे यह किसने सिखाया? इसका कारण हमारे पारिवारिक संस्कार हैं, जो धर्म से आए हैं। जब धर्म में असमान आचरण और भेदभाव को मान्यता है तो फिर उस धर्म के अनुयायी भी वैसा ही करेंगे। यानी समस्या व्यक्ति में नहीं, धर्म में है। यदि पुरुष स्त्रियों के प्रति समानता का आचरण करते हैं, तो इसके पीछे संवैधानिक मूल्य है। इसलिए धर्म के बजाय संविधान महत्वपूर्ण है। इससे ही समानता आ सकती है। स्त्रियों द्वारा चुप रहकर उत्पीड़न सहना सांस्कृतिक बड़प्पन मान लिया गया है। लेकिन स्त्री-मुक्ति चुप्पी से नहीं, हमारी सांस्कृतिक सोच में बदलाव से आएगी।

उपेक्षा भरे घरेलू व्यवहारों से लेखिका का आक्रोश बढ़ता चला गया था। वे नई परम्परा की शुरुआत करने की माँग करते हुए कहती हैं-''यह एक स्त्री का दु:ख नहीं है, न जाने कितनी स्त्रियाँ मेरी तरह जिन्दगी का संताप भोगती हैं। न शिकवा, न शिकायत। जिन्दगी का जहर चुपचाप पीते रहना, वे अपनी किस्मत मान लेती हैं। यह परम्परा टूटनी चाहिए। स्त्रियाँ स्वयं अपना दु:ख बताएंगी, अपने कष्ट और अन्याय की बात स्वयं कहेंगी, तभी लोग इन बातों को समझेंगे।''[8] रचनाएँ लेखकीय प्रतिबद्धता की वैचारिक पहचान होती हैं। आत्मकथाकार अपनी पुस्तकों को हीरों से महत्वपूर्ण और संतान की तरह प्रिय मानती हैं। परिवार में खर्च की वरीयताओं के कारण सम्बन्धों में मन-मुटाव आने लगता है। लेखिका की प्राथमिकता अपनी पुस्तकों का प्रकाशन थी तो उनके पति पारिवारिक दायित्वों पर खर्च करना चाहते थे। सुशीला टाकभौरे स्त्री शोषण को शिकंजे के दर्द की तरह मानती हैं। यह दर्द सदियों पुराना है जिसकी जकड़न में रहते हुए उसकी स्थिति में सुधार नहीं हो सकता। इसलिए उसे सम्पत्ति और घर की मुखिया के अधिकार भी मिलने चाहिए। लेखिका ने जब-जब नया घर, फ्लैट खरीदा तो उसे अपने नाम से खरीदा, क्योंकि वे सम्पत्ति रहित बनाए रखने की ऐतिहासिक पहचान को अधिकार, प्रतिरोध से तोड़ना चाहती थीं। पितृसत्ता की हिंसक मानसिकता पर वे कहती हैं-''कितना क्रोध, कितना आवेश मेरे भीतर भर गया। मुझे कुछ भी होश नहीं रहा, चप्पल मेरे हाथ में थी और मैं चीखते हुए कह रही थी। तुम मुझे चप्पल से मारोगे? चप्पल से मारोगे.....? मुझे कुछ होश नहीं था। बस मेरे चीखने और बोलने की आवाज मेरे कानों में सुनाई दे रही थी।..... ..तिलमिलाकर मेरी आत्मशक्ति जाग गई थी।[9] लेखिका में आत्मविश्वास पैदा हुआ तो पति पर उनकी आत्मनिर्भरता धीरे-धीरे कम होने लगी। दूर-दराज के क्षेत्रों में अकेले यात्रा करने के साथ-साथ वे अपने लेखन-प्रकाशन और वित्त सम्बन्धी कार्य स्वयं निपटाती थीं। लेखिका ने माना है कि पति के स्वाभाविक दबाव के कारण उसकी गतिविधियाँ और विचार प्रवाह पर दबाव रहता था।

सुशीला टाकभौरे अपने संघर्ष और सफलता में पति, नागपुर और महाराष्ट्र के योगदान को स्वीकार करती है। पति की वैचारिकता, नागपुर शहर की सांस्कृतिक पहचान और अम्बेडकरी विचारधारा से जुड़कर लेखिका का व्यक्तित्व निखर उठा था। ''टाकभौरे जी के साथ रहकर मैंने बहुत कुछ पाया भी है। मैं उनके साथ उनकी साइकिल पर और बाद में स्कूटर पर जितना घूमी हूँ, उतना नागपुर की हमारे जाति-समुदाय की कोई अन्य महिला अपने पति के साथ नहीं घूमी होगी। हमारा घूमना निरर्थक नहीं था। कभी रिश्तेदारी में, कभी सभा-सोसाइटी में, सामाजिक कार्यक्रमों में, साहित्यिक कार्यक्रमों में, कभी लाइब्रेरी, कभी विद्वान परिचितों के घर पर। इन सबका लाभ मुझे लगातार मिलता रहा। मेरी मानसिक और वैचारिक भूख ही ज्यादा थी।[10]

स्त्री-स्वतंत्रता या मुक्ति का तात्पर्य विवाह या परिवार संस्था से विरोध या मुक्ति नहीं है, न ही यह देह-मुक्ति या मात्र यौन स्वतंत्रता है। मनुष्य होने के नाते स्त्री के नैसर्गिक अधिकार उसकी स्वाभाविक मांग हैं, जो धर्म, जाति, समुदाय से आगे जाकर समूची स्त्री जाति की मांग है। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक सत्ता के अवांछित निषेध उसे स्वीकार नहीं हैं। यही नहीं, स्त्री-स्वाधीनता व देह-मुक्ति के नाम पर आधुनिकता तथा बाजारवादी ताकतों का एक अदृश्य सत्ता के रूप में शोषण के ताने-बाने बुनना स्त्री-देह व मस्तिष्क पर नये तरह का वर्चस्व ही है, इसे समझा जा रहा है। दलित स्त्री का संघर्ष धर्म, जाति, पितृसत्ता व आर्थिक मोर्चे के साथ ही अंधविश्वासों से भी है, जहां उसे अशुभ या डायन तक घोषित कर दिया जाता है।

कई दलित चिन्तकों का दावा है कि दलित समाज में स्त्री अधिक स्वतंत्रचेता, आत्मनिर्भर और संस्थागत दबावों से मुक्त है। इस दावे के परिप्रेक्ष्य में दलित आत्मकथाओं से साक्षात्कार करने पर स्थिति कुछ भिन्न ही नजर आती है। हिन्दी दलित आत्मकथाओं पर दृष्टिपात करने से पूर्व फरवरी, 1882 में प्रकाश में आयी 'एक अज्ञात हिन्दू औरत' द्वारा रचित और लुधियाना के मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी द्वारा प्रकाशित 'सीमांतनी उपदेश' पर विचार किया जाना उचित होगा। यह एक ऐसी स्त्री द्वारा रचित कृति है, जो स्त्री को धर्म, जाति, नस्ल, वर्ग आदि में विभाजित करके देखने की अपेक्षा स्त्री रूप में ही देखे जाने को उचित मानते हुए सवर्ण और दलित के भेदभाव को खारिज कर देती है। इसलिए यह रचना समूची स्त्री जाति पर निष्पक्ष रूप से विचार करती है। इस पुस्तक में इस अज्ञात लेखिका ने स्त्री मुक्ति पर तार्किक रूप से विचार करते हुए स्त्री के अस्तित्व को विस्तृत सन्दर्भ में समझने का प्रयास किया। इसलिए कई विचारक इसे स्त्री अस्मिता की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण मानते हैं। स्त्री पुरुष समानता, रुढियों का विरोध, विधवा पुनर्विवाह का समर्थन, पुरुष द्वारा दूसरा विवाह करने पर स्त्रियों के लिए भी ऐसी ही स्वतंत्रता, सती प्रथा का कड़ा विरोध, सन्तान मोह व घरेलू हिंसा आदि पर सार्थक टिप्पणी के द्वारा लेखिका ने स्त्री समस्या के अनेक पहलू पर खुलकर विचार प्रस्तुत किए हैं। सम्पूर्ण स्त्री जाति को सम्बोधित होने के कारण यह पुस्तक स्त्री मुक्ति का प्रारम्भिक विचार है। ''अपनी भूमिका में लेखक डॉ0 धर्मवीर ने विचार व्यक्त किया है कि यह औरत अपने समय के कानून व व्यवहार से आगे बढ़ी हुई थी और अपने समय के प्रति प्रतिबद्ध थी। वह सिर्फ अपने समय की स्त्री की मुक्ति के लिए ही नहीं, वरन् पूरी मानवता की मुक्ति के लिए लड़ी। अन्तर्निहित रूप से इस अज्ञात लेखिका ने शूद्रों व स्त्रियों को भारतीय समाज का सर्वाधिक उत्पीड़ित अंग माना है। उसने स्त्री को केवल स्त्री रूप में दिखाया है और उसके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र आदि में विभाजन का विरोध किया है। उसने हिन्दू व मुस्लिम स्त्री के भेद का भी विरोध किया है। लेखक धर्मवीर के अनुसार यह पुस्तक भारत में स्त्री जागरण का महान् दस्तावेज है और उनके अनुसार यह पुस्तक आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी उन्नीसवीं सदी में थी।''[11]

हिन्दी में 'अपने अपने पिंजरे' (मोहनदास नैमिशराय) से लेकर 'मणिकर्णिका' (डॉ0 तुलसीराम) तक सभी दलित आत्मकथाओं में दलित स्त्री व उसके प्रति समुदाय की मानसिकता के कई चित्र दिखाई देते हैं। 'अपने अपने पिंजरे' स्त्री को भोगवादी स्थूल दृष्टि से देखे जाने की मानसिकता स्पष्ट दिखाई देती है, तो वहीं डॉ0 तुलसीराम की आत्मकथा में वर्णित दादी, मां, नटिनिया से लेकर उत्पलवर्णा, सबीहा आदि अधिकांश स्त्री पात्रों के प्रति संवेदनशील दृष्टि मौजूद है। यहां दादी एक सशक्त लोकचरित्र के रूप में उपस्थित हैं तो वहीं बालक तुलसीराम का पिता से नाराजगी का एक कारण उनका अपनी पत्नी के चरित्र पर शंका

व उस पर हाथ उठाना है। इसी क्रम में हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण आत्मकथा है श्यौराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर'। इसकी एक महत्त्वपूर्ण पात्र हैं लेखक की मां सूरजमुखी। यह पात्र दलित स्त्री के तिहरे संघर्ष का सशक्त उदाहरण है। जातिगत, आर्थिक और पितृसत्तागत उत्पीड़न, शोषण से कठोर संघर्ष करती सूरजमुखी दलित स्त्री की वास्तविक स्थिति को उद्घाटित करती है। सामान्यतः पुनर्विवाह, विधवा विवाह की स्वतंत्रता को दलित चिन्तक इस समाज में स्त्री की मजबूत स्थिति के रूप में देखते हैं, किन्तु तीन विवाह द्वारा आर्थिक, सामाजिक आश्रय तलाशती सूरजमुखी को पुरुष उत्पीड़न का ही शिकार होना पड़ा। गरीबी, कठोर श्रम, घरेलू हिंसा का क्रूरतम रूप और जातिगत प्रताड़ना उसके जीवन का अभिन्न अंग बन जाते हैं। विधवा विवाह यहां आश्रय की तलाश है, न कि स्त्री स्वतंत्रता का उदाहरण। इस विवाह से तो सूरजमुखी इतना आश्रय भी नहीं पाती कि उसके नन्हें बच्चों की विकल भूख शांत हो जाए। एक अन्य आत्मकथा 'संतप्त' के लेखक सूरजपाल चौहान की मां को मेहनत कर बच्चों का पेट पालने, अपमान, अस्पृश्यता का सामना करने के साथ ही ठाकुर जय सिंह की कुदृष्टि से अपनी रक्षा करनी पड़ती है। ठाकुर के इस कृत्य पर सहानुभूति की जगह ठकुराइन से डांट भी खानी पड़ती है। यहां बालक सूरजपाल भी भोर अंधेरे ठाकुर के आंगन को बुहारती मां पर ठाकुर की कुदृष्टि को पहचान कर सफाई हेतु दूसरी ओर जाने से कतराता दिखता है। वर्चस्ववादी वर्ग जिस समुदाय से पानी तक की छुआछूत बरतता है, उसी की दलित स्त्री से व्यभिचार करने से उसे परहेज नहीं। इस तरह दलित स्त्री का संघर्ष गरीबी, छुआछूत और अनाचार से एक साथ है।

हिन्दी दलित आत्मकथाओं में आये स्त्री पात्र जहां अपने उत्पीड़न की कथा स्वयं बयान करते हैं, वहीं दलित होने के कारण कौशल्या बैसंत्री 'दोहरा अभिशाप' में तथा सुशीला टॉकभौरे 'शिकंजे का दर्द' में इस दोहरे-तिहरे उत्पीड़न की अन्तर्व्यथा को आत्मकथा के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं। कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' को पढ़कर स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है कि उनकी आजी व मां बाल विवाह, बड़ी उम्र के व्यक्ति से पुनर्विवाह, घरेलू हिंसा, घर त्याग, अशिक्षा और अंधमान्यताओं का सामना करते हुए भी अत्यन्त कष्ट उठाकर, गहने गिरवी रखकर उन्हें पढ़ाती हैं, किन्तु गरीबी, भूख, अशिक्षा को जीतकर भी वे वैवाहिक जीवन के कटु अनुभवों व पितृसत्तात्मक मानसिकता के सम्मुख असहाय हो जाती हैं। दलित स्त्री का यह अस्मिता संघर्ष, विद्रोही चेतना और अस्तित्व बोध इन आत्मकथाओं में मुखर हुआ है। जाति व्यवस्था के साथ ही पुरुष सत्ता से मुक्ति का संघर्ष यहाँ मौजूद है। मुक्ति की यह चाह पुरुष की वर्चस्वादी प्रवृत्ति से है, पुरुष से नहीं। इसलिए जहां कौसल्या बैसंत्री तैंतीस वर्ष तक इस सत्ता के उत्पीड़न को बच्चों की खातिर सहन करने के पश्चात् विवाह संस्था से मुक्त हो जाती हैं, वहीं सुशीला टाकभौरे उस सत्ता से सीधी टक्कर लेते हुए अपने मानव अधिकारों को प्राप्त करने हेतु चेष्टारत दिखती हैं। कौसल्या बैसंत्री की अपेक्षा सुशीला टाकभौरे अधिक मुखरता से जाति और पितृसत्ता से टकराती हैं। बड़ी उम्र के व्यक्ति से विवाह, मारपीट, आतंक, गाली-गलौज, पति का हीनताबोध और प्रभुत्व के बीच रात-दिन लगे रहना और शिक्षिका के रूप में काम करने पर भी अपनी कमाई पर अधिकार नहीं रहना। इस स्थिति में एक सीमा के पश्चात वे विद्रोही हो उठती हैं। प्रश्नाकुलता और आक्रोश से भरे लेखन के बावजूद उनका व्यक्तिगत जीवन शोषित ही रहा।

## संदर्भ सूची-


1. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 38,
2. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 121
3. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 116-117
4. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, (मनोगत से), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 134,
5. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 143
6. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 196
7. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 224
8. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 205
9. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, (मनोगत से), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 223
10. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 215
11. दलित साहित्यः एक मूल्यांकन, प्रो0 चमनलाल, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली , पृ0 80-81

# राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020: सक्षमता का सबल साधन


## डॉ० अनिल कुमार पाण्डेय

*एसोसिएट प्रोफेसर (शिक्षा शास्त्र विभाग), बी0एस0एन0वी0पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ*


किसी भी राष्ट्र के विकास में उपलब्ध नैसर्गिक एवं मानवीय संसाधनों की भूमिका सर्व विदित है। कतिपय राष्ट्र अपने नैसर्गिक संसाधनों की सुलभता को विकास का साधन स्वीकारते है (यथा-अरब के देश खनिज तेल को एवं दक्षिण अफ्रीकी राष्ट्र खनिज सम्पदा को); तो अन्य कुछ राष्ट्र मानवीय संसाधनों के माध्यम से राष्ट्र को विकसित करने के लिए प्रयासरत रहते है (यथा-जापान, इजराइल) परन्तु सर्वोत्तम विकास की विधा नैसर्गिक साधनों के न्यूनतम विदोहन द्वारा मानवीय संसाधनों के उत्तमोत्तम कुशलतापूर्ण अनुप्रयोग से सामन्जस्यपूर्ण विकास सम्भव होता है। प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता एक नैसर्गिक स्थिति जो उस भू-भाग में लाखों-करोड़ो वर्षो की प्राकृतिक क्रियाओं का परिणाम होती है जिसे मानव कम या ज्यादा किसी भी दशा में अपेक्षया अल्पावधि मेंनहीं कर सकता है। मानव की भूमिका उन प्राकृतिक संसाधनों की खोज, गुणवत्तापूर्ण रीति से न्यूनतम अपव्यय के साथ विदोहन एवं उनके अधिकतम लाभ हेतु न्यूनतम मात्रा का उपयोग सुनिश्चित करने मात्र से है; जिसके लिए सक्षम, विवेकशील मस्तिष्क एवं कुशल हाथों की आवश्यकता होती है।

सक्षम व विवेकशील वैज्ञानिक अनुप्रयोगकर्ता मस्तिष्क एवं कुशल हाथों की उपलब्धता मानवीय संसाधनों के विकास में सन्निहीत है, जिसके लिए राष्ट्र की स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा व्यवस्था आधार का कार्य करती है। मानवीय संसाधनों को स्वास्थ्य एवं शिक्षा द्वारा ही प्राकृतिक संसाधनों के उत्तम उपयोग हेतु सक्षम बनाया जा सकता है। एक प्रचलित सामाजिक मुहावरा स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है,स्वास्थ्य एवं शिक्षा की महत्ता को दीर्घावधि से रेखांकित करता रहा है। चूँकि प्राकृतिक संसाधनों का विनिर्माण एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है जो लाख मानवीय प्रयासों के बावजूद भी अत्यल्प मात्रा में ही बढ़ाया जा सकता है तो इस स्थिति में विकास के दूसरे आयाम मानवीय संसाधनों के विकास पर ही राष्ट्र की आकांक्षा एवं संकल्प पूर्ण करने की जिम्मेदारी अपेक्षया और अधिक होघ जाती है; परिणामत: मानवीय संसाधनों के विकास के दोनों आयाम स्वास्थ्य एवं शिक्षा को ही विकास का क्रेन्द्रीय पक्ष स्वीकारना ही होगा। विश्व के लगभग सभी विकसित देशों के विकास में मानवीय संसाधनों की भूमिका ही प्रमुख कारण रही भी है। इस स्थिति में अब राष्ट्र को सक्षम मस्तिष्क एवं कुशल हाथों की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु शैक्षिक एवं प्रोद्योगिक शिक्षा को योग्य एवं वैज्ञानिक कसौटियों के सापेक्ष वैश्विक सन्दर्भो में विकसित करना होगा।

हमारा देश भी स्वतन्त्रयोत्तर काल (विगत 74 वर्ष) से ही इस दिशा में प्रयासरत है। स्वतन्त्रता के तत्काल बाद (लगभग 14 माह) सीमित संसाधनों के बावजूद शैक्षिक गुणात्मक एवं मात्रात्मक सुधारों की आकांक्षा में तत्कालीन सरकारों द्वारा 1948 में उच्च शिक्षा में सुधार हेतु राधाकृष्णन आयोग या विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को गठित कर उक्त संकल्प को साकार करने करने की दिशा में प्रथम प्रयास आरम्भ कर दिया। इसी प्रकार 1952-53 में डॉ0 लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग, सन 1964 में प्रो0 डी0 एस0 कोठारी की अध्यक्षता में कोठारी शिक्षा आयोग तथा इसकी संस्तुतियों के आधार पर 1968 की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 की नई शिक्षा नीति, 1980 में दूरस्थ शिक्षा माध्यम पर बनी पहली शिक्षा समिति, 1992 में सजग मानवतावादी समाज की स्थापना हेतु आचार्य राममूर्ति समिति, 1992 में ही बोझमुक्त शिक्षा की संकल्पना सिद्धि हेतु प्रो0 यशपाल समिति तथा इसी वर्ष देश की विशाल जनसंख्या को सीमित संसाधनों से शिक्षित व विकसित करने के लिए दूरस्थ शिक्षा पर केन्द्रित परामर्श समिति, 1994 में प्रो0 खेरमा लिंगदोह समिति, 1995 में सेवारत अध्यापकों की गुणवत्ता सुधार हेतु पत्राचार बी0एड0 की संस्तुति करने वाली प्रो0 आर0 टकवाले समिति, 2005 में ज्ञान आधारित समाज की स्थापना हेतु ज्ञान आयोग, 2012 में शिक्षकों की अभिक्षमता की जांच हेतु गठित जस्टिस जे0 एस0 वर्मा समिति, 2017 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसौदा तैयार करने के लिए पद्मविभूषण सम्मानित प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ0 के0 कस्तुरीरंगन समिति तथा इसकी संस्तुतियों के क्रियान्यवयन हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के रूप में लगातार प्रयास करता रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 (एन0पी0ई0-2020) का केन्द्रीय लक्ष्य भारत को वैश्विक ज्ञान की महाशक्ति बनाना है, इसी परिप्रेक्ष्य में संकल्पों के अनुरूप मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नामकरण शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है। क्योंकि शिक्षा के माध्यम से ही सक्षम मानवीय संसाधनों के विकास का संकल्प सम्भव होगा, जिससे वैश्विक मानदण्डों के परिप्रेक्ष्य में उपयोगी बनाया जा सकता है। सन 2030 तक शिक्षा के माध्यम से ही सक्षम मानवीय संसाधनों के विकास का संकल्प लेकर वैश्विक मानदण्डों के परिप्रेक्ष्य में उपयोगी बनाने का लक्ष्य रखा गया है;साथ ही इसी अवधि में शिक्षा के कक्षीय स्तर को 5+3+3+4 पैटर्न के अन्तर्गत माध्यमिक विद्यालयों तक की शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु सकल नामांकन अनुपात (जी0ई0आर0) शत-प्रतिशत करने के लिए भी राष्ट्र संकल्पित है। इसके अन्तर्गत 181 कार्य बिन्दुओं की पहचान पूरा कर मुख्यत: स्नातक व स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में विषय प्रवर्तन, अन्तर्विषयी चयन की छूट, क्षेत्रीय भाषा आधारित उत्कृष्ट शिक्षा, उच्च शिक्षा में प्रत्येक स्तर पर प्रमाण-पत्रों सहित प्रवेश एवं निकासी की सुविधा, क्रेडिट बैंक व्यवस्था आदि के लिए पूर्व निर्धारित निश्चित समयानुसार मासिक, त्रैमासिक आधार पर निगरानी कर राज्य एजेंसियों के गुणात्मक परिवर्तन हेतु सूचना देने का प्रावधान किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 अपने नामानुरूप वैश्विक ज्ञान शक्ति बनने के सन्दर्भ में शिक्षा के समस्त आयामों को हाउ टू थिंक के आधार पर व्यापक सुधारों हेतु संकल्पित होने के कारण अत्यन्त व्यापक है, जिसे सार रूप में भी कुछ निश्चित शब्दों में व्यक्त करना गागर में सागर भरने जैसा प्रयास होगा, फिर भी इस प्रतिवेदन को मूर्त व व्यावहारिक

रूप देने हेतु किए जाने वाले कतिपय प्रयासों का संक्षिप्त उल्लेख अग्रंकित है -

- अब तक शिक्षा प्रक्रिया का अंग होते हुए पूर्व प्राथमिक शिक्षा को समग्र शिक्षा के औपचारिक पक्ष में विधिक स्थान प्राप्त नहीं था, जिसे अब शामिल कर लिया जा रहा है; स्वास्थ्य एवं शिक्षा की अन्योन्याश्रिता का यह कार्यरूप में परिणति होगी।
- सबके लिए शिक्षा के संकल्प की प्रतिपूर्ति हेतु प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा एवं क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा देते हुए बाल्यावस्था की देखभाल को सम्यक एवं बहुमुखी विकास हेतु चिन्तन के केन्द्र में रखा गया है और यह भी प्रयास किया गया है कि विद्यार्थियों के विद्यालय या पढ़ाई छोड़ने की दर न्यूनतम हो।
- आज के वैश्विक बाजार की मांग के अनुरूप आई0आई0टी0 संस्थानों को बहु विषयक संस्थानों में परिवर्तित करने, व्यावसायिक शिक्षा को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर एवं मानदण्डों के सापेक्ष करने तथा विदेशी भाषा को सीखने पर बल देने की बात की गयी है।
- उच्च शिक्षा के केन्द्र विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में बिना श्रम एवं संसाधनों का अपव्यय किए गुणवत्तापूर्ण और उपयोगी बनाने के लिए अन्तर्विषयी अध्ययन एवं प्रत्येक सत्रान्त पर प्रवेश एवं निकासी की सुविधा की व्यवस्था की गई है।
- शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया निर्बाधरूप से चलती रहे इसमें शिक्षकों की भूमिका सर्वविदित है; इस सन्दर्भ में मानकों के सापेक्ष शिक्षकों की भर्ती, गुणवत्तापूर्ण व्यावहारिक प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रदत्त सुविधाओं पर विशेष जोर दिया गया है।
- विदेशी विद्यार्थियों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय छात्र कार्यालय के स्थापना की एक ओर जहाँ बात की गयी है, वहीं पर राष्ट्रीय विकास हेतु नेशनल रिसर्च फाउडेशन के स्थापना की बात भी की गयी है।
- शिक्षा के र्प्रत्येक स्तर एवं आयाम पर मानको का निर्धारण तथा स्कूल काम्प्लेक्स बनाने की भी बात की गई है।
- शिक्षा के समस्त आयामों की यथास्थिति के मूल्यांकन हेतु उच्च शिक्षा विभाग के अधिकारियों द्वारा कार्यान्यवयन एवं पुनर्विवेचन समिति के गठन की भी व्यवस्था की गई है।
- डिजिटल शिक्षा भारत में मन्थर गति से चलने वाली व्यवस्था थी परन्तु कोविड-19 के काल ने इस आपदा को शैक्षिक अवसर में परिवर्तित करने का कार्य किया जिसके लिए एन0ई0पी0 2020 में प्रबल संस्तुति की गई थी।
- देश की सुरक्षा के भविष्य को ध्यान में रखकर एन0सी0सी0 को वैकल्पिक विषय के रूप में रखने का निर्णय लिया गया है ताकि अनुशासित छात्र भविष्य में राष्ट्र के उत्तम रक्षक, सशक्त व सक्षम नागरिक बन सकें; साथ ही अभिप्रेरण हेतु राज्य एवं केन्द्र सरकार की योजनाओं के अन्तर्गत प्रदान किए जाने वाले रोजगार में एन0सी0सी0 प्रमाण-पत्र का लाभ और भारांक भी देने की योजना है।
- राष्ट्रीय शिक्षा योजना के सफलतापूर्वक क्रियान्यवयन के लिए सार्थक योजना के सभी हित धारकों, राज्य, केन्द्र, शिक्षक, शिक्षा पेशेवर, शिक्षाविद्, अभिभावक एवं अन्य सभी से सुझाव आमंत्रित किए गए। 7177 प्राप्त सुझावों में से 297 सिफारिशों को समय सीमा के अन्दर पूरा करने की जिम्मेदार प्रयुक्त एजेन्सियों से अपेक्षित है।

प्रत्येक बच्चे की अभिक्षमता की पहचान एवं विकास, साक्षरता एवं संख्यामकता (भाषा एवं गणित) के ज्ञान को बच्चों में विकसित करना, लचीली शिक्षा बनाना, सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में निवेश स्वीकारना, बच्चों को भारतीय संस्कृति से जोड़ते हुए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देना, सुशासन एवं सशक्तिकरण सिखाते हुए पारदर्शी चरित्र का निर्माण करना, विभिन्न भाषाओं का ज्ञान कराते हुए तकनीकी उपयोग एवं प्रयोग की जानकारी तथा मूल्यांकन प्रविधि का अवबोध एवं उत्कृष्ट शोध जैसे आयामों को ध्यान में रखकर देश की इसके पूर्व की दोनों शिक्षा नीतियों 1968 एवं 1986 के बाद प्रस्तुत शिक्षा नीति को सिद्धान्त रूप में स्वीकार कर संस्तुति की गई।

छात्रों में उद्देश्यों की सिद्धि हेतु जुनून, सशक्त मानसिकता, रूचि योग्यता एवं माँग के अनुरूप मानचित्र निरूपित कर मस्तिष्क में निर्माण हेतु सृजनात्मक चिन्तन का विकास एवं बदलते हुए वैश्विक व्यवसाय के परिप्रेक्ष्य में बहुआयामी व्यावसायिक योग्यता के विकास की आवश्यकता की प्रतिपूर्ति हेतु छात्रों को तैयार कर अपनी सभ्यता के साथ अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक बनाकर भारत के विकास में आधारभूत सहयोग की आवश्यकता की प्रतिपूर्ति की संकल्पना की गई है।

प्रस्तुत राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विद्यार्थी क्या सोचते है, तद्नुरूप कौशल, प्रशिक्षण, प्रतिस्पर्धा की योग्यता, मूल्याधारित समावेशी शिक्षा के विकास का भी सार्थक प्रयास किया गया है। शिक्षकों हेतु सेवा प्राप्ति के पूर्व विषयगत योग्यता, अभिवृद्धि परीक्षण एवं अवबोध के साथ व्यावसायिक दायित्व बोध तथा सेवारत प्रशिक्षण की अपेक्षा एवं व्यवस्था की गई है।

परीक्षाओं में चरणबद्ध सुधार के लिए राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशिका, आंकड़ा कोष एवं परामर्शदाता उपलब्ध कराने की बात की गयी है। इसके लिए ऑनलाइन चौट एवं टोल नम्बर की व्यवस्था भी किए जाने की सिफारिश है। ई-कंटेन्ट, ई-लर्निंग एवं दीक्षा प्लेटफार्मद्वारा शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों के ज्ञान में अभिवृद्धि को सहयोगात्मक उपकरण स्वीकारा गया है।

एन0ई0पी0 2020 शिक्षा के विभिन्न आयामों को वैश्विक ज्ञान प्रतिस्पर्धा, कुशलता, माँग के सापेक्ष तैयार करने के लिए बहुआयामी सार्थक प्रयास किया गया है तथा इस सन्दर्भ में केन्द्र सरकार द्वारा अनेकों योजनाए भी बनायी गयी है। इन योजनाओं एवं संकल्पों की सिद्धि अभी तो भविष्य के गर्भ में ही है लेकिन यह अवश्य कहा जा सकता है कि यदि ईमानदार प्रयास किया जाएगा तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भारत को अपने ज्ञान, कुशलता, सभ्यता एवं योग्यता के आधार पर वैश्विक सन्दर्भो में सक्षम नागरिक बनाने में अवश्य सफल होगी और यदि शिक्षा से जुड़े हुए सभी हितधारी अपने दायित्वों का निर्वहन करने की जिम्मेदारी से विमुख होगें तो यह नीति भी विगत दोनों नीतियों के सादृश्य ज्यादा कुछ परिवर्तन नही कर पाएगी, जिसकी कम से कम कोई भी विज्ञ भारतीय अपेक्षा नही करता है।

## आधार ग्रन्थ सूची-


- अग्रवाल जे0पी0; लैण्डमार्क इन द हिस्ट्री ऑफ मार्डन इण्डियन एजूकेशन, विकास पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली-1993
- चौबे एस0सी0; हिस्ट्री एण्ड प्रॉब्लम्स ऑफ इण्डियन एजूकेशन (द्वितीय संस्करण), विनोद पुस्तक मंदिर आगरा-1988
- सैकिया एस0; हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन इन इण्डिया, मनी मनीह प्रकाशन-1998
- सफाया आर0एन0; करेन्ट प्रॉब्लम इन इण्डियन एजूकेशन, 9वाँ संस्करण, धनपत राय एण्ड सन्स, दिल्ली-1983
- हायर एजूकेशन इन इण्डिया, उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
- नई शिक्षा नीतिः पढ़ाई, परीक्षा, रिपोर्ट कार्ड सब में होंगे बड़े बदलाव, आजतक, 30 जुलाई 2020
- नई शिक्षा नीति पर बी0जे0पी0 अध्यक्ष जे0पी0 नड्डा बोले-नई शिक्षा नीति नए भारत की जरूरतों को ध्यान में रखती है, पंजाब केसरी-29 जुलाई 2020
- आइए जाने आखिर देश की शिक्षा प्रणाली को बदलने के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की जरूरत क्यों पड़ी, दैनिक जागरण, 30 जुलाई 2020
- नई शिक्षा नीति-नवभारत टाइम्स, 31 जुलाई 2020
- न्यू एजूकेशन पॉलिसीः अब कैमिस्ट्री के साथ म्यूजिक, फिजिक्स के साथ फैशन डिजाइनिंग पढ़ सकेंगे छात्र, आजतक, 30 जुलाई 2020
- सिंह सरोज; नई शिक्षा नीति 2020 सिर्फ आर0एस0एस0 का एजेंडा या आम लोगों की बात भी, बी0बी0सी0 हिन्दी, 31 जुलाई 2020

# उत्तराखण्ड में सड़क-पुल आन्दोलन में गढ़वाली पत्र की भूमिका


## डॉ. मनोज सिंह बाफिला

*इतिहास विभाग, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल*


यह कोई आकस्मिक घटना नहीं कि 19वीं सदी, यातायात के आधुनिक साधनों की सदी, राष्ट्रीयता के उदय की भी सदी थी। भारत में भी यातायात व रेलवे के प्रसार ने भारतवासियों को राष्ट्र का रूप देने और उनमें राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने में बड़ी सहायता की।[1] उत्तराखण्ड में सड़कों के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाय तो प्रारम्भिक काल में यहां मात्र पगडंडियाँ (अजपथ) थीं। तीर्थ यात्राओं के विकास के साथ इन पगडंडियों को स्थायित्व मिलता रहा होगा। लेकिन चंद और परमार शासकों के काल के उत्तरार्ध तक यहां सड़कों का अभाव बना रहा। जो ग्रामीण रास्ते या पगडंडियाँ थीं, उनकी स्थिति संतोषजनक नहीं थी। गोरखों द्वारा अपनी शासन शैली के अनुरूप इस ओर ध्यान न दिया जाना स्वाभाविक था।[2]

उत्तराखंड में औपनिवेशिक अधिकार हो जाने के तुरन्त बाद सड़कों की समस्या समझी गयी। रामजे के काल (1856-84) में सड़कों और पुलों के निर्माण और मरम्मत का कार्य सर्वाधिक तीव्रता से हुआ। पर पौ के बंदोवस्त (1896) के समय गढ़वाल में अधिकाश सड़कें 5-6 फुट चौड़ी पर उबड-खाबड़ थीं। इस समय गढ़वाल में प्रथम श्रेणी की कोई सड़क न थी। अत: यातायात की समस्या बरकरार रही। अल्मोड़ा अखबार ने भी गढ़वाल की सड़कों की दशा पर चिन्ता प्रकट की थी।[3]

उत्तराखंड में कुली बेगार प्रथा के जन्म और विकास में सामन्ती तथा औपनिवेशिक शासन शैलियों के साथ यहां की भौगोलिक संरचना की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संचार साधनों के अभाव में शेष देश से कटा उत्तराखण्ड जहां विकास के लिए उपलब्ध सामग्री का दोहन नहीं कर सकता था वहीं देश में हो रही हलचलों से भी सम्पर्क सम्भव नहीं था। तब यातायात की व्यवस्था इतनी अधूरी और जटिल थी कि अनेक बार उसमें आदमी के अतिरिक्त जानवर की भूमिका हो सकनी भी संभव नहीं थी।[4]

उपरोक्त स्थिति को दृष्टिगत कर गढ़वाली लिखता है-''गढ़वाल जैसे पहाड़ी देश में जहाँ न गाड़ी की सड़कें हैं और न ऊँट आदी।...तमाम जिले में ऐसी सड़कें नहीं हैं जहां खच्चर जा सकें। अगर गांव-गांव में चौड़े रास्ते बना दिये जांय तो हाकिमों के दौरों के समय खच्चर से काम लिया जा सकता है।''[5] इसी तरह का विचार गढ़वाली ने नवम्बर 1908 को भी पेश किया था, जिसमें गाड़ी की सड़क को श्रीनगर व उससे आगे बनाने पर जोर दिया गया था।[6]

गढ़वाल में डिस्ट्रिक बोर्डों की बुरी दशा पर भी पत्र ने खेद व्यक्त किया।[7]* साथ ही डिस्ट्रिक बोर्ड द्वारा पुलों की मरम्मत न किये जाने पर भी गढ़वाली ने डिस्ट्रिक बोर्ड की कड़ी आलोचना की।[8]*

गढ़वाल में सड़कों का बहुत ज्यादा अभाव था। 1924 में काउन्सिल में एक प्रश्न के उत्तर में बताया गया था कि अल्मोड़ा में कुल 1450 व गढ़वाल में 1078 मील सड़कें हैं।[8] सड़क न होने से लोगों को जरूरत का सामान पीठ में ढोकर लाने के कारण बहुत महंगा, लगभग दुगुनी कीमत में मिलता था। घोड़ा खच्चर हेतु यदि कोई सड़क ठीक-ठाक थी तो वह थी दोगडा, बांधाट, पौड़ी लाइन, ऋषिकेश-बद्री केदार लाइन। अन्य सड़कों पर तकलीफ ही रहती थी। अन्नकाल के समय गढ़वाल की दशा और भी दयनीय हो जाती थी। दो-तीन-चार या इससे भी अधिक दिनों के रास्ते पर अनाज के लिए जाना पड़ता था। एक फेरी घर पर रखकर दूसरी फेरी के पहुँचते-पहुँचते प्रथम फेरी का अनाज खत्म हो जाता था। अत: गढ़वाली ने उक्त समस्या का विवरण देते हुए इसके निवारण हेतु सड़कों के निर्माण की प्रबल आवश्यकता बताई।[9] [10]

अगस्त 1917 को प्रान्तिक लाट सर जेम्स मेस्टन जब गढ़वाल के दौरे पर आये तो गढ़वाली ने गढ़वाल की जनता की प्रमुख समस्याओं में से एक- 'सड़क की समस्या' के सम्बन्ध में लिखा था।

गढ़वाल में 1924 में कुल 1078 मील सड़कों में से 965 मील सड़कें जिला बोर्ड के अधीन थीं।[11] इनकी खराब दशा पर गढ़वाली ने 1915 से ही लिखना प्रारम्भ कर दिया था।[12] 1917 में फिर पत्र ने इस सम्बन्ध में लिखा और डि. कमिश्नर का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने की कोशिश की।[13] ''डिस्ट्रिक बोर्ड के मेम्बरों का यह फर्ज था कि वे इन सड़कों की ऐसी दुर्दशा नहीं होने देते किन्तु उन्हें इतना ख्याल कहां हो सकता है।''[14]

गढ़वाली लगातार गढ़वाल में सड़कों व पुलों के अभाव के बारे में लिखता रहा। 24 अप्रैल 1920 के अंक में पत्र में 'सड़कें व पुल' लेख इसी संदर्भ में प्रकाशित हुआ। एक अन्य लेख में पत्र ने सरकारी उदासीनता पर खेद व्यक्त किया।[15]

9 अक्टूबर 1926 के गजट ऑफ इंडिया में ऋषिकेष-कर्णप्रयाग रेलवे लाइन निर्माण का प्रस्ताव व इस रेलवे लाइन हेतु जमीन लेने का अधिकार डि. कमिश्नर गढ़वाल व सुपरिटेन्डेंट देहरादून को लैंड रिक्वीजिशन एक्ट के अनुसार दिया गया था। पर 1927-28 के बजट में इसके लिए धन की व्यवस्था करना तो दूर रहा बजट सम्बन्धी भाषणों में इस रेलवे लाइन का जिक्र भी नहीं हुआ। उक्त समाचार देते हुए पत्र टिप्पणी लिखता है-

''इस रेलवे लाइन की उपयोगिता सिर्फ बद्रीनाथ-केदारनाथ के यात्रियों को लाभ पहुँचाने में ही नहीं है बल्कि इससे भी बढ़कर इसकी उपयोगिता सम्राट की उस प्रजा की जीवन रक्षा करने में है जो गढ़वाल में बसती है। बिना रेल के गढ़वाल में हजारों प्राणी संकट में हैं। न वहाँ ऐसी खेती हैं जिससे वहाँ के निवासियों के लिए अनाज पूरी तरह से पैदा हो और न बाहर से ही अनाज पहुँचाने की सुभीता है।''[16]

ज्ञात रहे कि जे.एम. क्ले, जो गढ़वाल के डिप्टी कमिश्नर थे ने अपनी एक रिपोर्ट में सरकार को लिखा था कि गढ़वाल की अन्न काल से तब तक किसी प्रकार से रक्षा नहीं हो सकती जब तक कि वहाँ रेलवे लाईन नहीं बनाई जाती।[17]

गढ़वाल में सड़क बनाने की बात 1970-80 के आस पास से ही आरम्भ होने लग गयी थी । 1916-17 में रेल लाईन की पैमाइश भी हुयी। पर ब्रिटिश सरकार के प्राय: 125 वर्ष के राज्य में गढ़वाल को 1927 तक एक गाड़ी की सड़क भी नसीब न हुयी थी[18] तो इस दौरान ब्रजमोहन चन्दोला ने गाड़ी सड़क का सवाल तेजी के साथ उठाया था।[19]

गढ़वाल में रेलवे लाइन कहाँ से कहाँ बने इस पर गढ़वाली लिखता है-''हमारा अपना मत है कि कोटद्वार से दोगडा होते हुए द्वारी के पहाड़ के अन्दर एक बड़ी डाट बनाकर बांगघाट और वहाँ से ज्वाल्पा देवी और कफोल्स्यूं, को होते हुए बुवाखाल के पहाड़ पर एक सुरंग देकर गंगोड़ी- राई होते हुए पौड़ी के पास से श्रीनगर को निकाली जावे।''[20]

1930 तक आते-आते गढ़वाल में गाड़ी सड़क व रेलवे लाइन की मांग प्रमुखता से उठने लगी थी। 1930 में पौड़ी में इस सम्बन्ध में एक बृहत सभा हुयी जिसमें कि प्रान्तीय लाट से मिलने का निश्चय किया गया था, पर सरकार ने नेताओं को जो उत्तर दिया वह यह था-''वर्तमान दशा में सरकार के लिए यह संभव नहीं है कि वह उस जिले की गाड़ी की सड़क के लिए इतना रूपया खर्च करे जिसके प्रबन्ध में उसे उसकी मालगुजारी की आमद से अधिक खर्च करना पड़ता हो।[21]

गढ़वाली ने उपरोक्त कथन पर रोष व्यक्त करते हुए इस कथन को न्याययुक्त नहीं माना और सरकार की गढ़वाल के प्रति इस उपेक्षा को 'उदासीनता' की संज्ञा दी।[22]

गढ़वाली में प्रकाशित लेखों में अब सड़क के सवाल पर ज्यादे पैनी व आक्रामक भाषा का इस्तेमाल होने लग गया था। 'गढ़वाल में रेल व मोटर गाड़ी की सड़क' लेख में ब्रजमोहन चन्दोला ने गढ़वाल में मोटर सड़क न होने को गढ़वाल के लोगों के स्वत्वों का अपहरण बताया है।[23]*

गढ़वाली को 1930 में महसूस होने लग गया था कि जब तक कोई व्यक्ति या संस्था सड़क के सवाल को अपने हाथ में नहीं लेगी व इस हेतु घोर प्रयास नहीं करेगी तब तक सफलता हाथ नहीं लग सकती। अत: इस आंदोलन को आगे बढ़ाने हेतु गढ़वाली ने उपरोक्त लेख के लेखक ब्रजमोहन चन्दोला व नारायण सिंह बहादुर का आह्वान किया कि वे इस सवाल को अपने हाथ में लेकर आगे बढ़ाएं।[24]

सरकार की उदासीनता पर पत्र लिखता है-''गढ़वाल में रेल और मोटर गाड़ी की सड़क न होने से वहाँ की जनता को कितना कष्ट है! कंगाली के कितने कठोर पाश से वह कसी हुयी है, इसे केवल एक गढ़वाली हृदय ही समझ सकता है। गढ़वाल का बच्चा-बच्चा अपने इस कष्ट को महसूस कर रहा है, किन्तु सरकार को यह महसूस नहीं होता।[25]

टिहरी गढ़वाल में व्याप्त सड़कों व पुलों की कमी के सम्बन्ध में भी गढवाली में वहां की जनता के पत्र आया करते थे। टिहरी के बाल कृष्ण भट्ट का एक पत्र 'पुल की आवश्यकता' शीर्षक से गढ़वाली में 16 सितम्बर 1934 को प्रकाशित हुआ था।[26]

गढ़वाली अपने जन्म 1905 से लगातार गढ़वाल मे सड़कों की कमी के सम्बन्ध में लिखता रहा और सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट करता रहा। फिर भी सरकार इस सम्बन्ध में उदासीन बनीं रही। अत: गढ़वाली ने 1936 में इस हेतु एक संस्था कायम कर अपना अधिकार प्राप्त करने का आह्वान किया और इस प्रकार गढ़वाली गाड़ी सड़क आंदोलन का जनक बना।[27]•

मई 1938 में जवाहर लाल नेहरू व उनकी बहिन विजय लक्ष्मी पंडित ने गढ़वाल में 5 दिन व्यतीत किये। नेहरू ने गढ़वाल के बारे में अपने अनुभव-'गढ़वाल यात्रा के वे पांच दिन'' शीर्षक से लिखे।[28]

नेहरू के ये अनुभव गढ़वाली के 15 मई 1938 के अंक में प्रकाशित हुए। उन्होंने भी गढ़वाल में गाड़ी की सड़क की आवश्यकता को शिद्दत के साथ महसूस किया था और गाड़ी की सड़क को गढ़वाल का स्वराज मानते हुए इसे जीवन-मरण का प्रश्न माना था।[29]

नेहरू ने गढ़वाल में सड़क न पहुँचने का कारण बताते हुए लिखा-''मेरा ख्याल है कि इसका कारण यह था कि सरकार की इच्छा यह रही कि गढ़वाल को विछिन्न और राजनीतिक हलचलों से अछूता ही रखा जाये, क्योंकि वहां से सेना में लोग भर्ती किये जाते है।''[30]

इस गाड़ी सड़क को शीघ्र बनाये जाने के सम्बन्ध में गढ़वाली के सम्पादक विश्वम्भरदत्त चंदोला ने 3 मई 1938 को देहरादून से जवाहर लाल नेहरू को पत्र भी लिखा था।[31]*

कदाचित गढ़वाली के सम्पादक विश्वम्भरदत्त चंदोला जानते थे कि गाड़ी सड़क बनाने हेतु नेहरू आदि नेताओं से दबाव तो डाला जा सकता है परंतु असली प्रयास तो गढ़वाल की जनता को ही करना होगा। चन्दोला अपने एक लेख में लिखते है-''गढ़वाल की 'ट्रंक रोड' की आवश्यकता का प्रमाण पत्र चाहे प. जवाहर लाल नेहरू दें या स्वयं महात्मा गाँधी जी, किंतु तब तक यह सड़क कभी नहीं बन सकती जब तक गढ़वाल में इस सड़क के सवाल को हल करवाने के पीछे वास्तव में मर-मिटने वाले लोग न हों।''[32]

1880 से गढ़वाल में सड़कों की स्थापना की मांग सरकार से होने लग गयी थी।[33] 1905 में स्थापित गढ़वाली ने लगातार इस सम्बन्ध में कई लेख, सम्पादकीय, प्रार्थना पत्र प्रकाशित किये, पर सरकार द्वारा सुनवाई न होने पर गढ़वाली ने 1936 में एक संस्था कायम कर इस प्रश्न को आगे बढ़ाने का सुझाव दिया था।[34] इस सुझाव की व्यवहार में परिणति ''गढ़वाल केन्द्रीय गाड़ी-सड़क कमेटी'' की स्थापना के रूप में हुयी।[35] 20 मार्च 1938 को गढ़वाल की जनता ने जोर-शोर से ''गाड़ी दिवस'' के माध्यम से सड़क का सवाल उठाया था और सरकार से यह मांग की गयी कि गढ़वाल की ट्रंक रोड दोगडा-लैंसडौन, पौड़ी-कर्णप्रयाग को तुरन्त बनाया जाय।[36]

तत्पश्चात 5 मई 1938 को श्रीनगर में प्रताप सिंह नेगी की अध्यक्षता में एक सम्मेलन गाडी सड़क आंदोलन हेतु आयोजित किया गया। जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में जवाहर लाल नेहरू थे। टिहरी के नेता श्रीदेव सुमन भी इस सम्मेलन में उपस्थित थे।[37] इसी दौरान कुछ लोगों ने 'गढ़वाल जागृत संघ' नाम से एक संगठन भी बनाया।[38]

गढ़वाल की जनता ने बार-बार सरकार से सड़क बनाने का आग्रह किया था और गढ़वाल की जनता की आवाज को बुलन्द करने का प्रमुख लाउड स्पीकर था गढ़वाली पत्र। 1938 के दौर में सड़क आन्दोलन के सवाल पर उदार व नम्र गढ़वाली की इस तरह की आक्रामकता अप्रत्याशित सी लगती है। पत्र ''गढ़वाल की ट्रंक रोड'' शीर्षक से लिखता है-

''गढ़वाल के लिए गाड़ी सड़क का सवाल वास्तव में मरने-जीने का सवाल है, यह मौज बहार का सवाल नहीं। यदि सरकार ने अब भी अपनी नीति जो उसकी गढ़वाल की इस सड़क की ओर वर्षों से चली आ रही है न बदली तो 'मरता क्या नहीं करता' कहावत के अनुसार बाध्य होकर सत्याग्रह के मार्ग का अवलम्बन करना पड़ेगा।''[39]

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्ररिप्रेक्ष्य में सत्याग्रह व असहयोग के विरोधी गढ़वाली का क्षेत्रीय समस्या- सड़क हेतु सत्याग्रह के मार्ग का अनुसरण करने की बात करना निश्चित ही क्षेत्रीय समस्याओं के प्रति उसके आक्रामक रुख को प्रदर्शित करता है व जनता की तकलीफों को दूर करने हेतु अपनी प्रतिबद्धता भी प्रदर्शित करता है।

''गढ़वाल की ट्रंक रोड'' शीर्षक से पत्र लिखता है-''इस सत्याग्रह (सड़क) का रूप कितना भयंकर होगा यह बात अभी-अभी सरकार के ध्यान में नहीं आ सकती। गढ़वाल, सरकार की काफी खुशामद कर चुका। हाथ जोड़ते-जोड़ते और खुशामद करते-करते वह थक चुका है। सब्र करने की हद पूरी हो चुकी है और अब अन्तिम उपाय केवल ''सत्याग्रह'' ही बाकी है। इसकी आजमाइश के लिए गढ़वाल तैयार हो रहा है।[40]

गढ़वाल केन्द्रीय गाड़ी सड़क कमेटी ने 6 नवम्बर 1938 को पौड़ी में सार्वजनिक सभा करने की घोषणा की। गढ़वाली ने इस संदर्भ में 'पौड़ी की आज्ञा का पालन करो' शीर्षक सम्पादकीय लिख जनता से इस सड़क आन्दोलन को सफल बनाने हेतु असहयोग का अस्त्र इस्तेमाल करने का आह्वान कर डाला। इतनी छटपटाहट व उग्रता गढ़वाली के लेखों व सम्पादकीयों में पहले कभी देखने को नहीं मिलती। एक अन्य टिप्पणी में पत्र लिखता है-

''गढ़वाल की गाड़ी सड़क का सवाल सन 1883 से चल रहा है, किन्तु 1938 तक 55 वर्षों के बीत जाने पर भी हमारी सरकार ने इधर ध्यान नहीं दिया। ...खुशामद हो चुकी, हाथ जोड़ाई हो चुकी, वैधानिक सब उपाय पूरे हो चुके हैं और अब यदि कोई उपाय शेष है तो वह वही असहयोग है जिसे गाँधी जी ने कार्य रूप में लाकर दिखा दिया है।[41]

गढ़वाली में प्रकाशित एक कविता ''जागृति गान'' के माध्यम से भी लोगों को आंदोलन हेतु तैयार करने का प्रयास हुआ।[42]

4,5,6,7,8, व 9 नवम्बर 1938 को 'केन्द्रीय गाड़ी सड़क कमेटी' व 'जागृत गढ़वाल संघ' के तत्वावधान में सड़क के सवाल पर पौड़ी में प्रदर्शन किया गया।[43] प्रदर्शन की सफलता व एकजुटता पर भी पत्र ने 'शाबाश गढ़वाल' सम्पादकीय लिखा।[44] यह आंदोलन उस दौर का सबसे व्यापक आधार वाला आन्दोलन बना। यहां तक कि गढ़वाल डिस्ट्रिक बोर्ड के मेम्बरों ने इसी गाड़ी सड़क के सवाल पर इस्तीफे दे दिये थे।[45]

गाड़ी-सड़क किधर बनायी जाय इस बारे में गढ़वाल में दो पक्ष थे। एक पक्ष का कहना था कि गरुड़-भिकियासैण से कर्णप्रयाग को सड़क बनाई जाय तो दूसरा पक्ष चाहता था कि लैंसडौन-पौड़ी सड़क को प्राथमिकता दी जाय। कुछ उभयनिष्ट पक्षों ने पौड़ी-श्रीनगर-कर्णप्रयाग, भिकियासैण-कर्णप्रयाग तथा टनकपुर-पिथौरागढ़ के बीच सड़क बनाने की मांग की थी। यद्यपि से सड़कें बाद में बनीं, पर इस विराट आन्दोलन से सिद्ध होता है कि जनता सड़क के अभाव में अपार कष्टों में जी रही थी।[46]

आन्दोलन की बढ़ती संभावना को देखते हुए दिसम्बर 1938 के अन्त में तत्कालीन कांग्रेसी सरकार के मत्रीमंडल के प्रमुख सचिव गोविन्द बल्लभ पन्त के विशेष सहयोग से गाड़ी सड़क की मांग के साथ-साथ बसों के किराये पर पांच आना बढ़ी हुयी रकम का सवाल भी हल हो गया। इस सम्बन्ध में 29 दिसम्बर 1938 को सरकारी वक्तव्य भी प्रकाशित हुआ।[47] गढ़वाली ने उपरोक्त संदर्भ में 'सफलता हो कर रही' सम्पादकीय में सड़क की मांग मान लिये जाने पर अपार प्रसन्नता व्यक्त की तथा गढ़वाल की संघ शक्ति और गोविन्द बल्लभ पंत द्वारा किये गये प्रयासों की सराहना की और गढ़वाल की जनता से आगे भी जागृत रहने, गढ़वालियों का संगठन दृढ़ करने व गढ़घ्वाल व्यापार संघ की स्थापना करने का सुझाव दिया।[48]

गढ़वाली ने गढ़वाल में चले इस विराट गाड़ी सड़क आंदोलन के सम्बन्ध में समाचार पत्रों द्वारा अपनाये गये उदासीन रुख की भी आलोचना की। शक्ति की हल्की-फुल्की आलोचना करते हुए पत्र कुमाऊँ कुमुद व देहली के अर्जुन व कानपुर के प्रताप की तीव्र आलोचना करता है। साथ ही गढ़वाली, हिन्दुस्तान, आगरा के सैनिक व लाहौर के मिलाप की गढ़वाल के सड़क आन्दोलन के प्रति सहानुभूति के लिए प्रशंसा करता है।[49]

टिहरी में भी सड़कों का बहुत अभाव था। जंगलात विभाग ने सबसे पहले एक बैलगाड़ी की सड़क को शिवपुरी से गंगोत्री की ओर निकाला था। फिर महाराज कीर्ति शाह ने भी उसी लीक पर बैलगाड़ी की सड़क बनाने का इस्टीमेट बनवाया था, पर यह कार्यरूप में परिणित नहीं हो सका फिर रिजेन्सी कौंसिल ने

ऋषिकेश-टिहरी मोटर सड़क का इस्टीमेट बनवाया। अक्टूबर 1939, में यह मोटर सड़क 12 मील टिहरी तक बनना शेष थी।[50] इस पर पत्र टिप्पणी करता है- इस सड़क के बनने से हमारी बहुत पुरानी मांग पूरी हो जाएगी।[51]

इस प्रकार अपनी शुरूआत से सड़क की मांग करते-करते गढ़वाली 1936 में एक संस्था कायम कर इस हेतु आन्दोलन करने की बात करता है। इस सन्दर्भ में असहयोग व सत्याग्रह के मार्ग का अनुसरण करने की बात करना निश्चित ही उदार व नम्र गढ़वाली द्वारा जनता के इस कष्ट को तीव्रता के साथ महसूस किये जाने को प्रदर्शित करता है। अत: गढ़वाली को गाड़ी सड़क आन्दोलन का जनक मानना कोई अत्युक्ति नहीं है।

## संदर्भ सूची-


1. पाठक, शेखर: उत्तराखंड में कुली बेगार प्रथा-पृ. 247-250
2. पाठक, शेखर: उत्तराखण्ड में कुली बेगार प्रथा, पृ.4
3. गढ़वाली: अगस्त 1906, भाग-2, अंक-4, 'गढ़वाल में कुली उतार'
4. गढ़वाली: नवम्बर 1908, भाग-4, अंक-7
5. गढ़वाली: मई 1915, भाग-11, अंक-1
   *''डिस्ट्रिक बोर्ड की सड़कें उचित देख-रेख में न होने के कारण कहीं-कहीं पर तो ऐसी बुरी दशा को पहुंच गयी हैं कि उन पर तांगा आना-जाना भी बड़ी कठिनता से हो सकता है। सड़क और पुल टूट गये तो उनकी मरम्मत का शीघ्र और उचित प्रबन्ध नहीं किया जाता।''
6. गढ़वाली: उपरोक्त
   *'तौलीदान गनलाइन व ज्वाल्पा देवी के ऊपर इडगड़ की गाड़ पर एक लकड़ी का पुल है। यह वही पुल है 15-16 वर्ष पहले जिसकी मरम्मत मुल्क पर उतार लगाकर की गई थी और भरसार के जंगल से कोई तीन महिनों में बेचारी गरीब प्रजा उस पुल के लिए शहतीर ला सकी थी। उन शहतीरों ने पूरे तीन मास तक बेचारी प्रजा को मारे-मारे ही नहीं फिराया बल्कि तीन मनुष्यों की बलि भी ली। क्या अब भी डिस्ट्रिक बोर्ड उस पुल को उतार में ही बनायेगी या स्वयं कुछ करने की कृपा करेगी।'
7. पाठक, शेखर: पूर्वोक्त-पृ.-251
8. गढ़वाली: नवम्बर 1916, लेख: 'अच्छी सड़कों की आवश्यकता'
9. गढ़वाली: 15 सितम्बर 1917, वर्ष -13, पा.-28.
10. पाठक, शेखर: पूर्वोक्त, पृ.-251
11. गढ़वाली: मई 1915, भाग-11, अंक-1
12. गढ़वाली: 29 सितम्बर 1917, वर्ष-13, पाक्षिक अंक-29
13. गढ़वाली: 24 अप्रैल 1920, वर्ष-15, अंक-23, पाक्षिक अंक-90, 'सड़कें पुल'
14. गढ़वाली: मई 1918 'हमारे देश में न रेल न गाड़ी की सड़क'
    *''गढवाल में गाड़ी की सड़क की सर्वे हुयी, नक्शे बने, किन्तु फल कुछ नहीं। पहाड़ जैसे तब थे वैसे अब हैं।...मि. बलस्टर ने अन्नकाल से छुटकारा पाने हेतु गाड़ी की सड़क शीघ्र बनाने पर जोर दिया था, किन्तु उनकी सुनी न गयी। आज गाड़ी की सड़क होती तो आधे से ज्यादा कठिनाई सुगम हो गयी होती।''
15. गढ़वाली: 26 फरवरी 1927, वर्ष-22, अंक-21
16 गढ़वाली: 26 फरवरी 1927, वर्ष-22, अंक-21
17. गढ़वाली: उपरोक्त
18. गढ़वाली: उपरोक्त
19. गढ़वाली: उपरोक्त व गढ़वाली: 30 अक्टूबर 1926, वर्ष-22, अंक-14
20. गढ़वाली: उपरोक्त
21. गढ़वाली: 28 जून 1930, वर्ष-26, अंक-9, लेख: 'गाड़ी की सड़क'- घनानन्द बहुगुणा
22. गढ़वाली: 28 मई 1931, वर्ष-26, अंक-48, सम्पादकीय- 'गढ़वाल में रेल व मोटर की सड़क'
23. गढ़वाली: 21 मई 1931, वर्ष-26, अंक-47
    *''1815 से अब तक 115 वर्ष हो चुके हैं और आज तक गाड़ी की सड़क व रेल न होने के कारण गढ़वाल में कोई पर्याप्त वाणिज्य व व्यवसाय नहीं हो सका है। गढ़वाल को करोड़ो रूपये की अकथनीय हानि हुयी है और हमको महादु:ख पहुँचा है। क्या भारत के नेता इस गढ़वाल के ऋण के उत्तरदायी नहीं है? फिर कौन सा अपराध है जिसके कारण भारत सरकार व भारत के नेता असहाय गढ़वाल को साधारण सहायता भी युगों से नहीं दे रहे हैं''
24. गढ़वाली: 28 मार्च 1931, वर्ष-26, अंक-48 'गढ़वाल में रेल व मोटर की सड़क-सम्पादकीय
25. गढ़वाली: पूर्वोक्त
26. गढ़वाली: 16 सितम्बर 1934, वर्ष-30, अंक-9, सा.अंक-148
27. गढ़वाली: 9 अगस्त 1936, वर्ष-32, अंक-8 सम्पादकीय टिप्पणी- 'गाड़ी की सड़क'
    *''गढ़वाल में गाड़ी की सड़क बनाये जाने की बात सुनते-सुनते पचास वर्ष हो गये हैं। यदि सरकार अब भी टाल बराई कर दे तो गढ़वाल को एक संस्था कायम कर यह अधिकार प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए।''

28. स्मारिका: स्वाधीनता संग्राम में गढ़वाल (1997-98), प्रकाशक- जिला पंचायत पौड़ी गढ़वाल, पृ.-60 व 'गढ़वाली': 15 मई 1938, वर्ष-34, अंक-1
29. गढ़वाली: उपरोक्त 'गढ़वाल का स्वराज्य-गाड़ी की सड़क'-पं. जवाहर लाल नेहरू
30. गढ़वाली: पूर्वोक्त-'गढ़वाल के पांच दिन'-जवाहर लाल नेहरू, पृ.-1
31. गढ़वाली: पूर्वोक्त: 'नेहरू जी को चिट्ठी', पृ-2
    *''प्रिय नेहरू जी! श्रीनगर आकर आपसे मिलने की बड़ी इच्छा थी, किन्तु न आ सका। आप ने देख लिया होगा कि गढ़वाल को गाड़ी की सड़क बिना कितना कष्ट है। इस गाड़ी सड़क के लिए गढ़वाल आज लगभग 50 वर्षों से चिल्ला रहा है पर उसकी चिल्लाहट की कोई सुनवाई नहीं होती। इस समय आपके गढ़वाल में आने से गढ़वाल को भरोसा हो रहा है कि आपकी सहायता से उसे गाड़ी की सड़क के मामले में बहुत कुछ सहायता मिल सकेगी।''
32. गढ़वाली: 15 जुलाई 1938, वर्ष-34 अंक, 2
33. गढ़वाली: 30 अक्टूबर 1926, वर्ष-22, अंक -14
34. गढ़वाली: 9 अगस्त 1936, वर्ष-32, अंक-8 (सम्पादकीय )-'गाड़ी की सड़क'
35. गढ़वाली: 1 अक्टूबर 1938, वर्ष-34, अंक-8
36. गढ़वाली: 15 दिसम्बर 1938, वर्ष-34, अंक-7, 'गढ़वाल की ट्रंक रोड'
37. धस्माना, राजेन्द्र: सम्पा.-'गढ़वाल गौरव' (स्मारिका 1999), पृ.-18
38. धस्माना, राजेन्द्र: उपरोक्त
39. गढ़वाली: 15 मई 1938, वर्ष-34, अंक-11 'गढ़वाल की ट्रंक रोड'
40. गढ़वाली: पूर्वोक्त
41. गढ़वाली: 1 नवम्बर 1938, वर्ष-34, अंक-10, सम्पादकीय: '''पौड़ी की आज्ञा का पालन करो''
42. गढ़वाली: 1 नवम्बर 1938, वर्ष-34 अंक-10, 'जागृति गान'-सोहन लाल त्रिवेदी
    *''जाग रे जाग पहाड़ी देश
    लिये नव युग का नव संदेश
    जगा बंगाल, जगा पांचाल, जागा है सारा देश अशेष
    जाग तू भी मेरे अभिमान
    बोर बलवानों के गढ़देश। [विस्तार हेतु देखें: अध्याय -4, हिन्दी भाषा की कविताएं]
43. गढ़वाली: 15 नवम्बर 1938, वर्ष-34, अंक-11
44. गढ़वाली: उपरोक्त, सम्पा.-'शाबाश गढ़वाल'
45. गढ़वाली: उपरोक्त
46. पाठक, शेखर: उत्तराखण्ड में कुली बेगार प्रथा, पृ.-251
47. गढ़वाली: 15 जनवरी 1939, वर्ष-34, अंक-15
48. गढ़वाली: उपरोक्त
49. गढ़वाली: उपरोक्त
50. गढ़वाली: 1 अक्टूबर 1939, वर्ष-35, अंक-11, 'टिहरी की मोटर सड़कें व जनता'-ज्योतिशरण रतूड़ी

# मान्यवर कांशीराम की विचारधारा का दलित कविता पर प्रभाव


## मुकेश कुमार भारतीय

*शोध छात्र, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ*


मान्यवर कांशीराम का जीवन 'बहुजन समाज' के लिए पूर्णतया समर्पित था। वे अपना जीवन 'बहुजन समाज' के लिए समर्पित कर चुके थे। उन्होंने अपने निजी स्वार्थ के लिए कभी कुछ नहीं माँगा। हमेशा गरीब दलितों के लिए ही सारे साधनों को जुटाने का प्रयास किया। उन्होंने हमेशा दलितों के उत्थान हेतु संघर्ष किया। उनको जो भी रास्ता उचित लगा उस पर चलकर ही उन्होंने सभी दलितों के सुख को प्राप्त करने का प्रयास किया। मात्र बातों से ही नहीं, अपने कर्म से भी उनके सभी स्वप्नों को पूरा किया। उनके इन्हीं सब प्रयासों को साहित्यकारों ने दिखाने का प्रयास किया है।

मा. कांशीराम जी का प्रभाव सबसे अधिक कविता पर हुआ है। इनका पहला आह्वान परिवर्तन के लिए ही था। उन्होंने समाज में वर्षों से चली आ रही गलत कुरीतियों का अन्त करके समाज में दलित वर्ग के लिए सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए बहुत संघर्ष किया। उनका मुख्य नारा ही परिवर्तन था। मा. कांशीराम जी समाज में बाह्य आडम्बर को समाप्त करके एक नए समाज का स्वप्न देखते थे और अपने उसी स्वप्न को पूर्ण करने के लिए वे परिवर्तन का आह्वाहन करते हैं।

डॉ. कुसुम वियोगी की कविता 'पीड़ा जो चीख उठी' में कवयित्री ने भी परिवर्तन की बात को उठाया है। उनकी इस कविता पर हम मा. कांशीराम जी का प्रभाव देख सकते हैं-

*"उठ न सका तू सदियों से,*
*अब तक शोषण सहके,*
*चिंगारी अंगारा बनकर,*
*आज हृदय में दहके।।*
*उठ रे बंधुआ। बेगारी का*
*कब तक बोझा ढोना है।*
*परिवर्तन तो परिवर्तन है,*
*आज नहीं कल होना है।"*[1]

मा. कांशीराम ने किसी भी प्रकार का कोई बंदिश को मानने से इनकार किया था। वे दलित, गरीब वर्ग को वर्षों से छुटकारा दिलाना चाहते थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'सदियों का संताप' में उनके इन्हीं विचारों को देखा जा सकता है-

*"दोस्तो,*
*बिता दिए हमने हजारों वर्ष*
*इस इन्तजार में,*
*कि भयानक त्रासदी का युग*
*अधवनी इमारत के मलबे में।*
*दबा दिया जाएगा किसी दिन-*
*जहरीले पंजों समेत।*
*फिर हम सब*
*एक जगह खड़े होकर*
*हथेलियों पर उतार सकेंगे*
*एक-एक सूर्य*

*जो हमारी रक्त शिराओं में*
*हजारों परमाणु क्षमताओं की ऊर्जा*
*समाहित करके*
*धरती को अभिशाप से मुक्त कराएगा।"*[2]

मा. कांशीराम जी के अथक परिश्रम से दलित वर्ग में आशा की किरण जागी और उस वर्ग ने अब चौन की सांस लेना शुरू कर दिया है। 'बेचौन' जी के शब्द इसी प्रभाव को दिखाते हैं-

*"सिसक रहा है चांद और,*
*तड़प रही है चांदनी।*
*गली-गली दरिद्रता,*
*सुनाए गम की रागनी।*
*जिन्दगी गरीब की अमीर का शिकार है।*
*जलाओं दीप साथियों कि घोर अंधकार है।"*[3]

मा. कांशीराम जी मानवतावाद के सबसे बड़े पक्षधर थे। उनके इन्हीं मानवतावाद के विचारों को ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपने इस काव्य में अभिव्यक्त किया है-

*"जिस रास्ते चलकर तुम पहुंचे हो*
*इस धरती पर*
*उसी रास्ते चलकर आया मैं भी*
*फिर तुम्हारा कद इतना ऊँचा*
*कि आसमान छू लेते हो आसानी से*
*और मेरा कद इतना छोटा*
*कि मैं छू नहीं सकता*
*जमीन भी।"*[4]

मा. कांशीराम जी ने दलितों को ऊँचे पदों पर पहुँचाने का सतत प्रयास किया और उनके जीवन को सम्मानजनक बनाने की कोशिश की। उनके इन्हीं प्रयासों को डॉ; दयानन्द बटोही जी ने अपने कविता में अभिव्यक्त किया है-

*"जूता गांठते।*
*हाथ कांपता है,*
*फिर भी गांठते हो।*
*तुम्हारी झुर्रियां तनी-तनी खुरदरी*
*और बेबसी*
*पसीना में तैरता खून*
*तुम थक गए?*
*कब नकारोगे?*
*अब हम सभी जूता गांठेगे।"*[5]

जब हमारा देश स्वतन्त्र भी नहीं हुआ था तब भी दलित गुलामों की जिन्दगी जीने को मजबूर थे। वे अपने से ऊपर सभी वर्गों की सेवा करते थे। मा. कांशीराम जी का जन्म तो आजाद भारत से कुछ वर्ष पहले हुआ था परन्तु फिर भी उन्होंने गुलाम दलितों के विषय में विचार किया है और उनके इसी विचारों का प्रभाव रामदास निमेश की कविता में मिलता है-

*"पहले हमको दो आजादी।*
*फेरि लड़ो जंगे आजादी।*
*लोग बहिष्कृत हैं स्वदेश में।*
*वंचित, दलित, अछूत भेष में।।*
*भारत भूमि हमारी माता।*
*है स्वराज हमको भी भाता।*

*क्यों स्वदेश में दास कहावें।*
*आजादी से हम क्या पावें?"*[6]

शिक्षा को सबसे महत्वपूर्ण हथियार मा. कांशीराम जी ने माना था। उन्होंने सभी दलितों को यह बताया था कि किसी भी कीमत पर शिक्षा को प्राप्त करने से वंचित मत रहना। शिक्षा को प्राप्त करके ही तुम अपना और अपने वर्ग का उद्धार कर सकते हो। शिक्षा के बिना तुम कोई लड़ाई नहीं लड़ सकते हो तुम्हारी सारी लड़ाई अधूरी रह जायेगी।

मा. कांशीराम जी की ही बात को डॉ. धर्मवीर ने अपनी कविता 'हीरामन' के माध्यम से कहा है-

*"भूमि बँटे न बँटे*
*सम्पत्ति मिले न मिले*
*बच्चों को पढ़ाते जाओ,*
*भूखे मर कर भी।"*[7]

डॉ. एन. सिंह की वाणी में स्वार्थी, चालाक और धोखेबाज नेताओं पर टिप्पणी की गई है। इसमें कांशीराम के ही विचारों की अभिव्यक्ति को दर्शाया गया है। कविता को पढ़कर ऐसा लगता है कि ये स्वर डॉ. एन. सिंह के न होकर स्वयं कांशीराम जी के हैं।

*"सावधान*
*आ रहे हैं भेडिये।*
*गाय के भेष में*
*उनकी वाणी में जो अमृत है,*
*दरअसल वह*
*विष है। जो कान से दिल तक पहुँचकर*
*धीरे-धीरे असर करता है।*
*वह तुम्हारे अस्तित्व का*
*सौदा करने आ रहे हैं,*
*बड़ी विनम्रता से*
*कुछ देने का वायदा करक*
*कुछ बहुमूल्य ले जाएंगे।*
*फिर लौटकर नहीं आएंगे*
*इसलिए*
*इससे पहले की वे तुमको*
*पहचानने से मना कर दें*
*तुम*
*दोस्त और दुश्मन को*
*पहचान लो।"*[8]

यहाँ पर भी डॉ. शिरोमणि होरिल ने अपने काव्य में मा. कांशीराम जी के ही विचारों को प्रगट करते हुए वर्तमान समय के राजनेताओं पर करारा व्यंग्य किया है-

*"नयन का दोष क्या जब नयन के सितारे बदल गए।*
*मत मिला संसद में बैठते ही नजारे बदल गए।*
*कल बने ब्रम्हचारी, आज वो कुंवारे बदल गए।*
*बेच डाला देश को सुना है रखवाले बदल गए।"*[9]

जब हमारा देश आजाद हुआ तब हमारे देश को पूर्णतया गुलामी से मुक्ति मिल गई। सभी को अपने-अपने कार्यों को अपने तरीके से करने की छूट मिल गई। मा. कांशीराम जी ने 'बहुजनों' के उद्धार के लिए जिस समिति का गठन किया था उसे, वो अच्छी तरह से कर सकें। इन्हीं कार्यों का उल्लेख बाबा पुरूषोत्तम की कविता में व्याप्त है-

*"आजादी आई, खूब कीनी भलाई,*
*और जनता अपनाई घुम-घूम विदेशन की।*

*जान तक गँवाई, सही सिर पै तबाही,*
*कहें पुरूषोत्तम गाई, सब सुनै प्यारे भाई,*
*बारी बहुत दिनों में आई, शेडयूल्ड कास्ट फैडरेशन की।"*[10]

कांग्रेस पार्टी को आधार आजादी से पहले ही मिल गया था। उस पार्टी में सभी बड़े तबके के लोग थे। वे लोग केवल अपना ही स्वार्थ देखते थे। बाकी और दूसरे के कोई भी सुख या दुख से कोई मतलब नहीं था। मा. कांशीराम जी ने भी कांग्रेस पार्टी का विरोध किया था। उनके इन विरोधी विचारों का प्रभाव लाखन राम तूफानी की कविता में व्याप्त है-

*"ओ बड़ी अम्मा कांग्रेस बापू का नाम डुबोती है।*
*हम भूखे-नंगे चिल्लाते सेठों को दूध पिलाती है।*
*गंदी गलियों में तड़प-तड़प हम रोवें दाने-दाने को*
*हमको अमरीकी पाउछर का, सपरेटा दूध पिलाती है।"*[11]

धार्मिक तीर्थ स्थलों व मन्दिरों में जिस प्रकार का भेद-भाव व्याप्त था। उसी की अभिव्यक्ति अपनी कविता में लालचन्द 'राही' जी ने पिरोया है। मा. कांशीराम जी ने धार्मिक भेद-भाव की भावना का डटकर सामना किया था। उनके विचारों को यहां पर अभिव्यक्ति मिली है। लालचन्द राही की कविता में उनके क्रान्तिकारी स्वरों को दर्शाया गया है-

*" "हाँ" रामरूपी परम सत्य अमर हो गया*
*वाल्मीकि की कलम से*
*किन्तु डाकू की कलम से अमर हुआ राम*
*कैद कर लिया गया*
*छुआ-छुत की बुनियाद पर खड़े मन्दिर में?*
*राम की ओट में छुपा हुआ अनाचार मन्दिर से भागकर*
*हरिजनों पर अब भी जुल्म ढा रहा है।*
*यदि अनाचार बढ़ता रहा*
*तो कोई नहीं रोक सकेगा*
*धू-धू कर जलने से*
*लंका के समना मेरी सोन चिरैया को*
*मेरी मातृभूमि को।"*[12]

मा. कांशीराम जी के भाषणों में दलित वर्गों को जगाने का तीखा आह्वान था। उनके क्रांतिकारी विचारों को जयप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविता में अभिव्यक्त किया है-

*"तुम*
*यह भी जानते हो कि तुम पर।*
*कहां से कौन वार कर रहा है?*
*तीक्ष्ण बाणों से। लहू-लुहान होकर भी*
*तुम यह सोचकर चुप हो कि*
*यह भाग्य में लिखा है*
*और जमाना। तुम्हारी लाशों पर*
*लहू के फूल खिलाकर*
*उन फूलों में। तुम्हारे भोलेपन की।*
*जी तोड़ मेहनत से उपजी*
*खुशबू से*
*आनंदित है, मगन है।।"*[13]

मा. कांशीराम जी पूर्ण लोकतंत्र के हिमायती थे। वे सम्पूर्ण समाज में सभी के लिए समान तरह का रहन-सहन ही चाहते थे। इसके लिए उन्होंने जी-तोड़ मेहनत की, उस दलित वर्ग को समाज में सामान्य जन-जीवन का स्तर रखने के लिए प्रयासशील रहे। इस कविता में कुछ इसी तरह की भावनाओं की अभिव्यक्ति को स्वर मिला है-

*"भारत का लोकतंत्र*
*शोषण का नकाब ओढ़कर*
*असंवैधानिक सेज पर*
*सुहागरात मना रहा है*
*नेता जी ने लूट की, दुल्हन के हाथ पीले किए*
*सेठ जी ने*
*तिजोरी के नोट गीले किए।"*[14]

वर्ग-भेद न पहले कभी मिटा था न आज भी मिट पाया है। हाँ, उसके स्वरूप में कुछ परिवर्तन अवश्य आ गया है, परन्तु अभी भी जाति-पाँति की भावना लोगों के हृदय में व्याप्त है, इसीलिए मा. कांशीराम जी दलितों के हृदय में आत्म-सम्मान की भावना को जगाना चाहते थे। ब्राम्हणों के बनाए नियमों का खण्डन ही ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में व्याप्त है-

*"तुम्हारे रचे शब्द*
*तुम्हें ही डसेंगे सांप बनकर*
*गंगा किनारे कोई वट वृक्ष ढूंढ लो,*
*कर लो भागवत का पाठ*
*आत्मतुष्टि के लिए*
*कहीं अकाल मृत्यु के बाद*
*भयभीत आत्मा*
*भटकते-भटकते*
*किसी कुत्ते या सुअर की मृत देह में*
*प्रवेश न कर जाए।*
*या फिर पुनर्जन्म की लालसा में*
*किसी डोम या चूहड़े के घर*
*पैदा न हो जाए।*
*चूहड़े या डोम की आत्मा*
*ब्रम्ह का अंश क्यों नहीं है,*
*मैं नहीं जानता,*
*शायद आप जानते हैं।"*[15]

आजकल समाज में जैसा माहौल चल रहा है, उसमें राजनीतिक पार्टियां अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए दलित वर्ग को तरह-तरह के प्रलोभन दिखाती हैं। वे उनका फायदा उठाना चाहते हैं। मा. कांशीराम जी ने दलितों को बार-बार उनके अधिकारों का ज्ञान कराके, उनको सम्मानजनक स्थिति में पहुँचाया है। इन्हीं विचारों का प्रभाव अपनी कविता में कवयित्री मीनू सागर ने किया है। उन्होंने भी वर्तमान समय के दोहरे व्यक्तित्व वाले राजनेताओं पर तीखी टिप्पणी की है। उनके विचारों में मा. कांशीराम जी का प्रभाव स्पष्टतया प्रकट होता है।

*"ऐ*
*बहेलिये रूपी दलितों के नरसंहारी*
*बचकर, भागकर*
*अब तू कहां जा पायेगा?*
*हर जगह मेरी भूख प्यास*
*और चूसे हुए खून को*
*आहें, कराह पाएगा।"*[16]

निष्कर्षत: कविता को अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम माना गया है। वो पूरी तरह से उचित जान पड़ता है। कविता पर मा. कांशीराम जी का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से व्याप्त रहा है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. पीड़ा जो चीख उठी-डॉ. कुसुम वियोगी, पृ. 31.
2. सदियों का संताप-ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृ. 25.
3. नई फसल-श्यौराज सिंह बेचौन, पृ. 14.
4. न्यायचक्र-ओम प्रकाश वाल्मीकि, 15 फरवरी, 14 मार्च 1992.
5. अंगुत्तर-डॉ. दयानन्द बटोही, जनवरी-फरवरी-मार्च 1994, पृ. 49.
6. भीमकथामृतम्-रामदास निमेश, पृ. 56.
7. हीरामन-डॉ. धर्मवीर, पृ. 76.
8. दर्द के दस्तावेज-डॉ. एन. सिंह, पृ. 144.
9. दर्द के दस्तावेज-डॉ. शिरोमणि होरिल, पृ. 94.
10. श्री संत शिरोमणि (भगवान रविदास) बाबा पुरूषोत्तम बौद्ध, पृ. 6.
11. राजनैतिक रामराज्य का कीर्तन-लाखन राम तूफानी, पृ. 3.
12. मूक नहीं मेरी कविताएं-लालचन्द राही, पृ. 3-4.
13. उजाले की आगवानी-जयप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 40.
14. सुखद पत्रिका-श्यौराज सिंह बेचौन, 16 मई 1882, चन्दौली
15. शायद आप जानते हों-ओमप्रकाश वाल्मीकि (दैनिक नवभारत टाइम्स),पृ.26.
16. स्मारिका संदेश (मुरादाबाद)-जुगुल किशोर, 14 अप्रैल 1983, पृ. 82.

# मुगलकालीन विदेशी यात्रियों की दृष्टि में भारतीय महिलाओं की स्थिति


## आशु त्यागी

*पी०एच०डी० रिसर्च स्कॉलर, आर०जी०पी० कॉलेज, मेरठ*


मुगलकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति बड़ी दयनीय तथा शोचनीय थी। मुगलकाल में पर्दा प्रथा, बाल-विवाह सती प्रथा आदि कुप्रथाओं ने अपनी जड़े गहरी बना ली थी। हिन्दू और मुस्लिम महिलाएँ दोनों के लिये पर्दा अनिवार्य सा हो गया था। इसे चाहे इस्लामिक प्रभाव माने या मुसलमान शासकों एवं सरदारों का दुराचार यह कुप्रथा धीरे-धीरे प्रथा के रूप में दृष्टिगोचर होने लगी। निम्न जाति की स्त्रियाँ ही घर से बाहर जा सकती है, परन्तु हिन्दू स्त्रियाँ घर पर ही रहती थी, वे घर से बारह नहीं जा सकती थी। मुसलमानों मे पर्दा प्रथा के नियम हिन्दुओं से भी अधिक कठोर थे। यूरोपीय यात्री डेला वेले ने इस संबंध में लिखा है कि ''मुस्लिम महिलायें जब तक बेईमान या गरीब न हो बाहर नहीं आती थी, मुस्लिम अपनी स्त्रियों को अपने सम्बन्धियों से बात करने की अनुमति नहीं देते थे। वह केवल अपनी ही उपस्थिति में ही बात करने देते थे।''

मनूची ने इस बारे में लिखा है कि मुस्लिम समाज मे स्त्रियों से अपने चेहरे से पर्दा हटाने के लिए कहना अत्यन्त अपमान जनक था। बर्नियर भी हिन्दू समाज की महिलाओं में व्याप्त पर्दा प्रथा का वर्णन करते हुए कहते है कि पर्दा धनी और समृद्धशाली परिवार तक ही सीमित था। निर्धन स्त्रियाँ विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में रहनी वाली, खेतों में काम करती थी आर्थिक रूप से पर्दा धारण करने में असमर्थ थी। मुगलकाल में लड़की के जन्म को दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता था था और लड़के के जन्म पर खुशियाँ मनायी जाती थी। बाल-विवाह समाज में इतना अधिक प्रचलित था कि समाज में दिन-प्रतिदिन विधवाओं की स्थिति बढ़ती चली गयी थी परन्तु उन्हें पुनर्विवाह करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। मुगलकाल में सती प्रथा प्रचलित थी, इसका विवरण सर्वप्रथम फादर मान्सरेट ने दिया जो अकबर के शासनकाल मे भारत आया था। इस सम्बन्ध में वह कहता है कि विधवाओं को नशीली दवा देकर बेहोश कर दिया जाता था, ताकि उन्हे जलने का दर्द महसूस न हो और तब अर्द्धबेहोशी की हालत में ही उन्हें चेतावनी प्रार्थना और आश्वासन के साथ चिता पर धकेल दिया जाता था। अक्सर उन्हें बलपूर्वक ही चिता पर बिठाया जाता था। यदि चिता से कूदकर भागने की कोशिश करती थी तो उन्हे डंडो और सांकड़ो से ऐसा करने से रोका जाता था।[1]

मुगलकालीन भारत में पति की मृत्यु हिन्दू स्त्रियों के जीवन में बहुत ही कष्टकारी घटना होती थी। कुछ स्त्रियाँ अपनी इच्छा से मृत पति के साथ आग में जलना पसन्द करती थी क्योंकि यदि वे जीना चाहती थी तो उन्हें कदम-कदम पर अपमान का सामना करना पड़ता था, जो स्त्रियाँ सती नहीं होती थी उन्हें समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता था। उच्च जाति में विधवा-विवाह प्रचलन में नहीं था। परन्तु निचली जाति की स्त्रियाँ विधवा-विवाह कर सकती थी। हिन्दू समाज में सती प्रथा का प्रचलन पुराने समय से रहा है किन्तु मुस्लिम समाज के कारण यह प्रचलन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था।

विदेशी यात्री राल्फ फिच इस सम्बन्ध में अपना विवरण प्रस्तुत करते हुए कहता है कि गुजरात में यदि विधवा चाहती तो उसे अपने मृत पति के साथ सती होने दिया जाता था, किन्तु यदि वह ऐसा करने से इंकार करती तो उसे जबरदस्ती सती होने के लिए मजबूर नहीं किया जाता था। उस दशा में उसका सर मूँड दिया जाता था। यही प्रथा बनारस में भी थी।[2]

जहाँगीर के समय में भारत आये यूरोपीय यात्री विलियम हॉकिंस में इस विषय में लिया है कि जहाँगीर ने इस प्रथा को रोकने में सफलता नहीं मिली। उसने इस प्रथा को रोकने का निर्देश दिया। उसका यह आदेश कम उम्र की विधवाओं को सती होने से रोकने के लिए था''[6]

पैल्सर्ट के अनुसार-ऐसा माना जाता है कि बहुत सी स्त्रियाँ सती होने से इंकार कर देती थी''[7]

स्त्री प्रथा सामान्य रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों में सर्वाधिक प्रचलित थी। लगभग सभी तत्कालीन विदेशी पर्यटकों एवं यात्रियों ने सती प्रथा का अत्यधिक भयानक चित्र प्रस्तुत किया है। मनूची भी इस सम्बन्ध में लिखता है कि, विधवा को अपने मृत पति के शरीर के साथ जलना पड़ता था। ऐसा न करने पर उसे अपमानजनक और संकट का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। वह इस सम्बन्ध में आगे प्रकाश डालता हुआ लिखता है कि विधवा स्त्री को लम्बे बाल रखने की अनुमति नहीं थी, वे अच्छे वस्त्र व आभूषण धारण नहीं कर सकती थी। कुछ मुगल शासकों ने सती प्रथा को रोकने के अथक प्रयास किये। ऐसा माना जाता है कि अकबर ने यह आज्ञा प्रसारित करवायी कि किसी भी स्त्री को उसकी बिना मर्जी के सती होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। जहाँगीर ने भी अकबर का अनुसरण करते हुए यह आदेश जारी किया कि युवा विधवाएँ अथवा कम उम्र की स्त्रियाँ सम्राट की बिना अनुमति के सती नहीं हो सकती थी। 1663 ई0 में औरंगजेब ने सती प्रथा पर पूर्णतः प्रतिबन्ध लगा दिया। मनूची के अनुसार औरंगजेब का निर्देश था कि कहीं भी मुगल प्रदेश में किसी विधवा को सती न हाने दिया जाये।[9]

मनूची इसी विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखता है कि एक राजपूत राजा की प्रमुख रानी को सती नहीं होने दिया गया क्योंकि उसके पुत्र था।[10]

सती प्रथा सर्वाधिक विशद विवरण हमें बर्नियर की पुस्तक बर्नियर की भारत यात्रा से प्राप्त होता है, वह सती प्रथा का विवरण देते हुए लिखता है कि स्वेच्छा

से सती होने की प्रथा प्राचीन थी लेकिन कालान्तर में विधवाओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध आग में जलने के लिए विवश किया जाता था। बर्नियर ने 13 वर्ष की एक विधवा को बलपूर्वक सती होने की हृदय विदारक घटना का उल्लेख किया है- वह लिखता है कि यहाँ में एक घटना का विवरण देना बहुत जरूरी समझता हूँ क्योंकि इस दृश्य को देखकर मेरा कोमल हृदय रो पड़ा था। ये लोग कैसे जल्लाद हैं जो जबरदस्ती से जीवित इंसान को जलाकर प्रसन्न होते हैं।[12] यह घटना लाहौर की है जहाँ एक बेहद सुन्दर लड़की को मैने जलते देखा। मैं समझता हूँ कि इस लड़की की उम्र बामुश्किल बारह-तेरह वर्ष की होगी, इससे अधिक नहीं उसे उसी प्रकार जलती चिता के पास लाया गया जैसे अन्य सती स्थलों पर हुआ करता है। भय के मारे वह लड़की अधमरी-सी मालूम होने लगी। वह काँपती हुई बिलख-बिलख कर रो रही थी। इतने में तीन चार ब्राह्मण जिनके साथ एक बुढिया भी थी जो उस लड़की को गोद में लिये हुई थी; आये और उसे चिता पर बैठा दिया। इसके पूर्व उसके हाथ पैर भी बाँध दिये थे। इस प्रकार उस लड़की को उन दुष्ट ब्राह्मणों ने जीवित ही जला दिया था। किसी ने सत्य कहा कि इन ब्राह्मणों का धर्म मनुष्य से कैसे-कैसे बुरे और अनुचित कार्य कर सकता है। जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती।[13]

बर्नियर आगे लिखता है कि इस देश में उपरोक्त रस्मों के अलावा भी बहुत से अनुचित रिवाज है जिसमें से एक यह भी है जब कोई स्त्री विधवा हो जाती थी तब उसे जलाते नहीं थे बल्कि उसे जीवित ही गले तक खड्डे में गाड़ देते थे। फिर दो या तीन ब्राह्मण आकर उसको मरोड़कर उसे दबा देते थे। उसके उपरान्त उसके शव पर कुछ मिट्टी डालकर पैरों से रौंद डालते थे।[14]

पिट्रा डेला वेला विधवाओं की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखता है'' विधवाएँ पुनः विवाह नहीं कर सकती थी। उन्हें अपने केशों को कटाना होता था और अपना सम्पूर्ण जीवन दास की भाँति बिताना पड़ता था।''

वह तलाक के बारे में लिखता है कि एक हिन्दू अपनी पत्नी को उसी स्थिति में तलाक दे सकता था जबकि वह चरित्रहीन हो।[15]

सती प्रथा की भाँति बाल-विवाह भी मुगलकालीन समाज में व्याप्त था, जो एक तरीके की कुप्रथा ही थी। अधिकतर लड़कियों का विवाह आठ से दस साल की उम्र में कर दियाजाता था। यह दूषित प्रथा हिन्दू व मुसलमान समाज दोनो में ही विद्यमान थी। राल्फ फिच इस सम्बन्ध में लिखता है कि बाल-विवाह की प्रथा एक बहु-प्रचलित प्रथा थी। फिच न स्वयं एक ऐसा ही बाल-विवाह बुरहानपुर में देखा था।[16] मनूची भी सूचित करता है कि हिन्दुओं में लड़कियों की शादी कभी कभी जब वे बोलना सीख रही होती थी, तभी कर दी जाती थी।[17]

डेला वेलेनामक एक विदेशी पर्यटक ने दो बालकों के विवाह के बारे मे वर्णन किया है जिनकी शादी के समय उनकों घोड़े पर सहारा देकर बैठाया गया और सहारा देकर बारात में ले जाया गया था।[18]

इस प्रकार हिन्दू समाज के अतिरिक्त मुस्लिम समाज में भी लड़कियों की शादी कम उम्र में ही कर दी जाती थी। अकबर जैसे सफल एवं जागरूक शासक ने भी इस प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया परन्तु वह असफल रहा। आइने-अकबरी के अनुसार, अकबर ने अपने शासनकाल में लड़के-लड़कियों की शादी वयस्कावस्था में करने का आदेश दिया।

शाही महिलाओं की स्थितिः-मुगलकाल में सल्तनत काल की अपेक्षा स्त्रियों की अवस्था अपेक्षाकृत अधिक संतुलित थी, विशेषकर दरबार से संबंध रखने वाली महिलओं की ज्यादा अच्छी स्थिति थी क्योंकि मुगल अपनी स्त्रियों को विशेष सम्मान देते थे और उन्हें राजनीति में भी अधिकार देते थे। इस काल में शाही घराने की स्त्रियों ने राजनीति में बढ़चढ कर हिस्सा लिया और अपनी प्रमुख भूमिका निभाई इन स्त्रियों में एहसान बेगम, दौलत बेगम, कतुलुग निगार खानम् लाड़ मल्लिका, रानी कर्णवती राणा सांगा की पत्नी, रानी दुर्गावती, बख्तूनिश बेगम, मरियम मकानी सलीमा, सुल्ताना बेगम, नूरजहाँ, मुमताज महल, जहाँआरा बेगम, जब्बूनिशा बेगम, जीनंत निशां बेगम, लाल कुँवर (जहाँदारशाह की प्रिय रखैल) आदि विशेष रूप से राजनीति में सक्रिय थी।

पीटर मण्डीः- ने इस सम्बन्ध में कहा है कि शाहजहाँ शासनकाल में मुमताज महल ने राजनीति में अपना प्रभाव बनाये रखा। मनूची के अनुसार मुमताज महल ने पुर्तगालियों के विरुद्ध सैनिक अभियान के लिये शाहजहाँ को प्रेरित किया।[20]

नूरजहाँ के विषय में वर्णन करते हुए फ्राँन्सिसको पेलसर्ट कहता है कि नूरजहाँ के पूर्व तथा वर्तमान समर्थकों को प्रतिफल मिला था इसलिए उन व्यक्तियों में से अनेक व्यक्ति, जो राजा के समीप वे, उसकी पदोन्नति के लिए वे इसका (रानीका) आभारी होते थे, तथा फलस्वरूप वे इस प्रकार के अभार के नीचे रहने के कारण वह (जहाँगीर) केवल नाम का ही राज्य है, जबकि वह (नूरजहाँ) तथा उसका भाई आसफ खान राजय को दृढ़ता से अपने हाथो में थामे हुये थे।

जहाँगीर :- इस विषय में स्वयं भी कहता था। मैने प्रभुसत्ता नूरजहाँ बेगम को प्रदान कर दी। जब तक शासन की बागडोर उसके हाथो में है, मुझे आनन्द मनाने के लिए एक सेर शराब तथा आधा सेर माँस से अधिक और कुछ नहीं चाहिए।

पेलसर्ट भी हमें सूचित करता है :- राजा ने सार्वजनिक कार्यों में स्वयं को परेशान नहीं किया, परन्तु उसने ऐसा व्यवहार किया मानो उनसे उसका कोई संबंध न हो। यदि कोई दरबार में आकर अनुरोध करता है तो राजा उसे सुनता अवश्य है, परन्तु हाँ या नहीं, का कोई निश्चित उत्तर नहीं देता है, वह उसे तत्काल आसफ खान के पास भेज देता है, वह भी अपनी बहन, रानी को सूचित किए बिना कोई भी महत्वूपर्ण मामला नहीं निपटाता था, रानी उसके आचार व्यवहार को इस प्रकार नियंत्रित करती थी किउन दोनो में से किसी की भी शक्ति कम नहीं होती थी। जिस किसी के भी अनुग्रह प्राप्त होता था, वह इसके लिए दोनो (नूरजहाँ तथा आसफ खान) को ही धन्यवाद देता था, राजा को नहीं।[23]

शाही घराने की महिलाओं को दरबार में सम्मानजक स्थान प्राप्त था। उन्हें बादशाह द्वारा अलग-अलग प्रकार की पदवियाँदी जाती थी। ट्रैवर्नियर के अनुसार रोशनआरा बेगम शाहजहाँ की दूसरी पुत्री थी। उससे सदैव औरंगजब का साथ दिया वह अपने बड़े भाई दारा की विरोधी थी और उसने दारा को मृत्युदण्ड देने के लिये दबाव डाला। औरंगजेब ने उसे 1669 ई0 में शाहबेगम की उपाधि दी और 5 लाख रूपया दिया।[3]

इस सम्बन्ध में बर्नियर लिखता है कि औरंगजब की दो पत्नियाँ दिलरास बानू बेगम और उदमपुरी महल ने उस पर अपने प्रभाव डाले। सन् 1662 ई0 में

जब औरंगजब बीमार पड़ा तो रोशनआरा बेगम ने शाही मोहर अपने अधिकार में रखा और सम्राट की बीमारी को छिपये रखा। बर्नियर जहाँआरा बेगम अपने पिता की अत्यन्त दुलारी संतान थी। अफवाहों के अनुसार शाहजहाँ का लगाव उस सीमा तक पहुँच चुका था जिसके बारे विश्वास नहीं किया जा सकता। शाहजहाँ के ऊपर जहाँआरा का असीमित प्रभाव था तथा महत्वपूर्ण मामलों में उसका पूरा हस्तक्षेप रहता था।

वह आगे लिखता है कि बेगम जहाँआरा के पास धन की कोई कमी नहीं थी, चूँकि इसे विभिन्न मदो के माध्यम से धन मिलता ही रहता था। उदाहरण के तौर पर प्रथम तो यह अपने वार्षिक खर्च के रूप में मिलने वाली रकम में बचत करती थी, दूसरे सहस्त्रो सरकारी कार्य करवाने से और चारो तरफ से आने वाली बहुमूल्य भेंटो से धन एकत्रित करती। यह अपने छोटे भाई दारा को बहुत प्यार करती थी। जिसके कारण दारा भी राज्य के अनेक कार्यो में सफलता प्राप्त करता रहता था ओर राज्य में उसका प्रतिष्ठा बढ़ती रहती थी। अर्थात् दारा की उन्नति का मुख्य कारण भी जहाँआरा बेगम ही थी, वह दारा के कार्यो मे भाग लेती और खुले रूप में पक्ष लेकर लोगो को दारा के प्रति प्रभावित भी करती।[25]

मुगलकाल में शाही महिलाओं की भाँति हरम की स्त्रियों को विशेषाधिकार प्राप्त थे। मनूची इस सम्बन्ध हमें सूचित करता है कि हरम में प्रतिष्ठा प्राप्त स्त्रियाँ अपनी संपत्ति, भूमि तथा आय की देखभाल के लिए नाजीर की नियुक्ति करती थी।[26]

इस प्रकार हरम की स्त्रियों का भी मुगल शासन पूरा अधिपत्य स्थापित रहा ये केवल विदेशी यात्रियों की दृष्टि से ही नहीं अपितु एक अलग दृष्टिकोण से भी यदि देखा जाये तो अकबर की धाम माँ माहमंगा, का अकबर के शासनकाल में अधिक की प्रभाव रहा। कुछ इतिहासकारो ने तो अकबर के 'शासनकाल को पेटीकोट शासन' की संज्ञा तक दे डाली।

बर्नियर ने अपनी पुस्तक में मीना बाजार का भी विवरण दिया है। एकमात्र विदेशी यात्रियों में फ्रैंक्विस बर्नियर ही ऐसा यात्री था जिसने मीना बाजार के बारे में विस्तारपूर्वक लिखा। वैसे तो मीना बाजार का चलन अकबर के समय से ही था। परन्तु किसी भी इतिहासकार ने इसका खुलकर विवरण नहीं दिया है।

बर्नियर के कथनानुसार यह एक कृत्रिम बाजार था, जो कभी-कभी महलसरा में लगाया जाता था। इस बाजार में बड़े अमीरो और मनसबदारों की सुन्दर स्त्रियाँ दुकाने लगाकर बैठती थी जो बेहतरीन बारीक कपड़ो के साथ-साथ अन्य बहुमूल्य चीजें बिक्री के लिये रखती थी। बादशाह उसकी बेगम और शहजादियाँ आदि वहाँमाल खरीदने जाती थी। यदि किसी अमीर की बेटी रूपवती और नवयौवना होती है तो उसकी उसे अवश्य अपने साथ इस बाजार में ले जाती है, जिससे बादशाह की दृष्टि उस पर पड़ जाये और बेगमों से भी परिचय हो जाये। बड़ा मजा तो यह है कि हंसी दिल्लगी के लिए स्वयं बादशाह एक एक पैसे पर झगड़ता है, और कहता है यह बेगम साहब बहुत महंगी चीजे बेचती है, इससे सस्ती और अच्छी चीजे आगे मिलेगी। हम इससे अधिक एक कौडी भी न देंगे, आदि आदि इधर यह चेष्टा करती है कि हमारी चीजे अधिक मूल्य पर बिके और बादशाह अधिक नहीं देता तब बात बात मे कह बैठती है कि मालूम होता है कि अपको सौदा ही नहीं लेना, आपके पास इतना मूल्य ही नही है, हमारा माल आपके लिए बहुत महंगा है, आपको जहाँ सस्ता मिले वहीं चले जाइए। बादशाह की अपेक्षा बेगमें और भी अधिक झगड़ा करती है। इनकी बातों में इतनी गरमागरमी होती है कि वह एक अच्छा खासा झगड़ा मालूम होता है। इतना हो चुकने पर माल खरीद लिया जाता हैं बादशाह, बेगम, शहजादें, शहजादियाँ जो चीजे खरीदती है उनका मूल्य उसी समय दे दिया जाता है। मूल्य देने में रूपयो के साथ अशर्फियाँ भी गिन देते है। यह अशर्फियाँ मानों अनजान होकर दी जाती है। यह उस दुकानदार या उस सुंदर कन्या की भेंट होती है। दुकानदार भी उन्हें यो ही बेपरवाही से उठा लेते है। और इसी प्रकार हंसी-खुशी से बाजार समाप्त होता है।

शाहजहाँ बहुत विलासी था। यद्यपि बहुत-से अमीरों को यह बात खटकती, पर फिर भी वह प्रायः ऐसे-ऐसे अवसरों पर यही स्वांग कराया करता। इसके अतिरिक्त वह रात के समय महल में उन स्त्रियों को भी बुला लेता और उन्हे रात भर वही रखता जिन्हे कँचनी कहते हैं। ये स्त्रियाँ नहीं होती थी, बल्कि अच्छी प्रतिष्ठत होती थी, और अमीरो या मनसबदारो के यहाँ विवाह आदि के समय पर केवल नाचने गाने जाती थी। वह कंचनियाँ बहुधा बहुत ही सुंदर ओर रूपवती होती है और उनके वस्त्र भी अच्छे और बहुमूल्य होते है। यह बहुत ही अच्छी गाने वाली होती है आर नाचने में अपने अंगो को इस सुंदरता से लचकाती हैकि देखकर आश्यर्च होता है। यह कंचनियाँ ताल और स्वर में भी ठीक होती है।

इन औरतों के इस मेले में आने ही से शाहजहाँ को संतोष नहीं होता था, बल्कि बुधवार के दिन जब वह नियमानुसार सलाम करने के लिए दरबार में हाजिर होती तो वह प्रायः रात भर के लिए वहीं ठहरा लिया करता और रातभर नाच गाना हुआ करता। पर औरंगजेब अपने पिता का विलास-प्रिय नहीं है उसने इनका आना जाना एकदम रोकदिया है। पर हाँ, नियमानुसार बुधवार के दिन सलाम करने के लिए हाजिर होने से मना नही किया, इस दिन वह दूर ही से सलाम करके चली जाती है।[27]

एक प्रकार से यदि देखा जाये तो प्राचीन काल की तुलना में मध्यकाल विशेष्कर मुगलों के महिलाओं की स्थिति ज्यादा खराब हो चुकी थी। रीति-रिवाज व प्रथाओं के नाम पर सिर्फ महिलाओं का शोषण किया गया। उनके सभी अधिकार समाप्त कर दिये गये। यह स्थिति आधुनिक काल तथा स्वतन्त्रता के पश्चात् तक बनी रही। वर्तमान समय में इनकी स्थिति में कुछ बदलाव तो आया परन्तु व्यावहारिक रूप से यह बदलाव लागू नहीं हो पाया।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


1. ग्रे, एडवर्ड- द ट्रेवेल्स ऑफपिट्रा डेला वेला इण्डिया, पेज-82 कैंम्बिज यूनिवर्सिटी प्रेस
2. मनूची, निकोलो - 'स्टोरियो डी मोगोर' (अनुवादित विलियम डरविन) पेज-86, लंदन 1906
3. बर्नियर, फैंक्विस - 'बर्नियर की भारत यात्रा' 7 161, अर्चीबाल्ड कांस्टेबल एंडकंपनी
4. हॉलैण्ड, जे.एस.- द कमेन्ट्री ऑफ फादर मान्सरेंट, एस.जे. ऑन हिज जर्नी टू द कोर्ट ऑफ अकबर-पेज-98, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी, लंदन प्रेस 1922?
5. रिले, जॉन हॉर्टन- राल्फ फिचः इंग्लैण्ड पायनियर टू इडिया एण्ड बर्मा हिज कम्पेनियनस एण्ड कन्टमपरेरीज विद हिज रिर्माकेबल नरेटिव ओल्ड इन हिज वर्डस, पेज-64, एशियन एडुकेशनल सर्विसेज

6. आर मर्खम, सरक्लेमेन्टस- 'द हॉकिंस वौयेज: पेज-42, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
7. फ्रांसिस्को, पैलसर्ट- 'द रिमोन्सट्रेन्टंई' पेज-70, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी (इंग्लैण्ड), डब्ल्यू0 हेफर एण्ड सन्स, 1925
8. मनूची, निकोलो- 'स्टोरियो डी मोगोर' (अनुवादित विल्यिम इर्विन), पेज-90
9. वही
10. वही
11. फ्रैंक्विस, बर्नियर- ट्रेवेल्स इन द मुगल एम्पायर, पेज-10
12. वही
13. वही
14. वही
15. वही
16. रिले, जॉन हर्टन- राल्फ फिच: इंग्लैण्ड पायनियर टू इण्डिया एण्ड बर्माहिज कम्पेनियनस एण्ड कन्टम-परेरीज विद हिज रिर्माकेबल नैरेटिव टोल्ड इन हिज वर्डस पेज-10
17. मनूची, निकोलो- 'स्टोरियो डी मोगोर' (अनुवादित विलियाम इर्विन) पेज-92
18. ग्रे, एडवर्ड- द ट्रेवेल्स ऑफ ऑफ पिट्रा डेला वेला टू इण्डिया: 1644 पेज-101
19. मुण्डी, पीटर- द ट्रेवेल्स ऑफ पीटर मुण्डी इन यूरोप एण्ड एशिया (1608) पेज हकयूलत सोसायटी
20. मनूची, निकोलो- 'स्टोरियो डी मोगोर' (अनुवादित विलियम इर्विन) पेज-99
21. फ्रांसिस्को, पैल्सर्ट- जहाँगीर 'स इण्डिया, पेज-55, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी (इंग्लैण्ड)
22. शर्मा, डॉ. मथुरालाल - तुजुक-ए-जहाँगीरी, राधा पब्लिकेशन, लखनऊ
23. फ्रांस्किो, पैल्सर्ट- 'द रिमोन्सट्रेन्टई' पेज-101
24. ट्रेवर्नियर, जॉन बैपिस्टा- द सिक्स वॉयेज ऑफ जॉन बैपिस्टा, पेज-112 (ट्रांसलेटिड बाय जॉन फिलिप्स: आर.एल एण्ड. एम0पी0 लंदन)
25. बर्नियर फ्रैक्विस- बर्नियर की भारत यात्रा, पेज- 181
26. निकोलो, मनूची- 'स्टोरियो डी मोगोर' पेज-86
27. बर्नियर, फ्रैंक्विस- बर्नियर की भारत यात्रा-पेज-189

# गाँधी दर्शन में ब्रह्मचर्य की अवधारणा

## दीक्षा

*दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

गाँधी दर्शन में पाँचवा व्रत ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का तात्पर्य है 'एकनिष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इन्द्रियों का संयम करना।' व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'ब्रह्म की चर्या (चर्चा)'' को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। इसमे मन, वाणी एवं कर्म के संयम का पालन करते हुए 'ब्रह्म पर' चर्चा' सम्मिलित है। सत्य की प्राप्ति के लिए संयम आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के पारम्परिक अर्थ में गांधी ने संशोधन किया है। जिसका उल्लेख हम आगे करेगें। 'ब्रह्म का अर्थ' ईश्वर और वेद दोनों होता है। सामान्य अर्थ में ब्रह्मचर्य का अर्थ इन्द्रिय निग्रह है। वे वेदाध्ययन एवं ब्रह्म साक्षात्कार दोनों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अहिंसा तथा सत्य के पालन में ब्रह्मचर्य का विशेष स्थान है। ब्रह्मचर्य पालन के बिना इन दोनों का पालन संभव नहीं है। ब्रह्मचर्य पालन के बिना इन दोनों का पालन संभव नहीं है। ब्रह्मचर्य का एक दूसरा भी अर्थ होता है। कामवासनाओं का पूरी तरह त्याग कर ''ब्रह्म की चर्चा।'' जैन धर्म में ब्रह्मचर्य की मन, वचन और कर्म से पालन करने पर बल दिया गया है। दृढ़तापूर्वक या दृढ़ पूर्वक ज्ञान एवं कर्म पर नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति को दुराचारी एवं दम्भचारी की संज्ञा दी जाती है। वाह्य तौर पर इन्द्रियों पर नियंत्रण एवं आन्तरिक तौर पर अन्यत्र का चिन्तन करना ब्रह्मचर्य नहीं है। ऐसे आचरण वाले को गीता में मिथ्याचारी कहा गया है-

*''कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आरन्ते मनसा स्मरन्।*
*इन्द्रियार्थम्विमूढात्मा मिथ्याचार: स उच्चते।।''*

हम बाहर से चाहे अपने गतिविधियों को नियंत्रित कर ले, परन्तु यदि हम उन्हें प्रेरणा देने वाली इच्छाओं को संयमित नहीं कर सकते, तो हम संयम का सही अर्थ समझ पाने में असफल रहते हैं।

इसी दृष्टि से गांधी ने कहा हे कि जिस मनुष्य ने सत्य को अपनाया है, उसी की उपासना करना है, वह दूसरी किसी वस्तु की आराधना की बात करे तो व्यभिचारी बन जाता है। फिर विकार की आराधना की तो बात कहाँ उठती है।

पुन: अहिंसा के पालन को ले तो उसका पूरा पालन ब्रह्मचर्य के बिन असाध्य है। अहिंसा अर्थात सर्वव्यापी प्रेम जहाँ पुरुष ने एक स्त्री या स्त्री ने एक पुरूष को अपना प्रेम सौंप दिया हो वहाँ उसके पास दूसरे किसी के लिए क्या बच रहा है?[1] इस प्रकार बिना ब्रह्मचर्य के सर्वव्यापी प्रेम नहीं हो सकता है क्योंकि वह विवाह बन्धन में पड़ा हुआ अपने कुटुम्ब में ही फंसा रहेगा, सर्वव्यापी प्रेम में विक्षेप पड़ेगा। समस्त सृष्टि को अपना कुटुम्ब मानने की क्षमता उसमें नहीं रह जायेगी। बहुत से लोग ऐसे हुए हैं जिन्होंने विवाह बन्धन के तत्पश्चात ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया है या उसका आव्याप्तिक प्रयास किया है। गांधी ने स्वयं 36 वर्ष की अवस्था में शादी होने के बाद ब्रह्मचर्य नियम का पालन किया है। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर विवाहितों को ब्रह्मचर्य के पालन की विधि के विषय में सुझाव दिया है। विवाहित का अविवाहित की भांति हो जाना, संसार की सारी स्त्रियाँ बहने हैं, माताएं एवं लड़कियाँ हैं, यह विचार ही मनुष्य के व्यक्तित्व के उच्चतम शिखर पर ले जाने वाला एवं बन्धन से मुक्ति देने वाला हो जाता है। विकारों के जाने से एक दूसरे की सेवा अच्छी हो सकती है, एक दूसरे के बीच कलह के अवसर कम हो जाते हैं। जहाँ स्वार्थी एवं एकांगी प्रेम है, वहाँ कलह के लिए ज्यादा गंजाइश रहती है। इस तरह समाज में सामंजस्य स्थापित होता है जो सर्वोदय का आधार है।

पुनश्च ब्रह्मचर्य का अर्थ बतलाते हुए गांधी ने एक विशेष दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। ब्रह्मचारी होने का अर्थ यह नहीं है कि मैं किसी स्त्री को न स्पर्श करूँ अपितु ब्रह्मचारी का अर्थ यह है कि जैसे एक कागज का स्पर्श हमें विचलित या आनन्दित नहीं करता, वैसे ही किसी स्त्री के सम्पर्क से हमारे इन्द्रियों पर किसी प्रकार प्रभाव न पड़े। मेरी बहन बीमार हो और ब्रह्मचर्य के कारण मुझे उसकी सेवा करने से, उसे छूने से मुझे परहेज करना पड़े तो ऐसा ब्रह्मचर्य व्यर्थ है। जिस प्रकार किसी मृत शरीर के स्पर्श से जिस प्रकार मेरा मन नहीं प्रभावित होता है उसी प्रकार किसी सुन्दरतम् स्त्री के स्पर्श से हमारा मन प्रभावित न हो तो हम ब्रह्मचारी है।[2] विकार से ग्रस्त होने पर ही गिरने की बात आती है, इसलिए विकार रहित होने से ही ब्रह्मचर्य का पालन हो सकेगा, ऐसा गाँधी ने बतलाया है। विकारों का अन्त करने के लिए संयम आवश्यक है इसलिए ब्रह्मचर्य में इन्द्रिय संयम पर जोर दिया गया है। ब्रह्मचर्य में इन्द्रिय संयम की जगह अधिसंख्य लोग जननेन्द्रिय संयम का भी अर्थ लगाते हैं। बापू इस व्यवस्था को अधूरी व्याख्या मानते हैं। उनके अनुसार विषय मात्र का विरोध ही ब्रह्मचर्य है। केवल जननेन्द्रियों पर संयम एवं अन्य इन्द्रियों का इतर भटकाव ब्रह्मचर्य का एक निष्फल प्रयास है। उनका कहना है कि यह आचरण है सब इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण। इस शब्द की यही सच्चा और ठीक अर्थ है। सारी इन्द्रियों पर पूर्णरूपेण संयम किये बिना जननेन्द्रियों के संयमित करना असंभव है। वे एक दूसरे पर निर्भर है। निम्न स्तर पर मन भी इन्द्रियों में शामिल है। मन पर काबू पाये बिना निरा शारीरिक नियंत्रण थोड़ी देर के लिए भी हो सकता है, तो उसका बहुत थोड़ा या कुछ भी उपयोग नहीं होगा।[3]

ब्रह्मचर्य के अर्थ पर गाँधी एक प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि- ''सन्तानोत्पत्ति के लिए विषयेच्छा के वश में होना उसी दृष्टि से ठीक है तथा ब्रह्मचर्य के मार्ग में बाधक नहीं है कि वह कर्तव्य समझकर आवश्यक होने पर ही हो। वीर्यवान एवं स्वस्थ स्त्री पुरुष संतान की इच्छा से यदि समागम करे तो उन्हें भी नौष्ठिक ब्रह्मचारी मानने की छूट गाँधी ने दिया है। दम्पत्ति प्रजोत्पति भी करे जब आवश्यक हो और उसकी जरूरत हो तभी एकान्तवास भी करे। अर्थात् संभोग प्रजोत्पादन

को कर्तव्य समझकर तथा उसके लिए ही हो। इसके अतिरिक्त कभी संभोग न करें।

अब तक ब्रह्मचर्य का जो संकुचित कार्य होता आया था उससे आगे बढ़कर गांधी ने सर्वेन्द्रिय संयम का अर्थ दिया। इसका मूल अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं– ''ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म सत्य की शोध में चर्या अर्थात तत्सम्बन्धी आचार। इस मूल अर्थ में सर्वेन्द्रिय रूपी संयम का विशेष अर्थ निकलता है कि जननेन्द्रिय संयम रूपी अधूरे अर्थ को तो हमें भूल जाना चाहिए।'[4] ब्रह्मचर्य में ईश्वरोपासना सहायक होती है। ईश्वर में श्रद्धा रखते हुए सर्वेन्द्रिय संयम भी सफल प्रयास हो सकता है। इसका स्पष्ट विचार इस विवेचन में मिलता है कि ब्रह्मचर्य का पूरा और सच्चा अर्थ है ब्रह्म की खोज। ब्रह्म सबमें बसता है इसलिए यह खोज अन्तर्ध्यान के सहारे होती है। अतः मन, वचन और कार्यों से सम्पूर्ण पालन करने वाली स्त्री या पुरूष नितान्त निर्विकार होती है। अतः ऐसे स्त्री पुरूष ईश्वर के पास रहते हैं, वे ईश्वर तुल्य होते हैं।

ब्रह्मचर्य के पारस्परिक अर्थ में गांधी ने एक और संशोधन किया है। परम्परागत रूप में यह एक आश्रम के रूप में स्वीकृत है, जिसकी अवधि पच्चीस वर्ष की आयु तक होती है। इस अवधि में धर्म पुरूषार्थ की सिद्धि के लिए इन्द्रियादि का संयम आवश्यक माना गया है। किन्तु गांधी ने ब्रह्मचर्य का पालन आजीवन आवश्यक माना है क्योंकि जब तक सत्य का साक्षात्कार नहीं हो जाता तब तक ब्रह्मचर्य अपरिहार्य है।

## संदर्भ सूची


1 गाँधी, एम0के0, प्रार्थना प्रवचलन नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, पृ0 71.

2 गाँधी, एम0के0, सम्पूर्ण गाँधी वांगमय, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, खण्ड 15, पृ0 33

3 वही, पृ0 45

4 प्रभुपाद स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता-(यथारूप) भक्तिवेदान्त ट्रस्ट मुम्बई, पृ0 71

# भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रारंभिक शिक्षा के अधिकार की ऐतिहासिक समीक्षा


## डॉ० शिखा चतुर्वेदी

*एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, शिक्षक शिक्षा विभाग, एन0ए0एस0 ( पी0जी0 ) कॉलेज, मेरठ*



### शोध सारांश

भारत में वैदिक काल, बौद्ध काल एवं मध्यकाल में प्राथमिक शिक्षा की निशु:ल्क व्यवस्था होती थी लेकिन शिक्षा धर्म प्रधान होने एवं शिक्षा संस्थाएं सीमित होने के कारण यह जनसाधारण को सर्व सुलभ नहीं हो पाती थी। भारत में स्वतंत्रतासे पूर्व भी प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य नि:शुल्क बनाने के दिशा में प्रयास किए गए। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान की 45 वीं धारा में उल्लेख किया गया कि राज्य 10 वर्ष के अंदर 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा। न्यायिक निर्णयो, वैश्विक प्रयासों एवं भारत सरकार की प्रतिबद्धता के परिणाम स्वरूप 86 वें संविधान संशोधन 2002 द्वारा मौलिक अधिकारों में 21(क) जोड़ा गया, जो यह प्रावधान करता है कि राज्य विधि बनाकर 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा का उपबंध करेगा। शिक्षा के अधिकार को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने के लिए 06 से 14 वर्ष की आयु के सभी बालको को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध करने के लिए अधिनियम 2009 पारित किया गया। जो 1 अप्रैल 2010 से कार्यशील हो गया। यह अधिनियम प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।



**मुख्य शब्द** - शिक्षा का अधिकार, नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा।


**प्रस्तावना:** लॉक के अनुसार, 'पौधों का विकास जुताई द्वारा एवं मनुष्य का विकास शिक्षा द्वारा होता है।' अर्थात मनुष्य के चहुंमुखी एवं सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा अनिवार्य क्रियाकलाप है। शिक्षा नागरिकों में उत्तरदायित्व, कर्तव्यबोध एवं मौलिक अधिकार का बोध कराती है। किसी भी देश का मानवीय संसाधन उसकी मूल निधि होती है, शिक्षा समाज रूपी शरीर का मेरुदंड है। यह व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलू से संबंधित होती है। प्राथमिक शिक्षा समग्र शिक्षा का आधार है। मानवीय संसाधन के उच्चतम विकास के लिए समाज, सरकारों एवं राष्ट्र का यह उत्तरदायित्व है कि वह निश्चित आयु वर्ग के सभी बालकों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था करें।

**स्वतंत्रता पूर्व भारत में प्राथमिक शिक्षा:** भारत में वैदिक काल, बौद्ध काल एवं मध्यकाल में जनसाधारण के लिए प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था नि:शुल्क होती थी परंतु अनिवार्य शिक्षा का कोई प्रावधान नहीं था। सीमित शिक्षण संस्थाएं होने के कारण सर्वसाधारण को शिक्षा सुलभ नहीं हो पाती थी ब्रिटिश काल में मैकाले एवं ईसाई मिशनरियों का मत था कि शिक्षा की व्यवस्था भारतीय उच्च वर्ग के लिए की जाए निम्न वर्ग के लोग तक शिक्षा स्वयं छन-छन कर पहुंच जाएगी, इसे शिक्षा जगत में अधोगामी निस्यन्दन सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। मैकाले विवरण पत्र ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की नींव रखी। उसी समय विलियम एडम ने भारतीय भाषा संस्कृति पर आधारित जन शिक्षा संस्थाओं को सुदृढ़ करने सुझाव दिया। सन 1839 में मैकाले एवं विलियम एडम के सुझावो का विवेचन करके लॉर्ड ऑकलैंड ने निस्यंदन सिद्धांत को सरकारी नीति का रूप प्रदान किया। सन् 1854 में चार्ल्स वुड ने अपने घोषणा पत्र में सर्वसाधारण की शिक्षा पर जोर देते हुए क्रमबद्ध विद्यालय खोलने का सुझाव दिया।

स्वतन्त्रता पूर्व भारत में अनिवार्य एवं निशुल्क प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी प्रयास: भारत में अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की दिशा में सन 1838 में मिशनरी विलियम्स एडम ने गांव में भारतीयों की संस्कृति, भाषा एवं सभ्यता के अनुकूल प्राथमिक विद्यालय खोलने के अनिवार्यता पर बल दिया। सन् 1882-83 में जब हंटर आयोग का गठन किया गया, उस समय दादाभाई नौरोजी ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं नि:शुल्क करने की जोरदार मांग रखी, ब्रिटिश सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया लेकिन इस आयोग द्वारा स्त्री शिक्षा, मुस्लिम वर्ग की शिक्षा, पिछड़ी एवं निम्न जातियों की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। इसी बीच भारत में राष्ट्रीय चेतना की जागृति शुरुआत हुई एवं भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने राष्ट्रीय शिक्षा की मांग रखी। भारतीयों ने प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता की जिम्मेदारी अपने हाथों में ली।

तत्कालीन बड़ौदा नरेश सियाजीराव गायकवाड ने एतिहासिक निर्णय लेते हुए सन् 1893 में अपने राज्य की 9 ग्राम पंचायतों में अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा योजना प्रारंभ की। गोखले ने सन 1910 में इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल के समक्ष अनिवार्य नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्रस्ताव रखा, परंतु यह प्रस्ताव पास ना हो सका। गोखले ने मार्च 1911 में अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा संबंधी विधेयक पेश किया, यह विधेयक 13 मतों के विरुद्ध 38 मतों से गिर गया। परंतु गोखले के इस प्रयास से राष्ट्रीय स्तर पर प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं नि:शुल्क बनाने की मुहिम छिड़ गई। सरकार द्वारा 1913 में शिक्षा संबंधी नए प्रस्ताव की घोषणा की गई जिसमें प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि करने, देशी पाठशालाओं को उदारतापूर्वक अनुदान देने एवं व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहित करने की घोषणा की गई।

सन् 1927-29 हर्टांग कमेटी द्वारा प्राथमिक शिक्षा की ज्वलंत समस्या अपव्यय व अवरोधन की तरफ जनमानस का ध्यान आकर्षित कराया।

सन् 1937 में गांधी जी द्वारा 7 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हेतु वर्धा में बेसिक शिक्षा का प्रतिपादन किया। गांधीजी के प्रयासों का भारतीय जनता एवं सरकार पर सार्थक प्रभाव पड़ा एवं कई प्रांतीय सरकारों ने इस योजना को उसी समय लागू कर दिया। 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ जाने के कारण प्राथमिक शिक्षा का विकास अवरुद्ध हो गया, युद्ध समाप्ति के बाद सरकार द्वारा दीर्घकालीन सार्जेंट योजना 1944 प्रस्तुत की गई जिसमें कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा को अनिवार्य एवं नि:शुल्क करने की घोषणा की गई। इस योजना के क्रियान्वयन की शुरुआत भी कर दी गई परंतु उसी दौरान सन 1947 में भारत स्वतंत्र हो गया एवं भारतीयों ने नए सिरे से शैक्षिक प्रयास प्रारंभ कर दिए।

स्वतन्त्र भारत में अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी प्रयास: स्वतंत्रता के समय भारत की साक्षरता केवल 12% के लगभग थी। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में स्पष्ट निर्देश दिया गया- 'राज्य इस संविधान के लागू होने के समय से 10 वर्ष के अंदर 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा।' संविधान की 45वीं धारा के अनुसार, सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को 1960 तक प्राप्त कर लिया जाना चाहिए था। किन्तु संसाधनों के अभाव, जनसंख्या विस्फोट, पिछड़ापन, राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी आदि कारणों से इस लक्ष्य को 70 वर्ष बाद भी प्राप्त नहीं किया जा सका। सभी पंचवर्षीय योजनाओ में प्राथमिक शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया गया एवं बड़ी धनराशि प्राथमिक शिक्षा पर खर्च की गई। सन 1966 में कोठारी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में शैक्षिक अवसरों की समानता पर विशेष बल दिया एवं प्राथमिक शिक्षा में होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन को रोकने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए। कोठारी कमीशन ने सुझाव दिया कि 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों की अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के लक्ष्य को 20 वर्ष के अंदर प्राप्त कर लिया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ऐसी पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति है जिसके क्रियान्वयन की पूरी योजना प्रस्तुत की गई है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के क्रियान्वयन एवं परिणाम की समीक्षा हेतु जनार्दन रेड्डी समिति 1992 का गठन कर दिया। रेड्डी समिति एवं राममूर्ति समिति की रिपोर्टों के आधार पर संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की घोषणा की। इस नीति में शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय स्वीकार किया गया एवं प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण को राष्ट्रीय ध्येय के रूप में स्वीकार किया गया तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए न्यूनतम अधिगम स्तर की प्राप्ति सुनिश्चित करने की घोषणा की गई। प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए 1 किलोमीटर की दूरी के अंदर प्राथमिक विद्यालय, 3 किलोमीटर की दूरी के अंदर उच्च प्राथमिक विद्यालय एवं आवश्यकता अनुसार निरौपचारिक शिक्षा केंद्र खोलने की बात कही गई।प्राथमिक स्तर स्कूलों की दशा सुधारने एवं न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड प्रस्तुत की गई संशोधित नीति में इस योजना के दायरे में उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों को भी लाया गया। शैक्षिक अवसरों की समानता पर विशेष बल दिया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में प्राथमिक स्तर की शिक्षा को वर्ष 1990 तक एवं उच्च प्राथमिक स्तर की शिक्षा को 1995 तक सर्वसुलभ बनाने की घोषणा की गई। संशोधित शिक्षा नीति में इस लक्ष्य को वर्ष 2000 तक प्राप्त करने की प्रतिबद्धता व्यक्त की गई। प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन रोकने के लिए भी प्रभावकारी कदम की उठाने की सिफारिश की गई।

भारतीय प्राथमिक शिक्षा पर वैश्विक प्रभाव: संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दिसंबर 1948 में श्मानव अधिकारों की सार्वजनिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद 26 में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी है। शिक्षा कम से कम प्रारंभिक स्तर पर नि:शुल्क तथा अनिवार्य होनी चाहिए। बाल अधिकार अभिसमय 1989 (सी.आर.सी.) बालकों के अधिकार हेतु एक विस्तृत, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का बाध्यकारी समझौता है इस अभिसमय के अनुच्छेद 28 के अनुसार प्रत्येक बालक को नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा, इस दिशा में अमीर देश विकासशील एवं गरीब देशों की सहायता करनी चाहिए,भारत ने इस समझौते पर 1992 में हस्ताक्षर करके अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की।

सन् 1990 में थाईलैंड में 'एजुकेशन फॉर ऑल विषय' पर विश्व कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया गया, कांफ्रेंस में सबके लिए शिक्षा पर विश्व घोषणा तैयार की गई। इस कांफ्रेंस में यह भी निर्णय लिया गया कि सभी देश अपने बच्चों की आधारभूत सामान्य शिक्षा की अनिवार्य एवं नि:शुल्क रूप से व्यवस्था करेंगे एवं जो देश अपने संसाधनों से यह कार्य करने में समर्थ नहीं होंगे उन्हें विकसित देश आर्थिक सहायता प्रदान करेंगे और साथ ही विश्व बैंक से उनकी आर्थिक सहायता की जाएगी, जिसके परिणाम स्वरूप संसार के सभी शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े देशों में आधारभूत सामान्य शिक्षा की व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया। भारत ने अपने संसाधनों की वृद्धि की एवं विकसित देशों, विश्व बैंक द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की गई, इसके परिणाम स्वरूप सबके लिए शिक्षा को एक आंदोलन के रूप में चलाया गया।

वर्ष 2000 में संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दी शिखर सम्मेलन में लगभग सभी देशों के प्रति निधियों ने सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य 2015 के अंतर्गतलक्ष्य 2- सबके लिए प्राइमरी शिक्षा उपलब्ध कराना सुनिश्चित किया गया।

सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों के लिए अवधि पूर्ण होने के उपरांत संयुक्त राष्ट्र महासभा की सातवीं बैठक में वर्ष 2015 में संधारणीय विकास लक्ष्य (SDG) 2030 के अंतर्गत एसडीजी-4 में समावेशी, न्याय संगत तथा गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने के साथ सभी को सीखने का अवसर प्रदान करना निर्धारित किया गया है। समावेशी न्याय संगत तथा गुणवत्ता युक्त शिक्षा के माध्यम से ही अन्य एसडीजी लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव हो सकती है।

प्राथमिक शिक्षा जनमानस को सुलभ कराने के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से ही सरकार द्वारा महिला समाख्या (1979), ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड (1987), डीपीईपी (1994), मध्यान्ह भोजन योजना (1995), सब शिक्षा अभियान (2001), शिक्षा गारंटी योजना एवं वैकल्पिक नवाचारी शिक्षा कार्यक्रम (2001) एनपीईजीईएल (2003), कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना (2004), स्कूल चलो अभियान (2004), सब पढ़े,सब बढ़े (2014) समग्र शिक्षा अभियान (2018)आदि निरन्तर अनेक प्रयास किए गए।

**शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009:** वर्ष 1992 में मोहनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य प्रकरण में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद-21 के तहत गरीमा के साथ जीवन के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार माना। वर्ष 1993 में उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य प्रकरण में उच्चतम न्यायालय ने 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार को मूल अधिकार घोषित कर दिया। उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयो, वैश्विक एवं राष्ट्रीय प्रतिबद्धता के परिणाम

स्वरूप भारत सरकार द्वारा 86 वें संविधान संशोधन 2002 द्वारा मौलिक अधिकारों में 21(क) जोड़ा गया, जो यह प्रावधान करता है कि श्राज्य विधि बनाकर 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा का उपबंध करेगा। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है। इस अधिनियम में 7 अध्याय एवं 38 धाराएं हैं। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में निहित मुख्य प्रावधान-

- 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को पड़ोस के विद्यालय में निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार। (धारा 3)
- बालकों को अपनी आयु के अनुसार समुचित कक्षा में प्रवेश का अधिकार। (धारा 4)
- विद्यालय में छात्रों की शत प्रतिशत उपस्थिति, शिक्षकों की समयबद्धता एवं नियमितता। (धारा 24)
- छात्र शिक्षक अनुपात, विद्यालय भवन एवं अवसंरचना, शिक्षण अधिगम सामग्री, विद्यालय कार्य दिवस, खेल सामग्री एवं शिक्षक कार्य समय से संबंधि त मानको एवं मानदंडों का वर्णन। (धारा 19 व 25)
- केंद्र एवं राज्य सरकार के बीच वित्तीय एवं अन्य उत्तरदायित्व का आदान-प्रदान। (धारा 7)
- 10 वर्षीय जनगणना चुनाव एवं आपदा राहत को छोड़कर गैर शैक्षणिक कार्यों में शिक्षकों की तैनाती पर निषेध। (धारा 27)
- बच्चों के प्रवेश संबंधी अनुवीक्षण प्रक्रियाएं एवं प्रति व्यक्ति शुल्क न होना, शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न का प्रतिशेध, गैर मान्यता प्राप्त विद्यालयों को चलाना निषिद्ध, , शिक्षकों द्वारा निजी ट्यूशन का प्रतिशेध। (धारा 13 17, 18, एवं 28)

सरकारी आंकड़े बताते हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात प्राथमिक विद्यालय की संख्या, बालक बालिकाओ के नामांकन, शिक्षा पर खर्च, शिक्षकों की संख्या में निरंतर वृद्धि दर्ज की गई। लैंगिक असमानता, ड्रॉपआउट रेट, आउट ऑफ स्कूल बच्चों की संख्या में निरंतर कमी दर्ज की गई लेकिन प्राथमिक शिक्षा सार्वभौमिकरण के लक्ष्य को अभी भी प्राप्त नहीं किया जा सका है। यू डायस फ्लैश रिपोर्ट 2016-17 के अनुसार देश के 12.7% प्राथमिक स्कूल ही 10 आरटीई पैरामीटर्स को पूर्ण कर रहे थे। एमएचआरडी यू डायस रिपोर्ट 2018-19 के अनुसार राष्ट्रीय स्तर पर प्राथमिक विद्यालय में छात्र शिक्षक अनुपात 23:1, उच्च प्राथमिक विद्यालय में छात्र शिक्षक अनुपात 24:1 है प्रारंभिक स्तर कक्षा 1 से 8 पर ड्रॉपआउट रेट 2.72: प्राथमिक स्तर से उच्च प्राथमिक स्तर पर ट्रांजैक्शन रेट 90. 36% है। सरकारों द्वारा विगत वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद की लगभग 4% धनराशि शिक्षा के लिए आवंटित की गई। जबकि कोठारी आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति व अंतर्राष्ट्रीय मानक अनुसार सकल घरेलू उत्पाद का कम से कम 6: शिक्षा पर व्यय होना चाहिए। विगत कई वर्षों से देखने में आया है कि शिक्षा के लिए प्रस्तावित बजट सरकारें शिक्षा पर खर्च न कर सकी। सेंटर फॉर मॉनीटरिंग इंडियन इकोनॉमी (सीएमआईई) की एक रिपोर्ट के अनुसार, पिछले 10 सालों में 8 बार ऐसा मौका आया जब शिक्षा पर प्रस्तावित बजट खर्च नहीं हो सका। इस रिपोर्ट के अनुसार 2014 से 2019 के दौरान लगभग 4 लाख करोड़ रुपये प्रस्तावित बजट शिक्षा के क्षेत्र में खर्च नहीं हो सका। असर रिपोर्ट 2018 के अनुसार भारत मे प्राथमिक शिक्षा का गुणवत्ता स्तर अत्यंत निम्न है, कक्षा 5 के लगभग आधे बालक बालिका कक्षा दो की किताब भी नहीं पढ़ पाते है। कक्षा 8 कि 56 फीसदी छात्र भाग के सामान्य सवाल एवं कक्षा 3 के 70: छात्र घटाव के सवाल हल नहीं कर पाते है। रिपोर्ट के मुताबिक 10 साल पहले की तुलना में स्कूली छात्रों के प्रदर्शन में काफी गिरावट आई है, 2008 में कक्षा 5 के 35% छात्र गणित के बुनियादी सवालों को हल कर सकते थे लेकिन 2018 में यह संख्या घटकर 28 फीसदी रह गई है सामान्य तौर पर लडको की तुलना में लड़कियां अच्छा प्रदर्शन कर रही हैं रिपोर्ट के अनुसार भारत में पहली बार आउट ऑफ स्कूल संख्या 3% से नीचे 2.8% पहुंच गई है। विगत वर्षों में विद्यालय की भौतिक एवं बुनियादी सुविधाओं निरंतर वृद्धि दर्ज की गई है। सरकारी एवं गैर सरकारी रिपोर्ट यह बताती है कि विभिन्न प्रयासों के बावजूदहम शिक्षा अधिकार के वास्तविक लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सका है।

**निष्कर्ष:** सर्वशिक्षा वैश्विक निगरानी रिपोर्ट 2013-14 के अनुसार भारत में प्राथमिक शिक्षा के दो मुद्दे हैं- पहुंच एवं गुणवत्ता। भारत ने शिक्षा के अधिकार के तहत पहुंच वाले भाग कि लगभग पूर्ति कर ली है। सरकार का अगला लक्ष्य गुणवत्ता सुधार पर केंद्रित करना है। असर रिपोर्ट- 2018 के अनुसार 97: से अधिक बच्चों का नामांकन प्राथमिक विद्यालय हो चुका है लेकिन प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता का स्तर लगातार निम्न बना हुआ है। सरकार, संबंधित अधिकारियों एवं शिक्षकों द्वारा गुणवत्ता सुधार हेतु प्रभावी प्रयास किए जा रहे हैं लेकिन अभी इस क्षेत्र में और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है तभी शिक्षा अधिकार अधिनियम के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


1. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, द राइट ऑफ चिल्ड्रन टू फ्री एंड कंपलसरी एजुकेशन (आरटीई) एक्ट 2009, मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट, न्यू दिल्ली, पृष्ठ संख्या 1-13
2. उत्तर प्रदेश सरकार, उत्तर प्रदेश निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार नियमावली 2011, शिक्षा अनुभाग- 5, सरकारी गजट उत्तर प्रदेश, पृष्ठ संख्या 1-22
3. गुप्ता एस एवं अग्रवाल जे सी (2009) भारत में प्रारंभिक शिक्षा स्वतंत्रता से पूर्व तथा पश्चात प्रथम संस्करण, शिप्रा पब्लिकेशंस, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 6 105
4. पाठक पीडी (2010ध् 2011) भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं 25 वां संस्करण अग्रवाल पब्लिकेशंस आगरा, पृष्ठ संख्या 255 280

# 'हंस' सम्पादकीय दृष्टि और हाशिए का समाज


## ममता यादव

*शोध छात्रा, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ०श०मि०रा०पु० विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ०प्र०*

## डॉ० यशवन्त वीरोदय

*असिस्टेण्ट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,, डॉ०श०मि०रा०पु० विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ०प्र०*



### शोध सारांश

मानवीय समाज में व्याप्त बहुत सी समता विषमता के बावजूद सभी मनुष्य एक लंबे समय से एक साथ जीते आ रहे हैं फिर भी हमारा समाज कई खंडों में बटा हुआ है इस विभाजन का प्रमुख कारण मनुष्य की चेतना में समाया हुआ श्रेष्ठताबोध दिखावापन और वर्चस्व की भावना है जिसके चलते सामाजिक जीवन के ताने-बाने में समाई सामूहिकता की भावना धीरे-धीरे क्षीण हुई तथा मनुष्य मनुष्य के बीच कई तरह के भेदभाव दिखाई दिए इसी भेदनीति का परिणाम है कि मानवीय जगत गहरी असमानता का शिकार है। अनवरत बढ़ती असमानता ने केवल ऊंच-नीच के भाव ही नहीं पैदा किए वरन् एक ऐसे समाज को निर्मित किया जो अपनी बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित होता चला गया। अवसर, अधिकार, संसाधन से वंचित हाशिए का समाज (स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, आदिवासी और श्रमिक, किसान) अन्याय शोषण हिंसा अस्मिता संकट जैसी समस्याओं को झेलते हुए महसूसने लगा कि-''आखिर मैं भी आदमी हूं मुझे भी सम्मान और स्वतंत्रता से जीने का हक है।''[1] इस तप्त वाक्य के गहरे असहनीय एहसास से उपजी चेतना ने हाशिए की आवाज को उत्पन्न किया। आज तक दलित दमित वंचित वर्ग मुख्यधारा में शामिल होने हेतु अनेक क्षेत्रों में संघर्ष कर रहा है और मुखरता के साथ अपनी आवाज उठा रहा है। हाशिए के समाज के इस मुखर स्वर के निर्माण में अनेक भक्ति-कालीन कवियों के साथ ही अनेक भारतीय एवं पाष्चात्य विचारकों, महापुरुषों तथा लेखकों, क्रांतिकारियों के संघर्ष की एक लंबी दास्तां रही है 90 के दशक में उभर रही हाशिए की आवाज को बुलंद करने में राजेंद्र यादव संपादित पत्रिका का अतुलनीय योगदान रहा है।



Key Word: हाशिए का समाज, वर्चस्व, अस्मिता संकट, श्रेष्ठताबोध।


हाशिए के समाज में आए 'हाषिया' शब्द का सीधा और स्पष्ट अर्थ किनारा है। अर्थात किसी विस्तृत या बड़े भाग का वह हिस्सा छोर जो छोड़ा गया है। जिस प्रकार किसी पृष्ठ पर लेखन करते समय बायीं तरफ दीर्घपरंपरानुसार एक हिस्सा किसी कारणवश या जानबूझकर छोड़ दिया जाता है अर्थात उसे लेखन योग्य और उपयोगी नहीं समझा जाता है उसी प्रकार हमारे मुख्यधारा के शक्तिशाली वर्ग द्वारा उन्हें औरों से अलग, निम्न और कमतर समझ कर अलग कर दिया जाता है। मुख्य समाज द्वारा विभिन्न कारणों जैसे रीति रिवाज रहन-सहन भाषा लिंग धर्म अक्षमता और सामाजिक कमतर हैसियत के आधार पर हाषियाई महसूस करने के लिए विवश किया जाता है, जिससे यह अपने को षक्तिहीन और पराजित महसूस करते हैं और सामाजिक आर्थिक राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी भागीदारी नहीं कर पाते या नहीं करने दिया जाता है फिर यह समाज मूलभूत सुविधाओं से वंचित होता चला जाता है हाशिए के समाज को परिभाषित करते हुए प्रोफेसर चौथी राम ने अपने साक्षात्कार में कहा है कि-''हाशिए के समाज से प्राय: तात्पर्य दलित समाज है, पिछड़ा समाज है, आदिवासी समाज है, किसान मजदूर यही सब तो हैं हाशिए का समाज मुझे लगता है कि जिन्हें हाशिए का समाज कहा जाता है वह बहुसंख्यक समाज हैं और आबादी के हिसाब से बहुसंख्यक समाज होने के नाते यह मुख्यधारा का समाज है लेकिन तमाम आर्थिक संसाधनों और शिक्षा से वंचित करके उन्हें हाशिए पर ढकेल दिया गया है और जो हाशिए के लोग हैं, कम आबादी (मुख्यधारा) वाले लोग हैं वह वर्चस्व बनाए हैं और वही मुख्यधारा के केंद्र में हैं।''[2]

हंस संपादकीय में राजेंद्र यादव लिखते हैं कि-''सिर्फ अमेरिकी जीवन का ही नहीं, संपूर्ण भारतीय समाज का यह एक रूपक है करोड़ों लोगों का एक समुदाय है जो हजारों सालों से ना जाने किन सुरंगों में भटकता, दम तोड़ता रहता है वह न कहीं हमारे साहित्य में आ पाता है ना संस्कृति और इतिहास में। बस्तियों से बाहर, जंगलों पहाड़ों में, खेतों खदानों में, लाखों लोग अदृष्य जिंदगी जीते रहते हैं। हमारे लिए अपने श्रम और सेवा समर्पित करते रहते हैं मगर हम उन्हें कहीं नहीं देखते। घर-घर में पर्दों के पीछे अनाम प्राणियों की कतारें हमारी सेवा करती और वंष चलाती रहती हैं, मगर उनका होना हमारी अपनी बड़ी दुनिया में कोई मायने नहीं रखता है।''[3]

भारतीय वंचित समाज के लिए हंस की भूमिका ऐतिहासिक साहित्यिक महत्व की है। वह साहित्य का मूल मंत्र 'सत्यम् शिवम् सुंदरम' का कुलीनता वादी दृष्टिकोण नहीं मानता बल्कि वंचितों का इतिहास कल से आज तक सिर्फ शोषण प्रताड़ना और यातना का रहा है। इसलिए हंस की दृष्टि में साहित्य का मूल मंत्र यातना, संघर्ष, और स्वप्न, का जुझारू सिद्धांत है। हम लोग आत्ममुग्ध अतीतजीवी, रूढिघ्वादी, यथास्थितिवादी किस्म के मनुष्य हैं हंस ने हमें इस कूपमण्डूकता से बाहर निकालते हुए साहित्य के नए रूप हेतु प्रेरित किया है। हंस संपादकीय ने लेखकों और पाठकों को हर बहस-तलब मुद्दे प्रसंग पर एक नई दृष्टि दी है।

विद्यानिधि कांटे की बात नाम से संपादित सांस्कृतिक मोर्चेबन्दी के इतिहास की भूमिका में लिखते हैं कि-''जिस इतिहास को स्वर्णिम कहते हम थकते नहीं हैं वह हाषियों और तहखानों में फेंक दिए गए लोगों की गुमनाम गाथाओं का इतिहास है। वह ब्राह्मणवादी वर्चस्व का ऐसा गौरवान्वित रोजनामचा है, जो भाग्य और भविष्य को न बदलने का दर्शन देता है। जो अतीत और इतिहास सवर्णों के लिए स्वर्ग है वह दलितों स्त्रियों के लिए नर्क है। इतिहास का सच इसीलिए एक नहीं है क्योंकि शोषित और शोषक का सच कभी एक नहीं होता।''[4]

बीसवीं शताब्दी के नौवें दशक के पहले विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जिस हाशिए के समाज ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई थी उनमें स्त्री विमर्श तो हिंदी की दुनिया में छा गया था लेकिन जब हंस ने इसे साहित्य के केंद्र में लाकर खड़ा किया तो स्त्री लेखकों के साथ-साथ दलित, अल्पसंख्यक लेखकों, कवियों, विचारकों को जन्म देकर नया मंच प्रदान किया जिनमें कुछ नाम प्रमुख हैं-प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल, मैत्रेई पुष्पा, सूर्य बाला, मृणाल पांडे, अर्चना वर्मा, जया जादवानी, निर्मला जैन, ओमप्रकाश बाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, माता प्रसाद, तुलसीराम, काँता भारती, डॉ धर्मवीर, अजय नवारिया, ष्यौराज सिंह बेचौन, डॉक्टर जयप्रकाश कर्दम, रमणिका गुप्ता, कँवल भारती, भगवानदास मोरवाल, रत्न कुमार सांभरिया इत्यादि।

'मैं हंस नहीं पढ़ता' शीर्षक पुस्तक में राजेन्द्र यादव 'पीड़ा के दावेदार' लेख में दलितों, स्त्रियों की दषा को प्रष्नांकित करते हुए दलित लेखकों को व्यवस्था परिवर्तन की तरफ संकेत करते हुए कहते है कि-

''दलित लेखकों को इस पर भी विचार करना होगा कि उनका लेखन सिर्फ आत्माभिव्यक्ति का सुख नहीं है, एक संघर्ष और आन्दोलन का हिस्सा भी है, वह सिर्फ पीड़ा को कहकर उससे मुक्त (शास्त्रीय शब्दावली में विरेचित) हो जाना ही नहीं उस पीड़ा को अपनों में बांटकर सामूहिक मुक्ति का सपना भी है। सवाल यह भी है कि इसी वर्ण व्यवस्था को बनाये रखकर क्या दलितों का संघर्ष खुद सवर्णों जैसा सम्मानित हो जाने तक जाता है। या सारी व्यवस्था को ही बदलने की बात सोचता है। भूलना यह भी नहीं चाहिए कि उनका सवर्णों की तरह सम्मानित और सत्तावान बनना, दूसरे 'नए दलितों को जन्म देना है।' जो जितने अपनों में से होगें उतने ही उन अपनो से बाहर - यहीं नहीं, सवर्ण बनने की आकांक्षा उन्हें ठीक उन्हीं कर्मकाण्डों और धार्मिक ढकोंसलों में ढकेल देगी जो उनकी अपनी समझ से असली सवर्णों की शक्ति है..... ।''[5]

हंस पत्रिका के द्वारा राजेन्द्र जी ने मिली जिन्दगी और सार्वजनिक जिन्दगी के बहाने काम वर्जनाओं को तोड़ने का काम कर साहित्य को लोकतांत्रिक बनाया। महिला, दलित, अल्पसंख्यक तथा अन्य वंचित समाज को राजेन्द्र जी ने हंस पत्रिका के माध्यम से अपने निजी संघर्ष, पीड़ा की कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, में लिखने हेतु जगह उपलब्ध कराते हुए कहा कि हाशिये की यातना, संघर्ष, सच, समाज की विकृतियां है, समाज का सच है, इसलिए समाज का यह नग्न रूप यथार्थ ढंग से सामने लाना जरूरी है। क्योंकि यह सच केवल व्यक्ति विषेश का सच नहीं है वह लिखते है-

''सदियों की गुलामी, सामाजिक स्थिति और असुरक्षा में बने रहने ने नारी के सारे आत्मविश्वास को छीन लिया है, उसे अपने होने और बनने की हर स्थिति में पुरूष की स्वीकृति- समर्थन चाहिए। कुछ क्षेत्रों में वह नारी को उन्मुक्त अनुमोदन देता है तो कुछ में झिड़क देता है। ''तुम्हारे बस का नहीं है।'' या तुम्हारे मतलब का नहीं है।''[6]

आगे वह लिखते है कि-''शिक्षा और संस्कार, उदारता और अनुशासन, नैतिकता और सदाशयता जैसी प्रेरणाओं से अभी तक हम यानी पुरूष ही तय किया करते थे कि नारी के तन और मन को कितना खोलना है और कितने बन्धन उसकी 'स्वतन्त्रता' में बाधक है, या कितनी मुक्ति उसके हित में है अर्थात् कितने खुलेपन को हम बर्दाश्त् कर लेंगे। अब नारी खुद तय करना चाहती है कि उसे कहां और कितने बन्धन चाहिए।''[7]

आज का स्त्री विमर्श यह मांग करता है स्त्री को मात्र देह वस्तु न माना जाए बल्कि वह भी मनुष्य है उसे भी स्वतन्त्र जीवन, स्वतन्त्र निर्णय, पर्सनल स्पेस, लिंग समानता, अधिकार, अवसर के साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों में बराबर भागीदारी मिले, स्त्री विमर्श को केवल देह मुक्ति तक सीमित करके देखना उचित नहीं है बल्कि स्त्री के सर्वांगीण विकास तथा उसकी मुक्ति को उसके वाह्य आन्तरिक पारम्परिक प्रतिबन्धों से परे स्वतन्त्र, समग्र समाज की इकाई के रूप में देखा जाना चाहिए। स्त्री समाज जो चाहता है उसे महादेवी वर्मा के शब्दों मे आप देख सकते है-

''हमें न किसी पर जय चाहिए न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए न किसी का प्रभुत्व केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए, जिनका पुरूषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिसके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी। हमारी जागृत और साधन सम्पन्न बहिने इस दिशा में विषेश महत्वपूर्ण कार्य कर सकेंगी, इसमें सन्देह नहीं''[8]

स्त्रियों के साथ ही भारतीय जनतन्त्र में श्रमशील समाज, बेरोजगारी, बदहाली के दंश को झेल रहे है किसान लगातार अपनी मांगो, समस्याओं को सत्ता के समक्ष रखते रहे है, किन्तु सत्ता अपने पूंजी पतियों के हाथ गर्म करती रही है। यह उपेक्षा संघर्षशील वंचित समाज ने अनवरत झेली है जो इस सामन्ती व्यवस्था की देन है। 'इस बढ़ते पूंजीवाद, व्यवस्था, सत्ता ने संघर्षशील समुदाय के विकास में शोषक बन बाधा पहुंचाने का काम किया है, जिससे मेहनतकश इन्सान का अस्तित्व संकट में आया है। प्रेमचन्द्र के समय में भी किसान और जमीन की समस्या, भूमिहीन मजदूर के शोषण की समस्या, स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, की जो समस्याएं थी वह आज भी अपने समय के साथ परिवर्तित रूप में उपस्थित है। किसान आदिवासी, श्रमिक, क्रमशः कर्ज, जल, जंगल, जमीन, तथा काम काज की समस्या से आत्महत्या, विस्थापन तथा रोजगार हेतु शहरों की तरफ पलायन कर रहे है। उनकी फसलों, झुग्गी-झोपड़ियों पर अनेक तरह से अतिक्रमण जारी है इस अंसख्य समस्याओं का हल उसी दिन निकलेगा जिस दिन शोषित पीड़ित इकाईयां पूंजीवाद, सत्ता, व्यवस्था के दमन का विरोध एकजुट होकर करेंगी।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि यह 21वीं सदी न्याय चेतना की सदी है। इसमें वंचित आवाजें, हाशिए पर पड़ी मानवता, साहित्य-समाज, के केन्द्र में आयी है उसने हजारों सालों से चली आ रही परम्पराओं, मान्यताओं रूढियों से लैस सोच को बदला है और गैर बराबरी की तमाम फिलॉसफी को प्रश्नांकित किया है, किन्तु हाशिए के समाज को मुख्य धारा का हिस्सा बनने के लिए, उसमे शामिल होने के लिए अभी बड़े साहस और संघर्ष की जरूरत है, क्योंकि सामाजिक व्यवस्था द्वारा-''पहले भी दलित और स्त्रियां शेष समाज से बाहर कर दी गई, अछूत और अनाम उपस्थिति भी सत्ता के लिए आज भी वे सिर्फ वोटों की गिनती में अमूर्त अस्तित्व भर है।''[9]

आशावादी राजेन्द्र यादव हाशिए के समाज की एकजुटता की तरफ संकेत करते हुए हंस सम्पादकीय में लिखते है कि-

''साम्प्रदायिकता एक ऐसे ध्रुवीकरण की प्रक्रिया है, जो सिर्फ विधर्मियों को छांटने तक नहीं रूकती, वह अपने भीतर के अधार्मिक और अवांछित तत्वों को भी अलगाने और परिणामत: उन्हें एकजुट होने की मजबूरी पैदा करती है। जब आप हरे रंग को पाकिस्तान और मुसलमानों का रंग करार देकर स्टेशन, बस्तियां फूंकेगे, तो वे करोड़ो-करोड़ किसान और आदिवासी भी आपके खिलाफ उठेंगे, जिनकी फसलें और जंगल हरे होने के लिए अभिशप्त है।''[10]

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-


1. यादव राजेन्द्र,-गुलामी का आनन्द और स्वतन्त्रता के खतरे वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1998 पृष्ठ संख्या- 114
2. 'अपनी माटी'- दलित आदिवासी विशेषांक, अंक 19 सितम्बर- नवम्बर 2015, साक्षात्कार, आलोचक प्रो0 चौथीराम, दिनेश पाल और दीपक कुमार के साथ बातचीत, पृष्ठ-02
3. यादव राजेन्द्र, सांस्कृतिक मोर्चा बन्दी का इतिहास वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2003, पृश्ठ संख्या- 93
4. विद्यानिधि, कांटे की बात भाग-11 की भूमिका (आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक) वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2003
5. यादव, राजेन्द्र- ''मैं हंस नहीं पढ़ता' के 'पीड़ा के दावेदार' लेख से वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2005 पृष्ठ सं0- 152
6. यादव राजेन्द्र, कांटे की बात' भाग-3 'स्त्रीगाथा लेख', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1998 पृष्ठ सं0- 153
7. वही, पृष्ठ सं0 153
8. वर्मा, महादेवी- 'श्रृंखला की कड़िया,' लोकभारती प्रकाशन पंचम संस्करण 2019 पृष्ठ सं0 23-24
9. यादव, राजेन्द्र, सांस्कृतिक मोर्चाबन्दी का इतिहास वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003 पृष्ठ संख्या 15
10. यादव, राजेन्द्र, खामोश चिन्तन चालू आहे! वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 पृष्ठ संख्या 143।

# भाषा और साहित्यः बौद्ध धर्म की देन


## डॉ० कविता लखैयार

*शोध छात्राः प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन ( ए0 आई0ए0एस0 ), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया*



**सारांशः** भाषा और साहित्य में बौद्ध धर्म का देन अतुल्यनीय व विश्वसनीय है। जिस प्रकार मैथिली, भोजपुरी, बंगला, गुजराती आदि भाषाओं का नाम जनपद के आधार पर पड़ा उसी समान पालि का नाम भी मगध जनपद विशेष के नाम पर ही पड़ा। पाली जनपद बौद्ध धर्म का ही अंग था 'पाली' नामक स्थान पटना जिला का पश्चिमी क्षेत्र में अवस्थित है, जो एक प्रसिद्ध स्थान है। लंका में बौद्ध धर्म के ग्रंथ इन्हीं स्थानों के प्रमुख भिक्षुओं के द्वारा गये होगे, जनपदीय पालि-भाषा का नामकरण हुआ होगा, अनेक विद्वान का मानना है कि पालि भाषा मगध की भाषा नहीं है अपितु यह उज्जैन की भाषा है। बौद्ध धर्म की देन कुछ भी हो भाषा में पालि भाषा का ही है।



**मुख्य शब्दः** साहित्य, भाषा, पालि, बौद्ध, धर्म, मगध, देन।


**परिचयः** भगवान बुद्ध अपना प्रवचन किस भाषा में करते थे इसका कोई निश्चित पता नहीं है कि वे जनपदीय भाषा के पक्षपाती थे। एक बार उनका शिष्य ने कहा कि- हन्द! मयंभन्ते! बुद्धवचनं छन्दसो आरो पेमाति।[1] अर्थात 'भगवान' अपने वचन को वैदिक भाषा में निबद्ध करने की अनुशंसा दे। इसपर भगवान बुद्ध ने कहा कि- अनुजानामि भिक्खवे सकाय, निरूक्तिया बुद्धवचनं परिया पुणितु[2] अर्थात हे भिक्षुणी! मैं अपने वचन को प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी-अपनी भाषा में सीखने समझने की आशा देता हूँ। वैदिक या संस्कृत भाषा में अपना उपदेश को बॉधना बुद्ध को स्वीकार नहीं था। अन्ततः इससे सिद्ध होता है कि बुद्ध को अपनी जनपदीय भाषा ही प्यारी थी।

जनपदीय भाषा कौन सा था यह प्रश्न उठना स्वभाविक ही है? जिस मगध में उनके उपदेश दिया गया वही उनकी उपदेश भाषा थी। किन्तु वह मगधी न तो अर्धमगधी थी और न ही संस्कृत नाटकों में मिलने वाला मगधी ही। बुद्ध-वचनों की मौलिक महता तथा अपनी मातृभाषा के प्रेम के कारण ही पांचवी सदी में मगधी निवासी बुद्ध घोष अठ्ठकथाओं को लाने लंका गये। साथ-साथ मगधी भाषा के प्रेम के कारण ही बुद्ध घोष के गुरू मगधीवासी आचार्य 'रेवत' ने भी बुद्ध घोष कों लंका जाने और मूल बुद्ध वचन को ले जाने के लिए प्रेरित किया। अशोक के शिलालेख में भाषा की विभिन्नता दिखाई देती है। उसका मूल कारण है भगवान बुद्ध के अज्ञानुसार ही सम्राट ने तत-तत् प्रदेशों की भाषाओं का व्यवहार किया। किसी एक भाषा का नहीं। फिर भी उन लेखों में मगधी का मौलिकता उसमें अक्षुण्य बनाएँ रखा। यह विचारना आवश्यक है कि मगध-प्रदेश की उस भाषा का नाम पालि क्यों पड़ा और उसका व्यवहार हमें पॉचवी सदी में, आचार्य बुद्धघोष की रचनाओं में प्राप्त होता है। किन्तु इन्होंने भी पालि शब्द का व्यवहार भाषा के अर्थ में नहीं किया है; बल्कि बुद्ध वचन, मूल त्रिपिटक तथा उसके पाठ के अर्थ में किया है। स्पष्ट है कि यहाँ 'पालि' का अर्थ भाषा नहीं है। किंतु इसी आधार पर पालि का भाषा के अर्थ में व्यवहृत होने लगा आज तो पालि शब्द का मुख्य अर्थ यह माना जाता है कि बौद्ध धर्म में स्थिविरवाद के त्रिपिटक और उसके अन्य साहित्य जिस भाषा के लिपिबद्ध है की भाषा 'पालि' है।[3]

हमें यह भी देखना चाहिए कि पालि शब्द का मूल रूप कौन सा शब्द है और भाषा के अर्थ में इसका पालि नाम क्यों पड़ा। इससे मगधी और पालि की रजरूपता पर प्रकाश पड़ सकता है।[4] भाषाशास्त्रीयों का कहना है कि 'परिचाय' का अपभ्रंश पालियाय' है। इसी पालियाय का प्रथम अपना दीर्घ होकर 'पालियाय' बन गया तथा इसी का संक्षिप्त रूप पालि हो गया।[5] इस विचार से बौद्ध विद्वान भिक्षु जगदीश कश्यप भी सहमत थे।[6] अनेक विद्वानों का मतहै कि पालि मगध की भाषा नहीं थी अपितु पालि उज्जैन प्रदेश की भाषा थी। बारहवीं शताब्दी में लिखा गया पालि-भाषा के 'मोग्गलान व्याकरण' का प्रथम सूत्र भी कहता है कि ''भासिस्सं मगधं सद्द-लक्खनं।'' अर्थात मगधी भाषा शब्द-लक्षण प्रतिपादित करता हूँ। यहाँ भी मगधी का ही नाम लिखा गया है। कच्चान व्याकरण में भी इसी तरह कहा गया है ''सा मागधी मूलभाषा सम्बुद्धा चापि भासरे।

स्वयं बुद्धघोष ने अपनी समन्त 'पासादिका' नामक पुस्तक में लिखा है कि - सम्मा सम्बुद्धेन वुत्तपकारो मगध की बोहारा। अर्थात सम्यक सम्बुद्ध के द्वारा मगधी भाषा का ही व्यवहार होता है।[7]

बौद्ध धर्म के विकास में बिहार-प्रदेश की मगधी भाषा की देन अतुल्नयीय और अनिवचनीय है। सच पूछिए तो, बौद्ध धर्म के विकास का सम्पुर्ण भण्डार ही मगधी (पालि) का ही देन है, यानी सारा बौद्ध साहित्य -सागर ही मगधी भाषा के धारा-प्रवाह से भरा है जिसका लेखा-जोखा दुष्कर है। मगधी न केवल बौद्ध धर्म के अस्तित्व, सुरदपा और विकास का ही कार्य नहीं किया है अपितु समस्त भारत की संस्कृति, सभ्यता, इतिहास तथा विविध कलाओं की विपुल रचना के साथ-साथ उसका विकास भी किया।

बिहार- प्रदेश की प्राचीन नगरी राजगृह जो सर्वप्रथम बौद्ध संगती बैठी थी और बुद्ध वचनों के पाठ स्थिर किये गये थे, उसके अनुसार सुतपिटक, विनयपिटक और बौद्ध घोस के कथानुसार अभिधम्म की रचना भी इसी संगीति में हुई।[8]

बौद्धो के सुतपिटक, विनयपिटक और अभिधम्म पिटक ग्रंथ अति प्राचीन माने गये है उनकी प्रमाणिकता में किसी को भी कुछ सन्देह नहीं है। ये सभी ग्रंथ अति प्राचीन पालि भाषा में ही है।

सुतपिटक में पाँच निकाय है।

(1) दीघ निकाय

(2) मझिम निकाय

(3) संयुक्त निकाय

(4) अंगुतर निकाय

(5) खुद्यक निकाय

**विनय पिटकः**- विनय पिटक तीन भागों में विभक्त है-

(i) सुक्त विभांग (ii) खन्धक (iii) परिवार

अभिधम्म पिटक सात भागों में बँटा हुआ है जो इस प्रकार है।-

(i) धम्मसंगणि (ii) विभंग (iii) धातुकथा (iv) पुग्गलपञ्ञत्ति (v) कथावत्थु (vi) यमक (vii) पट्ठान। ये सभी बौद्ध धर्म के दार्शनिक ग्रंथ है। इन ग्रंथों में धर्मों का वर्गीकरण, वर्गीकृत धर्मों का विस्तार और उसपर भंगजाल का प्रसार, धातुओं की प्रश्नोत्तर के रूप में व्याख्या, मानव अंगों का वर्गीकरण, बौद्ध धर्म का विकासात्मक इतिहास, मतान्तरों का पूर्व पक्ष में समर्थन और खण्डन, अनेक बौद्ध सिद्धान्तों की स्थापना आदि बड़े ही युक्तिसंगत एवं वैज्ञानिक ढंग पर प्रतिपादित किया गया है। कथावथ्तु तक के पाँच ग्रंथों में जिन शंकाओं के समाधान नहीं किये गये थे उन शंकाओं के समाधान 'यमक' के विवरणों में दिये गये है। इसी प्रकार पठ्ठान में नाम और रूप के 24 प्रकार के कार्य-कारण सम्बन्ध का प्रतिपादन किया गया है।[9] इनमें पाँव दार्शनिक ग्रंथों का निर्माण मौर्यकाल तक हो चुका था और 'यमक' तथा 'पठ्ठान' की रचना उसके बाद हुआ।

इन उपयुक्त ग्रंथों के अतिरिक्त भी प्राचीन मगधी पालि ने बौद्ध साहित्य को खुब भरा-पुरा किया गया है। ऐसे ग्रंथों में बुद्धदत्त, बुद्धघोष और धर्मपाल की लिखी अथकथाएँ है; जो पालि साहित्य के गौरव-ग्रंथ है। बौद्ध घोष के पश्चात जिन मान्य बौद्ध ग्रंथ की रचना हुई उनमें नेतिपकरण, पेटकोपदेश, मिलिन्दपन्थे प्रमुख है। 'नेतिपकरण के रचयिता 'गन्धवंश' के अनुसार बुद्ध के शिष्य महाकात्यायन थे। इसमें 16 हार ग्रंथित है। इन 16 हारों में यह ग्रंथ बुद्धधर्म और दर्शन का भाष्य है। जिस प्रकार बेदो का भाष्य निरूवत है, उसी प्रकार बौद्ध धर्म- दर्शन का भाष्य 'नेतिपकरण' है। इसका रचना काल ईसवी सन् के आरम्भ के आस-पास माना गया है।[10] धर्मपाल ने पांचवी सदी में इस ग्रंथ की 'नेतिपकरण' अथ्यु, संवणगना नामक अठ्ठकथा लिखी थी। पेटोकोपदेश के रचयिता भी महाकात्यायन ही माना गया है, जो अतिशय संदिग्ध है। यह भी विनयपिटक का ही भाष्य है। इसकी प्राचीनता असंदिग्ध ही है। मिलिन्दपदों का रचयिता कौन है यह प्रश्न आज तक निरूत्तर ही बना हुआ है। इस ग्रंथ में बुद्ध के विनय और अभिधर्म की चर्चा विशद रूप से है।

धर्म सेनापति सारिपुत्र भगवान बुद्ध के अत्यन्त प्रिय और प्रधान शिष्य थे। ये मगधवासी थे भगवान बुद्ध को इतना भरोसा था कि अपनी और से भिक्षुओं में उनके उपदेश कराते थे। सारिपुत्र के उपदेश का जो संग्रह मिलता है, उनके नाम है- दसुत्तरसुत और संगीति परियायसुत'।[11] आचार्य बुद्धघोष के समन्तपासादिका के अनुसार अभिधम्मपिट्क की रचना मगध देशवासियों और प्रथम संगति के नियामक मेहाकश्यप ने ही की है। यह बौद्ध दर्शन का मूल ग्रंथ है। सम्राट अशोक के गुरू मोग्गलिपुत्रतिष्य ने तृतीय संगीति के अवसर पर अभिधम्म ग्रंथ 'कथावस्थु' की रचना की जो बौद्ध दर्शन का प्रमाणिकता ग्रंथ है, इस ग्रंथ में 18 सम्प्रदाय में एक स्थिरवाद सम्प्रदाय को ही मान्यता दिया गया है, शेष 17 दार्शनिक पद्धतियों का निराकरण किया गया है। सम्राट अशोक ने अनेक महान धर्माधीयों की तरह बौद्ध साहित्य का भी दान किया, जिसमें उसके शिला-लेख और स्तम्भ लेख है जो इतिहास के जीवित साक्ष्य है। आर्य मोग्गलान की कृति 'प्रज्ञप्तिशस्त्रापाद' नामक रचना मानी जाती है। कनिष्क के समय में पाटलिपुत्र के अश्वघोष ने बौद्ध साहित्य का बौद्ध सर्जन किया है, वह सर्वविदित है। गुप्तकाल में प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान बुद्धघोष की विपुल कृतियों की देन तो अनुपम ही है, जिसने समस्त बौद्ध धर्म के साहित्य का उद्धार किया है। इन सभी के अतिरिक्त सातवी सदी से बारहवीं सदी तक बिहार के जिन विद्वानों ने, अपने देश तथा विदेश (चीन, वर्मा, तिब्बत, लंका) में जाकर बौद्ध साहित्य सर्जन का जो महाप्रयास किया, वह तो अवर्णीय है।

निष्कर्षः बौद्ध धर्म के विकास में बिहार-प्रदेश की मगधी भाषा की देन अतुल्नीय और अवर्चनीय है। वास्तविक रूप से बौद्धधर्म के विकास का सम्पुर्ण भण्डार ही मगधी (पालि) की ही देन थी, सारा बौद्ध साहित्य-सागर ही मगधी भाषा के धारा-प्रवाहों से भरा है, जिसका लेखा जोखा दुष्कर ही है। मगधी ने केवल बौद्धधर्म के अस्तित्व, सुरक्षा, विकास का ही कार्य नहीं किया है, अपितु समस्त भारत की संस्कृतिक, सभ्यता, इतिहास तथा विविध कलाओं की विपुल रचना के साथ-साथ उसका विकास भी किया है। यदि हमारे पास 'पालि साहित्य न होता तो विचार, साहित्य, समाज, सभी क्षेत्रों में हमारी जानकारी अधूरी रह जाती। प्रमुख पालि ग्रंथ जो बौद्ध धर्म के लिए अति महत्वपुर्ण है सुतपिटक, विनयपिटक, अभिधम्मपिटक, पेटकोपदेश, नेतिपकरण, मिलिन्दपनहो, है। महान सम्राठ् अशोक, कनिष्क, का भी पालि साहित्य में महत्वपुर्ण स्थान है। बुद्धघोष, अश्वघोष, मोग्गलान का योगदान अनुपम है। जिसने समस्त बौद्धधर्म के साहित्य का उद्धार किया है।

## संदर्भः-


1. चुल्लवग्ग - 5, 33, 1
2. तत्रैव
3. श्री भरत सिंह, उपाध्यायय, पालि साहित्य का इतिहास
4. भगवान अनेक परियायेन धम्मो पकासितो। दीघ निकाय- 1, 2
5. पाली साहित्य का इतिधम (भरत सिंह उपाध्याय) पृ0- 4
6. पालि-महाकाव्य, भिक्षु (जगदीश कश्यप) वस्तुकला पृ0 8-12
7. कता सिंहलभासाय सींहलेसु पवत्तति।
8. बौद्धधर्म - दर्शन, आचार्य नरेन्द्र देव, पृ0- 29
9. गंधवंग - पृ0- 46
10. पालि लिटरेचर एण्ड लैग्वेज, गायगर पृ0- 16
11. दीघ निकाय, पृ0- 3-10

# बौद्ध धर्म और अशोकः एक संक्षिप्त अवलोकन


## डॉ० नीता लखैयार

*शोध छात्राः प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन (ए0 आई0 ए0 एस0), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया।*



**सारांशः** भारत के महान सम्राट अशोक अपने गुरू मोग्गलिपुत्र तिष्य की प्रेरणा और धर्म श्रद्धा से बौद्ध तीर्थों का भ्रमण किया। अशोक के बौद्ध धर्मों उदेश्यों की चर्चा उसके धर्मलेखों के अतिरिक्त लंका के इतिहास ग्रंथ दीपवंश और महावंश के द्वादश परिच्छेद में विस्तार से मिलता है। बौद्धों के प्रति इतना अधिक उत्कट प्रेम सम्राट के हृदय में था, इससे अशोक का बौद्ध धर्म के प्रति निष्ठा व समर्पण को इंगित करता है। प्रियदर्शी महाराज्य अशोक के द्वारा प्रशस्त किया गया धर्म-पथ पर उसके उत्तराधिकारी भी चलते रहे। अशोक ने अंहिसा, मैत्री तथा सेवा का जो मार्ग प्रशस्त किया, उस पर चलकर अपना राजा ल्बधकीर्ति हुए अशोक इतना बड़ा धर्म-प्रचारक और प्रजा-वत्सल अधिपति इतिहास में ढुढने पर भी नहीं मिलता है।



**मुख्य शब्दः** बौद्ध, धर्म, अशोक, लेख प्रचार प्रभाव, मौर्य, बुद्ध, ज्ञान, समर्थक।


**परिचयः** मौर्यवंश का प्रबल प्रतापी सम्राट भारत का महान सम्राट (Great Emperior) एक ऐसा प्रबल अस्तित्व है जो पृथ्वी के स्मृति से कभी दूर न होगा। भारत से लगभग 3265 वर्ष पूर्व यह प्रतापी पुरूष मगध का शासक बना। सम्राट होने से पहले अशोक मण्डलेवर (गर्वनर) बना दिया गया।[1] अशोक के पिता का नाम 'विन्दुसार' माता 'सुभद्रांगी' था। सुभद्रांगी चम्पानगर (भागलपुर) के एक ब्राह्मण की रूपवती कन्या थी।[2] लंका इतिहास ग्रंथ 'महावंश' के अनुसार इसने अपने 99 भाईयों को मारकर मगध की गद्दी ली थी।[3] फिर भी, लंकावली अतिशयोक्ति में सच्चाई का कुछ अंश तो जरूर हमें मालूम होता है क्योंकि अपने पिता के मरने के चार वर्ष पश्चात ही अशोक का राज्यारोहन हुआ। इस अवधि में तो यह निश्चित ही है कि अशोक अपने भाइयों के साथ संघर्षरत रहा होगा।[4] विन्दुसार का बड़ा पुत्र का नाम सुषीम अथवा सुमन था।[5]

अशोक का बौद्ध धर्म के प्रति ऐसा प्रेम में एक संयोग भी था और वह था- सम्राट के गुरू मोग्गलिपुत्र तिष्य का सान्निध्य। सम्राट अशोक का सम्पुर्ण धर्म पराक्रमनिष्ट के प्रभाव तथा प्रेरणा का ही प्रभाव था। वास्तव में बौद्ध धर्म की स्थायी रूप देने का प्रथम संगीत आचार्य महाकश्यप का ही सारा श्रेय है, परन्तु विश्व भर में बौद्ध धर्म का झंडा उठाने में तो इसी मोग्गलिपुत्र तिष्य का हाथ है जिसका साधन सम्राट अशोक बना।[6]

भारत का महान सम्राट अशोक को उपगुप्त बौद्ध-भिक्षु से भेंट हुई और उन्होंने अपने गुरू महामना मौगोलि आदेशानुसार उसे बौद्ध धर्म में दिक्षित किया गया। अशोक बौद्ध हो गये। अशोक पहले उपासक हुए फिर संघ का सदस्य हुए, उसके बाद प्रबल प्रतापी सम्राठ प्रसिद्ध सम्राट ऐसा प्रसिद्ध धर्मार्थ हुआ जिसके जोड़ का दूसरा कोई नहीं।[7]

अशोक ने, उसकी धर्मज्ञाएँ- जो समय-समय पर उसने प्रचारित की थी- गुफाओं, स्तम्भों, शिलालेख खण्डों पर खुलवाई। इसकी भाषा प्राकृत था। अशोक ने 14 धर्म लेख सीमा-प्रान्तों के विभिन्न स्थानों पर मिली है। उन्हें चतुर्दश शिलालेख कहा जाता है। वे धर्म के निचे लिखे के स्थानों पर मिलते है जो है- शाहबाजगढ़ी (पेशावर पाकिस्तान) से 20 मील उत्तर पूर्व कोण यूसूफ जाइयों वे सूबे में, मानसेहल (पंजाब पाकिस्तान प्रान्त), सोपार बम्बई के घाना जिले, गिरनार (जूनागढ़) धौलि (उड़ीसा) में ही गुड़ी (आंध्रप्रदेश) इसके शिवा लघु गुफालेख स्तम्भ लेख, शिलालेख मैसूर, बंगाल, राजपूताना आदि स्थानों पर भी पाया गया जो हमें अशोक के अभिषेक के 38 वर्ष बाद तक मिलता है। इसमें 256 अंकमिला है जो बृद्ध के मृत्यु का अंक है। इन लेखों में कुछ चतुर्दश सूचना के स्थान पर धर्म-लेख है- नीचे दिए जाते है। इसमें अशोक के धम्म नीति के बारे में पता चलता है।[8] जो इस प्रकार है।

धर्मलेख-1 यह सूचना देवताओं के प्यारे राजा प्रियदसी की आज्ञा से खुदवाई गई है। यहाँ पर कहा गया कि किसी भी जीवधारी जन्तु को बलिदान अथवा भोजन के लिए न मारे। धर्मलेख-2 देवताओं के राजा प्रियदसी के राज्य में सर्वत्र और सीमा प्रदेश में रहने वाली तथा चोलुपाण्डेय, सत्यपुत्र और केरल पुत्र के राज्यों में ताम्रपाणि तक, यूनानीयों के राजा एविट ओकश और उसके आस-पास के राजाओं के राज्य में सर्वत्र देवताओं के प्रिय राजा प्रियदसी में दो प्रकार का औषधियों के दिए जाने का प्रबन्ध किया है अर्थात मानव के साथ पशुओं के लिए भी औषधि का प्रबन्ध किया गया। धर्मलेख-3 देवताओं के प्रिय राजा प्रियदसी ने इस भाँति कहा- अपने राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष मैंने इस प्रकार मैंने अज्ञाएं दी। मेरे राज्य में सर्वत्र धर्मयुक्त, राजुक और नगरों के राज्याभिषेक पाँच वर्ष में एक बार सभा में एकत्रित हो अपने कर्तव्य के अनुसार इस प्रकार धर्म की शिक्षाए दे। अपने पिता, माता, मित्रों, संगीयो और सम्बन्धियों की धर्मयुक्त सेवा और सत्कार करना अच्छा और उचित है। धर्मलेख-4 प्राचीन समय में कई सौ वर्षों तक जीवो का वध, पशुओं पर निर्दयता, संबंधियों के सत्कार का अभाव और ब्राह्मणों और श्रमणों के सत्कार का अभाव चला आया। अशोक ने धर्म शिक्षा के लिए प्रचार के लिए धन्यवाद है कि जीवधारी पशुओं का सत्कार, माता-पिता की आज्ञा का भक्ति के साथ पालन और बृद्धों का आदर होता है, धर्मलेख- 5 देवताओं का प्रिय राजा प्रियदसी इस भांति बोला- पुण्य करना कठिन है और जो लोग पुण्य करते है वे कठिन कार्य करते है। पाप करना आसान है। धर्मलेख-6 देवताओं का प्रिय राजा प्रियदसी इस प्रकार बौद्ध प्राचीन समय में हर समय कार्य करना और विवरण सुनना की ऐसी प्रणाली कभी नही थी। इसे मैंने किया। धर्मलेख-7 देवताओं के प्रिय राजा प्रियदसी की यह बड़ी अभिलाषा है कि सभी स्थानों में जातियाँ अपीडिघ्त रहे वे सब समान रीति से इन्द्रियों का दमन करें। धर्मलेख-8 प्राचीन समय के राजा लोग अहेर खेलने जाया करते थे। यहाँ इस भुमि के नीचे अपना जी बहलाने के लिए शिकार तथा अन्य प्रकार के खेल खेला करते थे। धर्म लेख-9 देवताओं के प्रिय राजा, प्रियदसी इस प्रकार बोले कि- लोग

बिमारी में, पुत्र कन्या के विवाद में, पुत्र के जन्मने पर और यात्रा में जाने के समय भिन्न-भिन्न प्रकार के विधान करते है। जीवों पर दया के साथ ब्राह्मण, श्रीमानों को दान देना प्रशंसनीय है। धर्मलेख-10 देवताओं का प्रिय राजा प्रियदसी इसके अतिरिक्त किसी प्रकार के यश व कीर्ति को पूर्ण नहीं समझता कि उसकी प्रजा वर्तमान में और भविष्य में उसके धर्म को माने, और धर्म के काम करे। धर्मलेख-11 देवताओं के प्रियदसी ने इस प्रकार कहा- धर्म के दान, धर्म मित्रता, धर्म की भिक्षा और धर्म के सम्बन्ध के समान कोई दान नहीं है। निम्नलिखित बात करनी चाहिए- गुलामों और नौकरों पर ध्यान रखना, माता पिता की आज्ञा का पालन करना, मित्रों-संबंधियों को ब्राह्मणों का जीवन का सत्कार करना चाहिए। धर्मलेख- 12 देवताओं के प्रियदसी सभी पन्त के लोगों, सन्यासियों और गृहस्थों दोनों का ही सत्कार करता है। वे उन्हें शिक्षा तथा अन्य प्रकार के दान देकर सन्तुष्ट करता है। धर्मलेख-13 कलिंग का देश जिसे देवताओं के प्रिय राजा प्रियदसी ने जीता है बहुत बड़ा है। इसमें लाखों जीव और लाखों प्राणी गुलाम बनाया गया और लाखों का वध किया गया का वर्णन है। धर्मलेख-14 यह सूचनाओं देवताओं के प्रिय राजा प्रियदसी की सुखवाई हुई है। वह कुछ तो संक्षेप में कुछ साधारण विस्तार का कुछ बहुत विस्तृत है। इसमें पशुओं के वध का निषेध किया गया और मानवोंऔर पशुओं के लिए चिकित्सा का प्रबन्ध किया गया।पांचवे वर्ष में एक धार्मिक उत्सव किए जाने की आज्ञा दी, धर्म की शोभा प्रकट की आदि।[9]

अब हम विभिन्न प्रकार का शिलालेख का वर्णन करेगें निम्नलिखित गुफाओं के शिलालेख मिले है, अर्थात गया के 16 मील उत्तर बरबर और नागार्जुन गुफाओं के कटक के उत्तर खंडगिरि की गुफाओं के मध्य प्रदेश के रामगढ़ के गुफाओं के शिलालेख। बरगर के गुफाओं के शिलालेख भी मिले है। दिल्ली, इलाहाबाद की प्रसिद्ध लाटों ने सर विलियन जोन्स के समय से पुरातत्ववेताओं का ध्यान आकर्षित किया है। अन्त में पहले जेम्स प्रिंसेप साहब ने पढ़ा। दिल्ली के दोनों लाट, इलाहाबाद की लाट के सिवा, तिरहुत में तोरियां में दो लाट और भोपाल में सांची में एक लाट है।

प्राय: सभी लाटों में एक जैसी सूचनाएँ खुदी है। पर दिल्ली में फिरोजशाह की लाट में एक सूचना अधिक पाई गई है। प्रथम स्तम्भ लेख इसमें प्रियदसी बोले अपने राज्याभिषेक के 26वें वर्ष में मैने यह सूचना खुदवाई धर्म में अत्यन्त उत्साह कठोर निरीक्षण, पूरी तरह उसका पालन करने और निरन्तर उद्योगों के बिना मेरे कर्मचारियों की इस लोक परलोक में सुख पाना कठिन है।

धर्म से शासन, धर्म से कानुन, धर्म से उन्नति और धर्म से रक्षा। द्वितीय स्तम्भ लेख देवताओं के प्रियदसी इस प्रकार बोला- धर्म उत्तम है, पर यह पूछा जा सकता है कि धर्म क्या है धर्म थोड़ी सी थोड़ी बुराई और अधिक से अधिक भलाई करनें में है। वह दया, दान, सत्य, और पवित्र जीवन में है। तृतीय स्तम्भ लेख देवताओं का प्रिय राजा प्रियदसी इस प्रकार बोला- मानव अपने-अपने अच्छे कर्मों को देखता है और कहता है कि मैंने यह अच्छा कार्य किया है, चतुर्थ स्तम्भ लेख-देवताओं का प्रियदसी अपने राज्याभिषेक के लिए रज्जुकों के 26वें वर्ष में मैनें यह सूचना खुदवाई है। मैंने लाखों निवासियों के लिए रज्जुकों को नियत किया है, पंचम स्तम्भ लेख देवताओं का प्रिय राजा प्रियदसी इस प्रकार बोले अपने राज्याभिषक के 26वें वर्ष के उपरान्त मैंने निम्न जीवों के मारे जाने का निषेध किया अर्थात शुष्क, सारिका, अस्न, चक्रवाक, हंस, नंदिमुख, गैरन, गेलात, अम्बकं, पिल्लिक, अनस्थिक, मछली आदि। षष्ठ स्तम्भ लेख देवताओं को प्रिय प्रियदसी इस प्रकार बोला अपने राज्याभिषेक के 12वें वर्ष पर मैंने अपनी प्रजा के लाभ और सुख के लिए सूचनाएँ खुदवाई है। सप्तम स्तम्भ लेख इसमें प्राचीन समय में जो राजा लोग राज्य करते थे वे चाहते तो मनुष्य धर्म में उन्नति करें इच्छानुसार मानवों ने धर्म में उन्नति नहीं की।

सम्राट अशोक ने जहां अपने को और अपने परिवार को बौद्ध धर्म में प्रतिष्ठित करके उसे राजधर्म बनाया, जिससे सर्वसाधारण जनता की अभिरूचि इस धर्म की और प्रवृत हुई वहाँ उसने बौद्ध धर्म के विकास के लिए राज के खजाने खोल दी और धर्म-कार्य में लगाया। दान के नाम पर खजाने का भी उपयोग इसने बौद्ध धर्म के विकास में खूब किया। दान देने और भिक्षुओं की भोजन कराने में अपनी उदारता के कारण ही यह 'अनाथदिकारक की तरह दायक कहलाने लगे।''

**निष्कर्ष:**- अशोक का धर्म कुछ ऐसा निराला और अदभूत था, जिसे इस पृथ्वी भर में अलौकिक मान सकते है। रोमन सम्राट कंसटैटाइनन तथा औरंगजेब ने भी धर्म-प्रचार में पाया, परन्तु अशोक का तो व्यक्तित्व ही और था। उस समय तक बौद्ध धर्म आर्य-धर्म का एक सम्प्रदाय मात्र था जो धीरे-धीरे यज्ञों उनकी हिंसाओं तथा उनके प्रबल सत्ता विरोध कर रहा था। अशोक ने इस साधारण सम्प्रदाय को जगाया और जगमान्य बना दिया। आज चीन, जापान, वर्मा, तिब्बत, आदि देशों में अनेकों बौद्ध है यह सब बुद्ध का ही प्रभाव है। यवन के शासित यूरोप और अफ्रिका में भी अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रभाव बड़ी शान्ति से करवाया; यद्यपि स्वयं जीवन के अन्त तक राज-कार्य करते रहे परन्तु वे समय-समय पर साधुवेष धारण करते और भिक्षा भी मांग लिया करते। उनकी प्रशस्तियाँ बताती है कि वे धर्मोपदेशक भी थे। अशोक ने अपने पुत्र और पुत्रीयां को दूर देशों लंका में धर्म-प्रचारार्थ भेजा और अन्य विद्वानों को देश-देशान्तरों में बौद्ध के प्रचार-प्रसार हेतु भेजा। उन्होंने बड़े-बड़े दान किए उन्होंने औषधालय, जलाशय आदि का निर्माण बौद्ध समर्थक के लिए करवाए।

## संदर्भ:-


1. शास्त्री, आचार्य चतुरसेन, महात्मा बुद्ध और बौद्ध धर्म, परशुराम हिन्दी संस्थान, यमुना बिहार, दिल्ली, पेज नं0- 112
2. पाटलिपुत्र की कथा - पृ0 12
3. महावंश - परि0 5, श्लोक 20
4. डॉ0 वासुदेव उपाध्याय (पटना विश्वविद्यालय) का मत के अनुसार
5. महावंश, परि0 5 श्लोक 38
6. शरण तीन है-बुद्ध शरण, धर्म-शरण और संघ-शरण
7. शास्त्री, आचार्य चुतरासेन, वही, पेज- 113
8. शास्त्री, वही पेज- 113-114
9. शास्त्री , वही पेज- 121-122
10. शास्त्री, वही पृ0- 124-126
11. त्रिपाठी, श्री हवलदार, बौद्ध धर्म और बिहार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पेज0- 169-170

# जैन मूर्तिकला का विकास


## रवींद्र सिंह

*शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज ( उ0प्र0 )*


मूर्तिकला के विकास की दृष्टि से पूर्वमध्यकाल संक्रमण काल रहा है, क्योंकि रूप और भावपक्ष के समन्वय की दृष्टि से श्रेष्ठ कलात्मक प्रवृत्तियों का स्थान धीरे-धीरे मध्ययुगीन प्रवृत्तियाँ ले रही थीं, जिनमें क्षेत्रीय तत्वों की प्रधानता थी। निहार रंजन रे के अनुसार सातवीं शती ई0 के अन्त और आठवीं शती ई0 के मध्य भारतीय मूर्तिकला एवं सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्षों में क्षेत्रीय भावना का प्रभाव क्रमशः बढ़ रहा था। एस0 के0 सरस्वती का मत है कि भारतीय मूर्तिकला के मध्यकाल का आरम्भ आठवीं शती ई0 के मध्य के आस-पास हुआ। इनका यह भी मानना है कि आठवीं शती ई0 और उसके पश्चात् की मूर्तिकला में क्षेत्रीय विशेषताओं की प्रधानता के बाद भी गुप्तकालीन कला का श्रेष्ठ एवं राष्ट्रीय स्वरूप पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ, बल्कि पूर्व की गुप्तकालीन श्रेष्ठ कला-परम्परा की नींव पर ही मध्यकाल की मूर्तिकला का विकास हुआ, जिसके अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में मूर्तिकला की क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ क्रमशः अस्तित्व में आयीं।[1]

पूर्व मध्यकालीन जैन मूर्तिकला एवं वास्तुकला की दृष्टि से प्रतिहार, चन्देल, कल्चुरि, चालुक्य, राष्ट्रकूट, सोलंकी, गंग और होयसल राजवंशों का शासनकाल सर्वाधिक लोकप्रिय था। क्योंकि इन राजवंशों के शासनकाल में गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र और कर्नाटक के विस्तृत क्षेत्र में अधिकाधिक संख्या में जैन मंदिरों एवं गुफाओं का निर्माण कर उनमें प्रभूत संख्या में जैन मूर्तियों की स्थापना की गयी। देवगढ़, ओसिया, खजुराहो, ग्यारसपुर, खण्डगिरि, कुंभारिया, आबू, जालौर, राजगिर, बादामी, अयहोल, एलोरा, श्रवणबेलगोला, तिरुपरूतिकुणरम् जैसे महत्वपूर्ण जैनकला केन्द्रों पर तीर्थंकरों एवं अन्य जैन देवी-देवताओं का निरूपण भी इसी काल में हुआ।

## जिन या तीर्थंकर मूर्तियाँ

जैन देवकुल में जिनों को सर्वाधिक महत्व प्राप्त है। हेमचन्द्र ने उन्हें देवाधिदेव कहा है। जैनदेव कुल के अन्य सभी देवता किसी न किसी रूप में सहायक देवता के रूप में जिनों से सम्बद्ध हैं। 24 जिनों में से अन्तिम दो जिनों पार्श्वनाथ एवं महावीर को ऐतिहासिक पुरुष माना गया है। भारतीय कला का सम्बन्ध मूलतः धार्मिक कला से होने के कारण ही जैन धर्म में 24 जिनों को प्राप्त होने वाली प्रमुखता मूर्तियों में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है।[2] जिनों को ही कला में सबसे पहले मूर्त अभिव्यक्ति मिली। जिनों के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का विस्तृत वर्णन विभिन्न पुराणों एवं चरित ग्रन्थों में मिलता है। लगभग सातवीं-आठवीं शती ई0 से जिन मूर्तियों में यक्षों एवं यक्षियों का नियमित अंकन आरम्भ हो गया। लगभग नवीं शती ई0 तक सभी जिनों के यक्ष और यक्षी के रूप में कुबेर एवं अम्बिका की आकृतियाँ उत्कीर्ण होने लगीं, किन्तु नवीं शती ई0 के बाद की जिन मूर्तियों में आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर के साथ स्वतंत्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी युगलों का निरूपण होने लगा। लगभग आठवीं-नवीं शती ई0 तक जिनों के लांछनों का निर्धारण पूर्ण हो गया और तद्नुरूप मूर्तियों में उनका अंकन हुआ, जिनकी प्राचीनतम सूची तिलोयपण्णति एवं प्रवचनसारोद्धार में प्राप्त होती है। मूर्तियों की पहचान का मुख्य आधार उनका लांछन ही रहा है। श्वेताम्बर स्थलों को छोड़कर सर्वत्र जिन मूर्तियों में लांछनों का नियमित अंकन हुआ है। जहाँ तक जिन मूर्तियों का प्रश्न है, उसके पीठिकालेखों में जिनों के नामोल्लेख की परम्परा ही सर्वाधिक लोकप्रिय रही है। मूर्तियों में सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ के साथ क्रमशः पाँच और सात सर्पकणों के छत्रों के बाद इन जिनों की पहचान के लिए लांछनों का दिखाया जाना आवश्यक नहीं समझा गया, किन्तु दूसरी तरफ लटकती हुई केशवल्लरियों या जटाओं से सुशोभित ऋषभनाथ के साथ वृषभ लांछन का अंकन हुआ। ऐसा इसलिए सम्भव हुआ कि आठवीं शती ई0 के बाद दिगम्बर स्थलों पर ऋषभनाथ के अतिरिक्त अन्य जिनों के साथ भी जटाएँ प्रदर्शित की जाने लगी थीं।

तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ पूर्ण रूप से मानवीय है। असामान्य रूप से इन प्रतिमाओं के अनेक सिर, हाथ और पैर नहीं होते हैं। केवल दो ही आसनों में इनकी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। प्रथम ध्यान मुद्रा में बैठे हुए तथा द्वितीय कार्योत्सर्ग मुद्रा में सीधे खड़े इन दोनों ही मुद्राओं को जैन मतावलम्बियों ने यौगिक मुद्रा बताया है। तीर्थंकरों की मूर्तियाँ विष्णु की शेषशायी तथा बुद्ध की परिनिर्वाण की मुद्राओं से भिन्न हैं, तथा विश्राम की मुद्रा में कहीं भी इनका अंकन नहीं हुआ है। ध्यान मुद्रा की स्थिति में बैठे हुए तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बुद्ध प्रतिमाओं के सदृश हैं, किन्तु तीर्थंकरों के वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न होने के कारण ये प्रतिमाएँ बुद्ध प्रतिमाओं से सरलता से अलग की जा सकती हैं। पूर्वी तथा दक्षिण भारत की मध्यकालीन तीर्थंकर प्रतिमाओं में इस चिह्न का अधिकांशतः अभाव मिलता है।[3]

9वीं-10वीं शती ई0 आते-आते मूर्ति लक्षण की दृष्टि से जिन मूर्तियाँ पूर्णरूपेण विकसित हो चुकी थी। इस अवस्था में लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों एवं अष्टप्रतिहार्यों के साथ ही परिकर में छोटी-छोटी जिन मूर्तियाँ, नवग्रह, गज आकृतियाँ, धर्मचक्र, विद्याओं एवं अन्य आकृतियों का उकेरन प्रारम्भ हो गया। श्वेताम्बर स्थल की मूर्तियों में सिंहासन के मध्य पद्मधारिणी शान्तिदेवी तथा गजो एवं मृगों का निरूपण होने लगा था। 11वीं से 13वीं शती ई0 के मध्य श्वेताम्बर स्थलों पर ऋषभनाथ, शान्तिनाथ, मुनीनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के जीवन दृश्यों का विस्तृत रूप से उल्लेख हुआ।

उत्तर प्रदेश कौशाम्बी क्षेत्र में दिगम्बर स्थलों पर पूर्वमध्य युग में नेमिनाथ के साथ बलराम और कृष्ण, के साथ सर्पकणों के छत्रवाले चामरधारी धरण या

धरणेन्द्र एवं छत्रधारिणी पद्मावती तथा जिन मूर्तियों के परिकर में बाहुबली, जीवन्तस्वामी, क्षेत्रपाल, सरस्वती, लक्ष्मी आदि का निरूपण भी विशेष लोकप्रिय हो चुका था। जिन मूर्तियों में आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर की सर्वाधिक लोकप्रियता रही है, जिसके कारण सभी क्षेत्रों में इन्हीं की सर्वाधिक स्वतंत्र मूर्तियाँ भी बनी हैं। इनमें भी आदिनाथ (ऋषभनाथ) एवं पार्श्वनाथ अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय थे। इतना ही नहीं, इन चार प्रमुख जिनों से सम्बन्धित यक्षियों को भी साहित्य एवं शिल्प दोनों में सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त है।

संक्षेप में पूर्वमध्ययुगीन पूर्णविकसित जिन मूर्तियों की प्रमुख विशेषता यह है कि श्रीवत्स लांछन से युक्त जिन मूर्तियाँ कायोत्सर्ग या ध्यान मुद्रा में निरूपित हैं। शीर्ष भाग में उष्णीश से युक्त जिन प्रतिमाएँ सामान्यत: पद्मासन पर बैठी या खड़ी हैं, जिन पर पुष्प् या किर्तिमुख आदि का अलंकरण है। आसन के नीचे दोनों छोरों पर दो सिंह उत्कीर्ण हैं जो सिंहासन के सूचक हैं। सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र है, जिसके समीप या आसन पर जिनों के पारम्परिक लांछन अंकित हैं। सिंहासन के बायें ओर दायें दोनों छोरों पर क्रमश: यक्ष और यक्षी की मूर्तियाँ हैं, जो सामान्यत: द्विभुज या चतुर्भुज ओर ललित मुद्रा में हैं। मुख्य देवता के दोनों ओर चँवरधारी सेवक और दो या दो से अधिक उपासक अंकित हैं। मुख्य जिन आकृति के ऊपर त्रिछत्र और दुन्दुभिवादक एवं अशोक वृक्ष की पत्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मूर्ति के ऊपरी भाग में दो गज एवं उड़ने वाले मालाधर तथा वाद्यवादन करती आकृतियाँ भी अंकित हैं।

## यक्ष और यक्षी

24 तीर्थंकरों के पश्चात् जैन देवकुल में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान यक्ष एवं यक्षियों को प्राप्त हुआ। इन यक्ष-यक्षियों की लोकप्रियता तीर्थंकरों के उपासक और शासन देवता के रूप में है। जिनों के साथ इनको सम्बद्ध करने की धारणा लगभग छठी शती ई0 में विकसित हुई। ये यक्ष-यक्षियाँ तीर्थंकरों के उपासक या शासन देवता के रूप में संघ की रक्षा करते थे। यक्ष-यक्षी युगल से युक्त प्राचीनतम जिन मूर्ति गुजरात के अकोटा से प्राप्त हुई है। यहाँ से प्राप्त ऋषभ की प्रतिमा के साथ यक्ष के रूप में सर्वानुभूति या कुबेर और यक्षी के रूप में अम्बिका की मूर्ति उत्कीर्ण है। लगभग आठवीं-नवीं शती ई0 तक 24 जिनों के स्वतंत्र यक्ष-यक्षी युगलों की सूची निर्धारित हो चुकी थी, जिनकी प्रारम्भिक सूची दिगम्बर परम्परा से सम्बन्धित तिलोयपण्णति, श्वेताम्बर परम्परा के कहावली एवं प्रवचनसारोद्धार में मिलती है।[4] जैन मान्यता के अनुसार कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् प्रत्येक तीर्थंकर ने अपना प्रथम उपदेश इन्द्र द्वारा निर्मित समवशरण सभा में दिया था, जिसमें इन्द्र ने प्रत्येक तीर्थंकर के साथ सेवक देवता के रूप में एक यक्ष और यक्षी युगल को नियुक्त किया था। तिलोयपण्णति ग्रन्थ के अनुसार 24 यक्ष-यक्षियों की सूची इस प्रकार है-

**यक्ष:** गोवदन, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर, तुम्बुख, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्म, ब्रह्मेश्वर, कुमार षण्मु, पाताल, किन्नर, किंपुरूष, गरुड़, गन्धर्व, कुबेर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व, मातंग और गुह्यक।

**यक्षियाँ:** चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रांकुशा, अप्रतिचक्रेश्वरी, पुरुषदत्ता, मनोवेगा, काली, ज्वालामालिनी, महाकाली, गौरी, गांधारी, वैरोटी, सोलसा, अनन्तमती, मानसी, महामानसी, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपिणी, कुष्माण्डी, पद्मा और सिद्धायिनी।

श्वेताम्बर परम्परा से सम्बन्धित ग्रन्थ प्रवचनसारोद्धार के अनुसार 24 यक्ष-यक्षियों की सूची निम्नलिखित है-

**यक्ष:** गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, ईश्वर, तुंबरू, कुसुम, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्मा, मनुज (ईश्वर), सुरकुमार, षण्मुख, पाताल किन्नर, गरुड़, गन्धर्व, यक्षेन्द्र, कुबेर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, वामन (पार्श्व) और मातंग।

**यक्षियाँ:** चक्रेश्वरी, अजिता, दुरितारि, काली, महाकाली, अच्युत, शान्ता, ज्वाला, सुतारा, अशोका, श्रीवत्सा (मानवी), प्रवरा (चंडा), विजया (विदिता), अंकुशा, पन्नाग (कन्दर्पा), निर्वाणी, अच्युता (बला) धारणी, वैरोट्या, अच्छुप्ता (नरदत्ता), गांधारी, अम्बा, पद्मावती और सिद्धायिका।

श्वेताम्बर ग्रन्थों में दिगम्बर परम्परा के कुछ पूर्व ही यक्ष-यक्षियों की स्वतंत्र लाक्षणिक विशेषताएँ निश्चित हो गयी थीं, जिसके कारण दोनों परम्पराओं में यक्ष-यक्षियों के नामों एवं उनकी लाक्षणिक विशेषताओं के सन्दर्भ में पर्याप्त भिन्नता दिखायी देती हैं, क्योंकि दोनों परम्पराओं की सूची में मातंग, यक्षेश्वर एवं ईश्वर यक्षों तथा नरदत्त, मानवी, अच्छुप्ता एवं कुछ अन्य यक्षियों के नामोल्लेख एक से अधिक जिनों के साथ किये गये हैं। भृकुटि यक्ष एवं यक्षी का दोनों ही परम्पराओं अर्थात् श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्पराओं में उल्लेख मिलता है।[5]

छठी शती ई0 में अकोटा में नेमिनाथ के सर्वानुभूति (या कुबेर) यक्ष और अम्बिका यक्षी के निरूपण के बाद पार्श्वनाथ के धरणेन्द्र यक्ष और पद्मावती यक्षी की मूर्तियाँ एवं लगभग 10वीं शती ई0 से अन्य यक्ष एवं यक्षियों की मूर्तियों का निरूपण प्रारम्भ हो गया। जैन परम्परा के अनुसार यक्ष एवं यक्षियों का निरूपण जिन मूर्तियों के सिंहासन या सामान्य पीठिका के क्रमश: दाँयें एवं बायें छोरों पर ही अंकित होने चाहिए। सामान्यत: ये ललितमुद्रा में निरूपित हैं, परन्तु कहीं-कहीं ध्यान मुद्रा में बैठे हुए या स्थानक मुद्रा में खड़े हुए भी दर्शाया गया है।[6] इनका अंकन जिन मूर्तियों की पीठिका पर लगभग छठी शती ई0 में और स्वतंत्र रूप से लगभग नवीं शती ई0 में प्रारम्भ हुआ। स्वतंत्र मूर्तियों में यक्ष और यक्षियों के मस्तकों पर छोटी जिन मूर्तियाँ उत्कीर्ण रहती हैं, जो उन्हें जिनों के साथ सम्बन्धित करती हैं। केवल अकोटा और एहोल के मेगुटी मन्दिर की सातवीं शती ई0 की अम्बिका मूर्तियाँ ही इसका अपवाद हैं। ऋषभनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं कुछ अन्य जिनों की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका का ही निरूपण छठीं से नवीं शती ई0 के मध्य किया जा रहा था, किन्तु 10 वीं शती ई0 से ऋषभनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर की मूर्तियों के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका के स्थान पर प्रारम्भिक या स्वतंत्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी युगलों का निरूपण आरम्भ हो गया जो देवगढ़, ग्यारसपुर, मथुरा, खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ में स्थित मूर्तियों में द्रष्टव्य हैं।[7]

यक्ष और यक्षियों के मूर्ति-विकास के अध्ययन की दृष्टि से मध्य प्रदेश का खजुराहा क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि सातवीं-आठवीं शती ई0 में इस क्षेत्र की जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का चित्रण आरम्भ हो गया था, तथा दसवीं-बारहवीं शती ई0 के मध्य तक जिन मूर्तियों में अधिकांशत: पारम्परिक या स्वतंत्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षियों का अंकन प्रारम्भ हो चुका था। स्वतंत्र मूर्तियों के अन्तर्गत इस क्षेत्र में चक्रेश्वरी एवं अम्बिका नामक यक्षी का उल्लेख सर्वाधिक प्राप्त होता है। स्वतंत्र अंकनों में यक्ष की तुलना में यक्षियाँ की मूर्तियाँ सर्वाधिक लोकप्रिय थीं। 24 यक्षों के सामूहिक अंकन का कोई प्रयास नहीं किया गया है, किन्तु 24

यक्षियों का सामूहिक अंकन नवीं शती ई0 में आरम्भ हो गया, जिनमें से तीन स्थानों-देवगढ़ (उत्तर प्रदेश), पतियानदाई (मध्य प्रदेश) तथा बारभुजी गुफा (उड़ीसा) से प्राप्त अंकन महत्वपूर्ण हैं।[8] यक्षों में केवल सर्वानुभूति, गरुड़ एवं धरणेन्द्र की मूर्तियों का स्वतंत्र रूप में अंकन हुआ है। देवगढ़ की 24 यक्षियों की मूर्तियों में त्रिभंग में खड़ी यक्षियों के ऊपरी भाग में जिनों की भी लघु मूर्तियाँ बनी हैं, जिनमें नीचे की ओर जिनों एवं यक्षियों के नाम भी उत्कीर्ण हैं देवगढ़ में निरूपित यक्षियों में अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी भी यक्षी के निरूपण में जैन ग्रन्थों के निर्देशों का पालन नहीं किया गया है। देवगढ़ में यद्यपि प्रत्येक जिन के साथ एक यक्षी की कल्पना की गयी थी, तथापि उनकी स्वतंत्र लाक्षणिक विशेषताओं के उस समय तक नियत न हो पाने के कारण अम्बिका के अतिरिक्त अन्य यक्षियों के निरूपण में महाविद्याओं एवं सरस्वती की लाक्षणिक विशेषताओं का अनुकरण किया गया। यहाँ कुछ उदाहरणों में सामान्य लक्षणों वाली यक्षियाँ भी निरूपित की गयीं।[9]

## संदर्भ


1 तिवारी, मारुतिनन्दन प्रसाद, मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला, पृ0 9
2 वर्मा, रत्नेशकुमार, खजुराहो के जैन मंदिरों की मूर्तिकला, 1984, पृ0 26
3 शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, जैन प्रतिमा विज्ञान, 1979 पृ0 133
4 मेहता, मोहनलाल तथा कापडिघ्या हीरालाल, जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 4, वाराणसी, 1968
5 तिवारी, मारुतिनन्दन प्रसाद, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण, पृ0 269
6 वाजपेयी, मधुलिका, मध्यप्रदेश की जैनकला, 1993, पृ0 102
7 तिवारी, मारुतिनन्दन प्रसाद, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण, पृ0 270
8 वाजपेयी, मधुलिका, मध्यप्रदेश की जैनकला, पृ0 102
9 तिवारी, मारुतिनन्दन प्रसाद, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण, पृ0 269

# तिब्बत-चीन संवादः अनुबंध के लिए योजना


## डॉ० सच्चिदा नन्द राम

*एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन, विभाग, कुँवर सिंह पी0जी0 कालेज, बलिया*


1970 के दशक के मध्य से, दलाई लामा और तिब्बत नेतृत्व एक भावी तिब्बत, जो पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना के रूप रेखा में हैं, के लिए एक समाधान चाह रहें हैं। इसका कारण यह हैं कि वे 1979 तत्कालीन चीनी नेता डेंग्ंग जियापिंग जिन्होंने कहॉ कि तिब्बत की आजादी के बदले और किसी दूसरे मुद्दा पर चर्चा और उसको हल किया जा सकता हैंण् वे प्रस्ताव या सुझाव का सकारात्मक रूप से तुरन्त जवाब दे सकें। युनाइटेड फ्रंट नेता ने डेंग जियापिंग के इस आश्वासन को 1992 को दुहराया, जिसको बाद में एक चीनी अधिकारिक वक्ता द्वारा किया गया। 25 अगस्त 1993 को जिंहुआ चीनी विदेश मंत्रालय के एक वक्ता को यह कहते हुए उद्धरण किये "तिब्बत का मामला चीनी का एक आंतरिक मामला हैं और केंद्रीय सरकार तथ दलाई लामा के बीच बात-चीत का दरवाजा पूरी तरह से खुला हैं। तिब्बत की आजादी के सिवाय, सभी दूसरे प्रश्नों पर बातचीत की जा सकती है।

बाद में दलाई लामा अपने मिडल वे अप्रोच, जो तिब्बती लोगों के लिए उचित स्वतंत्रता की माँग किया, के द्वारा तिब्बत के भविष्य पर अपने पहल को ठोस, औपचारिक बना चुके हैं। उनके संत इस दृष्टिकोण जो एक समाधान हैं, जो चीनी और तिब्बती के लिए पारस्परिक रूप से लाभदायक हैं और जो चीन स्थायित्व मुद्दा को ध्यान में रखता हैं, प्रदान करने में सच्चा प्रयास था, के साथ अंतर्राष्ट्रीय समुदाय और चीनी सरकार के पास सहायता प्राप्त करने के लिए गए। कूटनीतिक रूप से दलाई लामा कई सारे पहल के साथ आएः वाशिंगटन में कैपिटल हिल पर 1987 में द प्वाइंट पीस प्लान ही साथ 1988 में यूरोप के संसद में स्ट्रस्बोरग परोपोजल, इत्यादि। चीनी सरकार के प्रतिनिधियों के साथ संवाद के 2002-2010 चरण के दौरान, दलाई लामा के प्रतिनिधि ने तिब्बती लोगों के लिए मेमोरेंडम ओन जेंविन आटोनोमी के रूप में इसे प्रस्तुत किये। इससे भी बड़कर 2008 में चीनी सरकार को यह मेमोरेंडम स्पष्ट रूप से 11 क्षेत्रों जिसमें तिब्बती लोगों के मामले को सम्बोधित किये जाने की आवश्यकता थी, को दर्शाता हैं और सभी को द पीपुल्स रिपब्लिक आफ चाइना के संविधान के ढॉचे में।

एशियन विकास बैंक (ADB) की एक कार्यकारी बैठक जिसका विषय था 'एशिया 2050 - एशिया की शताब्दी बनाना है,'' 21वीं सदी को एशिया की शताब्दी बनाने की बात करता है। इसमें सात देशों ने सहभागिता की, जिसमें से दो पहले से ही विकसित है। सात देशों में जनवादी चीन गणराज्य (PRC), भारत इण्डोनेशिया, जापान, कोरिया गणराज्य, थाईलैण्ड तथा मलेशिया हैं। इन सभी देशों की जनसंख्या का योग 3.1 बिलियन तथा सकल घरेलू उत्पाद (GDP) 15. 1 बिलियन डलर 2010 में था। 2050 तक इनका विश्व के सकल घरेलू उत्पाद का 45 प्रतिशत हो जाएगा, जिसमें यह विश्व अर्थव्यवस्था का इन्जन बन जाएगा। इस नयी विश्व व्यवस्था के अन्दर मुख्य भूमिका में चीन तथा भारत ही होंगे। दोनों ही देश उपनिवेशवाद के बाद के राष्ट्र हैं यदि दोनों इस नयी विश्व व्यवस्था में साथ मिलकर कार्य करें तो निश्चय ही 21वीं सदी एशिया की शताब्दी होगी। चीनी निवेश मेरी यांग की ने कहा है कि'', भावी संबंधों को विकसित करने के लिए चीनी तथा भारतीय नेताओं ने एक रणनीतिक दृष्टि तैयार की है। चीनी अजगर तथा भारतीय हाथी को एक दूसरे से संघर्ष नहीं करना चाहिए बल्कि एक दूसरे के साथ नृत्य करना चाहिए। यदि चीन तथा भारत प्रगति हों, तो एक व एक मिलकर ग्यारह बना देगें, न कि दो।''[1] दोनों एशियाई दिग्गजों के बीच इस तरह सहयोग तथा सहमति की बातें होती रहती हैं।

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में दोनों देश कई विषयों पर परस्पर सहयोग कर रहे हैं। इसमें वे अन्तर केशीय तथा द्विपक्षीय सहयोग के के बिन्दुओं पर वार्ता कर रहे हैं। विश्व की अन्य उभरती हुयी अर्थव्यवस्थाओं के साथ भारत व चनी ब्रिम्ज के अंग हैं जिसमें ब्राजील, रूस तथ दक्षिण अफ्रीका सम्मिलित हैं। इसके माध्यम से व्यापार तथा उद्योग से ये देश बढ़ावा देते हैं और वे ब्रिम्ज विशाल बैंक बनाने के बारे में सोच रहे हैं। ये समूह केवल आर्थिक विषयों पर ही केन्द्रित नहीं है बल्कि पर आर्तन के विरोध तथा अन्तर राष्ट्रीय अपराधों को रोकने के लिए विचार कर रहा है।[2] भारत व चीन दोनों एक केंद्रीय सहयोग सिर्फ बांग्लादेश, चीन, भारत, म्यांमार (BCIM) को तैयार किये है और ये देश परस्पर सम्पर्क करके आर्थिक संबंधों को दृढ़ बना रहे हैं। BCIM इस उपच्छेद में ध्यान रखकर इन देशों के लिए बाजार तैयार कर रहा है।[3] इस केंद्रीय सहयोग के द्वारा BCIM के देश इसके फलों का स्वाद ग्रहण करेंगे।

इस प्रकार की धारणाएं दोनों तरफ राष्ट्र राज्यों द्वारा तैयार की जाती है और लागू की जाती है। चीन तथा भारत दोनों मिलकर कार्य कर रहे हैं, अन्तर्राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन के विषय पर दोनों ने विकासशील दुनिया की समस्याओं को उठाया और इस बात के लिए आश्वस्त होना चाहा कि समानता तथा न्याय को किसी भी जलवायु परिवर्तन के अन्तर्राष्ट्रीय समझौते में अनदेखी न की जाए।[4] इस तरह दोनों देश एक सीमा तक बहुपक्षीय तथा द्विपक्षीय मोर्चों पर परस्पर समन्वय बनाए हुए हैं। हालांकि दोनों देशों के बीच संबंधों में तनाव भारत की आजादी के बाद तथा चीन में 1949 के चीनी गृहयुद्ध के उपरांत चीनी गणराज्य में कम्यूनिस्ट शासन के आने पर हुयी थी।

भारत गणराज्य पहला गैर समाजवादी देश था जिसने चीनी गणराज्य को मान्यता दी।[5] इसमें मुख्य भूमिका पं0 जवाहर लाल नेहरू की थी, जिनकी इच्छा मजबूत पैन एशियावाद को तैयार करने की थी और चीनी गणराज्य को एक महत्वपूर्ण भूमिका इस पहल में देने को थी। जिसकी वजह से चीनी प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई तथा नेहरू ने परस्पर सम्बन्ध बढ़ाकर एक स्वप्निल नारा दिया,' हिन्दी-चीनी भाई-भाई।''[6] यहां तक कि औपनिवेशिक दौर में भी भारत व चीनी गणराज्य इसी तरह के सम्बन्धों को तैयार करने का प्रयास किया था, जैसा कि लियांग कूचि हो ने स्वीकारा है कि रालूवादी चीन का भारत बड़ा भाई है।[7] रवीन्द्र नाथ

टैगोर ने भी भारत तथा चीन को मिलाकर एक मजबूत संघ तैयार करने की बात की जिससे विश्व बन्धुत्व को बढ़ावा मिलेगा। भारत की स्वतंत्रता के बाद, भारत–चीन भाइचारे का विचार समतावाद के सिद्धांतों पर तैयार किया गया, जो आगे चलकर कला तथा विशव के देशों में सहयोग करते हुए संबंधों को मजबूत करेंगे, दोनों राज्यों के नेताओं की राजकीया भाग से पंचशील के सिद्धांत सामने आये तथा 1955 में इण्डोनेशिया के बोडुंग में अफ्रीका–एशिया के देशों की सफल बैठक सम्पन्न हुई। जिसमें स्वाप्निल नारा–''हिन्दी–चीनी भाई–भाई'' को संबंधों का आधार बनाया गया।[8]

## तिब्बती बौद्धो के ऊपर चीन का प्रबन्ध

23 मई 1951 को 17 बिन्दुओं पर हुआ समझौता, CCP के तिब्बत के ऊपर लागू होने की शुरूआत थी। इसके माध्यम से ही तिब्बत के स्वायत्तशासी क्षेत्र (PCART) को 1954 में समिति का गठन किया गया और इसके माध्यम से ही 1965 में तिब्बत को स्वायत्तशासी क्षेत्र घोषित किया गया। इस विवादास्पद संधि को बिजिंग के द्वारा केन्द्रीय सरकार तथा तिब्बतियों के 'स्थानीय समझौते' के बीच समझौता कराया गया।[9] इस समझौते के द्वारा इस बात की गारण्टी मिली कि परम्परागत तिब्बती राजनीतिक व्यवस्था को स्वीकार्य करते हुए उनके धार्मिक स्वतंत्रता को चीनी जनवादी राजनीतिक वार्ता कान्फ्रेंस के कामन प्रोग्राम (CPPCC) में भी स्वीकारा गया। इसमें इस बात की भी गारण्टी दी गयी कि तिब्बती अल्पसंख्यकों के साथ तथा अर्थव्यवस्था को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जाएगा।[10] धार्मिक अभियानों को आकर्षित करने हेतु पार्टी ने नये निर्मित राज्य की पार्टी में इन्हें कई बार बिजिंग ने आमंत्रित किया। 1952 में तिब्बत के विभिन्न क्षेत्रों में तिब्बती मूल के 30 सदस्यों को दौरान करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस तरह से अन्दर ही से सवाला, लिविंग बुद्धा, कांगनू आदि भी सम्मिलित थे। 24 मार्च 1952 को चेयरमैन माओं के प्रति इन लोगों ने 'श्रद्धा समर्पित' की।[11]

आरम्भिक रूप से ऐसी नीतियों के द्वारा 'लोकतांत्रिक सुधार' को आगे बढ़ाया गया। इस नीति को उस समय आगे बढ़ाया गया जब चीन के अन्दर महत्वाकांक्षी सुधारों को लागू किया जा रहा था। इसी समय धार्मिक अभियानों तथा अल्पसंख्यकों को मिलने वाली सुविधाओं को कम किया जा रहा था। तिब्बतियों के ऊपर राज्य निर्देशित हिंसा हो रही थी और तिब्बत के कई भागों में दमन किया जा रहा था। तिब्बत के कुछ क्षेत्रों में अप्रत्याशित रूप से भीड़ के ऊपर हमला किया गया और अन्य क्षेत्रों के अन्दर लिंग अनुपात में भी भारी अन्तर दिखाई दिया।[12] 10वें पंचेन लामा के चेयरमैन माओ के ऊपर आरोप लगाया कि तिब्बत के ऊपर उनकी नीतियां पूरी तरह असफल है।[13]

1966 से लेकर 1976 तक जब तिब्बत में सांस्कृतिक क्रांति चीन के माध्यम से संचालित हो रही थी, तिब्बती बौद्धों को लेकर चीन की नीतियों में क्रांतिकारी बदलाव आया। 1976 के माओ के निंधन के उपरांत डेंग जीओपिंग ने बहुत सारे धार्मिक व राजनीतिक नेताओं को बंदी बनाया गया था उनको छोड़ दिया गया।[14]

तिब्बत के बौद्ध संस्थानों के प्रबन्ध में हर प्रकार के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में गोपनीयता को बनाये रखा गया। फरवरी 2012 में लोकतांत्रिक प्रबन्ध समिति को स्थापित किया गया जिससे सभी अल्पसंख्यक तिब्बती जुड़े हुए थे। लूबूडंजाऊ ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि ''पर्यटन, सांस्कृतिक गतिविधियों तथा स्थानीय धार्मिक गतिविधियों के ऊपर से नियंत्रण को हटा लिया गया है।'' इसके पछे 2008 में तिब्बत के अन्दर भारी विरोध के परिणाम स्वरूप किया गया।[15] PRC की आधिकारिक मीडिया के द्वारा मार्च 2013 में बताया गया कि, ''प्रेम तथा देशभक्ति को मातृभूमि के प्रति स्थापित करने हेतु भिक्षुओं तथा पुजारियों को अलगाववादी तत्वों को खत्म करने हेतु कहा गया।''[16]

उन्नीसवें पार्टी कांग्रेस में CCP के इतिहास में भारी गिरावट का सामना करना पड़ा जब राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस ने जी जिनपिंग को अबाध रूप से शासन करने का अवसर प्रदान कर दिया। 25 फरवरी 2018 को जिन्याहु समाचार एजेन्सी ने घोषणा की कि, ''चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने यह प्रस्ताव किया है कि जनवादी चीनी गणराज्य के राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति दो कार्यकाल से अधिक कार्यवधि तक शासन नहीं करेंगे, इस नियम को निरस्त किया जा रहा है।'' 19वें राष्ट्रीय पार्टी कांग्रेस में 20 अक्टूबर यांग जीजियांग ने बोलते हुए कहा कि हमें धार्मिक विषयों से ज्यादा समाजवादी मूल्यों पर ध्यान लगाना होगा। जैसा कि उन्होनें कहा।[17]

तिब्बती बौद्धवाद, प्राचीन चीन में शुरू हुआ, जिसके अन्दर चीन के धार्मिक विशेषताएं है। यह भी सही है कि तिब्बती बौद्धवाद के ऊपर अन्य पड़ोसी बौद्ध देशों का प्रभाव है लेकिन इसके स्थानीय वास्तविकता को स्वीकार किया है और अपना अद्वितीय स्वरूप ग्रहण किया है, जो अपने आप में पाप का परित्याग का माडल बनकर सामने आया है..... हमें तिब्बती बौद्धवाद के ऊपर सक्रिय ढंग से निगरानी रखनी होगी जिससे भविष्य में तिब्बती बौद्धवाद चीन की सांस्कृतिक विशेषताओं को आगे ले जाए।

## संदर्भ


1 Brook Timothy, Michael Van Wait Praag and MiekBoltijes. 2018. Sacred Mandates – Asian International Relations Since Chinggis Khan. USA: University of Chicago Press

2 Chaudhury Dipanjan Roy. 2019 Brazil outlines slew of sectors for 2019 BRICS Summit. Economic Times. 20/4/2019. Accessed on 14/5/2019.https://economictimes. Indiatimes.com/news/politics-and-nation/brazil-Outlines-slew-of-sector-for-2019-brics-summit-under-its-presidency/articleshow/68967255.cms?from=mdr

3 Yhome.K. 2017. The BCIM economic corridor: Prospects and chailenges. Observor Research Foundation. 10/02/2017. Accessed on 19/5/2019.http://www.orfonline.org/research/the-bcin-economic-corridor-prospects-And-challenges/

4 Mizo Robert. 2016. India, China and Climate Cooperation. India Quarterly. 72 (4). 375-394.

5 Sen, Tansen. 2018.India, China and the World – A Connected History, India. Oxford University Press.

6 Sen, Tansen. 2018, China and the World – A Connected History, Indian. Oxford University Press.

7 Sen, Tansen. 2018, China and the World – A Connected History, Indian. Oxford University Press.

8 Sen, Tansen. 2018. India, China and the World – A Connected History, India: Oxford university Press.

9 DIIR. (2001). Facts about the 17-Point "Agreement" Between Tibet and China. Dharamsala: DIIR Publications.
10 DIIR. (2001). Facts about the 17-Point "Agreement" Between Tibet and China. Dharamsala: DIIR Publications.
11 Yeshe, J. (2015). China's Modeof Gaining Legitimacy in Tibet-Co-Option and incorporation of Tibetan Buddhism. Tibet Policy Journal, 1-15
12 Sperling, E. (2012, September 14). elliotsperling.org. Retrieved June 10, 2019, from http://elliotsperling.org/the-body-count/
13 Gyaltsen, C. (1997). The Poisoned Arrow: The Secret Report of the 10th Panchen Lama. London: Tibet Information Network.
14 Desal, T. (Forthcoming). History, Memory and Resistance: Historical Evaluation of the 70,000 Character Petition. RAS, NA.
15 UN, EU and Human Rights Desk. (2010). 2008 Uprising in Tibet: Chronology and Analysis. Dharamsala: Department of Information and International relations.
16 TCHRD. (2014, May 18). TCHRD. Retrieved from tibetan Centre for Human Rights and Democracy: http://tchrd.org/china-expands-new-measures-to-directly-control-tibetan-monasteries/
17 Geo, C. (2017, October 24). The Diplomat. Retrived June 11, 2019, from thediplomat.com: https://thediplomat.com/2017/10/chinese-communist-party-vows-to-sinicize-religions-in-china/

# वैदिककालीन नारी शिक्षा


## रोहित कुमार सिंह

*शोध छात्र, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी*


प्राचीन भारत की सामाजिक संरचना के बीच नारी की स्थिति को समझना अत्यंत जटिल कार्य है। इसे विश्लेषित करने के लिए हमे सामाजिक संरचना और उसके सिद्धांतकारों की विचारधारा को समझना आवश्यक है। भारतीय समाज की संरचना पितृसत्तात्मक है और वैदिक विचार परंपरा के सूत्रधारों द्वारा निर्मित है। इन दो तथ्यों को ध्यान में रखकर ही नारी की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण किया जा सकता है और उसकी भूमिका की व्याख्या की जा सकती है।

**प्रारंभिक शिक्षा:** वैदिककाल में शिक्षण संस्थाओं में प्रारंभिक पाठशालाओं का पूर्ण अभाव था। यह कार्य बालक एव बालिका दोनों के लिए परिवार को करना पड़ता था।[1] सामाजिक व्यवस्था में परिवार प्राथमिक पाठशाला का कार्य करती है एवं माता ही व्यक्ति की प्रथम आचार्य हुआ करती है। इसी महान विचारधारा को दृष्टिगत रखते हुए शिष्य को वेदज्ञान प्रदान करने के उपरांत आचार्य अपने 'अंतेवाषी' को जो अंतिम उपदेश देते थे उसका सर्वप्रथम आदेश यही था कि, व्यक्ति को माता का सर्वदा देव (आचार्य) स्वरूप आदर करना चाहिए। माता की महत्ता उनके ज्ञान प्राप्त करने के संदर्भ में इतनी अधिक थी कि इस युग के अनेक आचार्य मातृ उपनाम से ही संबोधित होते थे। सत्यकाम जाबाल जो कि बहुत बड़े आचार्य थे, वे भी जब गुरु से शिक्ष प्राप्त करने जाते है तो गुरू द्वारा एवं गोत्र नाम पूछने पर सिर्फ अपनी माता का नाम बताते है, एवं मातृ उपनाम से इतिहास में ख्याति प्राप्त हुए। ये माताएँ अपने संतान को सदैव उच्च नैतिक मूल्यों यथा, सत्यनिष्ठा आदि के पालन के लिए प्रेरित करती रहती थी।

वैदिक काल में बहुत लंबे समय तक परिवार शिक्षा प्राप्त करने के लिए एकमात्र शैक्षणिक संस्था थी, और बच्चे अपने चाचा, पिता या बड़ों के द्वारा शिक्षा ग्रहण करते थे। इसी प्रकार की व्यवस्था लड़कियों के लिए भी थी। लड़की के नजदीकी लोग ही उन्हें पढ़ा सकते थे, पर वैदिक काल में ऐसा नहीं रहा होगा, क्योंकि तब महिलाएँ बड़ी संख्या में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही थी एवं ज्ञान के क्षेत्र में अपना योगदान दे रही थी। उनमें से कुछ ने तो शिक्षा कार्य को भी अपनाया था।[2] ज्ञान प्राप्ति के संदर्भ में माता से प्राप्त हुई राशि की महत्ता सर्वव्यापक थी। वैदिक काल में महिलाएँ अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में पुरुष वर्ग के पीछे नहीं थीं विवाहोपरांत उनका परिवारिक उत्तरदायित्व पुरूषों की अपेक्षा अधिक होने के कारण अध्ययन अध्यापन में वे यथेष्ट समय नहीं दे पाती होंगी। लेकिन वे सर्वथा इस उत्तरदायित्व से निष्पृह नहीं रहती थी। कई विदुषियों ने अध्यापन कार्य भी संपादित किया है।

परिवाररूपी पाठशाला के द्वितीय एवं सर्वप्रमुख आचार्य सम्मान्यत: पिता हुआ करते थे। याज्ञवल्क्य भी आचार्यों की कोटि में माता के बाद पिता के स्थान को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं।[3] संभवत: पिता ही बच्चे का उपनयन संस्कार संपादित करते होंगे, क्योंकि अद्यावधि में भी इस संस्कार हेतु सर्वप्रथम पिता ही आचार्य के अधिकारी माने जाते है।

**कन्या का शिक्षा संस्कार उपनयन:** ऋग्वैदिक काल में बच्चां के संस्कार लड़के एवं लड़की दोनों के लिए समान रूप से किए जाते थे, जिसमें एक ''उपनयन'' संस्कार भी था। यह सीखने की पहली प्रक्रिया थी।[4] उपनयन का अर्थ है- गुरू के समीप लाना। गुरू द्वारा संस्कारित करने पर ही बालक को वेद की शिक्षा दी जाती थी। वैदिक युग में विद्या प्रारंभ करने के निमित्त यह अनिवार्य संस्कार था। इस संस्कार के द्वारा छात्र का समान्य रूप से गुरू के द्वारा नामांकन किया जाता था, छात्र जीवन के लिए। छात्र वेदों का अध्ययन एवं उच्चारण करते थे। वे कई वर्षों तक (करीब 12 वर्ष) गुरू के घर पर रहकर छात्र जीवन व्यतीत करते थे।[5] वैदिक काल में माता-पिता के दो मुख्य परम कर्तव्य थे, बच्चों को शिक्षा देना एवं उनके जीवन को व्यवस्थित रखना। ईसा पूर्व की प्रारंभिक शताब्दियों में वैदिक अध्ययन प्राप्त करने के लिए उपनयन संस्कार लड़के एव लड़कियों दोनों में समान रूप से प्रचलित था। यह एक खास समय तक अनुशासन में रहकर ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक प्रकार का विधान था।

ऋग्वैदिक काल में परिवार में सभी बच्चों के साथ माता-पिता समान रूप से व्यवहार करते थे, चाहे वह लड़का हो या लड़की। अत: जिस प्रकार लड़के अध्ययन करते थे, उसी प्रकार लड़कियों को भी पढ़ाया जाता था। एवं उनका भी उपनयन होता था।[6] 'उपनयन' का मतलब होता है, शिष्य का गुरू के समीप शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाना। यह वेद के अध्ययन का पहला चरण था।[7] जो महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करती थी, यानी जिनका उपनयन संस्कार होता था, वे पवित्र धागे को पहनती थी, तथा एक ब्रह्मचारी जैसा जीवन जीती थी। वे अपने सहपाठियों के साथ अध्ययन करती थी।[8] वैदिक काल में कन्याएँ यज्ञोपवीत (कंधे पर लटका हुआ धागा) पहनती थी, फिर उन्हें वेदों की शिक्षा दी जाती थी, तथा वे गायत्री मंत्र का उच्चारण करती थी। उन्हें लड़कों की तरह भिक्षाटन की प्रक्रिया भी पूरी करनी पड़ती थी। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि गायत्री मंत्र में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की जाती थी। इस मंत्र में इन्द्र से प्रार्थना की जाती है कि ''हे इन्द्र! डस प्राणस्वरूप, दु:खनाशक, सुख स्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें।''

वैदिक साहित्य का अध्ययन पुरूष एवं स्त्री दोनों ही करते थे। ऐसी आज्ञा वैदिक साहित्य में इसलिए प्रदान की गई कि नारियों को भी वैदिक कर्मकांड मे

स्थान दिया जा सके। चूँकि इस काल में यज्ञों एवं धार्मिक अनुष्ठानों का बहुत महत्व था और व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ ही यज्ञ कर सकता था, इसलिए स्त्रियों को विशेष रूप से वैदिक साहित्य की शिक्षा दी जाती थी, ताकि वह धार्मिक क्रियाकलापों को अपने पति के साथ मिलकर संपन्न कर सके।[9]

ऋग्वैदिक काल में महिलाओं को वैदिक ग्रंथों के अध्ययन करने का पूरा अधिकार था। एवं बिना उपनयन संस्कार के कोई भी व्यक्ति वैदिक ग्रंथों का न तो अध्ययन कर सकता था, न ही वैदिक प्रार्थना। अत: जिस प्रकार लड़के का उपनयन संस्कार होता था, उसी प्रकार लड़कियों का भी उपनयन संस्कार होता था। मनु भी कहते हैं कि ''यथा समय, यथा क्रम शरीर के शुध्यर्थ बिना मंत्र के स्त्रियों के पूर्वोक्त सभी संस्कार करना चाहिए।''

**सह-शिक्षा:** वैदिक साहित्य में वर्णन है कि लड़कियाँ गुरू के पास उपदेश सुनने तथा ज्ञान अर्जित करने जाती थी। और वेद में दक्षता हासलि करती थी। उनके द्वारा वेद की ऋचा का प्रणयन भी किया गया। तत्कालीन समय में लड़कियाँ प्रारंभिक शिक्षा भले ही घर पर प्राप्त करती थी, पर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे गुरूकूलों में जाती थी। वहाँ दो प्रकार की व्यवस्था की। एक तो वह जिसमें आज की तरह ही समुन्नत लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करती थी, जिसे सह-शिक्षा प्रणाली कहते थे। दूसरी वह, जिसमें इनके लिए शिक्षा की अलगसे व्यवस्था थी। वैदिक काल में संगठित रूप से गुरूओं द्वारा शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वेद के एक मंत्र में अनेक छोटे-छोटे बालकों के एक साथ पढ़ने की उपमा दी गई है। अध्ययन काल में दोनों ही ब्रह्मचर्य का पालन करते थे।[10]

**चारण:** वैदिक कालीन विद्यालयों को 'चारण' कहते थे। उनमें स्त्रियाँ भी पढ़ती थी।[11] वास्तव में चारण वैसी शिक्षा संस्था थी, जिसमें वेद की किसी एक शाखा का अध्ययन शिष्य समुदाय करता था एवं जिसका नाम मूल संस्थापक के नाम पर ही पड़ जाता था। इसका प्रबंध संघ के आदर्श पर ही होता था।

**सभा:** वैदिक काल में नारियाँ दर्शन एवं तर्कशास्त्र में निपुण थी तथा सभा एवं गोष्ठियों में भाग लेकर ऋग्वेद की ऋचाओं का गाान करती थीं। इस संस्था का उल्लेख ऋग्वेद एवं अन्य परवर्ती ग्रंथों में अनेक जगहों पर हुआ है। इसे 'ग्राम्य परिषद' के रूप में चित्रित किया गया हैं तथा इसका सभापतित्व ग्रामीणी के द्वारा होती थी।[12] सभा जनसामान्य की नहीं, अपितु ब्राह्मणों (विद्वानों) एवं मधवनों (धनवानों) की विशेष संस्था थी। सभा के सदस्यों के लिए ज्ञानी, धर्मशास्त्रज्ञ, कुलीन एवं वर्णशंकर रहित गुण आवश्यक था।

**विद्थ:** इसी प्रकार विदथ नामक ऋग्वैदिक जनसभा में स्त्रियों को बोलने की स्वतंत्रता थी। 'विदथ' शब्द की उत्पत्ति 'विद' धातु से हुई है जिसका अर्थ है- 'ज्ञान'। अर्थात् विदथ वह संस्था थी जिसमें सत्य (ज्ञान) की खोज की जाती थी। वैदिक कोश में इसका प्रारंभिक कार्य 'ज्ञान और फिर यज्ञ का आध्यात्मिक विषय माना है। आदित्यों, ब्राह्मणस्पति, वरूण एवं विश्वेदेवों को प्रस्तुत मंत्रों में भी विद्थ को विद्वानों के स्थल के रूप में दर्शाया गया है।

**छात्रावास एवं छात्रा:** वैदिक छात्राएँ विद्यालय के आवास में भी रहकर शिक्षा ग्रहण करती थी, जिन्हें 'छत्रीशाला' भी कहते थे।[13] शैक्षणिक संस्था 'कठचरण' में अध्ययन करने वाली छात्रा 'कठी' और ऋग्वेद के 'बश्र्च-चरण' की छात्रा 'बश्र्वी' कहलाती थी।[14] अर्थात् छात्रों के नामकरण के जो नियम थे, वही छात्राओं के लिए लागू थे, जिससे सहज ही अनुमान लगाया जाता है कि 'स्त्री-अध्येतृ' की संख्या नाममात्र की ही न थी, क्योंकि अगर ऐसा होता तो उनके नामकरण संबंधी सूत्र के उल्लेख नहीं मिलते। पतंजलि ने नियमित अध्ययन करने वाली इन छात्राओं को 'अध्येतृ' कहा है। 'कठी वृन्दारिका' जैसा शब्द कठशाखा की उस छात्रा के लिए भाषा में प्रयुक्त होता था, जो अपने 'चरण' में विशेष कीर्ति या अग्रपद प्राप्त करती थी। चरकों के उदीच्च चरणों में 'कठचरण' काफी प्रसिद्ध था। वेद परिशिष्ट में यजुर्वेदीय चरण के नाम के रूप में चरक का उल्लेख है। वृहदारन्यकोपनिषद से ज्ञात होता है कि उच्चतर ज्ञान की खोज में निरंतर भ्रमणशील ज्ञानार्थी की संज्ञा ही चरक होती थी। 'बह्वृच' भी ऋग्वेद का अत्यंत प्रसिद्ध चरण था।

**अध्ययन का विषय:** वैदिक काल में पुरूषों के समान नारी भी शिक्षा प्राप्त करती थी, तथा अध्ययन का विषय भाषा एवं साहित्य था। नारी तत्कालीन साहित्य के सुसंस्कृत एवं सभ्य भाषाओं की शिक्षिता थी। तत्कालीन समय में नारी विशेषकर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वेद एवं वेदांगों की शिक्षा ग्रहण करती थी। महिलाओं को लौकिक शिक्षा प्राप्त करने की पूरी छूट थी। ऋग्वेद से पता चलता है कि वैदिक नारियाँ लिखने की काल में पारंगत थीं। यह सब वैदिक ऋचाओं की रचना से स्पष्ट है कि उनमे साहित्यिक पूर्णता थी। वे वैदिक वांड.मय का अध्ययन करती थी, एवं यज्ञों में भाग लेकर मंत्रोच्चारण भी करती थी।

यह उस समाज की विशिष्टता थी, जहाँ नारी को प्रतिष्ठा प्राप्त थी। वस्तुत: पुरूष एवं नारी एक दूसरे के पूरक थे। स्त्री के संयोग से ही जीवन चलता था। यह सामाजिक गतिशीलता का सूचक है।[16] परन्तु यह क्रम अधिक दिन तक नहीं चल सका। उत्तर वैदिक युग और पुराण काल आते आते स्त्रियों की शिक्षा पर व्यवहारिक रूप में पर्याप्त अंकुश लग चुका था। जैसे-जैसे ब्राह्मण काल में वर्णाश्रम व्यवस्था कर्मगत से हटकर जन्मगत रूप लेने लगी, वैसे-वैसे स्त्रियों और शूद्रों के लिए शिक्षा प्राप्त करना अत्यंत दुष्कर होने लगा था।

## संदर्भ


1 शिवस्वरूप सहाय, हिन्दू सामाजिक संस्थाएँ, किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1983, पृ0 213

2 अनंत सदाशिव अल्टेकर, एजुकेशन इन एंशियंट इंडिया, मनोहर लाल प्रकाशन, वाराणसी, 1992, पृ0 212-213

3 यधा मातृभान्वितृ माना आचार्यवान्प्रूयात् तथा तच्छौल्बायनोट ब्रवीन्प्राणों वे ब्रह्मेति।
वृ0 उ0, 4/1/13

4 ए0 एल0 वासम, द वन्डर दैट वाज इंडिया, पान मैकमिलन लि0, लंदन, 1967, पृ0 179

5 रोमा चौधरी, 'विमेन एजुकेशन इन ऐंशियंट इंडिया', सं0 माध्वानंद एंड रमेश चन्द्र मजुमदार, उद्धृत ग्रेट विमेन ऑफ इंडिया, अद्वैत आश्रम, कलकता, 1993, पृ0 91

6 के0 वी0 रंगास्वामी अयंकर, आस्पेक्ट्स ऑफ द सोसल एंड पोलिटिकल सिस्टम ऑफ मनुस्मृति, लखनऊ युनिवर्सिट, प्रेस, 1949, पृ0 163

7 वी0 जी0 गोखले, एंशियंट इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, कलकता, 1952, पृ0 153
8 एस0 पी0 अग्रवाल एण्ड जे0 सी0 अग्रवाल, विमेन एजुकेशन इन इंडिया, कन्सेप्ट पब्लिसिंग कंपनी, दिल्ली, 1994, पृ0 18-19
9 देवेन्द्र कुमार गुप्ता, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, 2004, पृ0 219-220
10 बी0 एन0 लुनियाँ, प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1975, पृ0 721
11 ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का इतिहास, विश्वप्रकाशन, दिल्ली, 1993, पृ0 108
12 सूर्यकांत, वैदिक कोश, वैदिक रिसर्च समिति, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस, 1963, पृ0 544
13 वासुदेव शरण अग्रवाल, इंडिया ऐज नौन टु पाणिनी, युनिवर्सिटी ऑफ लखनऊ, 1953, पृ0 89
14 वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी 1969, पृ0 278
15 भागवत शरण उपाध्याय, विमेन इन ऋग्वेद, नंदकिशोर एंड ब्रदर्स, बनारस, 1941, पृ0 175
16 ए0 सी0 क्लेटॉन, द ऋग्वेद एंड द वैदिक रिलीजन, बनारसीदास एवंड कंपनी, दिल्ली, 1981, पृ0 157-158

# गुप्तकालीन स्थापत्य कला क्षेत्र में उपलब्धियों का मूल्यांकन


## डॉ० कविता सिंह

*एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, का०सु० साकेत पी०जीव कालेज, अयोध्या*

## अजय कुमार सिंह

*शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, का०सु० साकेत पी०जीव कालेज, अयोध्या*


संस्कृति के विविध क्षेत्रों के साथ ही साथ कला और स्थापत्य के क्षेत्र में भी गुप्त युग की उपलब्धियाँ भारतीय इतिहास के पृष्ठों में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वस्तुतः इस काल की कीर्ति कला दृश्य रचनाओं द्वारा चिरस्थायी बना दी गयी है।

इस युग में सम्पूर्ण उत्तर भारत में हमें एक अद्‌भूत कलात्मक क्रियाशीलता दिखाई देती है। कला की विविध विधाओं, जैसे वास्तु, स्थापत्य, चित्रकला, मृदभांड कला आदि का इस युग में सम्यक् विकास हुआ। धर्म एवं कला का समन्वय स्थापित हुआ तथा कला पर से विदेशी प्रभाव क्रमशः समाप्त हो गया।

### कला और स्थापत्य

गुप्तकालीन वास्तु (Architecture) के सूक्ष्म अनुशीलन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'वास्तु-रचना' के दोनों ही पक्षों-सौन्दर्य तथा शिल्प में नवीनतम एवं सृजनात्मकता का सूत्रपात हुआ। सौन्दर्यशीलता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इस काल में नव-कल्पनाओं एवं अपूर्व प्रतिमानों' का अभ्युदय हुआ तथा अपरिमित सृजनशीलता को प्रश्रय मिला।

गुप्तकालीन समस्त वास्तु-रचनाओं को उनमें प्रयुक्त भवन-सामग्री के आधार पर तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है (क) ईट निर्मित (ख) गढ़े पत्थरों से निर्मित तथा (ग) शैलकर्त गुहा-वास्तु। इन तीनों माध्यमों में हिन्दू तथा बौद्ध धार्मिक भवनों का निर्माण हुआ। सामान्यतया गुप्तकालीन स्थापत्य अथवा वास्तुकला के अन्तर्गत राजप्रासादों (महलों), नागरिक भवनों स्तूपों, चौत्यों, शैलकर्त-गुहाओं तथा मन्दिरों का उल्लेख करना तर्कसंगत होगा। डॉ. कुमारस्वामी ने भी गुप्तकालीन वास्तु (Architecture) को छः वर्गों में विभक्त किया है। इसके अतिरिक्त गुप्तकालीन स्तम्भों में कीर्तिस्तम्भ, ध्वजस्तम्भ एवं स्मारक स्तम्भा भी उल्लेखनीय है।

### ईट निर्मित स्थापत्य

गुप्तकालीन 'ईट-निर्मित वास्तु' को मुख्यतया दो भागों में बांटा जा सकता है। (क) हिन्दू देवालय तथा (ख) बौद्ध चौत्य, बिहार तथा स्तूप। वास्तव में गुप्तकालीन ईट निर्मित मन्दिरों की संख्या कम है। इनमें से प्रमुख रूप से भीतरगाँव का विष्णु मन्दिर, सिरपुर मन्दिर समूह, अहिच्छत्र के ध्वस्त मन्दिर तथा तेर के मन्दिर उल्लेखनीय है। सर्वप्रथम भीतरगांव के मन्दिर का वर्णन प्रासांगिक होगा जिसका निर्माण-काल डॉ. वाजपेयी ने 500 ई. के आसपास माना है। वे कनिंघम तथा आर. डी. बनर्जी के मतों से सहमत नहीं हैं।[1]

### भीतरगांव का विष्णु मन्दिर

कानपुर से हमीरपुर जाने वाले मार्ग पर लगभग 30 किमी. (20 मील) दक्षिण में भीतरगांव का विश्व प्रसिद्ध विष्णु का गुप्तकालीन मन्दिर स्थित है। 5वीं शताब्दी का यह मन्दिर सम्पूर्ण रूप से पकाई हुई ईंटों द्वारा निर्मित है। इसमें प्रयुक्त, रिलीफ (Relief) तथा अन्य अलंकरणों को भी पहले मिट्टी में बनाकर तथा उन्हें आग में पकाकर लगाया गया है। लगभग 21.5 मीटर (70 फुट) ऊँचा यह मन्दिर एक अट्टालक जैसा है जो वास्तु की दुष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। वास्तव में पांचवीं शती के अन्त में निर्धारित शिखर के स्वरूप का पता इस मन्दिर से चलता है। डॉ. कृ. द. वाजपेयी का मत है कि इंट के बने मन्दिरों का अस्तित्व भीतरगांव-मन्दिर के पहले से था परन्तु उनके शिखरों की जानकारी उपलब्ध नहीं है।[2] सम्भवतः इसका शिखर देवगढ़-मन्दिर के शिखर के समान है। शिखर के कारण यह मन्दिर परवर्ती गुप्तकाल का माना जाता है।[3]

भीतरगांव का मन्दिर गुप्तकालीन परम्परा में वर्गाकार चबूतरे पर बना है जिस पर चढ़ने के लिये सोपान बने हैं। देवगढ़ की भांति यहां भी ऊँची कुर्सी तथा उसके ऊपर मन्दिर के बाहर निकली हुई दुहरी कोनियां द्रष्टव्य है। मन्दिर का गर्भगृह 15 फुट वर्ग का है तथा बाहरी अन्तराल का आयाम 7 फुट वर्ग है। मन्दिर में दो प्रदक्षिणा-मार्ग थे जो ऊपर से ढके थे, गर्भगृह के ऊपर 'उत्तरीय-कोष्ठ' बना था।

## तेर स्थित उत्तरेश्वर एवं कालेश्वर मन्दिर

शोलापुर (महाराष्ट्र) के निकट तेर स्थित ये मन्दिर जर्जर अवस्था में तथा आकार में अपेक्षाकृत छोटे हैं। अपनी विशिष्ट तकनीक (Technique) तथा एक विशेष कालखण्ड का प्रतिनिधित्व करने के कारण इनका विशेष महत्व है। इन मन्दिरों के स्थापत्य में यह विशिष्टता है कि इनमें शहतीरों तथा दरवाजों की चौखटों को प्रस्तर के स्थान पर लकड़ी का बनाया गया है उत्तरेश्वर मन्दिर में काष्ठ-अवलम्बें को अत्यन्त आकर्षक ढंग से उत्कीर्ण किया गया है।

## स्तूप

गुप्तकाल में अनेक स्तूपों का निर्माण हुआ जिनमें से ईंट से निर्मित स्तूपों में मीरपुर खास, सारनाथ का धम्मेख स्तूप तथा नालन्दा का मुख्य-स्तूप विशेष उल्लेखनीय हैं। पाकिस्तान के सिन्ध-प्रान्त में मीरपुर-खास नामक स्थान पर कए महत्वपूर्ण स्तूप विद्यमान है। यह चौकोर आधार पर बना है जिसमें 'नक्काशी से अलंकृत ईंटों का प्रयोग किया गया है। यह गुप्तकाल के प्रारम्भिक युग का स्मारक माना जाता है। इसके स्थापत्य के सम्बन्ध में डॉ. कुमारस्वामी का कथन है कि ''It is a brick structure standing on a square basement, and chiefly remarkable for the existence of three small chapels or cellas ffaording the only Indian instance of a type of structure combining stuap and chapels In the central chapel there is a true brick arch.''[4]

## सारनाथ का धमेक स्तूप

ईंटों से निर्मित यह गुप्तकालीन स्तूप 45 मीटर ऊँचा था। इसका प्राचीन नाम 'धर्मचक्र स्तूप' था। सम्भवत: इसका निर्माण उसी स्थान पर हुआ है जिस स्थल पर बुद्ध ने धर्म-चक्र प्रवर्तन किया था, इसलिये इसका बौद्ध स्मारकों में विशेष महत्व है। कनिंघम ने इस स्तूप के मध्य में लम्बवत् (Vertical Borings) उत्खनन करवाया था जिससे 110 फुट की गहराई (Depth) पर ज्ञात हुआ कि प्रस्तर कार्य के पूर्व ईंटों से निर्मित ढाँचा (Sturcture) था। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने स्पष्टतया कहा है कि ''The Dhamekh Stupa is a solid cylindrical tower 93 ft. in diameter at base and 128 ft. In height or 143 ft. including the foundations. The structure of circular stone drum to a height of 36 ft. 9 inches resting on the ground without the usual rectangular basement.''[5]

इस स्तूप के नीचे से लगभग आधे ऊँचाई पर आठ आले (Niches) बने हैं जिनमें बुद्ध अथवा अन्य प्रतिमायें रक्खी गई थीं। इन आलों के ठीक नीचे चारों तरफ अत्यन्त सन्दर ज्यामिति तथा अन्य डिजाइनों को बनाया गया है। कनिंघम महोदय ने इस धमेक स्तूप को 'धर्मोपदेशक' का अपभ्रंश बतलाया है। इसी प्रकार दयाराम साहनी ने यह मत व्यक्त किया है कि यह संस्कृत शब्द 'धर्मेक्षा' का रूपान्तरण है। उत्खनन से प्राप्त एक मिट्टी की सीलिंग (Clay Sealing) से ज्ञान होता है कि 'धमाक जयतु' से संबंधित होने से यह 'धमाक' (Dhamaka) भी सम्भवत: कहलाता था। ये सभी प्राय: 'धर्मचक्र प्रवर्तन' से संबंधित स्मारक की ओर संकेत करते हैं।

## नालन्दा का मुख्य स्तूप

नालन्दा में मन्दिरों के दक्षिणी-सीमा पर स्थित मुख्य स्तूप अत्यन्त भव्य एवं विशाल है। उत्खनन से स्पष्ट होता हे कि प्रारम्भ में यह स्तूप बहुत छोटा था तथा सात बार इसका संवर्द्धन किया गया है। यह एक आंगन के मध्य स्थित है और चारों तरफ से संकल्पित स्तूपों (Voltive Stups) से घिरा हुआ है। इस स्थल पर उत्खनन में जो प्रारम्भिक तीन स्तूप प्राप्त हुए वे इस विशाल स्तूप के नीचे दबे हुए थे तथा आकार में वर्गाकार लगभग 12 फुट लम्बे एवं 12 फुट चौड़े थे। कालान्तर में चार पुनर्निर्माणों में स्तूप का विशालीकरण हुआ। वास्तव में परवर्ती चार संरचनाएँ (पुर्ननिर्मित संबर्द्धित स्तूप) जो एक के ऊपर एक बना है। आकार में अपेक्षाकृत बड़े होते गये। पाँचवां संवर्द्धन अच्छी दशा में है। इन तक पहुँचने के लिए सोपान का प्रावधान था (Stair case) जो उत्तरी दिशा में प्राप्त हुई थी। सभी स्तूप आकार में चौकोर हैं। चूँकि स्तूप की योजना वर्गाकार थी अत: परवर्ती समबद्धनों का स्वरूप भी तदनुसार था। प्रत्येक स्तूप के सम्बर्द्धन में पूर्ववर्ती स्तूप के चारों ओर दीवार बनाकर उसे भर दिया जाता था तथा उस सवंर्द्धित चबूतरे पर 'स्तूप के अण्ड' का सम्बर्द्धन किया जाता था।

अमलानन्द घोष के अनुसार नालन्दा के मुख्य स्तूप का पाँचवां सवंर्द्धित स्तूप भाग अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होता है। ''The fifth of these stups successively built is the most interesting and the best preserved.''[6]

इस मुख्य स्तूप के चारों कोने में चार छोटे स्तूप मिले हैं जिनमें से तीन का उत्खनन हो चुका है। वे लघु-स्तूप (Corner-towers) आलों या ताखों (niches) की पंक्तियों से सुशोभित थे जिनमें चूने से निर्मित एवं बोधिसत्व की प्रतिमायें रखी गई थी। पांचवें संबर्धन से प्राप्त एक 'उद्देशिका स्तूप (Votive stupa) के अन्दर एक अभिलेख प्राप्त हुआ जिसकी लिपि छठी शताब्दी ई. की हैं। स्पष्टतया यह पांचवां सवंर्धित स्तूप' भी इसी काल-खण्ड में निर्मित हुआ होगा। इस तथ्य की पुष्टि इस काल की कला शैली में निर्मित मूर्तियों से भी होती है जो गुप्तकालीन कला के अन्दर सुन्दर नमूने हैं। The same period is indicated by the stuccofigures which are fine specimen of Gupta art.'

वास्तव में पांचवें स्तूप का निर्माण जिस विशाल एकत्रित पूर्ववती अवशेषों पर हुआ है उससे यह अनुमानित होता है कि मौलिक-स्तूप (Original stupa) का निर्माण सम्भवत: लगभग दो शताब्दी पूर्व हुआ होगा अर्थात् मूल-स्तूप का समय चौथी शताब्दी माना जा सकता है। नालन्दा के इस गुप्तकालीन मुख्य स्तूप के पूर्वोत्तर कोने में एक ऊँचे चबूतरे पर निर्मित एक उद्देशिका स्तूप तथा एक प्रस्तर की 'अवलोकितेश्वर'[7] की मूर्ति भी विद्यमान है।

भीतरगांव के शिखरयुक्त मन्दिर में वर्गाकार गर्भगृह, वर्गाकार मण्डप तथा दोनों को जोड़ते हुए 'लघु अन्तराल' महत्वपूर्ण अंग हैं। उल्लेखनीय है कि नक्काशीदार ईंटों से इस मन्दिर के गर्भगृह एवं मण्डप' की दीवारें निर्मित है।[8] मन्दिर के चारों तरफ दोहरी बरसाती में छज्जे (Cornice) लगे हुए हैं तथा ईंटों की ही दर्शनीय जालियां निर्मित है। मन्दिर का शिखर कुछ 'पिरामिड' आकार का है जो सबसे ऊपर जाकर चिपटा हो गया है। उठते हुये शिखर पर सर्वत्र चौत्य मेहरावें बनी हुई हैं जिनमें से अब कुछ ही विद्यमान है। प्रवेश-द्वार से बाहर की ओर उभरे हुए स्थान को वर्गाकार 'अर्ध-मण्डप' का स्वरूप प्रदान किया गया

है। समस्त मन्दिर का अन्तर्पृष्ठ सादा है तथा मूर्ति-शिल्प की सजावट केवल बाह्य-पृष्ठ पर की गई है। वास्तव में वाह्य दीवारों पर गवाक्षों (Niches) में देवताओं की मिट्टी से निर्मित मूर्तियों के साथ ही 'रामायण एवं महाभारत' के कथानकों से सम्बन्धित मूर्तियां जड़ी हुई हैं। इस मन्दिर की वास्तुगत विशेषता के सम्बनध में 'कृष्णदेव जी का कथन है कि ''The temple has a bold Vedibandha consisted of Kumbha antarapatta and Kapotali mouldings. The Jangha is decorated with pilasters-rathika- bimbas, showing god' goddeses, Siva Gajantaka,Ganesa Uma-Mahesa, Visnu, Durga and various stories from the epics.''

पर्यापत मात्रा में विनष्ट हो जाने पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दिर के अनुपात अत्यन्त सुन्दर रहे होंगे। अपनी प्राचीनता तथा सामग्रीगत विशेषता के कारण यह मन्दिर 'हिन्दू-स्थापत्य' के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

विद्वानों में गहरा मतभेद है कि भारतीय स्थापत्य (Architecture) में 'शिखर की उत्पत्ति' किस समय हुई। गुप्तकालीन मन्दिरों के सूक्ष्म निरीक्षण से यह ज्ञात होता है कि छठी शताब्दी के 'नागर शैली' क अन्तर्गत निर्मित शिखर प्रथमत: झांसी के देवागढ़[9] मन्दिर तदन्तर कानुपर के समीपस्थ भीतरगांव[10] मन्दिर में स्पष्टतया प्रयाग में आया। राखलदास बनर्जी[11] का मत है कि छठी शताब्दी में परवर्ती (Later Guptas) के समय देवगढ़ मन्दिर में शिखर का प्रादुर्भाव मध्य युग में हुआ।[12] फर्गुसन[13] का मत कि 'नागर शिखर इण्डोआर्यन ढंग का है शुद्ध भारतीय नहीं, कदापि मान्य नहीं हो सकता क्योंकि 'नागर अथवा आर्यशिखर' विशुद्ध भारतीय स्थापत्य की विलक्षण उत्पत्ति[14] है।

गुप्त कालीन 'मन्दिर-स्थापत्य' की सामान्य रूप से निम्न विशेषताएँ मानी जा सकती है-

(i) सभी मन्दिरों की स्थापना ऊँचे चबूतरों पर की जाती थी।

(ii) मन्दिरें के ऊपर चढ़ने के लिए चारों दिशाओं में सोपान का प्रावधान होता था।

(iii) प्रारंभिक मंदिरों की छतें (Roof) चपटी होती थी परन्तु बाद के गुप्तकालीन मंदिरों में 'शिखर' का प्रादुर्भाव सामान्यत: दृष्टिगोचर होता है।

(iv) सभी मंदिरों की बाहरी दीवारें सादी होती थी।

(v) गर्भ-गृह में सामान्यत: एक ही द्वार रहता था जिसमें मूर्ति की स्थापना होती थी।

(vi) इन मंदिरों के 'द्वार-स्तम्भ' अलंकृत थे तथा द्वारपाल के स्थान पर गंगा-यमुना की मूर्तियों को स्थान दिया गया है।[15]

(vii) गर्भगृह के चारों तरफ 'प्रदक्षिणापथ' बनता था जो छत से ढका रहता था- दर्शनार्थी सीढ़ियों द्वारा सर्वप्रथम इसी स्थान पर आते थे तदंतर गर्भगृह में प्रवेश करते थे।

(viii) गुप्तकालीन मंदिरों के स्तम्भों के सिरे पर एक 'वर्गाकार प्रस्तर' रहता था जिन पर सिहों की चार मूर्तियाँ रहती थीं।[16]

## संदर्भ


1. ए. द्रष्टव्य: अग्र: पृ. कु. गुप टेम्पुल आर्की, पृ. 44-47।
2. बंगाल में पहाड़पुर तथा आसाम में दहपर्वतिया नामक स्थलों पर उत्खननों में गुप्तकालीन ईंट से निर्मित मन्दिरों का पता चला है। देखिये- भा. वा. का इतिहास, पृष्ठ संख्या- 114
3. आर्कि. स. रि., भाग-1 पृष्ठ 41.45
4. हि. आफ. इण्डि. एण्ड इन्डो, आर्ट, पृष्ठ 73
5. Bulletin by V.S. Agrawal on Sarnath puplished by Dept. of Archaeology, New Delhi, 1957, p.2
6. A guide to Nalands, p.3
7. "At the north-east corner of the Main Stupa is a high platform on which are situated Votive stups. And in one comer there is a square containing a lagre stone-image of Avalokitesvara facing north, now protected by a wooden-shed,"
8. पण्डेय ज. ना. भा. कला, पृष्ठ 1
9. कनि, आ. स. रि.; भाग-1 प्लेट 35
10. कनि, आ. स. रि.; भाग-11 प्लेट 15
11. द एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ता, पृष्ठ 148
12. काडरिगटन, एन्शियट इडिंया पृष्ठ 61
13. हि. आफ इन्डि, एण्ड इस्टर्न आकि, भूमिका, पृष्ठ 14
14. भण्डारकर कामेमोरेशन वाल्यूम, पृष्ठ 444
15. कर्निघम, आ. स. रि. भाग-1 पृष्ठ 60, द्रष्टव्य- स्मिथ, हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट पृष्ठ 50
16. द्रष्टव्य: इम्पीरियल गुप्ताज, पृष्ठ 135-37 संभवत: बनर्जी ने शिखर के प्रादुर्भाव के कारण ही दूसरे मन्दिर को 7वीं शताबी का माना है।

# भारत-पाकिस्तान संबंधों के संदर्भ में शांति की मध्यस्था


## डॉ० अरूण कुमार दीक्षित

*एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, वी० एस० एस० डी० महाविद्यालय कानपुर ( उ०प्र० )*


भारत और पाकिस्तान के संबंध पाकिस्तान के स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अस्तित्वमान होने के साथ ही अंतर्द्वंद में उलझी है। माईकल प्रेचर ने भी ठीक इसी तरह की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हुए इसे अधोषित युद्ध के रूप में संज्ञा दी है।[1]

भारत और पाकिस्तान के संबंधों का विश्लेषण निश्चित रूप से कश्मीर को ध्यान में रखकर करना ही समीचीन होगा क्योंकि यह समस्या अपने भीतर कई एक समस्याओं को समाहित किए हुए है। संभवत: इसी के वजह से भारत और पाकिस्तान के रिश्ते के कई आयाम समस्याओं के इस घटाटोप में आवृत्त हो जाते हैं। लिहाजा अस्थिरता और विवाद के इस लगातार झंझावात में स्थिरता और शांति दिवास्वप्न की तरह ही प्रतीत होती है। कश्मीर समस्या भी भारत और पाकिस्तान के रिश्ते के दरम्यान निर्धारक की भूमिका में प्रस्तुत होती रही है। यह सूरते हाल सन् 1947 के भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय से ही चला आ रहा है और अभी एक चिरकालिक समाधान की प्रतीक्षा है। इन दोनों ही अग्रणी रहने वाले देशों के बीच चली आ रही कट्टा ने ही दक्षिण एशियाई क्षेत्रों के राजनीतक आर्थिक परिदृश्यों को एक आकार दिया हैं परिणामत: सुरक्षा अनिवार्यता ही भारत और पाक के रिश्तों के शर्तो एवम् अनुबंधों के रूप में प्रकट हो जाते हैं विशेष रूप से 9/11 के बाद से वैश्विक आतंकवाद से सहमी हुई दुनिया के परिप्रेक्ष्य में यह एक महत्वपूर्ण आयाम के रूप में उभरा है। आतंकवाद का पक्ष सुरक्षा के नजरिये से एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसकी भारत-पाक संबंधों के दशा और दिशा तय करने में महती भूमिका है। कुल मिलाकर इन दोनों देशों के आपसी संबंध तनावपूर्ण है। और कश्मीर की समस्या के पूरी तरह से गिरफ्त में है।[2]

**प्रथम भारत-पाक युद्ध**- आजादी के बाद ही भारत और पाक के सामने युद्ध की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थी। 20 अक्टूबर, सन् 1947 को पाकिस्तान की सेना ने कबाईलियों के मदद से जूनागढ़, राजौरी और नौशेरा में धावा बोल दिया। पाकिस्तान की योजना थी कि एक हफ्ते के भीतर कश्मीर, श्रीनगर के राजधानी पर कब्जा कर लिया जायँ।

22 अक्टूबर, सन् 1947 को कुछेक पाँच हजार कबाईलियों के लश्कर ने ऐबटाबाद से सीधे कश्मीर में प्रवेश कर गए और उपद्रव करने शुरू कर दिए। शुरूआत में तो उनको फतह का अहसास हुआ। डोगरा सेना परास्त होती हुई प्रतीत हुई। डोगरा के महाराज अपनी राजधानी से भाग गए ताकि जम्मू में उनको सुरक्षा मिल सकें।

दलितों या कबाईलियों के सेना को उड़ी में कड़े मुकाबले का सामना करना पड़ा, जहाँ सरकारी सेना की टुकडिघ्यों ने कई मुस्लिम टुकडिघ्यों के हाथ खींच लेने के बावजूद पाकिस्तानी सेना को पूरे दो दिन रोके रखां सरकारी सेना ने अपनी क्षमता का भरपूर प्रदर्शन तब तक किया, जब तक कि वे पूरी तरह नष्ट नहीं हो गए। सेना ने भारत और पाकिस्तान के मध्य मुख्य सेतु को भी ध्वस्त करने की सोची ताकि पाकिस्तानी सेना प्रवेश न कर पाएँ। पाकिस्तानी सेना को भी जम्मू क्षेत्र के दक्षिणी तरफ से आक्रमण करने में सफलता मिल नहीं पाई क्योंकि जम्मू के निजी लोगों ने पाकिस्तानी सेना का प्रबल विरोध किया और जम्मू के अधिकतर हिस्सों में जाने से पाकिस्तानी सेना को रोका गया।

पाकिस्तानी सेना ने जम्मू एवं कश्मीर को स्वतंत्र कराने की भरपूर कोशिश की लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। लेकिन जम्मू एवं कश्मीर पर पाकिस्तानी सेना के आक्रमण से भारतीय सेना के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ भी खड़ी हो गई। लेकिन भारतीय सेना ने न केवल इन चुनौतियों का गंभीरता से सामना किया वरन् सेना के जवानों ने अपने अमूल्य जीवन को भारत माता की रक्षा के लिए न्यौछावर भी कर दिया।

**भारत-पाक युद्ध - 1965**- भारत के गुजरात राज्य के पश्चिमी छोर और पश्चिमी पाकिस्तान के मध्य में अवस्थित कच्छ क्षेत्रों पर पाकिस्तान ने दावा करते हुए कहा कि कच्छ क्षेत्र का लगभग 8,400 वर्ग मील क्षेत्र जल में प्लावित है, इसलिए भारत और पाकिस्तान की सीमा का निर्धारण इसी के मध्य से होना चाहिए। भारत ने पाकिस्तान की दलील और दावे को ठुकरा दिया और कहा कि कच्छ का रान क्षेत्र भारत की परिसीमा के भीतर ही है। अयूब ने अमेरिकी हथियारों के प्रयोग करने की कोशिश की और अपने जवानों के हौसले और करामातों को जाँचने के फैसले किए।

लेकिन संक्षिप्त लड़ाई में ही अयूब को पता चला गया कि पाकिस्तानी सैनिकों के आगे भारतीय जवानों की कोई औकात ही नहीं है। और इसीलिए उन्होंने सोचा कि अमेरिका की तटस्थता का फायदा उठाकर भारत के खिलाफ एक बड़े जंग की सोचीं आयूब ने मास्को का दौरा किया और अपनी योजनाओं से मूर्त रूप दिया। ऐसा कहा गया है कि अपनी यात्रा के दौरान आयूब रूस की भारत के प्रति सहानुभूति को कमजोर करने का प्रयास किया। परिणामत: भारत और पाकिस्तान के मध्य एक युद्ध छिड़ गया। अगस्त, सन् 1965 में पाकिस्तान ने अपने तथाकथित सैनिकों को कश्मीर के भारतीय भूभाग पर भारतीय जनता को परेशान करने के लिए भेज दिया। मुट्ठीभर कश्मीरियों को पाकिस्तान ने हर तरह के समर्थन दिए। हालाँकि पाकिस्तान ने अपना हाथ होने से इंकार किया। भारत ने इसका सफलता के साथ मुकाबला किया और कश्मीर की सीमाए बंद कर दी गई। मलेशिया ने बोलीविया, जॉर्डन, नीदर लैण्ड और उरूगए के समर्थन से 4 सितंबर को संयुक्त राष्ट सुरक्षा परिषद में एक प्रस्ताव पेश किया। संयुक्त राष्ट सुरक्षा परिषद् ने पाकिस्तान को आक्रमणकारी करार नहीं देते हुए भारत को युद्ध

विराम की सलाह दी। लेकिन संयुक्त राष्ट की इस पहल का पाकिस्तान की सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ा और उसने घुसपैठ और हिंसक कारवाईया जारी रखां भारत ने भी लाहौर पर तीनों तरफ से हमले कर दिए। इस पर हैरत खाकर संयुक्त राष्ट सुरक्षा परिषद ने भारत और पाकिस्तान को संघर्ष विराम और सेनाओं को वापस लौटाने के आदेश दिएं संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के महासचिव यूटांट ने भारत और पाकिस्तान को शांतिदूत भेजे। लेकिन इससे कोई नतीजा नहीं निकल पाया। अंतत: संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के महासचिव के द्वारा भारत और पाकिस्तान दोनों से अपील किया गया कि वो बिना एक दूसरे पर शर्त थोपे संघर्ष विराम करें। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने बिना शर्त युद्ध विराम की अपील को अंगीकार किया, लेकिन पाकिस्तान के राष्ट्रपति श्री आयूबखान ने कुछ शर्ते सामने रखीं संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने एक बार फिर दोनों देशों से जोरदार अपील की, जिसे अंतत: मान लिया गया।

**ऑपरेशन शक्ति**- सन् 1998 में भारतीय जनता पार्टी ने घोषणा की ''कि पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के हिस्से को भी वापस लिया जाएगा।'' वाजपेई जी ने घोषणा की कि ''राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जाएगा। हम सुरक्षा और सम्प्रभुता को बनाए रखने के लिए नाभिकीय विकल्प सहित सभी विकल्प पर विचार करेंगे'' एक अधिकारिक रिपोर्ट में भी कहा गया कि ''नाभिकीय नीति पर पुर्नविचार किया जाएगा तथा नाभिकीय हथियारों के परीक्षण से संबंधित कार्यक्रमों की शुरूआत की जाएगी।

भारत अचानक अमेरिका, जर्मनी, जापान और यूरोपियन यूनियन के आर्थिक दबावों के चंगुल में फँस गया। इन देशों ने भारत के खिलाफ आर्थिक प्रतिबंध थोप दिए। कई सारे देशों ने भारत के द्वारा नाभिकीय हथियारों के परीक्षण की आलोचना की।

चीन ने भी अमेरिका के साथ नाभिकीय मुद्दे पर भारत को घेरने की कोशिश की। चीन के विदेश मंत्री श्री टेंग जिमाजुआन ने अमेरिकी विदेश सचिन को 14 मई, सन् 1998 को दूरभाष पर संपर्क किया और नई दिल्ली को मनाने की अपील की ताकि भारत में नाभिकीय परीक्षण पर विराम लगे।[3]

नाभिकीय परीक्षण की कारवाई के औचित्य को सही ठहराते हुए प्रधानमंत्री श्री वाजपेई ने कहा- ''हम ऐसी दुनिया में रहते हैं जहाँ हमारा देश भारत हथियार संपन्न देशों से घिरा है। कोई भी जिम्मेदार सरकार केवल निरपेक्ष सिद्धांतों के आधार पर सुरक्षा नीति निर्मित नहीं कर सकती है।'' उन्होंने कहा कि केवल विवेकपूर्ण नाभिकीय तंत्र के आधार पर ही निर्भर नहीं रह सकती है। अमेरिका के द्वारा थोपे गए प्रतिबंध के बारे में जवाब देते हुए प्रधानमंत्री श्री वाजपेई ने कहा कि ''हमारे आशय थे, है और हमेशा शांतिपूर्ण रहेंगे। लेकि खास मुगालते में रहकर अपनी करनी पर भरोसा नहीं करना चाहते हैं। भारत अब एक हथियार संपन्न देश है। लेकिन भारत का बम कभी भी आक्रामक हथियार नहीं बनेगा।''

अब भारत और पाकिस्तान ने नाभिकीय क्लब में अपने को शामिल कर लिया है। इन परीक्षणों से तनाव बढ़ा हैं और निश्चित रूप से हथियारों की प्रतिस्पर्धा बढ़ी है। इन परीक्षणों से भारत और पाकिस्तान के रिश्तों में एक नई कड़ी जुड़ गई है। भारत ने नाभिकीय एकाधिकार को तोड़कर रख दिया है। 24 वर्षों के बाद भारत ने अपनी वैज्ञानिक और तकनीकी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी है।

**भारत-पाक संबंध-उम्मीदें**- पाकिस्तान के साथ भारत के रिश्ते उलझन भरे द्वंद के रूप में समझे जाते है जो पिछले 67 सालें से कश्मीर के विवादों से पनपकर सामने आए है। सन् 2008 में आतंकी हमले के बाद अचानक पारस्परिक रिश्तों में दरार आई है। मोदी ने कड़े कदम उठाने की चेतावनी दी और भारत के द्वारा पाकिस्तान के खिलाफ 'पहले प्रयोग नहीं' पर पुर्नविचार का संकेत भी दिया।[4]

सन् 2001 में हमले के बाद एक बार फिर से दक्षिण एशियाई क्षेत्र और उपसागरीय क्षेत्र में संकट के बादल घिर आए। दोनों देशों (भारत और पाकिस्तान) के सेनाओं में आपस में ठन गई। इसके बाद सन् 2004 में संवाद प्रक्रिया की शुरूआत हुई। 26/11 के मुंबई हमले के बाद दोनों देशों के पारस्परिक संबंधों को क्षति पहुँची। सन् 2011 में फिर से वार्ता शुरू करने पर सहमति हुई जिसके बाद व्यापार तथा वीसा औपचारिकताओं के मामले में कुछ प्रगति हुई।[5]

अभी हाल ही में सरकार ने अपनी योजनाओं को 29 सितंबर को सर्जिकल स्ट्राईक दिवस मनाने के लिए अनावृत्त किया ताकि सीमापार कारवाई किया जा सकें। भारतीय सेना के प्रमुख जनरल बिपिन रावत ने पाकिस्तान के खिलाफ कड़ी कारवाई की माँग की ताकि हाल ही में सीमा पर तैनात सैथ्नक की मृत्यु का बदला लिया जा सकें। उसी समय विरोधी दलों ने सरकार पर आरोप लगाया कि सरकार भारत पाकिस्तान वार्ता के लिए निमंत्रण स्वीकार कर रही है। इन घटनाओं से साफ संकेत मिलता है कि भारत की रणनीति की आबोहवा में बदलाव दिखाइ दे रहा है। यह वाकई में खतरनाक संकेत है जिससे आगे दक्षिण एशिया की स्थिति में और इसकी सुरक्षा की स्थिति में गिरावट आ सकती है।

सर्जिकल स्ट्राईक दिवस मनाते हुए जिस दिन भारत ने पाकिस्तान को माकूल उत्तर दिया तो वाकई में यह आत्मगौरव का विषय है। बहरहाल लक्ष्य केन्द्रित दृष्टिकोण से भी यह हमला पूरी तरह से असफल सिद्ध हुआ है।

हमले के बाद कश्मीर में घुसपैठ की स्थिति बिगड़ती गई। सन् 2017 में 358 घुसपैठ की घटनाएँ कश्मीर में दर्ज की गई, जबकि सन् 2016 में घुसपैठ की घटनाएँ मात्र 267 ही हुई। लेकिन सन् 2017 में नागरिकों की मौतों की संख्या का प्रतिशत 166 प्रतिशत तक बढ़ गया।

तमाम संकेतकों से पता चलता है कि इस्लामाबाद ही कश्मीर में घुसपैठ की घटनाओं को अपना समर्थन देता रहा है। इन दो सालों में पाकिस्तान प्रायोजित, आतंकी घटनाओं में बढ़ोतरी होती रही जिसकी वजह से उड़ी जैसी घटनाएँ ही हुई। इसी बीच भारत और पाकिस्तान की सेनाओं के मध्य सीमा पर हिंसा में क्रूरता का बोलबाला रहा। सन् 2017 में युद्ध विराम के उल्लंघन में दुगुनी रफ्तार से इजाफा होता रहा। इसी बीच दोनों तरफ की सीमाओं पर उच्चस्तरीय हथियारों का जमावड़ा होता रहा।

अब यदि फैसले करने वाले यह सोचे कि स्थितियाँ अनुकूल हैं, तो उनको कूटनीतिक रास्ते आख्तियार करना चाहिए और पाकिस्तान पर अंतर्राष्ट्रीय दबाव रखना चाहिए ताकि वो अपनी नीतियों को बदल दें। भारत ने सन् 2008 में मुंबई आतंकी धमाके के बाद इस रास्ते को अपनायां इसके अलावे दूसरा विकल्प यह भी हो सकता है कि पाकिस्तान को धमकाते हुए उस पर संकअ का दबाव बनाना चाहिए ताकि वो अपने तौर तरीके बदल दें। भारतीय संसद पर धमाके बाद भारत ने इस विकल्प का भी प्रयोग कियां भारतीय नीति को लगातार इस तरह की शैली का अनुसरण करना चाहिए।

**निष्कर्ष**- शांति प्रक्रिया फिलहाल मुश्किल है। इस पूरी प्रक्रिया को जम्मू एवं कश्मीर में रह रहे अलगाववादी मुस्लिम समूहों के द्वारा अंजाम दिया जाता है। जब तक इस आतंकवाद का सफाया पूरी तरह से नहीं हो जाता है, दोनों देशों के बीच शांति एक दिवास्वज के बराबर है। सन् 2024 में एक और आम चुनाव होने है। अब यह देश फैसला करेगा कि क्या वाकई में सरकार में तब्दीलियाँ होंगी। इसमें कोई शक नहीं है कि हमारा देश भारत-पाक रिश्तों के लिए बेहतर रिश्ते की उम्मीदें सँजोए रहता है। यह पूरी तरह स्पष्ट है कि कोई भी भावी सरकार सत्तासनी होते ही भारत-पाक शांति प्रक्रिया को सर्वोच्च प्राथमिकता देगी। इस दिशा में दोनों देशों के शासनाध्यक्षों के द्वारा सतत एवं सजग प्रयास होते रहना चाहिए ताकि उपसागर में शांति बनी रही जो दोनों देशों के लिए आवश्यक है।

## संदभ


[1] Nidhi Shedurnikar Tere, Bridging Barriers: Medua And Citizen Diplomacy In India-Pakistan Relations, Regional Studies, Vol XXXII, No-2, Spring 2014, Institute Of Regional Studies, Islambad.

[2] Harsh V. Pant, Indian Foreign Policy: An Overview, Oreint Blackswann, New Delhi, 2016

[3] Kumar, Sumita (2007) China-Pakistan Strategic Relationship: Trade, Investment, Energy and Infrastructure. Available at: https://www.researchgate.net/publication/247526277_The_China-

[4] Muzaffar, Muhammad et al (2016) Pakistan's Foreign Policy: Initial Perspective and Stages. Available at: https://www.grrjournal.com/jadmin/Auther/31rvlolA2LALJouq9hkR/Y8vZHTTUgi.pdf

[5] Shah, Kriti M (2018) Pakistan's Use of Terror as a tool. Available at: https://www.orfonline.org/expert-speak/pakistan-use-terror-tool-45691/

# प्राथमिक शिक्षा में नए आयाम


## डॉ० ममता दीक्षित

*एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, एम0एम0वी0 पी0जी0 कालेज, कानपुर*


शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में जन सामान्य का यह विचार है कि शिक्षा जीविका-निर्वाह में सहायता प्रदान करे। जीवन, जो संघर्षों का दूसरा नाम है, इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है जिनके लिए व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से मुकाबला करना पड़ता है। एक व्यक्ति चाहता है कि वह दूसरे से बढ़ जाए। इस तरह के मुकाबले और छीना-झपटी की दशा में शिक्षा को एक ऐसा साधन बनाया जाता है जो इस काम में सहायता पहुँचाए। इन कारणों से जन-साधारण की दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य जीविका-निर्वाह में सहायत प्रदान करना है।[1]

## शिक्षा का अर्थ

साधारण बोलचाल की भाषा में शिक्षा का अर्थ स्कूल में प्राप्त की जाने वाली शिक्षा से है। अत: जब हमारा ध्यान उस शिक्षा की ओर जाता है जो शिक्षालय में शिक्षक द्वारा, पाठ्य-सामग्री की सहायता से प्रदान की जाती है तब हम शिक्षा को सीमित अर्थ में समझते हैं। पाठ्य-पुस्तकें, पाठ्यक्रम तथा शिक्षा संगठन आदि शिक्षा के सीमित अर्थ के द्योतक हैं। सीमित अर्थ की शिक्षा का काम, स्थान और समय निश्चित होता है। इसीलिए इस शिक्षा को सविधिक शिक्षा भी कहते हैं।

## शिक्षा की परिभाषा

जैसा कि हमने पहले कहा है, कि सभी विद्वानों के विचारों पर देश, काल और समाज का प्रभाव पड़ता है। अत: विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा की परिभाषा भिन्न-भिन्न दृष्टियों से की है। इसलिए उनमें शिक्षा की किसी एक परिभाषा पर मतैक्य नहीं है, जो कि शिक्षा की व्यापकता को देखते हुए सम्भव भी नहीं है। अब हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

**रूसों**- ''शिक्षा जीवन हैं शिक्षा का केन्द्र बालक है। इसलिए शिक्षा का ध्येय व्यक्तित्व का उत्कर्ष है।'' इस परिभाषा से यह विदित होता है कि रूसो शिक्षा को व्यापक अर्थ में ग्रहण करता था। इसलिए उसने कहा कि शिक्षा जीवन है। दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण जीवन भर हम शिक्षा ग्रहण करते रहते हैं।

## प्राथमिक शिक्षा का विकास

प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश करने के पूर्व बच्चों की शिक्षा को पूर्व-प्राथमिक शिक्षा कहते हैं। इसमें साधारणतया 2 वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा दी जाती है। इंग्लैंड तथा अधिकांश यूरोपीय देशों में इस शिक्षा को प्राप्त करने वाले शिशु की उम्र 5 वर्ष है और भारत में 6 वर्ष तक। कुछ शिक्षाशास्त्रियों ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का प्रारंभ 2 वर्ष से माना है ओर कुछ ने 3 वर्ष से। श्रीमती विद्यावती मलैया ने लिखा है- ''सामान्यत: पूर्व-प्राथमिक बालक से अभिप्राय 18 महीने या 2 वर्ष से 6 वर्ष की आयु वाले बालक से रहता है।'' श्री एस. एन. मुखर्जी के शब्दों में- ''Pre-Primary Education extends from the birth of the child to his entrance, at the age of five or six, into the first year of the primary school. It includes parental education, pre-natal and postnatal care and early infancy training.'' अर्थात् शिशु के जन्म से लेकर उसके प्राथमिक शाला में प्रवेश तक की शिक्षा पूर्व-माध्यमिक शिक्षा कहलाती है। इस समय तक बच्चों की उम्र 5-6 वर्ष की हो जाती है। इस शिक्षा में माता-पिता द्वारा देखभाल तथा प्रारंभिक शैशव-प्रशिक्षण सम्मिलित हैं। महात्मा गाँधी के अनुसार ''The real education begins from conception, as the mother begins to take up the responsibilities of the child'' अर्थात् सच्ची शिक्षा तो गर्भधान-काल से ही प्रारंभ हो जाती है जबकि माँ अपने गर्भस्थ शिशु का दायित्व संभालन लगती है।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के अंतर्गत नर्सरी किंडरगार्टेन तथा मांटेसरी की शिक्षा प्राप्त करने वाले बालकों का समावेश होता है। नर्सरी शालाओं में छोटे बालक तथा किंडरगार्टेन शालाओं में 4 या 5 वर्ष के बालक भरती होते हैं। परंतु आज कल यह अंतर कम होता जा रहा है, क्योंकि अब तो किंडरगार्टेन में 2-3 वर्ष की आयु वाले तथा नर्सरी में 5 वर्ष की आयु वाले बालक-बालिकाएँ रहने लगी हैं। हमारे देश में यह शिक्षा निम्नलिखित रूप में दो जाने लगी है-

(क) नर्सरी स्कूल- 2 से 4 वर्ष के बालक-बालिकाएँ।

(ख) किंडरगार्टेन विद्यालय- 4 + की आयु वाले बालक-बालिकाएँ यहाँ शिक्षा पाते है।

(ग) मांटेसरी विद्यालय- इसमें 2 से 6 वर्ष के बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं।

(घ) पूर्व बेसिक विद्यालय- रूस के क्रेचे विद्यालय की तरह भारत में पूर्व बेसिक शिक्षा दी जाती है।

## प्राथमिक शिक्षा में नए प्रयोग

पंजाब सरकार ने दलित-विशेष शिक्षा संस्थान खोलने का निर्णय लिया है जबकि पंजाब के निर्णय के बिल्कुल उल्टा कई राज्यों में सभी के लिए स्कूलों में ही दलितों के लिए विशेष सहूलियतें या स्कीमें चला रखी हैं। उदाहरणतया हिमाचल ने 1000 जमा दो के दलित विद्यार्थियों का व्यय स्वयं करने की भलाघनीय परियोजना चला रही है। क्या दलितों के लिए अलग स्कूल ज्यादा कारगर तथा लाभकारी होंगे। अनुभव तो यही बताता है कि अलगवाद किसी के लिए भी हितकर साबित नहीं होता। अमेरिका में ब्लैंक के लिए स्कूल चले थे, परन्तु वे सफल या बेहतर साबित नहीं हुए। भारतवर्ष में भी लगभग स्कूलों के प्रश्न को गहराई से सोचने, विचार करने की आवश्यकता है।

दलित-विशेष स्कूल का तर्क अजीब है। दलितों के लिए अलग स्कूल, अलग ही दलित-अध्यापक, यह वस्तुत: खतरनाक दृष्टिकोण हैं एक तरफ तो कोठारी शिक्षा आयोग (सन् 1964-66) से सभी के लिए स्कूल, एक-सम, एक-साथ इकट्ठे अध्ययन-अध्यापन का नारा दिया जा रहा है, दूसरी ओर अलग, विशेष ग्रुप के लिए संस्थाओं की बात कही जाती है। दलितों को अच्छी शिक्षा देना बहुत आवश्यक है, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। जो सदियों से पीडिघ्त रहे, शोषित रहे, जिनकी 'दु:ख ही जीवन की कथा रही। क्या कहूँ आज तो नहीं कही' उन्हें ऊपर उठाने का एकमात्र सशक्त साधन है, स्तरीय शिक्षा। परन्तु यह स्तरीय शिक्षा अलग से स्कूल खोलकर नहीं दी जा सकती।

नए शिक्षा संस्थान चाहिए जिसके लिए धन चाहिए, समय भी। आज तथ्य ये है कि आधी विद्यार्थी जनसंख्या स्कूल की परिधि से बाहर है वे बच्चे स्कूल ही नहीं आते या आ पाते। जो आते हैं, दाखिला लेते हैं, उनमें से आधे पाँचवीं तक पहुँचते-पहुँचते स्कूल से भाग जाते हैं। अत: जरूरत तो प्रत्येक ब्लॉक-गाँव स्तर पर ये सर्वेक्षण करवाने की हैं कि ऐसा क्यों होता है ? हर क्षेत्र में कारण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इन्हें जानकर फिर ठोस, समयबद्ध कार्यक्रम बनाने, उन पर आचरण करने की जरूरत है। यह करनी का भेद है, कथनी का नहीं। हम बहुत बार नगरों में बैठकर इन विषयों पर सोचते हैं जबकि ये समस्याएँ मूलत: गाँवों की हैं, निर्धन परिवारों की हैं जिनके बारे में कहा गया है, 'गरीबों को खाने का गम खा गया।'

धन की पहले से ही कमी है, शिक्षा के लिए यह कमी सदा रही है। और यह है भी बहुत बड़ा कार्यक्षेत्र। अलग स्कूलों के लिए और अधिक धन चाहिए जो नहीं है क्योंकि नहीं है। और यह धन ईंटें-गारे पर, वेतनमानों पर अधिकतर खर्च हो जाएगा। इससे विद्यार्थी वर्ग को विशेष सुविधाएँ नहीं मिल पाएँगी। कई स्कूल बहुत प्रसिद्ध हैं, उनसे दलित विद्यार्थी वंचित रह जाएँगे। अलग पठन-पाठन से हीन भावना का संचार होगा, स्तर भी और नीचे गिरेंगे। हमारा उद्देश्य तो दलितों को देश की मुख्यधारा में डालता है, उन्हें यह आभास कराना है- 'उठो, युवा भारत। तुम किसी से कम नहीं', उन्हें विश्वास दिलाना है कि 'तुम हो महान्। तुम सदा हो महान्!' अलग स्कूल तो इसके उल्ट उन्हें दलित ही रखने का कार्य करेंगे। वस्तुत: यह तो अवनति की ओर ले जाने वाला कदम होगा।

स्कूल का अपना वातावरण होता है जिसमें माता-पिता, अध्यापक, विद्यार्थी वृन्द, प्रशासक, स्थानीय जनता, सभी का योगदान होता है। फिर विद्यार्थी कुशल अध्यापकों से ही नहीं अपितु परस्पर एक-दूसरे से भी बहुत कुछ सीखते हैं। अत: सभी वर्गों से छात्र-छात्राएँ विद्यालयों में पढ़ते हैं तो बहुत अच्छा वातावरण बनता है। अलगाववाद की प्रवृत्ति ईर्ष्या, स्वार्थ, संकीर्णता को जन्म देती है, देशभक्ति, राष्ट्रीय एकता, मानवीय एकता की भावना को ठेस पहुँचाती है। ऐसा करने से झगड़े ही बढ़ते हैं।

सभी के लिए शिक्षा का अर्थ ही सब निर्धनों, दलितों, साधनहीनों के लिए शिक्षा है। अत: जहाँ जरूरत हो, वहाँ नए स्कूल भी खुलने चाहिए, परन्तु सभी एक जैसे, इकट्ठे हों शिक्षण ग्रहण करने हेतु। इसीलिए तो प्राथमिक स्तर पर प्राय: सर्वत्र सह शिक्षा होती है। सभी जाति, धर्म, फिरके, साधन-स्तर के परिवारों के बच्चे इकट्ठे पढ़ने चाहिए। यही प्रयोग देश की अनेकता में एकता को दर्शाते हैं। हाँ, जहाँ संख्या ही दलितों की अधिक है, वहाँ अधिक विद्यार्थी उन्हीं वर्गों के होंगे।

कई बार 'अलगाववाद' की बात कह, सोचकर हम मूल समस्याओं को अनदेखी कर देते हैं। मूल बातें तो भारतवर्ष में गरीबी, बेकारी, अनुशासनहीनता, अहिंसा, भ्रष्टाचार, बढ़ती जनसंख्या तथा निरक्षरता की हैं। इनका एकमात्र इलाज या दवा है, गुणयुक्त स्तर की शिक्षा सभी कके लिए। आज स्थिति कितनी शोचनीय है। सभी सन् 2000 तक सबकी साक्षरता की बात करते हैं, जबकि देश के केवल चार बड़े राज्यों (बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश) में देश के 52 प्रतिशत निरक्षर रहते हैं जो संसार के 15 प्रतिशत निरक्षरों की संख्या है। देश में ड्राप-ऑट का दर 22 प्रतिशत है। विश्व के 15 प्रतिशत निरक्षर भारत में बसते हैं जिनकी संख्या सन् 2000 तक 30 प्रतिशत हो गई है।[2]

अत: नितान्त आवश्यकता तो मौलिक संख्या सुधार करने, शिक्षा के ढाँचे को व्यापक तथा स्तरीय बनाने की है, दलितों को साथ-साथ अधिक प्रोत्साहन देने की है। कई प्रान्तों, जैसे हिमाचल में, स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर है। इस छोटे-से पहाड़ी राज्य में शिक्षा संस्थाएँ काफी हैं और उनकी कार्यवाही भी अधिक है। परन्तु सभी को ध्येय प्राप्ति के लिए अभी मीलों जाना है, अभी दिल्ली दूर है। पंजाब में केवल 2 नर्सरी स्कूल हैं, एक सर्वेक्षण के अनुसार वहाँ 30 प्रतिशत स्कूलों में मूल सुविधाएँ नहीं हैं, 60 प्रतिशत स्कूल भवन टूटी-फूटी स्थिति में हैं। देश भर में 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड' चल रहा है, परन्तु हमारे 28 प्रतिशत प्राइमरी स्कूलों में केवल 1 अध्यापक है, 32 प्रतिशत में 2 हैं।

वास्तव में सारे देश में बुनियादी शिक्षा को सुधारने की आवश्यकता है, विशेषतया ग्रामीण, कठिन क्षेत्रों में, जहाँ निर्धन-दलितों के बच्चे पढ़ते हैं। अलग स्कूल खोलने की अपेक्षा यत्र-तत्र सर्वत्र सभी के लिए स्तरीय स्कूल चलाने की जरूरत है। स्कूल खोलकर, सभी सुविधाएँ देकर, ये भी सतत जानकारी तथा प्रयास रखने चाहिए कि वहाँ सारा साल पढ़ाई हो, अध्यापक पढ़ाएँ और विद्यार्थी पढ़ें। यही 'नई शिक्षा नीति' (सन् 1986-92) में सारांशत: कहा गया है।[3]

भारतवर्ष में भाषाओं के विषय में मैट्रिक तक की शिक्षा के लिए त्रि-शिक्षा फार्मूला बना है और लगभग सब जगह किसी-न-किसी रूप से इस पर आचरण किया जा रहा। परन्तु समस्या तब आती है जब भाषा का मूल उद्देश्य भूलकर इसका बँटवारा स्वार्थ के लिए कर दिया जाता है। अंगेजी के साथ यही हो रहा है। देश की स्वतंत्रता के बाद यह प्रवृति बहुत जोर पकड़ गई है। स्वदेशी शिक्षा की व्यवस्था करने वाली अग्रणी संस्थान तीन बातों का मुख्यतया ध्यान रखती थी। प्रथम, भारतीय भाषाओं की पढ़ाई, सहशिक्षा का बहिष्कार, अंग्रेजी भाषा को बुनियादी शिक्षा में पहली से आरम्भ न करना। परंतु समयानुसार उन्होंने अंग्रेजी

पद्धति अपना रखी। इनके तथाकथित स्कूलों या पब्लिक संस्थाओं में पहली कक्षा से ही सहशिक्षा के साथ अंग्रेजी की पढ़ाई होती है, तथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से 'अर्थ' ही मुख्य ध्येय रह गया प्रतीत होता है।

परन्तु फिर भी इन पब्लिक स्कूलों में बच्चे बड़ी संख्या में क्यों जाते या भेजे जा रहे हैं ? यदि वहाँ शुल्क अधिक है, तो साधारण स्कूलों में, जहाँ प्रायः शिक्षा निःशुल्क है, बच्चों को भेज दें। ऐ ऐसा क्यों नहीं कर रहे ? इसके दो मुख्य कारण हैं- एक तो यह समझा जा रहा है कि वहाँ पढ़ाई व्यवस्था अच्छी है, दूसरी वहाँ पहली से अंग्रेजी का पठन-पाठन आरम्भ हो जाता है, बच्चे छोटी कक्षाओं में अंग्रेजी सीख जाते हैं। मजे की बात यह है कि बहुत से अंग्रेजों के विरोधी भी इस दौड़ में सबसे आगे होते हैं। केवल दूसरों को उपदेश करना ही आसान है। अब यह विचार आ रहा है कि साधारण साँझे स्कूलों में ही क्यों न प्रथम श्रेणी में अंग्रेजी आरम्भ कर दी जाए ? पंजाब, आन्ध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल ने ऐसा करने का निर्णय ले लिया है।

कई दृष्टिकोण हो सकते हैं, समस्याओं तथा विषयों को सोचने के लिए। जिनके, अपने बच्चे स्कूलों में नहीं हैं, वे अंग्रेजी का प्राथमिक स्तर पर विरोध करते हैं। कई लोग अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में भेजते हैं या भेजने का सतत प्रयास करते हैं। वहाँ बच्चे न पहुँचें या चल पाएँ, तो अंग्रेजी स्कूलों की दिन-रात आलोचना करते हैं। कई अपने आपको विशेष व्यक्ति समझकर अपने बच्चों के लिए पब्लिक और अन्य बच्चों के लिए साधारण स्कूलों के हक में होते हैं। विभिन्न स्थानों पर स्थिति अलग-अलग है।

यह मान्य तथ्य है कि बच्चों की पढ़ाई की सर्वाधिक जिम्मेदारी उनके माता-पिता तथा अभिभावकों की हे। यह उन्हें देखना है कि उनके बच्चों के लिए क्या हितकर है, वे उन्हें क्या बनाना चाहते हैं। उसके लिए केवल व्यवस्था करना सरकार का कार्य है। यदि माता-पिता अपने बच्चों को आरम्भ से अंग्रेजी, पहाड़ी या ऐसी भाषाओं में पढ़ाना चाहें, तो ऐसा करने की छूट होनी चाहिए, परन्तु केवल अपने बच्चों के सम्बन्ध में। औरों के बच्चों पर ऐसा अंकुश लगाना आज की स्थिति में तर्कसंगत होगा, न सम्भव। अतः सर्वेक्षण द्वारा यह जानने की आवश्यकता है कि साधारण माता-पिता चाहते क्या हैं और कहाँ तक उस प्रकार की शिक्षा तथा व्यवस्था हेतु आर्थिक तथा अन्य सहयोग दे सकते हैं।

यह देखा गया है कि साधारणतः माता-पिता, विशेषतया ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में, अपने बच्चों के लिए, अच्छी स्तर की लाभदायक शिक्षा चाहते हैं जिसमें अंग्रेजी का भी पुट हो और वह बहुत महँगी भी न हो। इसके लिए अंग्रेजी का प्रथम कक्षा से आरम्भ करना उचित होगा। परन्तु यदि सम्पूर्ण व्यवस्था तथा स्तर की ओ विशेष ध्यान नहीं दिया गया तो अंग्रेजी का आरम्भ करना निरर्थक होगा, हानिकारक भी। इससे केवल 'अनपचे ज्ञान' का बोझ बढ़ेगा जो बच्चे के मानसिक विकास को रोकेगा। अध्यापकों की कमी और अधिक अनुभव होगी।

## नई शिक्षा नीति

एनईपी- 2020 में शिक्षा में उदार नजरिये को अपनाने की बात कही गयी है। इसमें स्कूली और उच्चतर शिक्षा में मौजूदा पाठ्यक्रम और अध्यापन के तौर तरीकों के पुनर्गठन पर जोर दिया गया है ताकि इस नीति के लक्ष्यों और प्रयोजनों को पूरा किया जा सके। इसमें 10+2 के मौजूदा ढांचे के बजाय 5+3+3+4 का नया ढांचा अपनाने का सुझाव दिया गया है। इसमें तीन वर्ष की उम्र से शुरुआती बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा-अर्ली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन (ईसीसीई) का मजबूत आधार होगा। नीति में 2030 तक मजबूत अध्यापन पर आधारित गुणवतापूर्ण ईसीसीई के सर्वव्यापीकरण का सुझाव दिया गया है। इसमें तीन से आठ साल तक की उम्र को किसी भी बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिये महत्वपूर्ण बुनियादी चरण माना गया है। हर छात्र को तीसरी कक्षा तक बुनियादी साक्षरता और अंक ज्ञान हासिल कर लेना चाहिए। स्कूली शिक्षा का पाठ्यक्रम और अध्यापन का ढांचा आयु वर्ग और श्रेणी के अनुसार विकास के विभिन्न चरणों में छात्रों की जरूरतों और दिलचस्पियों के अनुरूप होना चाहिए।

## संदर्भ


1. अदावल, एम0 सी0, एज्यूकेशनल रिसर्च इन इंडिया ईयर बुक, नई दिल्ली, 1968।
2. दूबे, श्यामाचरण, शिक्षा, समाज और भविष्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001।
3. अग्रवाल0 जे0 सी0, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1994।

# महात्मा गाँधी और भारत छोड़ो आन्दोलन -1942


## संजय कुमार पासवान

*शोधार्थी, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा*


भारत छोड़ो आन्दोलन 8 अगस्त 1942 को महात्मा गांधी द्वारा किया गया यह आन्दोलन 'क्रिप्स मिशन' की असफलता और देश में अंग्रेजों की अराजकता को तोड़ने के लिए भारत छोड़ो आन्दोलन स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए गांधी ने इसे एक और अंतिम युद्ध का रूप दिया। भारत छोड़ो आन्दोलन गांधी ने अपनी पत्रिका 'हरिजन' में एक लेख अंग्रेजों के खिलाफ लिखा की "भारत को ईश्वर के भरोसे छोड़ कर चले जाओ और यदि तुम्हारे लिए बहुत बड़ी है तो उसे अराजकता में छोड़ दो परंतु चले जाओ।" इसी प्रकार गांधी ने अपनी दूसरी लेख भारत के लिए उसके परिणाम कुछ भी क्यों न हो भारत और ब्रिटेन की सुरक्षा के समय इंग्लैंड को भारत छोड़ देने में ही है, क्योंकि उस समय जापान तेजी से विजय अभियान प्राप्त करता हुआ म्यांमार और भारत की ओर बढ़ रहा था। महात्मा गांधी ने अपने इसी पत्रिका में लिखा कि "अब समय आ गया है कि जब अंग्रेजों भारत छोड़ो वह भी भारतीयों के लिए जापानियों के लिए नहीं।" यह नारा गांधी जी का भारतवर्ष में गूंज उठा वस्तुतः यह गांधी जी का असफल आन्दोलन रहा है।

भारत छोड़ो आन्दोलन यद्यपि अपने मूल लक्ष्य को प्राप्त कर न सका परन्तु इस आन्दोलन से भारत की जनता में ऐसी अपूर्व जागृति उत्पन्न कर दी जिससे ब्रिटेन के लिए भारत पर लंबे समय तक शासन करना संभव नहीं रहा। इस आन्दोलन ने दूरगामी प्रभाव से भारतीय जनता में नई रणनीति तथा अन्य विचारधाराएं उत्पन्न की।

1. इस आन्दोलन भारतीय जनता को पूर्ण स्वतंत्रता का दीप प्रज्वलित करने की प्रेरणा दी।
2. आन्दोलन ने देश की जनता में साधारण जागृति उत्पन्न कर दी।
3. भारत छोड़ो आन्दोलन से उत्पन्न चेतना के विदेशों में भी भारत की स्वतंत्रता का वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वयं ब्रिटिश जनमत को भारतीयों ने अपने पक्ष में किया।
4. आन्दोलन के कारण जनता में सामना करने के लिए साहस और शक्ति में वृद्धि हुई।
5. आन्दोलन का क्षेत्र और प्रभाव देशव्यापी था। ब्रिटिश सरकार के को स्पष्ट हो गया कि अत्याचार असंतोष को नहीं तोड़ सकेंगे।
6. इस आन्दोलन से उत्पन्न चेतना के स्वरूप सन 1946 ई0 में जल सेना का विद्रोह हुआ जिसने भारत में ब्रिटिश शासन पर भयंकर चोट की।

भारत छोड़ो आन्दोलन अपने समय के सही मायने में वह एक जन आन्दोलन था जिसमें लाखों-करोड़ों आम हिंदुस्तानी थे। इस आन्दोलन ने युवाओं को बड़ी संख्या में अपनी ओर आकर्षित किया। 8 अगस्त 1942 ई0 में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय आरंभ किया गया था इस क्रांति का दूसरा नाम 'अगस्त क्रांति' के नाम से जाना जाता है। मुख्य रूप से यह आन्दोलन स्वतंत्रता संग्राम के दौरान काकोरी कांड के ठीक सत्रह साल बाद 9 अगस्त 1942 ई0 को गांधी जी के आवाहन पर पूरे देश में एक साथ आरंभ हुआ। गांधी जी ने इस आन्दोलन में अंग्रेजों की अराजकता के खिलाफ 'करो या मरो' का नारा दिया था।

भारत छोड़ो आन्दोलन का खास बात यह रहा है कि जनता की हिंसा की निंदा करने से इंकार कर दिया और इस हिंसा के लिए सरकार को जिम्मेदार ठहराया। इस संबंध में सुमित सरकार ने स्पष्ट किया है कि "अहिंसा की आवश्यकता को हमेशा दोहराया गया था, गांधी का 'करो या मरो' का मंत्र गांधी के उग्रवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है।"

**भारत छोड़ो आन्दोलन के मुख्यतः तीन चरण था- पहला चरण**

1. पहली बार पूरी तरह से क्रियान्वित किया गया।
2. गांधी जी को जेल में बंद रखा गया।
3. सुरक्षा के मामले में भी ऐसे ही किया।

**भारत छोड़ो आन्दोलन का- दूसरा चरण**

संचार खराब होने के कारण/लक्षण जैसे संचार के संचार के रूप में जैसे रेलवे ट्रैक स्टेशन, वायरलैस तार और पोल सरकारी तंत्र पर लागू होने वाले किसी भी प्रकार के अपराध के लक्षण।

**भारत छोड़ो आन्दोलन का- तीसरा चरण**

भारत छोड़ो आन्दोलन को आखिर में अलग-अलग प्रभावित जगहों बलिया, सतारा जैसे स्थानों को स्थिति का रिपोर्ट किया गया।

भारत छोड़ो आन्दोलन समस्त भारतीयों के लिए अनेक हित पक्ष का आन्दोलन जिसमे गांधी जी के नेतृत्व में 8 अगस्त 1942 बाम्बे में 'भारत छोड़ो' का नारा अंग्रेजों के खिलाफ जंग छेड़ी। गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन विभिन्न राजनीतियों तथा विचारधाराओं के खिलाफ आरंभ किया।

भारत छोड़ो आन्दोलन को लाने का सबसे प्रमुख कारण था 'क्रिप्स मिशन' की असफलता । भारतीयों ने यह अनुभव किया था कि क्रिप्स को केवल अमरीका और चीन के दबाव के कारण भेजा गया था और 'क्रिप्स मिशन' से संबंधित समस्त क्रियाकलाप एक राजनीतिक धूर्तता मात्र थी। मौलाना आजाद लिखते हैं "अनेक राजनीतिक दलों और क्रिप्स में जो लंबी बातचीत चली वह संसार के सम्मुख यह सिद्ध करने के लिए थी कि कांग्रेस भारत की सच्ची प्रतिनिधि संस्था नहीं है और भारतीयों में एकता के अभाव के कारण ही ब्रिटेन भारत को सत्ता हस्तांतरण नहीं कर सकता।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी बखूबी तरह से समझते थे कि अंग्रेजों के साथ कांग्रेस मिली-जुली है। तत्पश्चात 'क्रिप्स मिशन' असफलता के कारण गांधीजी ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ द्वितीय विश्व युद्ध के समय 8 अगस्त 1942 को अपना तीसरा और आखिरी आन्दोलन करने का फैसला किया। 8 अगस्त 1942 को ही गांधी जी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के बम्बई सत्र में अंग्रेजों 'भारत छोड़ो' का नाम दिया। इसके पश्चात ही गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया।

वस्तुत: गांधी जी के गिरफ्तारी के बाद इस आन्दोलन ने अपना नया रुख जमाया। कांग्रेस के जयप्रकाश नारायण ने समाजवादी सदस्य भूमिगत प्रतिरोधी गतिविधियों में ज्यादा सक्रिय रहे और उन्होंने इस आन्दोलन में बढ़-चढ़कर आगे आए। भारत छोड़ो आन्दोलन का मुख्य रूप से सबसे पहले भूमिका युसूफ मेहर अली ने दिया था, जो युसूफ मेहर अली भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के अग्रणी नेता में थे।

भारत छोड़ो आन्दोलन (अगस्त क्रांति) 9 अगस्त 1942 को संपूर्ण भारत में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आह्वान पर आरंभ भारत की आजादी से संबंधित इतिहास के दो पड़ाव सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण नजर आते हैं पहला 1857 ई0 का स्वतंत्रता संग्राम और द्वितीय 1942 ई0 का 'भारत छोड़ो आंदोलन' था अगस्त क्रांति भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की यह अंतिम लड़ाई थी। क्रिप्स मिशन की असफलता के पश्चात जापान की बढ़ती क्रूरता तथा दूसरी ओर द्वितीय विश्व युद्ध के तमाम वस्तुओं के दाम में बढ़ोतरी के चलते भारत की जनमानस तथा भारत की मजबूत कसौटी कम नजर आ रही थी। उसी समय गांधी जी ने अपने 'हरिजन' पत्रिका के माध्यम से अंग्रेजों के खिलाफ देश के लिए और अपने लिए अंतिम लड़ाई लड़ने का मन में ठानी।

यद्यपि बात अगर की जाए की 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की आवश्यकता क्यों और कैसे हुई ? तो यह आन्दोलन भारतीयों व उनकी आजादी के मुक्ती के लिए किया गया जो 1857 ई0 से चल रहा था। भारत को अपनी पहचान पाने के लिए यह जरूरी था इसीलिए उस समय यह आन्दोलन नहीं किया होता तो आजाद भारत आज गुलाम होता।

भारत छोड़ो आन्दोलन का मुख्य कारण इसे भी निम्न रूपो में माना जा सकता है

1. क्रिप्स मिशन की असफलता:- 'क्रिप्स मिशन' की असफलता के कारण तथा क्रिप्स प्रस्तावों को वापस लिए जाने के कारण भारतीय जनमानस को काफी निराशा झेलना पड़ा। ऐसी स्थिति में कांग्रेसियों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भारत छोड़ो आन्दोलन अगस्त क्रांति को जन्म दिया।
2. म्यांमार में भारतीयों के प्रति अमानवीय व्यवहार:- म्यांमार पर जापान के विजय के बाद ही म्यांमार से जो भारतीय शरणार्थी आ रहे थे उसमें से बताया कि भारतीयों और यूरोपियनों के बीच भेदभाव उत्पन्न करते हैं। इस घटना ने गांधी जी को आन्दोलन आरंभ करने को प्रेरित किया।
3. शोचनीय आर्थिक रिपोर्ट इस समय वस्तुओं के मूल्य बहुत अधिक बढ़ गए थे। जिससे भारतीय जनमानस के आर्थिक कष्टों में भी वृद्धि हो जाने से उन में ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष की भावना बहुत बढ़ गई थी। देश में चारों ओर असंतोष भड़क रहा था परिणाम स्वरूप गांधी जी को भारत छोड़ो आन्दोलन आरंभ करना पड़ा।
4. जापान के आक्रमण का भय:- द्वितीय विश्व युद्ध में जापान की सेवाएं अपने निरंतर रवैये में सिंगापुर मलाया और म्यांमार में अंग्रेजों को पराजित करके भारत की ओर बढ़ रहा था। भारत पर जापानी आक्रमण का अत्यधिक भय रहता था। कांग्रेस के नेताओं में महात्मा गांधी ने यह अनुभव किया की गोरे अंग्रेज एक तो खुद भारत पर कब्जा करके बैठे है और जापानियों द्वारा किए जा रहे दबाव बौने साबित हो रहे हैं। गांधी यह भी सोच रहे थे कि अगर अंग्रेज अपना शासन भारत पर से हटा लेगा तो भारत पर जापानी कभी भी आक्रमण शायद नहीं करेगा। अपना भारत आक्रमण मुक्त हो जाएगा। इसी कारण गांधी जी का कहना यह था कि अंग्रेजों भारत को जापानी के लिए मत छोड़ो वरना भारत को भारतीयों के लिए छोड़ जाओ। उन्होंने अपनी पत्रिका 'हरिजन' में लिखा है भारत के लिए चाहे उनके परिणाम कुछ भी क्यों न हो भारत और ब्रिटेन की वास्तविक सुरक्ष समय रहते इंग्लैंड के भारत का साथ देने में ही है। इस प्रकार इन कारणोंवश महात्मा गांधी भारत छोड़ो आन्दोलन आरंभ करने में निश्चय किया।

भारत छोड़ो आन्दोलन और साथ ही वर्धा प्रस्ताव जुलाई 1942 से 27 अप्रैल 1942 को कांग्रेस कार्य-समिति की एक बैठक इलाहाबाद में हुई। यह बैठक में निश्चित किया गया की ऐसी स्थिति को किसी भी दशा में स्वीकार करने को तैयार नहीं हो सकता जिसमें भारतीयों को ब्रिटिश सरकार के दास के रूप में कार्य करना पड़े। गांधी जी ने कहा कि भारत की समस्या का हल अंग्रेजों को भारत छोड़ देने में ही है। गांधी जी के विचारों का महत्व देते हुए यह प्रस्ताव भी पास किया गया कि अंग्रेजों भारत छोड़ो। इस प्रस्ताव को वर्धा प्रस्ताव के नाम से भी जाना जाता है।

14 जुलाई 1942 को भारत छोड़ो का प्रस्ताव होने के पुन: गांधी जी अपने हिंदी पत्रिका 'हरिजन' के माध्यम से अंग्रेजो के खिलाफ जोर-शोर से विद्रोह किया। इसी माध्यम से पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि "हम आग के साथ खेलने जा रहे हैं।" बाबू राजेंद्र प्रसाद ने कहा "हमको इस बार गोली खाने और तोप को सामना करने के तैयार रहना चाहिए।"

भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए वैसे तो 1857 ई0 की क्रांति से ही चली थी मगर भारत छोड़ो आन्दोलन आने के बाद अंग्रेजों का होश उड़ गया और उन्होंने गांधीजी को गिरफ्तार कराया यद्यपि इसके पश्चात भारतीय जनमानस में एक प्रस्फुटन ज्वाला प्रज्वलित पैदा हुई। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इस आन्दोलन में 940 लोग मारे गए थे और लगभग 1650 लोग घायल हुए थे जबकि 60229 लोगों को गिरफ्तार कर लिया था। भारत छोड़ो आन्दोलन भले ही सफल/असफल हुआ मगर इस आन्दोलन ने ब्रिटिश हुकूमत की नींव उखाड़ कर रख दिया। उसके बाद कांग्रेसी नेताओं सहित लगभग 1,00,000 राजनीतिक बंदियों को रिहा कर दिया गया। भारत छोड़ो आन्दोलन जिस प्रकार अपनी छाप छोड़ी थी लेकिन इसका उद्देश्य पूरा नहीं हो सका जिसकी असफलता का मुख्य कारण माना जा सकता है।

1. आन्दोलन की योजना एवं संगठन- भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रमुख कारण था कि स्वंय गांधी इस आन्दोलन की रूपरेखा और कार्यक्रम उद्देश्य पूर्ण चुनौती स्पष्ट नहीं था जबकि कांग्रेसी नेताओं को आन्दोलन का आरंभ करने से पूर्व ही रणनीति तथा कार्यक्रम विचारधाराओं पर सुनियोजित कर लेने में भलाई था। मुख्य कारण यह था कि गांधी जी अंतिम समय तक यह आशा था की वायसराय या सरकार से कोई समझौता हो जाएगा और हमें इस आन्दोलन की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।
2. सरकारी कर्मचारियों और उच्च वर्गों के सरकार के प्रति वफादारी भारत छोड़ो आन्दोलन की असफलता के कई कारणों में यह भी था कि आन्दोलन के दौरान सरकारी कर्मचारी देसी रियासतों के नरेश, सेना, पुलिस और उच्च सरकारी अधिकारी आदि सरकार के प्रति वफादारी की भावना बनी रही जिससे सरकारी कार्य किसी बाधा के सुचारू रूप से चलता रहा है।
3. भारतीय राजनीतिक दलों और उच्च वर्ग के विरोधी रवैया भारत छोड़ो आन्दोलन की असफलता का एक और प्रमुख कारण था कि यह आन्दोलन के भारतीय साम्यवादी दल और मुस्लिम लीग जैसे राजनीतिक दलों ने आन्दोलन को सहयोग देने के बजाय आन्दोलन का खुलकर विरोध किया। अकाली दल और हिंदू महासभा तथा समाज के कुछ उच्च और दलित वर्गों के आन्दोलन के प्रति और सहयोग का रवैया ही रहा।
4. आन्दोलनकरियो की तुलना शासन की कई गुना शक्ति और कठोरता:- भारत छोड़ो आन्दोलन की तत्कालीन असफलता न ही अवश्यम्यावी थी और न ही एक से दुसरे स्थान सन्देश भेजने के साधन थे जिस से आन्दोलनकरियो सफाया किया जा सके।
5. आन्दोलन की हिंसात्मक:- भारत छोड़ो आन्दोलन अपने आरंभ के समय पूर्णता: हिंसात्मक रहा परंतु कुछ समय के बाद इसमें बदलाव आया और कुशल नेतृत्व के प्रति आन्दोलन अहिंसा में आ गई। इस संविधान की अवधी शांतिप्रिय देश के विभिन्न भागों में हिंसा तोड़फोड़ की कार्यविधियों हुई। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि हिंसात्मक प्रवृत्ति भारत छोड़ो आन्दोलन की और असफलता का एक कारण बन गई।

यद्यपि बात अगर की जाए कि 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की आवश्यकता क्यों और कैसे हुई तो यह आन्दोलन भारतीयों की नई पहचान देने और स्वतंत्र भारत आजादी से मुक्त किया जा सके। उसे अपने पहचान पाने के लिये यह जरूरी था, क्योंकि भारत उस समय गांधी जी के साथ चल रहे थे।

## संदर्भ सूचि:-


1. And Callaboration in the later Nineteenth Century (1971)
2. Aravind Ganachari, "Studies in Indian Historiography: 'The Cambridge School," India, March 2010, 47#1,pp70-93
3. At the same time, then, as the printing press in the physical, technological sense was invented, 'the press' in the extended sense of the word also entered the historical stage. The phenomenon of publishing was born.
4. Battuta's Travelsl: Delhi, capital of Muslim India.
5. Bayly, C. A. "State and Economy in India over Seven Hundred Years," Economic History Review, (Nov 1985), 38#4 pp583-596, online.
6. Brown, Judith M. Ghandhi's Rise to Power: Indian Politics 1915-1922 (Cambridge South asian Stusies) 1974.
7. Brown, Judith M. Modern India : The Origins of an Asian Democracy (2nd ed.1994) online.
8. Brown, Judith M, 'Gandhi and Civil Resistance in India, 1917-47,' in Adam Roberts and Timothy Garton Ash (eds.) Civil Resistance and Power Politics: The Experience of Non-violent Action from Gandhi to the present. Oxford & New York: Oxford University press, 2009.
9. Carl Roebuck, The World of Ancient Times (Charles Scribner's Sons Publishing: New York, 1966) 9.357.
10. Chandra 1989, p.26
11. Chandra 1989, p.33
12. Chandra 1989, p34
13. Danielou, Alain (2003). A Brief History of Das, M.N. India Under Morley and Minto: Politics Behind Revolution, Revolution and Reform (1964).
14. चन्द्र विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष 2003 पृष्ट सं0 73

# 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' उपन्यास में मूल्यबोध


## रश्मि

*एम०फिल०, नेट ( हिन्दी )*


समाज की सबसे छोटी इकाई मनुष्य को माना जा सकता है। जिस प्रकार छोटी इकाईयों से मिलकर ही शब्द और वाक्य का निर्माण होता है, उसी प्रकार एक-एक मनुष्य द्वारा समाज का निर्माण होता है। मूल्यों का निर्माण मनुष्य द्वारा ही किया गया है एवं समय आने पर इनमें परिवर्तन भी होता आया है। जो मनुष्य मूल्यों पर जितना खरा उतरता है, उसका आचरण उतना ही अनुकरणीय माना जाता है। अनुकरणीय होने के कारण वे समाज के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में गिना जाने लगता है और सम्मान का भोक्ता बन कर एक मार्गदर्शक का कार्य करता है। जो व्यक्ति जीवन-मूल्यों की कसौटी पर जितना खरा उतरता है, उतना ही उसे अनुकरणीय माना जाता है। आज के युग में व्यक्ति दूसरों की बजाय स्वयं की आकांक्षाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को महत्ता देता है।

आधुनिकता के इस दौर में मूल्यों का ज्ञान सबको है लेकिन इन्हें जीवन में वही व्यक्ति अपना पाएगा जो मानसिक रूप से स्वस्थ होगा। शारीरिक और मानसिक तंदरुस्ती ही उसे अच्छा नागरिक बनाने में सक्षम होगी एवं वो व्यक्ति मूल्यों की नैतिकता को जीवन में स्वयं भी अपना पाएगा और साथ ही दूसरों को भी प्रेरित करेगा। आधुनिकता का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि अपनी संस्कृति एवं उसके मूल्यों को छोड़ दिया जाए। इस उपनायास में रघुवर प्रसाद की माँ, सोनसी को बाहर जाने से पहले नए कपड़ों के साथ-साथ बिंदी लगाने को भी कहती है। हमारे समाज में बिंदी, कंगन, पायल, माँग में सिंदूर भरना, मंगलसूत्र इत्यादि डालना सुहाग की निशानी माना जाता है तथा यह सब भारतीय महिलाएँ अपने पति की लंबी उम्र के लिए डालती हैं।

"बिंदी लगाई? अम्मा ने पूछा।

हाँ अम्मा।"(1)

यहाँ हम देख सकता हैं कि रघुवर प्रसाद की माँ अपनी संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढ़ा रही है। हम सभी को अपनी सभ्यता, संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाने में संकोच नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग प्रतिभा, गुण होते हैं जो उसकी पहचान बनाते हैं, उसके मान-सम्मान की रक्षा कर उसे समाज में स्थान दिलाते हैं, उसी प्रकार हमारी सभ्यता एवं संस्कृति देश-विदेश के धरातल पर हमारा सिरमौर बनती है। यह उपन्यास एक आदर्श परिवार को लेकर आगे बढ़ रहा है। रघुवर प्रसाद बेशक अपने गाँव से दूर रहकर महाविद्यालय में पढ़ाते हैं, फिर भी उनमें किसी बात का घमंड नहीं है। रघुवर प्रसाद अपने माता-पिता का खूब सम्मान करते हैं, जरूरत के हिसाब से आर्थिक मदद भी करते हैं। रघुवर प्रसाद की पत्नी सोनसी भी भारतीय नारी के गुणों को भली-भांति संजोए हुए है। रघुवर के माता-पिता भी सोनसी को अपनी बेटी की तरह प्रेम करते हैं। विवाह के बाद भी रघुवर अपने माता-पिता का कहना पहले की तरह ही मानता है।

"ट्ट्टी किराए से ली है?

ट्ट्टी किराए से! ट्ट्टी तो थी कोई मनाही थोड़ी थी। कल एक नहानी घर किराए से ले लेना, एक चौका किराए से ले लेना..... तुम्हारी तनख्वाह तो किराए में चली जाती है। घर क्या भेजोगे।"(2)

पिता के मना करने के बाद रघुवर ने तुरंत ट्ट्टी का किराया देना बंद कर दिया।

"आठ रुपए महीने की बचत हो जाने से सोनसी खुश थी। ट्ट्टी के तले और चाबी को रघुवर प्रसाद ने साबुन से धोकर धूप में बाहर रख दिया था कि जंग न खाए। ताला चाबी पिताजी को दे देंगे।"(3)

रघुवर प्रसाद और सोनसी गृहस्थी में रम गए थे। घर में छोटी-छोटी बचत भी उन्हें खुशी की तरफ ले जाया करती। मात्र आठ रुपए महीने की बचत सोनसी को ऐसे लगी जैसे कोई स्वप्न पूरा हो गया हो। इन बातों को यदि हम भारतीय मूल्यों की नजर से देखें तो काफी हद तक दंपति अच्छे से निभा रहें हैं।

"छोटू ने भैया-भाभी के पैर छूए। रघुवर ने पिता और अम्मा के। सोनसी ने पिता और अम्मा के दोबारा पैर छूए।"(4)

घर में बड़े-बुजुर्गों का आदर-सम्मान दिखाकर भारतीय मूल्यों की स्थापना की गई है। संयुक्त परिवार मूल्यों के महाविद्यालय होते हैं। इस उपन्यास में एक साधारण परिवार की मानसिकता, विवशताओं एवं मजबूत रिश्तों की झलक दिखाई पड़ती है। रघुवर और सोनसी अपने परिवार में मान-मर्यादा का पूरा ध्यान रखते थे। रघुवर प्रसाद महाविद्यालय से हाथी पर घर आए तो उनके पिताजी ने कहा कि-

"हाथी वाले को चाय नहीं पीला देते।

याद नहीं रही

कल पीला देना।"(5)

यहाँ स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है कि एक ग्रामीण व्यक्ति चाहे वह अनपढ़ ही क्यों ना हो, उसमें सामाजिक मूल्यों की कोई कमी नहीं है। आजकल

लोग जरा-सी बातों पर संबंध तोड़कर अलग हो जाते हैं। आधुनिकता के दौर में लोग संबंधों की महत्ता, आपसी लगाव की भावना को दरकिनार कर रहे हैं। आधुनिकता की इस दौड़ में मनुष्य दूसरों को पीछे छोड़ कर आगे निकलता जा रहा है। इसे हम सामाजिक परिवर्तन के नजरिए से देख सकते हैं। "सुख मिला उसे, हम कह न सके। संस्पर्श बृहत का उतरा सुरसरि-सा हम बन सके, यों बीत गया सब, हम मारे नहीं, पर हाय कदाचित, जीवन भर हम रह न सके।"(6) मनुष्य का अपने मूल्यों पर टिके रहना जरूरी है। "जरा हवा चलती है, कहीं एक पत्ता पट से गिरता है जमीन पर और एक छपती हुई कविता अपने टाइप और फ्रेम से छिटककर हो जाती है अलग, एक अच्छी कविता, तरस खाने लगती है अपने अच्छे होने पर, एक महान कविता, उड़ने लगती है, अपने स्फटिक गरिमा के अंदर।"(7) आधुनिकता सिर्फ एक पहलू से देखी, समझी नहीं जाती। आधुनिकता का दौर राजनीतिक रूप से भी आता है, आर्थिक रूप से भी आता है, धार्मिक रूप से भी आता है। पुरानी रूढ़िवादी सोच को दरकिनार कर नए मानदंडों को अपनाने पर जोर दिया जाता है। इसी जोर-आजमाइश में मनुष्य अपने मूल्यों को एक तरफ कर देता है। मानव का स्वभाव बहुत लचीला होता है। वह किसी भी वस्तु की तरफ जल्दी आकर्षित हो जाता है। अगर उसे किसी बात से माना करेंगे तो उसे अवश्य करेगा। मानव बहुत ही महत्त्वाकांक्षी प्राणी होता है। इसलिए हमें मानव को उसकी मानवता से जोड़े रखना होगा। जिस प्रकार राष्ट्र के निर्माण में आर्थिक रूप से धन-संपदा, तंत्र, विधि-विधान, शासन व्यवस्था इत्यादि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सामाजिक इकाई को जोड़ने एवं निर्माण करने में परिवार, पड़ोस, अच्छे नागरिक, अच्छे संस्कार, अच्छे मूल्य और शिक्षा व्यवस्था, अच्छा साहित्य जरूरी होता है। जब समाज में आधुनिकता उभरेगी तो इसका दबाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है। इन बातों से हम अंदाजा लगा सकते हैं कि उपन्यास में चित्रित परिवार में भारतीय मूल्यों का किता सुंदर स्वरूप है। रघुवर प्रसाद अपने गाँव से दूर रहकर भी संयुक्त परिवार की प्रणाली में बंधे हुए थे। संयुक्त परिवार में घर के प्रत्येक सदस्य को सामाजिक, शारीरिक एवं मानसिक सुरक्षा मिलती है। इससे परिवार पीढ़ी-दर-पीढ़ी नैतिक मूल्यों को स्थानांतरित करता जाता है। संयुक्त परिवार में कार्य का बोझ कम हो जाता है। प्रत्येक सदस्य जब काम में हाथ बंटाता है तो परिवार की मजबूती बढ़ती जाती है। ऐसे में घर में हंसी-खुशी का वातावरण बनता है और तनाव से राहत मिलती है। यहीं से मनुष्य के चरित्र का विकास होता है। बच्चों के ऊपर अंकुश लगाना आसान हो जाता है। इससे बच्चे भी परिवार की जिम्मेदारी महसूस कर पाते हैं और जिम्मेदार नागरिक बनते हैं।

## संदर्भ


1. विनोद कुमार शुक्ल, दीवार में एक खिड़की रहती थी, पृ० 65
2. वही, पृ० 29
3. वही, पृ० 148
4. विनोद कुमार शुक्ल, दीवार में एक खिड़की रहती थी, पृ० 77
5. वही, पृ० 27
6. अज्ञेय, इंद्रधनुष रौंदे हुए, पृ० 73
7. सं० परमानंद श्रीवास्तव, (कवि: केदारनाथ सिंह), समकालीन हिंदी कविता, पृ० 146

# कामकाजी एवं घरेलू महिलाओं के बच्चों में बौद्धिक विकास


## जागृती कुमारी

*शोध छात्रा, गृह विज्ञान, मगध विश्वविद्यालय,बोध गया, बिहार*


पहले जहाँ महिलाओं को बंदिशों में रखा जाता था वही आज भले ही उन्हें काम करने की आजादी दे दी गई हो लेकिन इतने भर से उनकी स्थिति संतोषजनक नही कट्टी जा सकती है, हमारे पुरूष प्रधान समाज को हमेशा महिलाओं की उन्नति और प्रगति अखरती आई है। आज भी समाज ये मानता है कि कामकाजी महिलाए अपना अधिकांश समय बच्चों से दुर ऑफीस में बिताती है इसीलिए वह कभी अच्छी माँ नही बन सकती नि:संदेह अगर किसी महिला पर ऐसे आरोप लगाए जाए तो यह उसे मानसिक और भावनात्मक रूप से बहूत अधिक आहत करता है।

कामकाजी महिलाओं के विषय में ऐसा मानना कि वह केवल स्वार्थी और आत्मकेन्द्रीत होकर परिवार और बच्चों की अन्देखी करती है। किसी भी रूप में सही नही कहा जा सकता है। क्योंकि आजकल संपत्र वर्ग की महिलाऐं अपनी अलग पहचान स्थापित करने के लिए स्वतंत्र रूप से रहना पसंद करती है और अपने अनुरूप कार्य करती है वही मध्यम और निम्न वर्ग की महिलाऐं भी आज बढ़ती महंगाई के कारण अपने परिवार की जरूरतों और बच्चों की अच्छी शिक्षा के लिए बाहर जाकर काम कर रही है। मौजूदा दौर में दोनों ही कारण गलत नही है। आज की महिलाऐं शिक्षित और अपने भविष्य को लेकन काफी जागरूक है जिस वजह से उनका यह सजगता समाज में आगे आने को प्रोत्साहित करता है।

महिलाओं का कामकाजी होना दुसरे शब्दों में उनके व्यक्तित्व को निखारने के साथ साथ बाहरी दुनिया से संपर्क भी स्थापित करता है। जिसके परिणाम स्वरूप आय के कई अक्सर मिलते है जिसका सिधा फायदा उनके परिवार और बच्चों को ही मिलता है। अगर हम ये सोचते है कि वे महिलाए जो कामकाजी है अपने बच्चों की शिक्षा और उनकी बौद्धिक योगता को ध्यान में नही रखती है तो यह बिलकूल गलत साबित होगा।

कामकाजी महिलाओं के बच्चें मौजूदा दौर में अधिक आत्मनिर्भर और बौद्धिक योग्यता वाले होते है। ऐसा माना जाता है कि बच्चों की आर्रभिक शिक्षा परिवार और माता-पिता के द्वारा ही दी जाती है। बच्चा वही सिखता है और करता है जो अपने परिवार में देखता है। क्योंकि बच्चों शुरू से ही अपने पिता और मॉ दोनों को शिक्षित और आत्मनिर्भर बन अपने पैरों पर खड़े हुए देखता है तो परिणाम स्वरूप बच्चे के भितर भी शिक्षा का रूझान और शिक्षा के प्रति समर्पण देखा जाता है इस प्रकार उस बच्चें में बौद्धिक योग्यता का विकास बेहतर होता है जैसे घरेलू कायों में रूची लेना, माता-पिता के ऑफीस कार्यो की जानकारी रखना हर परिस्थितियों के अनूकूल अपने आप को हमेशा प्रस्तुत करना माता पिता की गैर मौजूदगी में भी सभी कार्यो का निष्पादन एक कुशल, समाजिक, मानसीक और बैद्धिक योग्यता का परिचय प्रस्तुत करता है।

इतना ही नही महिलाओं के कामकाजी होने का एक साकरात्मक पहल यह भी है कि इससे वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर वन अपने परिवार को तो सहायता देती ही है साथ साथ वे अपने बच्चों में सजर्नात्मक विकास, मानसिक स्वास्थ्य, समाजिक, संबंद्धता, व बौद्धिक विकास के योगद्धान में अग्रिम पंक्ति में खड़ा होती है। व अपने अधिकारों के प्रति सजग हो जाने के कारण घरेलु हिंसा से जुड़े आकड़ों में कमी होने का मूख भूमिका में है। हमे यह मानसिकता व्याग देनी होगी कि कामकाजी महिलाऐं अपने बच्चों से प्रेम नही करती, जबकि वास्तविकता यह है कि उसे अपने बच्चों और परिवार के प्रति भविष्य के वेहतर निर्माण में सहायक सिद्ध होती है। बच्चों के बेहतर भविष्य को देखते हुए कि बच्चों के बेहतर सर्जनात्मक विकास, मानसिक स्वास्थ्य, समाजिक सम्बद्धता और बौद्धिक बिकास हो अपने जिम्मेवारी को पूर्ण रूप से सभी कार्य को निर्वाहन करते हुए अपने मार्ग को मंजील की ओर ले जाती है। कामकाजी महिलाओं के बच्चों एक ओर जहॉ वे अपने माता पिता को शुरूआती दौर से ही देखते हुए पले बढ़े होते है। इस कारण यथा संभव वे खुद को आत्मनिर्भर बना पाते है। हर-पल वो समाज में आने वाली चुर्नातियों को सामना सुचारू ढ़ंग से कर पाते है। उनकी ज्यादा से ज्यादा कोशिश ये होती है कि वे अपने माता पिता के कार्यो में रूची लेने है। तथा सभी जिम्मेवारी को अपने विवेक अनुसार हल कर पाते है। कामकाजी महिला को अपने जीवन ने दोहरी भुमिका का निर्वाहन करना होता है। जहाँ एक ओर वह मॉ की भुमिका निभाती है। वही दूसरी ओर उसे परिवार की जिम्मेवारी को भी देखते हुए अपने ऑफीस के कार्यो को पूर्ण करना होता है। महिला पुरूषों की भांति अपनी अलग पहचान रखती है। आज हमारे देश में कामकाजी महिलाओं की संख्या में दिन प्रति दीन लगातार बढ़ोतरी हो रही है। अगर दुसरी ओर हम बच्चों के बौद्धिक विकास हेतू विभिन्न विभिन्न उपायों को दिनचर्या में शामिल करते है। बच्चों को कहानी, कविता एवं खेल के माध्यम से अनुशासन जैसी बातों को सिखाना, मिल बॉट कर खाने जैसी आदतों को दिनचर्या में शामिल करना माता अक्सर अपने अपने बच्चों से ये कहते नजर आती है कि अपने छोटे भाई या बहन के साथ मिलकर रहा करों या आपस में झगड़ा न करो कई बार तो काम कर रहे होते और बच्चों उनके सामने ही खेल रहे होते है। इस वजह से बच्चों में सिखने की आदतों का विकास करना, बुजूर्गो का सम्मान करना, स्वस्थ रहना एवं समाज के बिच में उठने बैठने की कला शुरू से ही सिख रहे होते है।

बच्चों का मानसिक व बौद्धिक विकास विद्यालय व घर के दोनों वातावरण पर निर्धारित होता है इसलिए अध्यापकों के साथ अभिभावको का सहयोग अनिवार्य है। अगर दूसरी ओर हम घरेलू महिलाओं की बात करे तो आज हमारा देश इस यूग में आगे निकल चुका है कि आज घरेलू महिलाओं हेतू सरकार द्वारा बहूत ये कार्यक्रम चलाए जा रहे है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ नारी की तूलना देवी से होती है। जहाँ महिला प्रधानमंत्री और वितमंत्री रह चूकी है वही दूसरी ओर महिलओं का एक हिस्सा अपने पेट भरने और घर को चलाने हेतू मजदूरी का कार्य करती है। अगर समाज पर नजर डाले तो पता चलेगा कि महिलाओं की क्या दशा है। आज घरेलू महिला को पुरी तरह से घरेलू का दर्जा नही दे सकते दुसरी शब्दों में अगर कहा जाय तो बेशक वो किसी न किसी कार्यो में संलिप्त है। कृर्षि से जूड़े कार्य, घरों में सिलाई-कटाई का कार्य, पशुओं की देख-रेख का कार्य, बच्चों को छोटे-छोटे समुहों को पढ़ाने का कार्य अपने आप से काम का एक जरिया बना हुआ है। बहुत सारे कार्य ऐसे है जो महिला घर पर रहने के बावजूद अपने बच्चों की देख रेख करते हुए समय प्रबन्धन को देखते हुए कार्यो का निष्पादन करती है जो कही न कही आय का जरिया बनता है जिसका सिधा फायदा उसके परिवार और बच्चों को पहुंचता है। अगर हम कामाकाजी और घरेलू महला की तूलना करे तो हम बिल्कूल इस निष्कर्ष पर पहुचती है। कि वो अपने अपने जगह कही न कही किसी न किसी रूप में कार्य में संलिप्त है। फर्क सिर्फ इतना होता है कि कामकाजी महिलाऐं अपने बच्चो से छः से आठ घंटे दुर रहकर अपने जिम्मेवारी को पूर्ण करती है । हम कह सकते है कि इस हालात में आय का जरिया घरेलू महिलओं की तूलना में ज्यादा होता है। पर वही घरेलू महिलाऐं पूरा दिन अपने दिनचर्चा में व्यस्त होती है और सभी कार्या को घर से ही पूरा करती है मौजूदा दौर में कृषि कार्य, पशुपालन, बकरी पालन, मतत्स्य पालन, कुकुर पालन, पार्लर, सिलाई, कढ़ाई, पेटिंग व अन्य बहुत सारे ऐसे कार्य है जो महिलाए घरों से संचालन कर आय का श्रोत उत्पन कर रही है। अगर हम घरेलू महिलाओं के बच्चों की बात करे तो उनके बच्चों में सृजनात्मक विकास मानसिक विकास, समाजिक संबंद्धता और बौद्धिक विकास से पूर्ण रूपेण परिपक्व होते है। वे बच्चों शुरू से अपने माता पिता को देख कर पले बढ़े होते है। ग्रामिण हो या शहरी परिवेश आजकल बच्चों में अपने अपने माता पिता को सहयोग करते देखा जा सकता है। उदाहरण स्वरूप प्रतिदर्श के तौर पर हम बहुत सारी कामकाजी महिलाओं और घरेलू महिलाओं से स्वरूप होकर ही उपयुक्त बातों उल्लेखित कर रही हू। मैं अपने गृह जिला का पूरी तरह से अवलोकन करने के बाद ही इन सभी बातों को रख रही हूँ।

जहानाबाद जिले से सभी सात प्रखण्डों को कामकाजी व घरेलू महिलाओं से अवगत होते हुए उपयुक्त जानकारी दे रही है। हमारा जहानाबाद कृर्षि प्रधान जिला है अतः ज्यादातर महिलाओं में सभी प्रकार के गुण पाए गए है कामकाजी होने के बावजूद वे सभी कार्यो में दक्ष व निपूण है। प्राप्त सूचना के अनुसार सरकारी व निजी शिक्षिका, आशा वर्कर।कार्यकर्त्ती, आगॅनबॉडी सेविका स्वयं समूह की महिलाए, सिलाई, बुनाई, पार्लर, दुकानदार व अन्य सभी महिलाओं को शामिल किया गया है। अगर दुसरे शब्दों में कहा जाए तो 80ः महिलाऐं कामकाजी होते हुए भी घरेलू भुमिका में उनका योगदान सम्मान जनक है। आज समाज को नारी के प्रति एक सर्वश्रेष्ठ व उत्तम संदेश पहूँचता है। अगर हम उनके बच्चों की बात करें तो वे आज के मौजूदा दौर में हर संभव आगे निकल चुके है।

आज समाज में जहॉ लोग लड़की के जन्म पर दुख व्यक्त करते है आगे चलकर वही लोग पढ़ाई में बढ़-चड़ कर व अन्य कार्यो में रूची लेकर देश को गौरवान्वित महसुस करा रहे है। पुरूष वर्ग को जहाँ आपती है कि महिलाऐं काम करेगी तो घर का वातावरण खराब हो जाएगा। एसी सोच रखने वाले पुरूष सदैव ही समाज को कलंकित करने का कार्य करते है। आज महिलाऐं एक स्वस्थ्य ामाज की निंव रखने में सहायक सिद्ध हो रही है।

एक सेंटर फॉर सोशल रिसर्च में निदेशक रंजना कुमार ने कहा कि आजकल महिलाए ए ओर मॉ की भूमिका निभाती है वही दुसरी ओर ऑफीस भी संभालती है मॉ का कामकाजी होना कही न कही बच्चों की अच्छी परवरीश में मददगार ही साबित हो रहा है।

उन्होंने आज की मॉ के कामकाजी होने के पिछे कई कारण है परिवारों की आर्थिक जरूरते बढ़ गई हैं शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य चीजों पर खर्च इतना बढ़ गया है। तो काम करना महिला की जरूरत बन गया है इससे जहॉ एक ओर महिलाओं की तिहरी जिम्मेवारी निभानी पड़ती है वही दुसरी ओर इसके कई फायदे भी है।

कई बार संगठित क्षेत्र के कार्यरत महिलाऐं अपने बच्चों के लिए डे-केयर सुविधाओं का लाभ उठा रही होती है। बच्चों के इष्टतम विकास के लिए जीवन के आरंभिक वर्षो के महत्व के संबंध में मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, बाल चिकित्सकों और समाज शस्त्रियों के बिच एक विश्वव्यापी आम सहमती है। आरंभिक वाल्यावस्था उल्लेखनीय मस्तिष्क विकास का समय है, जो बाद के शिक्षण की नींब है और इस चरण में किसी भी प्रकार की क्षति या क्षीणता की भरपाई नही हो सकती। ये वर्ष वेहद संवेदनशील और जबरदस्त क्षमता के होते है जिनके दौरान बच्चें के कल्याण और विकास की नींब डालने के लिए पर्याप्त संरक्षण, देखभाल और प्रोत्साहन की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार आरंभिक वाल्यावस्था, शिक्षा और विकास के माध्यम से शिशुगृहों में बच्चों की विकास संबंधी जरूरतों को प्रयाप्त रूप से समाधान किया जाना अवश्यक है।

आरंभिक वाल्यावस्था, शिक्षा और विकास का आश्य छोटे बच्चों को उनके चंहुमुखी विकास, शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक, सृजनात्मक और संज्ञानात्मक क्षमताओं के विकास के लिए अवसर और अनुभव प्रदान करना है। महिला चाहे कामकाजी हो या घरेलू दोनों ही परस्थिति में बच्चों में प्रयाप्त पोषण और उचीत देखभाल की सभी कमी के कारण परिणाम अपरिवर्तनय होता है। कमजोर पोषण से स्कूली नामांकन और तत्परता पर नाकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अल्पषोषित बच्चों के स्कूल में दाखिल होने की संभावना कम होती है और नामंकन होने पर भी वे पढ़ाई छोड़ देते है। इस वजह वाल्यावस्था में ही हमें खास ख्याल रखना होता है। वाल्यावस्था में रखे गये ध्यान से ही बच्चों में बौद्धिक विकास की क्षमता बढ़ती है बच्चों के बड़े होने पर नुकसानों की भरपाई करन के बजाय बचपन में उनके लिए निवारक उपाय और सहयोग करना काफी अधीक लागत प्रभावी है। राष्ट्रीय बाल नीति 1974, राष्ट्रीय शिक्षा निति 1986, राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति 2001 और राष्ट्रीय बाल कार्य योजना 2005 में बाल देखभाल सेवाओं की जरूरतों पर जोर दिया गया।

## उद्देश्य

1. समाज में कामकाजी माताओं के बच्चों 6 महीने से 6 वर्ष के लिए डे-केयर का सुविधा उपलब्ध करना।
2. बच्चों की पोषण और स्वास्थ्य स्थिति में सुधार करना।
3. बच्चों के शारीरिक, संज्ञानात्मक, समाजिक और भावनात्मक विकास (समग्र विकास) के बढावा देना।
4. बच्चों की वेहतर देखभाल के लिए माता पिता देखभाल करने वालों को शिक्षित और सशक्त बनाना।

इन सभी बिन्दुओं पर सरकार काफी हद तक कार्य कर चुकी है। आज समाज में 3 साल से कम उम्र के बच्चों के लिए प्रारंभिक प्रेरणा और 3 से 6 साल के बच्चों के लिए प्री-स्कूल शिक्षा का संचालन सरकारी स्तर एवं प्राइवेट स्तर पर जोरों से चल रहा है। आज समाज में कामकाजी महिला हो या घरेलू महिला सरकार सभी को ध्यान में रखते हुए बच्चों पर विशेष ध्यान रख रही है।

- बच्चों हेतु आगनवाड़ी सुविधा का संचालन
- तीन साल से कम उम्र के बच्चों के विशेष संदर्भ में वाल उत्तरजीविता, संवर्द्धन और विकास के महत्वपूर्ण मुद्दों के बारे में वेहतर समझ कर विकास करने और उन्हें बाल विकास समेकित दृष्टिकोण के प्रति उन्मुख करना।
- प्रारंभिक शिक्षा सहित स्वास्थ देख रेख के क्षेत्र पर जोर देने में।

टीकाकरण, स्वास्थ संबंधी सेवाओं के लिए एडब्ल्यू डब्ल्यू/ आशा / एएन0एम के साथ समन्वयन करने में।

- बच्चों की पोषणात्मक आवश्यकता की बुनियादी समझ और खाना पकाने के स्वस्थ, स्वादिष्ट और पोषक भोजन बनाने की विधि विकसित करने में।

बच्चों की आवश्यकता और आगनबाड़ी के महत्व के बारे में कार्यकर्ताओं ब सहायकों के बीच बुनियादी समझ विकसित करने में।

- पर्याप्त शिक्षण / अधिगम सामाग्री सहित बच्चों के सर्वागीण विकास को बढ़ावा देन के लिए विभिन्न तरह की गतिविधियॉ आयोजित करने का कौशल विकसित करने में।
- छोटे बच्चों में चलने फिरने वाले छोटे बच्चों की मानसिक समाजिक देख रेख की संबोधित करने का कौशल विकसित करने में।
- आगनबाड़ी केन्द्रों पर माता पिता और समुदाओं की भागीदारी की आवश्यकता के बारे में सराहना करने और माता पिता तथा समुदाय के साथ काम करने का कौशल विकसित करने में
- उपर्युक्त सभी बिन्दुओं पर सरकार मुख्य रूप से कार्य कर रही है। सरकार महिलाओं के लिए समय समय पर जरूरी कदम उठानी रहती है। भारत में घरेलू महिला की औसतन संख्या 16 करोड़ है।
- कानूनी जानकार गौतम महिला तर्क देते है कि बिना पगार वाला घरेलू कामकाज जबरन मजदूरी है। - BBC NEWS

परन्तु भारत में घरेलु काम को पारंपरीक तौर पर महिलाओं की जिम्मेवारी माना जाता है।

''ज्यादातर लोगों की हालांकि यह बात पता नही होगी कि पिछले 50 से ज्यादा वर्षो से भारतीय आदालतें वास्तविकता में महिलाओं के बिना पगार वाले कामों पर मुआवजे का आदेश देते आई है। लेकिन, ऐसा केवल उनकी मौत के बाद ही होता है''

दिसम्बर 2020 में एक अदालत ने सड़क हादसे में मारी गई एक 33 साल की घरेलु महिला के परिवार को 17 लाख रूपये मुआवजा दिए जाने का आदेश दिया इस आदेश में अदालत ने महिला की मासिक सैलरी 5000 रूपये मानी थी। महिला और महिला के काम को समाज ने घर परिवार ने हमेशा दोयम दर्जे पर रखा है। और ये बात कोई आज और कल की नही है बल्कि सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। एक महिला के अगर काम का सही आकलन किया जाय तो शहरी महिला औसतन पांच-छः घंटे के काम को करती है। और गॉव में रहने वाली महीला औसतन दिन में पॉच-साढ़े पांच घंटे घर के काम में देती है फिर भी अक्सर यही सुनती है कि आखिर वो करती ही क्या है। घर के सभी कार्यो का दायित्व एक महिला पर ही होता है फिर भी इस नजरिए से उनके काम को नही देखा जाता है कि वह देश और घर में अपना आर्थिक योगदान कर रही है। ऐसी महिलाएं घर की आय में सिधे कुछ नही जोड़ती इसलिए उनके काम की कोई इकनॉमिक वैल्यु नही समझी जाती । जीडीपी के नाम से देश की दौलत का जो सलाना हिसाब लगाया जाता है उसमें वही आय और उत्पादन शामिल होता है जिससे पैसे का लेन देन हुआ हो यह कहने कि कोई जरूरत नही कि परिवार में एक हाउस वाइफ/होम मेकर की क्या अहमियत होती है। और उसके बिना घर समाज नही चल सकता है। लेकिन उसके काम को अन उत्पादक समझ लिया जाना, जो उसकी हैसियत को गिराता ही नही, बल्कि उसके अस्तिव और अस्मिता को भी खत्म कर देता है। सुप्रीम कोर्ट 34-59 साल के बीच की मृतक पत्नी के लिए 900 रूपये महीने तक की अनुमानित तनख्वाह के आधार पर मुआवजों का आदेश दे चुका है वही 62 से 72 साल की आयु की महिलाओं के लिए यह रकम कम होती है। क्योकि कोर्ट मानता है कि चूंकि इन महिलाओं के बच्चे बडेघ हो चुके होते है।

अदालतों ने महगाई के साथ भी मुआवजे का सामंजस्य बैठाने की कोशिश की है। प्रो0 कोटिस्वरण कहती है मैं केवल घरेलु महिलाओं के लिए वेतन की एक ज्यादा व्यापक मूहिम से जूड़ा है। यूएन विभिन्न जैसे संस्थान इस वात पर बेहद ज्यादा केन्द्रीत है कि किस तरह से बिना वेतन वाला काम वेतन वाले काम की राह में रोडा है। भारतीय महिलाओं का संघर्ष कई अहम मसलों से जूड़ा है लेकिन इसमें यह मुद्दा नही उठाया जा सकता है कि शादीशुदा जीवन में किस तरह से श्रम का आकलन किया जाएगा।

मौजूदा दौर में घरेलू महिला हाउस वाईफ की सक्रियता से इन्ही के बिच ऐसे प्रश्न उलझने लगे है कि क्या हाउस वाईफ का परिवार, समाज और देश के प्रति योगदान नगण्य है ? क्या घरेलु महिलाओं का कोई योगदान नही, क्या उन्हें आर्थिक निर्णय लेने का कोई अधिकार नही ? क्या हाउस वाईफ सिर्फ बच्चे पैदा करने और घर संभालने के लिए होती है ? क्यों हाउस वाईफ का योगदान देश के विकास में एक पुरूष के कमतर आंका जाता है? हाउस वाईफ को उनके

काम के बदले सैलरी होनी ही चाहिए।

## संदर्भ

भारत में कामकाजी महिलाओं की स्थिति - डॉ0 निर्मला के चित्रोडा
कार्यशील महिलाए एवं भारतीय समाज - डॉ0 सुभाष चन्द्र गुप्ता
कामकाजी महिला - डॉ0 सरोज कुमार
घरेलू हिंसा अधिनियम और महिला सुरक्षा- डॉ0 रवीन्द्र नाथ शर्मा
भारत में महिला श्रमिक - रवि प्रकाश यादव/रागिनी दिप/पूजा राय
महिला श्रमिक समाजिक स्थिति एवं समस्यायें - डॉ0 नारियन लारेन्स
महिला अधिकार और मानव अधिकार - मलहोत्रा ममता
महिला विकास और शिक्षा - जी0पी0 शास्त्री

# शिक्षा से ही मिलेगी नारी को बंधनों से मुक्ति - महादेवी वर्मा


## डॉ० राजन तनवर

*एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय सोलन, जिला सोलन ( हि.प्र. )*


स्त्री के व्यक्तित्व में कोमलता और सहानुभूति का गुण पुरुष से अधिक ही रहा है। युगों-युगांतर से उसके सम्मान को शब्द जालों में ही उलझाकर रखा गया। उसे देवी, जगत जननी ना जानें किन-किन अलंकरणों से अलंकृत किया गया। किंतु सम्मान! न तो उसे उच्च घरानों में प्राप्त हुआ, निम्न अति निम्न एवं मध्यवर्गीय परिवारों में तो वह दोहरे और तीहरे शोषण को झेलने की अभ्यस्त ही बनी रही। क्या कारण है कि उसे भोग-विलास की ही वस्तु बनाकर रखा गया? वर्चस्ववादी एवं शारीरिक रुप से सुदृढ़ पुरुष ने उसे केवल भोगने एवं बच्चे पैदा करने का यंत्र ही समझा। उसे कभी भी वह सम्मान नहीं दिया गया जिसकी वह वास्तव में अधिकारिणी थी। यद्यपि कुछ काल खंडों में वह सशक्त होने का प्रयास करती हुई प्रतीत होती है। किंतु उसकी सशक्तता को पुरुष ही नहीं उसकी अपनी जाति की नारी भी पनपने नहीं देती। भारत असंख्य वर्षों तक गुलाम रहा किंतु स्त्री तो मानव सभ्यता के पनपते ही गुलामी की जंजीरों में जकड़नी शुरू हो गई। वर्चस्ववादी पुरुष समाज ने कभी भी उसकी वेदना एवं भावना को समझने का प्रयास नहीं किया।

नारी को दैवीय अलंकरणों से तो अलंकृत किया गया साथ ही देवदासी बनाकर उसे लुटा गया। पुरूष अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए नारी का उपयोग एक वस्तु की तरह करता आया है। अतिथि को देवता समझकर भोजन और मदीरा की तरह रात को कुंवारी कन्या को सौंपा जाता था। इन सब के पीछे पुरुष की कामुक भावना विद्यमान थी। पुरुष समाज ने स्त्री के मन में यह भावना कूट-कूट कर भर दी थी कि वह केवल मात्र शरीर है। शरीर के अतिरिक्त उसकी कोई पहचान नहीं है। इस संबंध में पंत ने भी कहा था, ''योनी मात्र रह गई मानवी।'' कंकाल उपन्यास में प्रसाद ने भी यह स्वीकार किया है कि, ''पुरुष नारी को उतनी ही शिक्षा देता है, जितनी उसके स्वार्थ में बाधक न हो।'' ऐसा भी दौर रहा है जब नारियों को एक तरफ देवी बनाकर पूजा जाता था तो दूसरी ओर सेविका बनाकर शोषण किया जाता था।

महादेवी वर्मा का नारी चिंतन व लेखन नारी की वेदना और आत्म पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ नारी शिक्षा पर भी जोर देता है। इस संबंध में महादेवी वर्मा नारियों के पक्ष कहती हैं कि नारियों ने शिक्षा ग्रहण करने के बाद शोषण के विरुद्ध विरोध करना शुरु कर दिया है अब वह जागृत होने लगी हैं - ''आज हमारे हृदय में शताब्दियों से सुप्त विद्रोह जाग उठा है। इस समय हमारा इष्ट स्वतंत्रता है, जिसके द्वारा हम अपने जंग लगे हुए वंधन को एक ही प्रयास में काट सकती हैं। उसके लिए शिक्षा चाहिए, उसे चाहे किसी भी मूल्य पर क्रय करना पड़े, परंतु आज वह हमें महंगी न लगेगी, कारण वह हमारे शक्ति के, बल के कोष की कुंजी है। वह उस व्यूह से निकलने का द्वार है, जिसमें हमारे दुर्भाग्य ने न जाने कब से घेर रखा है। घर जलते समय उसमें रहने वाले किसी भी मार्ग से चाहे वह अच्छा हो या बुरा बाहर निकल जाना चाहते हैं, उस समय उनका प्रवेश - द्वार से ही अग्नि के बाहर जाने का प्रण उपहासास्पद ही होगा। परंतु निकलने के उपरांत वे मुड़कर भी न देखें, ज्वाला से घिरे हुए अन्य झुलसने वालों के आर्तनाद की ओर से कान बंद कर लें, उन्हें किसी प्रकार भी साहयता न दें तो उनका स्वतंत्र शीतल वायु - मंडल में श्वास लेना व्यर्थ होगा और उनके इस व्यवहार से मनुष्यता भी लजा जाएगी। हमारे वर्तमान महिला समाज की अवस्था भी कुछ-कुछ ऐसी ही है। जिन्हें वंधनों से मुक्ति के साधन शिक्षा के रुप में मिल गए हैं, उनके जीवन के उद्देश्य ऐसे निर्मित हो गए हैं, जिनमें परार्थ का प्रवेश कठिनता से हो सकता है और सेवा की भावना के लिए स्थान ही मिलना संभव नहीं! जब इतनी शिक्षा के उपरांत भी पुरुषों में शिक्षित व्यक्तियों की संख्या नगण्य है तब अविद्या के साम्राज्य की सवामिनी स्त्रियों के विषय में कुछ कहना व्यर्थ है। यदि उनमें किसी प्रकार एक प्रतिशत शाक्षर निकल आवें तो उस एक के मस्तक पर शेष निन्यानवे को मार्ग दिखाने का भार रहेगा, यह न भूलना चाहिए। जब एक कार्य करने वालों की संख्या अधिक होगी सब पर कार्यभार हल्का होगा, परंतु इसकी विपरीत दशा में अल्प व्यक्तियों को अधिक गुरु कर्तव्य स्वीकार करना ही पड़ेगा।''[1]

महादेवी वर्मा नारी के सशक्त होने को महत्वपूर्ण मानती हैं - नारी घर में ही नहीं घर के बाहर भी बेहतर प्रदर्शन करके परिवार को सशक्त बना सकती है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ स्त्री पुरूष के मुकाबले अति उत्तम कार्य प्रदर्शन कर सकती है। सेवा भावना का जितना अधिक गुण स्त्री में विद्यमान है वैसा पुरुष में कभी हो ही नहीं सकता। कोमलता और संवेदना का गुण ही नारी को पुरुष से अलग स्थापित करता है। स्त्री संवेदनात्मकता एवं भावनात्मकता के गुणों से सराबोर होती है। इन्हीं गुणों के कारण वह ज्ञान बांटकर अच्छे नागरिकों को तैयार कर सकती है - ''आधुनिक युग में घर से बाहर भी ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जो स्त्री के सहयोग की उतनी ही अपेक्षा रखते हैं, जितनी पुरुष के सहयोग की। राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों में पुरूष का सहयोग देने के अतिरिक्त समाज की अन्य ऐसी आवश्यक्ताएँ हैं जो स्त्री से सहानुभूति और स्नेहपूर्ण सहायता चाहती हैं। उदाहरण के लिये हम शिक्षा के क्षेत्र को ले सकते हैं। हम अपनी आगामी पीढ़ी को निरक्षरता के शाप से बचाने के लिए अधिक शिक्षालयों की आवश्यकता का अनुभव कर रहे हैं। आज भी श्रमजीवियों को छोड़कर प्राय: अन्य सभी अपने एक विशेष अवस्था वाले छोटे-छोटे बालक - बालिकाओं को ऐसे स्थानों में भेजने के लिए बाध्य होते हैं जहाँ या तो दण्डधारी कठोर आकृति वाले जीवन से असंतुष्ट या अनुभवहीन हठी कुमारिकाएँ उनका निष्ठुर स्वागत करतीं हैं! एक विशेष अवस्था तक बालक-बालिकाओं को स्नेहमयी

शिक्षिकाओं का सहयोग जितना अधिक मिलेगा, हमारे भावी नागरिकों का जीवन उतने ही अधिक सुंदर सांचे में ढलेगा। हमारे बालकों के लिए कठोर शिक्षक के स्थान में यदि ऐसी स्त्रियां रहें जो स्वयं माताएँ भी हों तो कितने ही बालकों का भविष्य नष्ट न हो सकेगा जिस प्रकार आज-कल हो रहा है। एक अबोध बालक या बालिका को हम एक ऐसे कठोर तथा अस्वभाविक वातावरण में रखकर विद्वान या विदुषी बनाना चाहते हैं, जो उसकी आवश्यक्ता, उसकी स्वभाविक दुर्बलता तथा स्नेह, ममता की भूख से परिचित नहीं, अत: हमें डर से सहमे हुए या उदंड विद्यार्थी ही प्राप्त होते हैं। यह निभ्रांत सत्य है कि बालकों की मानसिक शक्तियाँ स्त्री के स्नेह में जितनी पुष्ट और विकसित हो सकती हैं, उतनी किसी अन्य उपाय से नहीं। पुरुष का अधिक संपर्क तो बालक को असमय ही कठोर और सतर्क बना देता है।''[2]

महादेवी वर्मा नारी की दशा पर बिलख उठती है वे मानती हैं कि नारी का दुर्भाग्य यह है कि कभी उसने अपनी शक्ति को जाना और कभी नहीं जाना। पति द्वारा आग में जलाए जाने का आदेश एवं पुत्र द्वारा परशु से गले को रेत देने का वह बिल्कुल भी विरोध नहीं करती। जब वह आग में बिना किसी विरोध के बैठी होगी उस समय उसने कितनी आम नारियों को प्रताड़ित करने के लिए पुरुषों को प्रेरित किया होगा? यदि एक बार वह विरोध कर देती तो, नारियों के प्रति युगों-युगों से इतने अत्याचार नहीं हुए होते, उसका न कुछ कहना ही उसकी कमजोरी बनी रही। पुरुष समाज की प्रताड़ना को मूकदर्शक बनकर झेलने का उसका गुण अवगुण ही कहा जा सकता है- ''अग्नि में बैठकर अपने- आपको पतिप्राणा प्रमाणित करने वाली स्फटिक - सी स्वच्छ सीता में नारी के अनन्त गुणों की वेदना साकार हो गयी है। कौन कह सकता है, उस भागते हुए युग ने अपनी उस अलौकिक कृति, अपने मनुष्यता की क्षुद्र सीमा में बंधे विशाल देवत्व की ओर एक बार मुड़कर भी देखने का कष्ट सहा! मनुष्य की साधारण दुर्बलता से युक्त दीन माता का बध करते हुए न पराक्रमी परशुराम का हृदय पिघला न मनुष्यता की असाधारण गरिमा से सीता को पृथ्वी में समाहित करते हुए राम का हृदय विदीर्ण हुआ। मानों पुरुष समाज के निकट दोनों जीवनों का एक ही मूल्य था। एक जीवित व्यक्ति का इतना कठोर त्याग, इतना निर्मम बलिदान दूसरा हृदयवान व्यक्ति इतने अकातर भाव से स्वीकार कर सकता है, यह कल्पना में भी क्लेश देती है वास्तविकता का तो कहना ही क्या!''[3]

महादेवी वर्मा नारी के अधिकारों के प्रति हमेशा सजक व पक्षधर रही हैं। उन्होंने हमेशा नारी के सम्मान और बराबरी के अधिकारों के लिए पुरजोरता से आवाज उठाई है। नारी अधिकारों पर अपनी बात को स्पष्ट करते हुए महादेवी वर्मा का कहना है कि ''हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी का प्रभुत्व। केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नही बन सकेंगी।''[4] महादेवी वर्मा ने नारी के शिक्षित होने पर बल दिया है। उनका मानना बिल्कुल सही है कि नारी को यदि सम्मान जनक स्थान प्राप्त हो सकता है तो शिक्षा के माध्यम से ही। पुरुष समाज ने तो सदैव उसे उतना ही ज्ञान देने का समर्थन किया है कि जिससे वह उसका विरोध न कर सके तथा उसके हाँ में हाँ मिलाने की भागीदार बन सके। नारी अपने सम्मान को शिक्षा के माध्यम से ही कायम रख सकती है।

## संदर्भ ग्रंथ


1. महादेवी साहित्य: संपादक ओंकार शरद, पृ. 385-386
2. वही पृ. 452-453
3. वही पृ. 412-413
4. श्रृंखला की कड़ियाँ, अपनी बात से : महादेवी वर्मा

# आधुनिक युग के विश्व में जनसंख्या एवं पारिस्थितिकीय-संकट


## डॉ० शीशराम यादव

*सह आचार्य रसायन शास्त्र, लाल बहादुर शास्त्री राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली ( जयपुर ) राजस्थान*

## डॉ० ललिता यादव

*सह आचार्य अर्थशास्त्र, लाल बहादुर शास्त्री राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली ( जयपुर ) राजस्थान*


पारिस्थितिकविदों के अनुसार जनसंख्या से तात्पर्य समान प्रकार के जीवों का सामूहिक समूह है जो एक निश्चित स्थान पर रहता है। अर्थात् प्रत्येक जीव चाहे वह जीव-जन्तु हो, पक्षी हो, वनस्पति हो, सभी की संख्या होती है और यह संख्या पारिस्थितिक चक्र द्वारा परिचालित होती है तथा उस चक्र को प्रभावित करती है। वनस्पति एवं जन्तुओं की संख्या एवं पारिस्थितिकी से सम्बन्धों का अध्ययन वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान एवं पारिस्थितिकी विज्ञान में विशदता से किया जाता है। यहाँ अर्थात् वर्तमान अध्ययन में जनसंख्या से तात्पर्य मानवीय जनसंख्या से है जो अपने क्रिया-कलापों से पर्यावरण को प्रभावित करती है और पारिस्थितिक चक्र में व्यवधान उपस्थित कर संकट का कारण बनती है।

जनसंख्या का निवास एवं वृद्धि पर्यावरण की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आज भी विश्व में अन्टार्कटिका जैसा प्रदेश है जहाँ वर्ष भर हिमानी के जमाव के कारण मानव का निवास नहीं है, उच्च पर्वतीय क्षेत्र भी मानव रहित हैं। टुण्ड्रा प्रदेश की विपरीत परिस्थितियाँ एवं विषुवत्रेखीय वन न्यूनातिन्यून जनसंख्या के क्षेत्र हैं। शुष्क मरूस्थली क्षेत्रों में भी अपेक्षाकृत कम जनसंख्या है तो दूसरी ओर समतल मैदानी प्रदेश जहाँ उपयुक्त जलवायु है मानव संख्या का वहाँ केन्द्रीकरण है। तात्पर्य यह है कि जनसंख्या पर्यावरण के तत्वों द्वारा नियन्त्रित है। तकनीकी विकास एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों से मानव अनेक क्षेत्रों को अपने रहने योग्य बना लेता है। इसी क्रम में जब वह पर्यावरण से छेड़-छाड़ करता है तो वहाँ की पारिस्थितिकी को प्रभावित करता है जिससे अनेक समस्याओं का जन्म होता है।

जनसंख्या का पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी से सीधा सम्बन्ध होता है अर्थात् यदि जनसंख्या अधिक होगी तो पर्यावरण का अधिक शोषण होगा और पारिस्थितिकी-संकट अधिक हानिकारक होंगे। इस तथ्य की विस्तार से विवेचना से पूर्व जनसंख्या वृद्धि, वितरण, शहरीकरण आदि तथ्यों का विवेचन आवश्यक है।

### जनसंख्या वृद्धि एवं वितरण

मानव के अस्तित्व में आने के पश्चात् उसकी संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रारम्भ में निश्चित ही जनसंख्या सीमित थी एवं उपयुक्त क्षेत्रों में निवास करती थी, किन्तु उसकी क्रमिक वृद्धि आज एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच गई है कि वह अनेक राष्ट्रों के लिये चिन्ता का कारण बनी हुई है। किसी भी प्रदेश की जनसंख्या वृद्धि वहाँ की जन्म और मृत्यु दर के अन्तर से जानी जाती है। यदि जन्म दर अधिक और मृत्यु दर कम होगी तो जनसंख्या की तीव्र वृद्धि होगी। इसके विपरीत यदि दोनों में आनुपातिक सम्बन्ध होगा तो वृद्धि सामान्य होगी एवं यदि जन्म से मृत्यु दर अधिक हो जाती है तो जनसंख्या में कमी आ जाती है। एक प्रदेश अथवा देश में समय के साथ जो जनसंख्या वृद्धि का प्रारूप चलता है उसे नौरिस हैरिस एवं विटेक ने अपनी पुस्तक में जनसांख्यिकीय संक्रमण का नाम दिया है और इसकी चार अवस्थायें व्यक्त की हैं।

प्रथम अवस्था में जन्म और मृत्यु दर दोनों अधिक होती हैं अत: जनसंख्या वृद्धि नहीं होती या नगण्य होती है। इस अवस्था में वर्तमान में कोई देश नहीं है, यह मात्र इतिहास का उदाहरण है।

द्वितीय अवस्था वाले दशों में जन्म दर अधिक होती है और मृत्यु दर घटती है, फलस्वरूप तेजी से जनसंख्या वृद्धि होती है जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में है।

तृतीय अवस्था वाले देशों में मन्द वृद्धि अर्थात् जन्म दर कम होने की प्रवृत्ति तथा मृत्युदर भी कम होती है जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में है।

चतुर्थ अवस्था वाले देशों में स्थिर जनसंख्या अर्थात् जन्म एवं मृत्यु दर दोनों ही कम होने से वास्तविक वृद्धि कम होती है जैसा कि स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन एवं अन्य यूरोपीय देशों में है।

सम्पूर्ण विश्व में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति है। यह वृद्धि विगत 35 वर्षो में और तीव्र हुई है।

विश्व की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। प्रति 30 सैकण्ड में दुनिया में 117 शिशुओं का जन्म होता है और लगभग 46 व्यक्तियों की मृत्यु अर्थात् वास्तविक वृद्धि 71 की होती है। दूसरे शब्दों में प्रतिदिन 200,000 व्यक्तियों की या प्रतिवर्ष 7.5 करोड़ जनसंख्या अधिक हो जाती है। यदि यही क्रम चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब न खाने के लिये पर्याप्त भोजन होगा, न रहने को आवास और यह स्थिति निस्सन्देह सम्पूर्ण विश्व के पारिस्थितिक-तन्त्र को झकझोर कर रख देगी।

विश्व जनसंख्या की एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है सीमित प्रदेशों में जनसंख्या का जमाव अर्थात् जहाँ भी उपयुक्त पर्यावरण होता है वहीं जनसंख्या का केन्द्रीकरण होने लगता है।

जनसंख्या के वितरण में अन्तर स्वाभाविक है। विश्व में एक ओर चीन तथा भारत जैसे देश हैं जिनकी जनसंख्या 1981 में क्रमशः 98.5 करोड़ एवं 68.88 करोड़ थी। दूसरी ओर साधन सम्पन्न संयुक्त राज्य अमेरिका है जिसकी जनसंख्या 22.98 करोड़ तथा सोवियत संघ की 26.8 करोड़ अंकित की गई है। जापान, इण्डोनेशिया की जनसंख्या भी 1981 में क्रमशः 11.78 करोड़ तथा 14.88 करोड़ अंकित की गई।

वर्ष 1990 में विश्व के प्रमुख प्रदेशों की जनसंख्या निम्न प्रकार से अंकित की गई-

वितरण के साथ-साथ प्रत्येक देश में जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व में अत्यधिक असमानता है। विश्व के सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र आदर्श मानवोपयोगी क्षेत्रों में सीमित है। दूसरी ओर न्यून जनसंख्या के क्षेत्र हैं जहाँ वातावरण कठोर है जैसे भूमध्य रेखिक प्रदेश, शीत प्रदेश, शुष्क मरूस्थली प्रदेश एवं उच्च पर्वतीय प्रदेश जनसंख्या आवास के प्रतिकूल हैं। विश्व की अधिकांश जनसंख्या कुछ क्षेत्रों में सीमित होने से वहाँ 500 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. से भी अधिक घनत्व हो गया है, जबकि दूसरी ओर विश्व का लगभ 42: स्थलीय क्षेत्र ऐसा है जहाँ एक व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. से भी कम जनसंख्या घनत्व है। जनसंख्या के घनत्व का वर्तमान प्रारूप हजारों वर्षों के मानव पर्यावरण अनतर्सम्बन्धों का प्रतिफल है। अनेक बार समान प्रकार के पर्यावरण में असमान जनसंख्या का जमाव देखा गया है, यह वहाँ के प्राकृतिक पर्यावरण के अतिरिक्त सामाजिक परिवेश, आर्थिक एवं तकनीकी प्रगति का परिणाम है। सामान्य रूप से सांस्कृतिक और पर्यावरण के तत्व अन्तरसम्बन्धित होते हैं और सामूहिक रूप से ही मानवीय जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व को नियन्त्रित करते हैं।

## प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची


1. अरूण रघुवंशी और चन्द्रलेखा रघुवंशी पर्यावरण तथा प्रदूषण, म.प्र.हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1987
2. हरिशचन्द्र व्यास (सं.) जनसंख्या प्रदूषण एवं पर्यावरण विद्याविहार, नई दिल्ली 1989
3. शुकदेव प्रसाद (सं.) पर्यावरण और हम, प्रभात प्रकाशत, दिल्ली 1989
4. वी.के. श्रीवास्तव एवं राव पर्यावरण और पारिस्थितिकी, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर 1991
5. पी.एस.नेगी पारिस्थितिकी विकास एवं पर्यावरण भूगोल, रस्तोगी, मेरठ 1990
6. अहमद, जेड़ चेंजिंग पैटर्न्स आफ दि ज्वाइंट फैमिली सिस्टम', लखनऊ यूनिवर्सिटी जर्नल आफ सोशल वर्क, वालूम 4, दिसंबर 1968
7. अव्वासी, एम.एफ. ऐंड उपाध्याय, डी.पी. सुपरवाइजर्स गाइड-सुपरवाइजर्स जाब, नेशनल प्रोडक्टविटी काउंसिल, न्यू डेलही 1970
8. इवांस, एम.जी. सुपरवाइजर्स एटीट्यूड्स ऐंड डिपार्टमेंट परफारेमैस, जर्नल ऑफ मैजमेंट स्टडीज मई 1965
9. ऐंडरसन, डी.एस. वी लेट सुपरवाइजर्स सेट अवर क्लैरिकल नार्मस, एडवांस्ड मैनेजमेंट बालूम 10, अक्टूबर, 1970
10. कारनिक बी.बी. समरी आफ लेक्चर्स आन ट्रेड यूनियेस ऐंड पालिटिक्स, बाम्बे लेवर जर्नल, बालूम 6,1964
11. किस्ट्र पू.जे.एच. हर्ड गवर्नमेंट ईप्लाईज ज्वाइन यूनियन सरसोनेल ऐडमिनिस्ट्रेशन, वालूम 29, संख्या 5, 1966
12. कुलकर्नी, आर.एस. प्रोडक्टिविटी ऐंड रेपिड नेशनल इकनामिक डेवलपमेंट, बाम्बे लेवर जर्नल, वालूम 7, दिसंबर, 1967
13. जान्सन, जी.आर. सुपरविजन टूवे स्ट्रीट नम ह्यर, पर सोनैल जर्नल, वालूम 50, नवंबर, 9, दिसंबर, 1971
14. जैन.एच.सी. सुपरवाइजरी कम्युनिकेशन इफेक्टिवनेस ऐड पर फार्मेस इन टू अरबन हास्पिटल्स, परसोनेल जनैल, वालू 50, मई, 1971
15. डेसामी, के.जी. ए स्टडी आफ वर्क्स इक्स्पेक्टेशंस, फ्राम सुपर-वाइजर्स ऐंड मैनेजमेंट इंडियन जनर्ल आफ सोशल वर्क, वालूम नवम्बर 2 जुलाई, 1969

# स्वामी विवेकानन्द की संचार नीति में भाषायी चिन्तन


## डॉ० जुगल किशोर दाधीच

*सह आचार्य, गाँधी एवं शान्ति अध्ययन विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी ( बिहार )*

## रविन्द्र सिंह

*शोधार्थी, अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ, राजस्थान*



**सारांश:** स्वामी विवेकानन्द के जीवन और विचारों ने दुनिया पर विशेष प्रभाव छोड़ा है। आज भी जब कभी उनके विचार किसी व्यक्ति की नजरों से गुजरते हैं या कानों में सुनाई पड़ते हैं, तो हृदय को उद्वेलित कर जाते हैं। आज भी यह एक गहन अध्ययन का विषय है कि उनकी संचार नीति में ऐसी कौन सी विशेषतायें थीं जो उनके हर एक शब्द को इतना प्रभावी बना देती थीं। सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर मालूम पड़ता है कि उनकी संचार नीति की एक बड़ी विशेषता उनकी विलक्षण भाषायी क्षमता थी। अपने गुरु रामकृष्ण परमहँस से उन्होंने भाषा के सरल और सहज भाव को अपनाया था। प्रस्तुत शोध पत्र इसी विषय की गहन पड़ताल करेगा कि आखिर अपनी संचार नीति में वह किस प्रकार से भाषायी क्षमताओं के विलक्षण उपयोग करते हैं कि वह एक सफल संचारक के रूप में स्थापित हो सके।



**शब्द संकेत:** संचार नीति, भाषायी क्षमताएं, मातृभाषा, हिन्दू संन्यासी, सम्प्रेषणीयता, साधारणीकरण, वेदान्त इत्यदि।


**प्रस्तावना:** संचार प्रक्रिया में भाषा हमेशा से केन्द्रीय भूमिका में रही है। उस भाषा को सार्थक माना जाता है, जो भावों एवं विचारों को प्रभावी ढंग से सम्प्रेषित कर दे। भाषा की इसी महत्ता को समझते हुये आधुनिक संचारक एवं संचारविद् भाषा को सरल, सहज, सरस एवं प्रभावी बनाने के लिए नित नवीन प्रयोग कर रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कड़ी शब्द-साधना के विलक्षण भाषायी क्षमतायें विकसित कर ली थीं। उनके भाषायी ज्ञान एवं उपयोग में विशेष बात यह थी कि वह प्राचीन भारतीय परम्पराओं के साथ-साथ भाषायी क्षेत्र में हो रहे आधुनिक विकास के प्रति बेहद सजग थे। अपने भाषण या लेखन के दौरान हमेशा ऑडियंस को ध्यान में रखते हुये संचार किया। ऊर्जावान स्वामी विवेकानन्द ने देह भाषा के सहारे भी भाषा का प्रभावी उपयोग करने का प्रयास किया। प्रभावी अभिव्यक्ति के लिये देह भाषा के उपयोग पर आधुनिक संचारविद् भी सहमति प्रदान करते हैं। इन्हीं सब तौर-तरीकों ने स्वामी विवेकानन्द की भाषा में ऐसी शक्ति उत्पन्न की दी कि उनके सम्पर्क में आया हर व्यक्ति पर उसका प्रभाव साफ दिखाई पड़ता है।

स्वामी विवेकानन्द पर अध्ययन करने वाले विद्वानों ने बेझिझक माना कि स्वामी विवेकानन्द की भाषा बेहद ओजस्वी थी। इसी ओज शक्ति ने उनकी भाषा को काफी प्रभावशाली बना दिया था। स्वामी विवेकानन्द की भाषायी क्षमताओं के बारे में परमकुड़ी के वासियों द्वारा उल्लेखनीय वर्णन मिलता है, 'आपने अपनी शक्तिशाली एवं ओजस्विनी भाषा द्वारा वैदिक धर्मतत्वों को पाश्चात्यों के सम्मुख रखकर उनके सुसंस्कृत मस्तिष्कों से वे पूर्वाग्रह दूषित धारणाएँ नष्ट कर दीं जो हमारे प्राचीन हिन्दू धर्म के बारे में थीं तथा उन्हें यह भलीभाँति समझा दिया कि हमारा यह हिन्दू धर्म केवल सार्वभौम ही नहीं है, वरन् इसमें प्रत्येक काल के विभिन्न बुद्धि-शक्तियुक्त व्यक्तियों को अपनाने की भी गुंजाइश तथा क्षमता है।'[1]

## विदेशी समाचार-पत्रों की स्वीकारोक्ति

भाषा को लेकर यूरोपीय देशों में आधुनिक काल में काफी कार्य हो रहा है। भाषा को प्रभावी बनाने के लिये काफी शोध हो रहा है। वहीं, यूरोप के भाषायी विद्वान भी स्वामी विवेकानन्द की विलक्षण भाषायी क्षमताओं से काफी प्रभावित नजर आते हैं। विवेकानन्द की भाषायी क्षमताओं के बारे में अमेरिका और यूरोप के देशों में कई सटीक टिप्पणियां की गई थीं। इसके अलावा वहां के समाचार-पत्रों में भी स्वामी विवेकानन्द की भाषायी दक्षता की खुलकर प्रशंसा की गई है। अपील-एवलांश समाचार-पत्र में 16 जनवरी, 1894 के अंक में स्वामी विवेकांनद की भाषायी क्षमताओं का उल्लेख करते हुए लिखा गया, 'हिन्दू संन्यासी विव कानन्द, जो आज रात को ऑडिटोरियम (मेमफ़िस) में भाषण देंगे, इस देश में धार्मिक अथवा भाषण मंच पर उपस्थित होने वालों में सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं। उनकी अप्रतिम वक्तृता, रहस्यमय बातों में गम्भीर अन्त:दृष्टि, तर्ककुशलता एवं महान् निष्ठा ने विश्व मेला के धर्म-सम्मेलन में भाग लेने वाले संसार के सभी विचारवान व्यक्तियों का विशेष ध्यान आकृष्ट किया और उन हजारों लोगों ने उनकी सराहना की, जिन्होंने यूनियन के विभिन्न राज्यों में उनकी भाषण-यात्राओं में उन्हें सुना था। वार्तालाप में वे अत्यधिक आनन्ददायक सभ्य व्यक्ति हैं, उनके शब्द-चयन में अंग्रेजी भाषा के रत्न दृष्टिगोचर होते हैं और उनका सामान्य व्यवहार उन्हें पश्चिमी शिष्टाचार और रीति-रिवाज के अन्यतम सुसंस्कृत लोगों की श्रेणी में ला देता है। साथी के रूप में वे बड़े मोहक व्यक्ति हैं और सम्भाषणकर्ता के रूप में शायद पश्चिमी देशों के शहरों की किसी भी बैठक में उनसे बढ़कर कोई भी नहीं निकल सकता। ये केवल स्पष्टतापूर्वक ही अंग्रेजी नहीं बोलते, धारा प्रवाह भी बोलते हैं और उनके भाव, स्फुलिंग के समान नये होते हुए भी, उनकी जिह्वा से आलंकारिक भाषा के आश्चर्यजनक प्रवाह में निकलते हैं।'[2]

मेमफ़िस कमर्शियल, 17 जनवरी, 1894 के अंक में इस प्रकार से लिखा गया है, 'उनका उच्चारण अति सुन्दर है और जहाँ तक शब्दों के चयन तथा व्याकरण की शुद्धता और रचना का सम्बन्ध है, उनका अंग्रेजी का व्यवहार पूर्ण है। उच्चारण में जो कुछ भी अशुद्धता है, यह केवल कभी कभी गलत शब्दांश पर बल दे देने की है। पर ध्यानपूर्वक सुननेवाले शायद ही कोई शब्द न समझ पाते हों, और उनके अब पान का सुन्दर फल उन्हें मौलिक विचार, ज्ञान और व्यापक प्रज्ञा से परिपूर्ण भाषण के रूप में उपलब्ध हुआ।'[3]

5 अप्रैल, 1894 के 'बोस्टन इवनिंग ट्रांस्क्रिप्ट' की सम्पादकीय टिप्पणियों सहित, डिट्रॉएट, संयुक्त राज्य अमेरिका में दिये हुए एक भाषण का विवरण इस प्रकार है, 'इस नवागन्तुक का व्यक्तित्व और सबकी तुलना में सर्वाधिक आकर्षक है, यद्यपि भारतीय दर्शन में व्यक्तित्व को महत्त्व नहीं दिया जाता। धर्म महासभा में अधिवेशन के अन्त तक श्रोताओं को रोके रखने के लिए लोग विवेकानन्द को कार्यक्रम के अन्त में रखा करते; जब किसी गरम दिन कोई नीरस वक्ता बहुत देर बोलता रहता और लोग सैकड़ों की संख्या में घर जाने लगते, तो सभापति उठकर यह घोषणा कर देते कि मंगल-पाठ के ठीक पूर्व विवेकानन्द का एक छोटा भाषण होगा। तब वे शांत स्वभाव के सैकड़ों लोग पूर्णतया काबू में आ जाते थे। कोलम्बस हॉल में चार हजार पंखा झलते, मुस्कराते उत्सुक लोग, विवेकानन्द की वाणी केवल पन्द्रह मिनट सुनने की प्रतीक्षा में दूसरे भाषणों की समाप्ति तक घंटे दो घंटे बैठे रहते थे। सभापति महोदय सर्वोत्तम सामग्री को अन्त में रखने का प्राचीन नियम जानते थे।'[4]

डिट्रॉएट फ्री प्रेस में संपादकीय टिप्पणियों सहित गुरुवार, 15 फरवरी, 1894 को डिट्रॉएट में दिये हुए एक भाषण की रिपोर्ट के अंश इस प्रकार हैं, 'वक्ता ने अपना भाषण प्रभावपूर्ण ढंग से समाप्त किया। आद्योपात उनका भाषण सरल था, पर जब वह कल्पना में बह जाते थे, तब उनका वर्णन मनोरम कवित्व से भर उठता था। यह प्रकट होता था कि यह प्राच्य बंधु प्रकृति के सौंदर्य के निकट और सचेत निरीक्षक रहे हैं। उनकी आत्यंतिक आध्यात्मिकता उनको एक ऐसी विशेषता है, जिसका स्पर्श उनके श्रोताओं को भी होता है, क्योंकि वह बाध्यात्मिकता जड़ और चेतन सभी वस्तुओं के प्रति उनके प्रेम तथा समन्वय और परोपकार के दिव्य विधान की रहस्यमयी कार्य प्रणाली के भीतर उनकी पैनी अंतर्दृष्टि के रूप में अपने को अभिव्यक्त करती है।'[5]

## ब्रह्मचर्या से भाषायी प्रभाव में विस्तार

स्वामी विवेकानन्द की संचार नीति की अपार सफलता का एक कारण उनका बृह्मचर्या का जीवन भी है। ब्रह्मचर्या का पालन करके भाषा में अविश्वसनीय प्रभाव पैदा हो सकता है। निरन्तर अभ्यास के माध्यम से हर कोई भाषा के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द जैसा प्रभाव पैदा कर सकता है। एक बार जब स्वामी विवेकानन्द से उनकी प्रभावोत्पादक भाषण शैली के बारे में पूछा गया था तो उन्होंने बताया, 'वह क्षमता सभी में आ सकती है। भगवान् के लिए बारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण करने से वह क्षमता आ जाती है। मैंने इस प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन किया है, इसीलिए मेरे मस्तिष्क का पर्दा खुल गया है। यही कारण है कि अब मुझे दर्शन सदृश जटिल विषय पर भाषण देने के लिए सोचना नहीं पड़ता। सोच, कल मुझे वक्तृता देनी है; जो वक्तृता मैं दूंगा, उसकी तस्वीर आज रात में एक पर एक आँख के सामने से गुजरने लगती है। दूसरे दिन भाषण में वही सब बोलता हूँ। सो देखा तूने, यह शक्ति मेरी अपनी नहीं है। जो कोई भी अभ्यास करेगा, उसे यह शक्ति मिलेगी।'[6]

## आदर्श वाक्यों को निरन्तर उपयोग

स्वामी विवेकानन्द सुंदर संस्कृत व अन्य भाषाओं के आदर्श वाक्यों से अपनी भाषा का अलंकृत करते थे। उनके हर भाषण और पत्र में ऐसे आदर्श वाक्यों और श्लोकों के उपयोग के उदाहरण मिल ही जाते हैं। उनका मानना था कि संस्कृत भाषा गौरव की भाषा है। इस गौरवशाली भाषा के शब्दों या वाक्यों का जब हम अपने संवाद में उपयोग करते हैं, तो इससे अद्‌भुत प्रभाव उत्पन्न होता है। उन्होंने भारतीय शास्त्रों में वर्णित ऐसे अनेक सूत्र वाक्यों का उपयोग अपनी संचार प्रक्रिया में किया। उनकी इस रणनीति को समझने के लिए यहां उदाहरण के तौर पर चयनित आदर्श वाक्यों को उद्धृत किया जा रहा है।

1. 'ऊँ तत् सत्, अर्थात् ऊँ ही एकमात्र वास्तविक सत्ता है।'7
2. 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। सद्वस्तु एक है, ब्रह्मविद् उसे तरह तरह से वर्णन करते हैं।'8
3. 'अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति-अज्ञ तथा श्रद्धाहीन और संशययुक्त पुरुष का नाश हो जाता है।'[9]
4. 'अभयं प्रतिष्ठाम्-माँ तुम्हें अभय जो एकमात्र सहारा है, प्रदान करे।'[10]
5. 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् अर्थात् धर्म का थोड़ा भी कार्य करने पर परिणाम बहुत बड़ा होता है।'[11]
6. 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् । (गीता २।४०) - इस धर्म का थोड़ा सा अनुष्ठान करने पर भी महाभय से रक्षा होती है।'[12]
7. स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्। (गीता ९।३२) स्त्री, वैश्य और शूद्र तक परमगति को प्राप्त होते हैं।'

## भाषा के साधारणीकरण पर बल

सफल संचार के लिये आवश्यक है कि हमारी भाषा सरल हो, ताकि संचार के दौरान कम से कम बाधायें उत्पन्न हों। संचार में जितनी कम बाधायें होंगी, उसका प्रभाव उतना ही अधिक होगा। स्वामी विवेकानन्द ने हमेशा ही गूढ़ रहस्यों को भी सरल एवं रोचक ढंग से कहा करते थे। उनकी भाषा शैली बहुत हद तक उनके गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस से प्रभावित थी। उनसे उन्होंने भाषा में सरलता और स्थानीयता का भाव ग्रहण किया। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'भाषा का रहस्य है सरलता। भाषा सम्बन्धी मेरा आदर्श मेरे गुरुदेव की भाषा हैं, जो थी तो निन्तात बोल-चाल की भाषा, साथ ही महत्तम अभिव्यंजक भी। भाषा को अभीष्ट विचार को संप्रेषित करने में समर्थ होना चाहिए।'[13]

समाज का आम जनमानस जिस भाषा को सरलता से समझने में सक्षम हो, उन्होंने सदैव उसी भाषा का उपयोग किया। वह कहते हैं, 'जनता को उसकी बोलचाल की भाषा में शिक्षा दो, उसे अनेक विचार दो, इससे उसकी जानकारी बढ़ेगी। परन्तु इससे आगे बढ़कर उसे संस्कारित बनाने का प्रयास भी करो। जब तक तुम यह नहीं कर सकते तब तक उनकी उन्नत दशा कदापि स्थायी नहीं हो सकती।'[14]

स्वामी विवेकानन्द का हमेशा यही प्रयास रहता था कि जटिल से जटिल विषयों को भी सामान्य सी भाषा में हर किसी को समझाया जाए। इसी कारण वह एक सफल व्याख्याकार साबित हुए। शिकागो धर्म संसद में उनकी सफलता का भी यही कारण था। सरल एवं सरस अभिव्यक्ति की उनकी विशेषता का वर्णन करते हुए वीपी वर्मा लिखते हैं, 'विवेकानन्द की मेधा विशाल थी। कहा जाता है कि उन्होंने 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' के ग्यारह खंडों पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। उन्हें अपने देश के साहित्य का ही गंभीर ज्ञान नहीं था, बल्कि पश्चिम के प्लेटो से स्पेंसर तक के तत्वशास्त्रीय साहित्य में भी उनकी अद्‌भुत गति थी। पश्चिम की वैज्ञानिक उपलब्धियों से भी उनका परिचय था। वे अद्वैत वेदांत के संदेशवाहक थे, और अद्वैत संप्रदाय के भाष्यकारों की परंपरा में उनका स्थान है। यद्यपि वह अद्वैतवादी तथा मायावादी थे, किंतु उनकी बुद्धि समन्वयकारी थी। इसलिए उनकी व्याख्या की अपनी विशेषताएं हैं।"[15]

## मातृभाषा के प्रति अनुराग

देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत अन्य स्वतन्त्रता सैनानियों की तरह स्वामी विवेकानन्द में मातृभाषा के प्रति विशेष अनुराग था। उन्होंने जीवन में बहुत सी भाषाएं सीखीं और अन्यों को भी ये भाषाएं सीखने के लिए प्रेरित किया। वह समझ एक सीमा पार करने के बाद कभी भी किसी भाषा के विरोधी नहीं रहे हैं। इसके बावजूद भाव-विचार की अभिव्यक्ति के लिए वह मातृभाषा से बढ़कर अन्य किसी भी भाषा को महत्व नहीं देते, 'स्वाभाविक तौर पर जिस भाषा में हम अपने मन के विचारों को प्रकट करते हैं, जिस भाषा में हम अपना क्रोध, दु:ख एवं प्रेम इत्यादि प्रदर्शित करते हैं, उससे अधिक उपयुक्त भाषा और कौन हो सकती है ? अत: हमें उसी भाव को उसी शैली को बनाये रखना होगा। उस भाषा में जितनी शक्ति है, थोड़े से शब्दों में उसमें जिस प्रकार अनेक विचार प्रकट हो सकते हैं तथा उसे जैसे चाहो घुमाया-फिराया जा सकता है, वैसे गुण किसी कृत्रिम भाषा में कदापि नहीं आ सकते । भाषा को ऐसा बनाना होगा - मानो शुद्ध इस्पात, उसे जैसा चाहे मरोड़ लो, पर फिर से जैसा का तैसा; कहो तो एक चोट में ही पत्थर काट दे, लेकिन दांते न टूटे। हमारी भाषा संस्कृत के समान बड़े-बड़े निरर्थक शब्दों का प्रयोग करते-करते तथा उसके आडम्बर की - और केवल उसके इसी एक पहलू कीकृदृनकल करते करते अस्वाभाविक होती जा रही है। भाषा ही तो जाति की उन्नति का प्रधान लक्षण एवं उपाय है।'[16]

मातृभाषा में प्रचलित शब्दों की महिमा को वह काफी ऊंचा स्थान देते थे। उनका मानना था कि मातृभाषा के रूप में लोक में प्रचलित भाषा के एक-एक शब्द में सम्प्रेषणीयता का अद्‌भुत सामर्थ्य है। इसीलिए वह संचार में प्रचलित शब्दों के समर्थन में कहते हैं, 'अब लोग धीरे-धीरे समझेंगे कि वह भाषा, वह शिल्प तथा वह संगीत, जो भावहीन है, प्राणहीन है, किसी भी काम का नहीं । अब लोग समझेंगे कि जातीय-जीवन में ज्यों ज्यों स्फूर्ति आती जायेगी, त्यों त्यों भाषा, शिल्प, संगीत इत्यादि आप ही आप भावमय एवं प्राणपूर्ण होते जाएँगे; प्रचलित दो शब्दों से जितनी भावराशि प्रकट होगी, वह दो हजार छँटे हुए विशेषणों में भी न मिलेगी।'[17]

मातृभाषा के प्रति स्वामी विवेकानन्द के सहज स्नेह के बारे में हंसराज रहबर लिखते हैं, 'विदेशियों की तारीफ का विवेकानन्द की दृष्टि में कुछ भी मूल्य नहीं था। वे इस तथ्य को भली-भान्ति समझते थे कि विदशी भाषा में चाहे कोई कितनी ही जान खपाये, कितनी ही विद्वता प्राप्त कर ले, उसमें उच्च कोटी की उत्कृष्ट रचना सम्भव नहीं है। मौलिकता और प्रतिभा का विकास अपनी मातृभाषा ही में सम्भव है और हृदयगत भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति उसी में सम्भव है। लॉर्ड मैकाले द्वारा हम पर अंग्रेजी आरोपित करना हमारी राष्ट्रीयता को नष्ट करने का समझा-सोचा षड्यंत्र है।'[18]

निष्कर्ष: स्वामी विवेकानन्द का जीवन और विचार अगर दुनिया पर विशेष प्रभाव छोड़ पाये, तो इसका एक स्वाभाविक और बड़ा कारण उनकी विलक्षण भाषायी क्षमताएँ मानी जाएंगी। अपने गुरु रामकृष्ण परमहँस से उन्होंने भाषा के सरल और सहज भाव को अपनाया था। मातृभाषा में जब उन्होंने संवाद किया, तो यह सुनने-पढ़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति के मनोमस्तिष्क पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ गया। वर्तमान समय में यदि उनकी भाषायी विशेषताओं को व्यावहारिक रूप में अपनाया जाये तो जहां संचार का प्रभाव बढ़ेगा, वहीं संघर्ष समाधान का माध्यम बनते हुये शान्त एवं अहिंसक समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेंगी।

## सन्दर्भ


1 विवेकानंद, स्वामी, भारत में विवेकानंद, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर, 1950, पृष्ठ-70

2 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-10, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-244-245

3 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-10, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-246

4 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-1, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-268

5 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-1, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-272

6 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-8, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-256

7 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-6, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-255

8 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-6, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-262

9 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-6, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-312

10 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-6, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-384
11 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-5, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-74
12 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-5, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-157
13 विवेकानंद, स्वामी, विवेकानंद साहित्य, खंड-10, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012, पृष्ठ-42
14 रानडे, एकनाथ, हे हिंदू राष्ट्र! उत्तिष्ठत जागृत!!, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ-93-94
15 वर्मा, वी.पी, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मिनारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा, द्वितीय संस्करण, 1975, पृष्ठ-91
16 विवेकानंद, स्वामी, चिंतनीय बातें, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर, 1953, पृष्ठ-61
17 विवेकानंद, स्वामी, चिंतनीय बातें, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर, 1953, पृष्ठ-63
18 रहबर, हंसराज, योद्धा संन्यासी विवेकानंद, साक्षी पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ-222

# हिंदी दलित साहित्य में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना: एक अध्ययन

**भानु प्रताप**

*हिंदी विभाग, बुंदेलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी*

## सारांश

साहित्य मानवीय भावनाओं की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। मानस जगत में जब एक सामान्य, सरल जीवन पर अवरोधों का एक सन्नाटा हावी हो जाता है, तो जीवन उससे छुटकारा पाने के लिए हाथापाई करने लगता है। वाणी संकलन अभिव्यक्ति बनाने और दिल की गहराइयों को छूने में सक्षम है।

'मानवता' के बिना किसी भी समाज के अस्तित्व की कल्पना करना संभव नहीं है। समाज का निर्माण और विकास उस समाज के निवासियों की स्थिति और विचारधारा के आधार पर प्रचलित मानवीय मूल्यों के आधार पर होता है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में समाज से जुड़े सभी क्षेत्रों में नैतिकता का पतन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। निस्संदेह इसका कारण मानवीय मूल्यों का क्षरण है। बचपन से ही मानवीय नैतिक मूल्यों का विकास करने वाली दादी-नानी द्वारा सुनाई गई कहानियाँ चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन कहानियों के माध्यम से बच्चों को मानवीय नैतिक मूल्यों से अवगत कराया गया, जिसके फलस्वरूप समाज में समरसता और आपसी सद्भाव का निर्माण हुआ। मानव समाज की स्थापना के समय से ही मानवीय नैतिक मूल्यों पर विचार किया गया है, क्योंकि ये मूल्य समाज को संगठित और निर्देशित करते रहे हैं। ये मूल्य मनुष्य के बिना मौजूद नहीं हैं।

साहित्य मनुष्य की उदात्त भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति है। इस आधार पर साहित्य का सीधा संबंध मानवीय नैतिक मूल्यों से है। संक्षेप में, मानव नैतिक मूल्य मानव समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, और साहित्य इन मूल्यों का संरक्षण और पोषण करता है। हिन्दी के नैतिक मूल्यवादी साहित्य ने मानव समाज को मानवीय नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए सदैव प्रेरित किया है। हिंदी साहित्य न केवल श्कला के लिए कलाश् के सिद्धांत का पालन करता है, बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों का एक समूह, परंपरा से संपर्क और जीवन मूल्यों का संरक्षण हिंदी साहित्य का लक्ष्य है।

**मूल शब्दः** मध्यकालीनता, आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता, दलित, संस्कृति, प्रवचन, अवधारणा, संवेदना, प्रासंगिकता, समाज, उपेक्षा, शोषण, अस्पृश्यता आदि।

## परिचय

'दलित' शब्द भारतीय समाज में एक विशेष वर्ग के लिए प्रयुक्त आधुनिक भावना का प्रतिबिम्ब है, जिसे हिन्दी शब्दकोष में इस प्रकार विवेचित किया गया है- "रौंदा या कुचला हुआ"। भारतीय समाज जाति व्यवस्था पर आधारित समाज रहा है, जिसके कारण निम्न और उच्च जाति संरचना की अवधारणा पाई जाती है, अर्थात समाज में, जिसे समाज में एक विशेष वर्ण द्वारा उत्पीड़ित, उपेक्षित किया गया है, घृणित माना जाता है। जाति-कलंक समाज में शोषित और प्रताड़ित जातियों के ऐसे समूह को आधुनिक अर्थों में दलित कहा जाता है।

'दलित' शब्द साहित्य और संवेदनशीलता के साथ एक ऐसी धारा की ओर आंदोलन को इंगित करता है, जो सभी मानवीय संवेदनाओं और उसके सरोकारों की सच्ची अभिव्यक्ति है। जिसमें समानता, बंधुत्व आदि के लोकतांत्रिक मूल्य शामिल हैं।

आत्म-साक्षात्कार और सहानुभूतिपूर्ण लेखन की अवधारणा के संबंध में दलित साहित्य के लेखन के संबंध में कुछ विवाद है। दलित विचारकों का मानना है कि दलित साहित्य दलित की आत्म-साक्षात्कार से प्रेरित रचना या साहित्य है और गैर-दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य दलित प्रश्नों को सूक्ष्म से सूक्ष्म तक कितना भी उकेरा जाए, लेकिन एक 'फांक' की गुंजाइश हमेशा बनी रहती है। क्योंकि अनुभव के आधार पर वास्तविकता की बातचीत में स्वाभाविक रूप से अंतर होता है, न कि स्वयं द्वारा अनुभव की गई वास्तविकता के बजाय। कंवल भारती का मानना है कि "दलित साहित्य का अर्थ वह साहित्य है जिसमें स्वयं दलितों ने अपनी पीड़ा को आकार दिया है। दलित साहित्य उस वास्तविकता की अभिव्यक्ति का साहित्य है जिसे दलितों ने अपने जीवन के संघर्ष में अनुभव किया है।" यह सच है कि दलित साहित्य नहीं है। कला के लिए कला, लेकिन जीवन और जीवन का साहित्य।

इस प्रकार दलित साहित्य लेखन के तीन रूप हैं। पहला, वह जो दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य है, जहां आत्म-साक्षात्कार की एक विस्तृत दुनिया है। दूसरा, गैर-दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य जिसका एक लंबा इतिहास है और तीसरा दलित संदर्भ को समझने की दृष्टि से मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष के ढांचे पर जोर देता है।

समाज की तरह साहित्य भी गतिशील है। साहित्य समाज में हो रहे परिवर्तनों का साक्षी है। हमारा देश जितना विविधतापूर्ण है, दलित साहित्य में भी उतनी ही विविधता है। दलित साहित्य की विकास यात्रा को नई ऊंचाई मिल रही है। अगर हम इसके ऐतिहासिक विकास पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि इसकी निरंतरता

में काफी कुछ नया जोड़ा गया है। इसका दायरा कई तरह से बढ़ा है। एक ओर इसने अपने भौगोलिक क्षेत्र का विस्तार कर अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त किया है, दूसरी ओर इसने अपनी शैक्षणिक समृद्धि के साथ-साथ कलात्मक ऊंचाइयों को प्राप्त किया है। विषय वस्तु के स्तर में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। लेखकों के अनुपात में विविध सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है। दलित साहित्य लेखन में दलित महिलाओं की भागीदारी ने न केवल दलित साहित्य की प्रकृति को प्रभावित किया है, बल्कि पूरे भारतीय साहित्य के स्वर को एक नई दिशा दी है। दलित साहित्य में पहली पीढ़ी के लेखक बड़े पैमाने पर गैर-शैक्षणिक संस्थानों से जुड़े थे। लेकिन जो नया बदलाव आया है उसमें अकादमिक जगत से जुड़े दलित लेखकों का काफी दखल रहा है. हमें यह भी विचार करना चाहिए कि अकादमिक पृष्ठभूमि वाले लेखकों के आने से दलित साहित्य की प्रकृति पर क्या प्रभाव पड़ा है? कला के स्तर पर, विषयवस्तु के स्तर पर और निर्देशन के स्तर पर इसका क्या प्रभाव पड़ा है?

हिंदी दलित साहित्य ने लगभग छह दशक की अपनी यात्रा पूरी कर ली है। यह इक्कीसवीं सदी का दूसरा दशक है जब हम अपने देश के बारे में कह सकते हैं कि इसने सामाजिक लोकतंत्र का स्तर भी हासिल कर लिया है। सामाजिक लोकतंत्र के इस स्तर की पुष्टि दलित साहित्य के उदय से भी होती है। लेकिन अभी भी हमारे समाज को पूर्ण लोकतंत्र प्राप्त करना बाकी है। इस सदी ने सांस्कृतिक और साहित्यिक स्तर पर जो विविधता देखी है, उसमें दलित साहित्य का बहुत योगदान है। इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बाद भी अक्सर ऐसा लगता है कि सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्र में परिवर्तन की प्रक्रिया अभी तक अपना पूर्ण रूप नहीं ले पाई है। मध्यकालीन बर्बरता के दिनों को आज भी हमारा समाज इसके सीने से चिपका हुआ है। समाज में उत्पीड़न की प्रक्रिया अपने विभिन्न रूपों में जारी है। पारंपरिक सामंती ब्राह्मणवादी दमन प्रणाली ने कई रूप ले लिए हैं। कई रूपों में इसका आंदोलन उत्पीड़ित समाजों में भी हुआ है। हिन्दी दलित साहित्य की प्रारम्भिक अभिव्यक्तियों में इन रूपों को मान्यता नहीं मिली, अत: इसके विरुद्ध कोई विद्रोह नहीं हुआ। विद्रोह हुआ तो जाति व्यवस्था और उसे कायम रखने वाली विचारधारा के खिलाफ ब्राह्मणवाद।

लेकिन जैसे-जैसे समाज में साक्षरता बढ़ी है, शैक्षणिक और अन्य महत्वपूर्ण ज्ञान क्षेत्रों में दलित समुदाय के लोगों के हस्तक्षेप ने भी उत्पीड़न के सूक्ष्म और जटिल रूपों की मान्यता में वृद्धि की है। यहां तक कि दलित साहित्य ने भी अपनी आंतरिक कमियों और सीमाओं को रेखांकित करना शुरू कर दिया है। इसे एक अच्छा संकेत माना जा सकता है क्योंकि समाज, व्यक्ति या देश के भीतर जो बदलाव आलोचना और आत्म-आलोचना को स्वीकार नहीं करता है, वह बहुत टिकाऊ और लंबे समय तक चलने वाला नहीं हो सकता। इसके विकास की संभावना अवरुद्ध है। लेकिन अच्छी बात यह है कि दलित साहित्य की नवीनतम अभिव्यक्तियों में आलोचना और आत्म-आलोचना का संतुलन हड़ताली लगता है। आलोचना की जगह आलोचनात्मक संवाद ने ले ली है। ज्ञानमीमांसा की एकता इसकी बहुआयामीता को स्वीकार करने लगी है।

दलित साहित्य की उपलब्धियों उसकी सीमाओं और उसके योगदान पर चर्चा करना इस लेख का अभीष्ट है। प्राय: दलित चिंतक संत साहित्य और नाथ, सिद्ध और संत कविता को दलित कविता की पृष्ठभूमि के रूप में चिन्हित करते रहे हैं लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस मान्यता को अपनी किताब 'दलित साहित्य: अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ' में अस्वीकार कर दिया। इसका कारण उन्होंने यह बताया कि चूँकि संत कविता में व्यक्त भक्त और ईश्वर का संबंध वैसा ही है जैसे दास और मालिक का इसलिए यह कविता कोई सामंतवादी ढांचे को तोड़ती नहीं है, इसलिए यह दलित कविता की पृष्ठभूमि नहीं हो सकती। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का यह तर्क बिल्कुल ठीक है लेकिन भक्ति या दास और मालिक के बीच संवाद फॉर्म में जो समाज व्यवस्था की आलोचना का मूल्य है उसको भी स्वीकार करना बदलाव की परंपरा की पहचान करना है। हीरा डोम की जिस कविता को कई बार दलित कविता नहीं भी कहा जाता है उसमें भी जो संवाद का फॉर्म है उसके आधार पर वाल्मीकि जी के पैमाने पर दलित कविता नहीं सिद्ध होती लेकिन ध्यान से पाठ करने पर यह कविता एक तरफ जहाँ ईश्वर से अपने भौतिक सांसारिक जीवन में दमन के खिलाफ ईश्वर से शिकायत करती है वहीँ वह ईश्वर के पूर्वाग्रही रूप को उजागर करते हुए उसकी सत्ता को भी चुनौती देती है। उनकी शिकायत है कि उनका दु:ख भगवान भी नहीं देखता है। ध्यान रहे कि यह शिकायत एक वचन में नहीं है बल्कि बहुवचन में है- 'हमनी के दु:ख भगवानओं न देखता जे/हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि'। ईश्वर की सत्ता को चुनौती देने की बानगी देखिये- 'कहवा सुतल बाटे सुनत न बाटे अब/ डोम जानि हमनी के छुए से डेराले'। डोम को छूने मात्र से जो ईश्वर डर रहा हो इस बात का बोध रखने वाला कवि कब तक ऐसे ईश्वर की सत्ता को मान सकता था यह कल्पना की सीमा में सहज ही आ सकता है। यह अनायास नहीं है कि संत कवियों का ईश्वर निर्गुण है, अजन्मा है। क्या निर्गुण संतों की इस चेतना का विस्तार हीरा डोम की इस कविता में नहीं दिखाई देता?

दलित कविता का क्षितिज विस्तृत हुआ है। आरंभिक दलित कविताओं में पूंजीवाद से उपजे उत्पीड़न और ब्राह्मणवाद से इसके संश्रय पर कोई उल्लेखनीय आलोचना नहीं है। लेकिन 2015 में प्रकाशित दलित कविता की कई पुस्तकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये कविताएं सामाजिक सत्ता के साथ-साथ राजनीतिक सत्ता के विविधवर्णी उत्पीड़न दमन के रूपों की मुखर और स्पष्ट आलोचना प्रस्तुत करती हैं। हेमलता महिश्वर हमारे समय की महत्वपूर्ण कवयित्री हैं। उनका कविता संग्रह 2015 में प्रकाशित हुआ 'नील, नीले रंग के'। यह सर्व विदित है कि दलित आंदोलन और साहित्य में नीले रंग का बहुत महत्व है। लेकिन इनकी कविताओं में नील दमन को प्रतिबिंबित करने वाला एक बदला हुआ प्रतीक बनकर आया है और यह जो नीले रंग का जो नील है उसे दलित चेतना ही नष्ट कर सकती है। कविता संग्रह की पहली ही कविता 'पहेली' दलित संवेदना के विस्तार की कविता बन जाती है। रोचक शैली वाली यह कविता सत्ता द्वारा उत्पीड़ितों को विभाजित कर उत्पीड़ितों के ही एक हिस्से को उसके खिलाफ खड़ा करके अपना हित साधने तथा मनुष्यता और पृथ्वी को खतरे में डालने की राजसी प्रवृत्ति की आलोचना करती है। सरकारी दमन की ब्रह्म उपस्थिति को चिन्हित करते हुए हेमलता जी कहती हैं-

*बूझो! बूझो!*
*केंद्र से राज्य तक*
*बस्तर से असम तक*
*झारखण्ड, उड़ीसा, आन्ध्रा, महाराष्ट्र*
*कैसे असम नहीं*

*सम है सरकार*

*आडिट की नहीं दरकार। (महिश्वर 2015:21)*

प्रकृति और मनुष्यता को बचाने की चिंता से युक्त यह कविता प्रकृति के प्रति कोई नास्टेल्जिक भाव नहीं पैदा करती बल्कि मनुष्यता के अस्तित्व की आधारभूत जरुरत के रूप में इसे देखती है। वह लिखती हैं-

*जंगल में है आदिवासी*

*तो समझो*

*मौसम को सुरक्षित रखने की मदद हासिल है। (महिश्वर 2015:22)*

उनकी नजर हिंसा का शस्त्र और शास्त्र रचने वालों तक जाती है और सत्ता द्वारा उनके पुरस्कृत किये जाने, महिमामंडित किये जाने की वजह पूछती है। वह लिखती हैं-

*अल्फ्रेड नोबेल*

*तुम जनक विध्वंश के*

*निर्माण के*

*पुरस्कर्ता*

*कैसे हो गए? (महिश्वर 2015:25)*

दलित कविता सीधे-सीधे अपनी बात कहती थी लेकिन उसमें शैली के स्तर पर आई विविधता ने उसको कलात्मक ऊँचाई दी है।

स्वर्ग और नरक की मायावी मनुष्य विरोधी मान्यताओं को खारिज करती हैं इनकी कविताएं। वह 'स्वर्ग और स्त्री' शीर्षक कविता में लिखती हैं-

*रखो स्वर्ग*

*अपना अपने पास*

*तुम्हे मुबारक*

*डालती हूँ मैं उस पर*

*गारत*

*कि मुझको तो*

*भाता है स्वतंत्र भारत। (महिश्वर 2015:33)*

जाहिर है कि स्त्री की स्वतंत्रता की भावना वाली यह कविता देश की स्वतंत्रता में ही अपनी स्वतंत्रता की तलाश करती है। कवयित्री का यह विचार दलित साहित्य पर खंडित दृष्टि का आरोप लगाने वालों के लिए एक उत्तर हो सकता है। हेमलता जी की कविताएं सीधे पितृसत्ता की आलोचना नहीं करती हैं बल्कि स्त्रियों की स्थितियों को कलात्मक रूप में ढालकर व्यक्त कर देती हैं। कला संवेदना का विरोधी नहीं होती। कई बार यथार्थ का वर्णन उतना प्रभावी नहीं होता जितना यथार्थ का कलामयी वर्णन। आखिर कला का भी काम तो चेतना को उन्नत ही करना होता है।

रुखसाना के घरश शीर्षक से कविता संग्रह की लेखिका अनीता भारती (भारती 2015) का यह दूसरा काव्य संग्रह है। संग्रह का शीर्षक और उसका कवर दलित आंदोलन और साहित्य में एक महत्वपूर्ण मोड़ का संकेत देता है। ऐसे समय में जब हिंदू पहचान के एकीकरण के नाम पर दलित समुदाय को मुसलमानों के खिलाफ खड़ा करने का हर संभव प्रयास किया जा रहा है, ऐसे में एक दलित महिला की ओर से देश को बचाने के लिए साम्प्रदायिक दंगों की सरकारी साजिश को उजागर करने वाली कविताएं लिख रहे हैं और दलित साहित्य को बचाओ। संकुचित परिभाषा का विस्तार करता है। समय-समय पर बाबा साहब को मुस्लिम विरोधी साबित करने का प्रयास किया गया है। विडंबना यह है कि जो लोग बाबासाहेब को देशद्रोही साबित करते रहे हैं, वे अब उन्हें मुस्लिम विरोधी साबित करने की कोशिश कर रहे हैं और हिंदू पहचान के नाम पर दलितों को उनके दमन का प्रमाण पत्र दिलाने के लिए लामबंद कर रहे हैं। लेकिन सुखद बात यह है कि दलित महिला कविता सत्ता के मुस्लिम विरोधी रवैये को दलित उत्पीड़न से जोड़कर देखती है। रुखसाना का घर संग्रहश की कविताएं मुजफ्फरनगर दंगों में पीड़ित मुस्लिम महिलाओं के भयानक दर्द और सत्ता की साजिश को दर्शाती हैं। वह लिखती हैं-

*रुखसाना तुम्हारी आँखों के बहते पानी ने*

*कई आँखों के पानी मरने की*

*कलई खोल दी है। (भारती 2015:23)*

दलित स्त्री कविता धर्म निरपेक्षता की जाँच देश में होने वाली सांप्रदायिक घटनाओं से करती है। एक स्थिति के बाद कविता दु:ख और आक्रोश को व्यंग्य में ढाल देती है।

*तुम्हारी बेटी के नन्हे हाथों से*

*उत्तर कापियों पर लिखे*

*एक छोटे से सवाल*

*धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की विशेषताओं पर*
*अपना अर्थ तलाश रहे हैं। (भारती 2015:21)*

अनीता भारती के इस कविता संग्रह में दलित, मुस्लिम और उपेक्षित महिलाओं की एकता, उनके दुख को पहचानने और सामूहिक आवाज बनने की भावना को अपने आप में समाहित किया है।

दलित साहित्य में देश की एक वैकल्पिक परिकल्पना मौजूद है। यह जो विरासत में मिला हुआ देश है वह नाकाफी है। इसलिए देश का सपना यहाँ अलग ढंग से आकार लेता है। देश में कविता और कविता में देश कब गूँथ जाते हैं पता ही नहीं चलता। रजत रानी मीनू का कविता संग्रह 'पिता भी तो होते हैं माँ' (रानी 'मीनू' 2015) की कविताएं इसी 'देश' को अपने समाये हुए हैं। वह लिखती हैं-

*कविता मेरा देश है*
*कविता मेरा भाव।*
*कविता एक स्त्री लिंगी शब्द है*
*जिसमे समाया है*
*पूरा का पूरा*
*विश्व परिवार। (रानी 'मीनू' 2015:53)*

उनकी कविताएँ व्यंग्य का रूप लेती हैं। लिखते हैं- देश के वंश को चलाने के लिए एक महिला मजदूर ने दिया बच्चे को जन्म! उनकी कविताएँ खुले तौर पर पितृसत्ता की आलोचना करती हैं और पारिवारिक लोकतंत्र की आवश्यकता पर बल देती हैं। वे प्रतीक नहीं बनाते हैं, वे सीधे सपाट शब्दों में अपनी बात कहते हैं और कभी-कभी लंबी कविताओं में। उनकी कविताओं में रहस्य नहीं है। उनकी कविताओं का विषय व्यापक है। उनकी कविताएँ, जो दलित महिलाओं और दलितों की स्थिति के लिए ब्राह्मणवाद और पितृसत्ता को जिम्मेदार ठहराती हैं, जीवन के विभिन्न आयामों को अपने दायरे में लाती हैं। उनकी कविता श्रविवार का दिनश और श्गोया मैंने किया है क्राइमश समेत उनकी कई कविताएं पितृसत्ता की खुलकर आलोचना करती हैं. वह लिखती हैं-

*तुमने बना*
*कर रख दिया आश्रिता मात्र*
*और मैं*
*गाती रही गीत*
*पिता की जमीदारी के*
*भ्राता और पति की मजबूती के। (रानी 'मीनू' 2015:69)*

स्त्री मुक्ति की आकांक्षी उनकी कविताएं तब स्त्री विमर्श के विपरीत जाने लगती हैं जब वह कहती हैं-

*वे स्त्रियाँ भाती हैं*
*जो करती हैं*
*सदाचार से प्यार*
*किसी भी हालत में*
*बेदाग बनाये रखती हैं*
*किरदार*
*वे स्त्रियाँ भाती हैं उन्हें। (रानी 'मीनू' 2015:105)*

यह कविता उनकी स्वाभाविक सोच के विपरीत यात्रा करने वाली कविता है।

'असंग घोष जी' प्रशासनिक सेवा के हैं। उनके कविता संग्रह श्समय को इतिहास लिखने दोश (घोष 2015) को पढ़ना दलित साहित्य में व्यक्त शुरुआती आक्रोश को दर्शाता है। उनकी कविताएँ क्रोध से आशा की ओर बढ़ती प्रतीत होती हैं। डांटने की शैली से कविताएँ दलित साहित्य की एक नई परीक्षा को जन्म देती हैं। यह शैली अत्यधिक आत्मविश्वास के बिना संभव नहीं हो सकती थी। उनका लेखन विद्रोह के बीज बोता है।

*मैंने*
*अपनी लेखनी से*
*तेरे खिलाफ*
*विद्रोह का बीज*
*बो दिया है। (घोष 2015:83)*

उनकी कविता में फटकार का एक नमूना यह है-

*इससे पहले*

*की मेरे सारे औजार*
*मेरे शस्त्र बनकर*
*तुम्हारे खिलाफ*
*विद्रोह करें*
*तू भाग जा यहाँ से। (घोष 2015:84)*

स्त्री के प्रति संवेदनशीलता उनकी कविता की विशेषता है। वह लिखते हैं-

*तुम्हारे लिए*
*स्त्री थी*
*केवल एक देह। (घोष 2015:91)*

'संत राम आर्य' चर्चित दलित साहित्यकार हैं। उनका कविता संग्रह है 'दर्द की भाषा'। (आर्य 2014) जिस आत्मालोचना की उभरती हुई प्रवृत्ति की बात ऊपर की गयी है वह इस काव्य संग्रह में दर्ज है। अपनों से ही शिकायत करती कविता-

*यहाँ अपने अपनों को काटते हैं*
*जोड़ते नहीं बांटते हैं*
*टुकड़े-टुकड़े कर दिए हैं देश और आदमी के (आर्य 2014:27)*

दलित अभिजात्य प्रवृत्तियों और सामाजिक बुराइयों की आलोचना करने वाली कविताएँ हमें सांप्रदायिक उन्माद की भावना से सचेत करती हैं। उनका उपन्यास श्अमन के रास्तेश (आर्य 2015) है। यह उपन्यास अंतर्जातीय विवाह में आने वाली कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए लिखा गया था। विवाह की संस्था एक सामाजिक शक्ति संरचना के साथ-साथ एक लिंग शक्ति संबंध का प्रतिनिधित्व करती है। जातिवादी पूर्वाग्रह और हमारी सामाजिक रूढ़िवादिता की भी अपनी प्रमुख संरचना है। इससे अंतर्जातीय विवाह के संबंध तय होते हैं। यह उपन्यास इन समस्याओं को उजागर करता है और इसकी ऐतिहासिकता को भी इसके दायरे में शामिल करता है।

साहित्य में कविता अपने छोटे स्वभाव के कारण जल्दी पढ़ी जाती है और कम शब्दों में अपनी बात समाज तक पहुँचाती है। लेकिन कहानी और उपन्यास में ऐसा नहीं है। कहानी विधा दलित साहित्य में भले ही उतनी लोकप्रिय न रही हो, लेकिन उसका प्रभाव एक हद तक बना हुआ है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि दलित कहानी का मुकाबला दलित कविता से रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि एक ऐसे दलित साहित्यकार थे, जिनकी लगभग सभी विधाओं पर खूब चर्चा होती थी। उनकी कहानियों को उनकी आत्मकथाओं और कविताओं की तरह गंभीरता से पढ़ा गया। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों की कहानी कहने की एक अलग शैली थी लेकिन उनकी विषय वस्तु अक्सर जातिवादी उत्पीड़न और आंतरिक जातिवाद और ब्राह्मणवादी संस्कृति थी। दलित कहानी का समकालीन परिदृश्य थोड़ा समृद्ध किया गया है। सामग्री का विस्तार हुआ है। बाजार, नई पूंजी, लिंग उत्पीड़न, दलित समाज के भीतर प्रचलित आधुनिकतावाद विरोधी रूढ़िवादिता, पूंजीवाद के साथ-साथ दमन के नए तरीकों को जन्म देने की ब्राह्मणवाद की प्रवृत्ति इसमें प्रमुख हैं।

टेकचंद हमारे समय के एक महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। उनकी कहानियाँ उपरोक्त विषयों पर केंद्रित हैं। टेकचंद की कहानियाँ गाँव से शहर और अंततः शहर में बदलते ग्रामीण जीवन की वास्तविकता का विषय बनाती हैं। उनकी कहानियाँ दिल्ली के आसपास के गाँवों में दलित समाज और गैर-दलित समाज में हुए परिवर्तनों पर केंद्रित हैं। विकास की गति में दलित जीवन का मनोवैज्ञानिक आख्यान प्रस्तुत करता है। गतिशीलता, इतिहासलेखन की स्पष्टता उनकी कहानियों की विशेषता है। उनका कहानी संग्रह है- श्मयूर के पंखश। (टेकचंद 2015) इसकी कहानी श्एटीएमश है। यह कहानी एक शिक्षित और नौकरी पेशा महिला की स्थिति को दर्शाती है। उसके पति सहित उसके ससुराल वाले चाहते हैं कि, वह अपनी सारी कमाई अपने ससुर या पति के हाथों में रखे और अपने खर्चों के लिए भी उन पर निर्भर रहे। पहले नहीं बल्कि बाद में लेकिन वह इसका विरोध करती है और कहती है- श्मैं मरने के बाद कमाती हूं और कमाई पर मेरा अधिकार भी नहीं है। किसान पंचायत में अपने लिए मुझे कहना होगा, 'किसकी धरती? जो कुछ भी तुम बोओ!' फिर मैं दोतरफा बात क्यों करता हूँ? मैं अपनी मेहनत की कमाई का हकदार क्यों नहीं हूं? मैं अपना एटीएम, अपनी कमाई किसी को नहीं दूंगा' (टेकचंद 2015:124)। यह दलित समाज में महिलाओं के अधिकारों के दावे को प्रस्तुत करने वाली कहानी है। उनकी लगभग सभी कहानियाँ दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों की थीम के बारे में हैं। यदि आप दिल्ली को बदलने का सबाल्टर्न इतिहास जानना चाहते हैं, तो टेकचंद जी की कहानियाँ इसमें सूक्ष्म रूप से आपकी मदद करेंगी।

रत्ना कुमार सांभरिया वरिष्ठ साहित्यकार हैं। 2015 में प्रकाशित कहानी संग्रह 'एयरगुन का घोड़ा' (सांभरिया 2014) है। इस संग्रह की कहानियाँ अवमानना की परंपरा को खारिज करते हुए दलितों में साहस, शक्ति और स्वाभिमान का संचार करती हैं। इस संग्रह में एक कहानी है- पुरस्कार। यह कहानी उच्च संस्थानों में महिलाओं के शोषण की प्रवृत्ति की आलोचना करती है और महिलाओं के स्वाभिमान की भावना को जगाती है। यह फीचर उनकी 'विद्रोही' कहानी में भी है। यह कहानी एक स्वाभिमानी विधवा महिला की है जो समाज के कई नियम-कायदों को अपनी आजादी में बाधक मानती है और मध्यकालीन खाप पंचायत को खारिज करती है। अपने पति की मृत्यु के बाद, उसके ससुराल वालों ने उसकी रहने की स्थिति से परेशान होकर एक खाप पंचायत का आयोजन किया, लेकिन वह बहुत बहादुरी से पंचायत में जाने से इंकार कर देती है। वह कहती हैं- 'जो आदमी आधी रात को अकेली महिला का दरवाजा खटखटाता है, क्या वह पंचायत करेगा? तुम जाओ, मुझे बच्चे से घर का काम कराना है।' (सांभरिया 2015:130) इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी कहानियाँ महिलाओं की मुक्ति में उनके विश्वास को फिर से परिभाषित करती हैं। दलपत चौहान का कहानी संग्रह 'ठंडा खून' है। उनकी कहानियाँ दलित जीवन के विभिन्न आयामों को अपने में समाहित करती हैं। उनकी कहानियाँ उनके अविस्मरणीय अतीत का दस्तावेज हैं। कहानियों के संग्रह के रूप में इसे उनकी आत्मकथा कहा जा सकता है।

## निष्कर्ष

दलित साहित्य में उपन्यास शैली का विस्तार अभी बाकी है। शायद अनुभव के सटीक अनुभव को व्यक्त करने के दबाव ने दलित साहित्य में कलात्मक निर्माण में बाधा उत्पन्न की। हालांकि, अपनी बात को व्यक्त करने के लिए कलात्मक पैमाने को ठीक कर उसकी स्वाभाविकता को नष्ट करने का खतरा है। सुशीला टाकभौरे का उपन्यास 'तुम्हें बदलाना ही होगा' अपनी सामग्री और प्रवाह के कारण ध्यान आकर्षित करता है। सुशीला जी की निगाहें समाज के कई सवालों पर टिकी हैं। दलित साहित्य की मुख्य चिंता जातिवाद का अंत है। यह चिंता उनके उपन्यास में व्यक्त की गई है। उनके उपन्यास में प्रस्ताव है कि लोग अंतर्जातीय विवाह करते हैं लेकिन उच्च जातियां काफी हद तक आपस में अंतरजातीय विवाह करती हैं। यह रवैया बदलना होगा तभी समाज से जाति का खात्मा होगा। दलित साहित्य की आलोचना भी विकसित होनी चाहिए। दलित साहित्य का दलित दृष्टिकोण से आलोचनात्मक मूल्यांकन अभी भी एक महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य है।

बजरंग बिहारी तिवारी दलित साहित्य के गंभीर विद्वान माने जाते हैं। उनकी पुस्तक दलित साहित्य: एक अंतरयात्रा हिंदी दलित साहित्य का मूल्यांकन करने का एक प्रयास है। अपनी पुस्तक के काव्य अध्याय में जयप्रकाश लीलवान की कविताओं पर लिखते समय उन्होंने जो निष्कर्ष दिया है, वह समसामयिक आलोचना के संदर्भ में एक प्रश्न है। बजरंग जी का आलोचनात्मक दृष्टिकोण मार्क्सवादी है, वे अपनी आलोचना में द्वंद्वात्मक पद्धति का उपयोग करते हैं, इसलिए दलित साहित्य के प्रति उनका दृष्टिकोण भावुक नहीं है। वह हमेशा इसके सकारात्मक पक्ष के साथ-साथ इसके नकारात्मक पक्ष को भी सामने लाता है। बजरंग जी दलित साहित्य का समग्र मूल्यांकन करते हुए उम्मीद करते हैं कि, वर्तमान पीढ़ी उन सवालों पर लिखेगी जिन पर दलित साहित्यकारों की पहली पीढ़ी ने नहीं लिखा।

## ग्रंथसूची:


1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. 2013. दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
2. द्विवेदी, महावीर प्रसाद. सितम्बर 1914. सरस्वती. भाग 15. खंड 2, पृष्ठ सं. 512-513. www.hindisamay.com
3. महिश्वर, हेमलता. 2015. नील, नीले रंग के. दिल्ली: शिल्पायन प्रकाशन।
4. भारती, भारती. 2015. रुखसाना का घर. दिल्ली: स्वराज प्रकाशन।
5. रानी, रजत 'मीनू', 2015. पिता भी होते हैं माँ. दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
6. घोष, असंग. 2015. समय को इतिहास लिखने दो. दिल्ली: शिल्पायन प्रकाशन।
7. आर्य, संतराम. 2014. दर्द की भाषा. दिल्ली: बेधड़क प्रकाशन।
8. ---. 2015. अमन के रास्ते. दिल्ली: बेधड़क प्रकाशन।
9. टेकचंद. 2015. मोर का पंख तथा अन्य कहानियां. दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
10. सांभरिया, रत्नकुमार. 2015. एयरगन का घोड़ा. नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
11. चौहान, दलपत. 2015. ठण्डा खून. दिल्ली: शिल्पायन प्रकाशन।
12. टाकभौरे, सुशीला. 2015. तुम्हे बदलना ही होगा. दिल्ली: सामायिक प्रकाशन।
13. तिवारी, बजरंग बिहारी. 2015. दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा. गाजियाबाद: नवारुण प्रकाशन।

# उच्चतर माध्यमिक स्तर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि पर एक अध्ययन


## विनोद अवस्थी

*पीएचडी शोधार्थी*

## डॉ० आशावती वर्मा गाइड

*( शिक्षा विभाग ), केपीटल युनिवर्सिटी, कोडरमा, झारखण्ड*



### सारांश

यह अध्ययन उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि पर आधारित है। यह विषय वर्तमान में एक अत्यंत ज्वलंत समस्या के रूप में सामने आ रहा है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी किशोरावस्था में प्रवेश कर चुके होते हैं, इस स्तर पर विद्यार्थी अनेकों प्रकार के संवेगों का अनुभव करता है, उनके संवेगों को पहचानना, उसे सही दिशा देना अत्यंत आवश्यक होता है क्योंकि संवेगात्मक अस्थिरता उसके व्यावसायिक महत्वाकांक्षा को भी प्रभावित करती है, फल स्वरूप इस अस्थिरता की स्थिति में वह अपने भविष्य हेतु उपर्युक्त योजना बनाने में सक्षम नहीं हो पाता है। संवेगात्मक बुद्धि अनेक घटकों के परस्पर अंतर्संबंधों का प्रतिफल है, जिनमें लिंग, विद्यालय का प्रकार, माध्यम, माता की शैक्षणिक योग्यता, पिता की शैक्षणिक योग्यता तथा क्षेत्र का प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय में ऐसे विषयों पर अध्ययन की आवश्यकता है जिससे इन विषयों पर किया गया अध्ययन विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को उनकी कार्य योजना को बनाने में मदद करेगा। इस अध्ययन में विभिन्न जनसांख्यिकीय चरों को सम्मिलित करते हुए उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि विषय का चयन किया है। सर्वेक्षण विधि के माध्यम से शोधार्थी ने 50 विद्यार्थियों का चयन किया और सांख्यिकीय तकनीकी का प्रयोग आकडों के विश्लेषण हेतु किया गया है।


### परिचय

सुदृढ़ करने का एक महत्त्वपूर्ण समय है। नए शिक्षक, नए सहपाठी और नया वातावरण मिलता है। वह समझने लगता है कि समाज क्या है और उसे समाज में किस तरह रहना चाहिए? उसके ज्ञान का फलक विस्तृत होने लगता है। पाठ्य-पुस्तकों से उसे लगाव हो जाता है। वह ज्ञान रस का स्वाद लेने लगता है जो आजीवन उसका पोषण करता रहता है। ज्ञान अर्जन की चाह रखने वाला विद्यार्थी जब विनम्रता को धारण करता है तब उसकी राहें आसान हो जाती हैं। विनम्र होकर श्रद्धा भाव से वह गुरु के पास जाता है तो गुरु उसे सहर्ष विद्यादान देते हैं। वे उसे नीति ज्ञान एवं सामाजिक ज्ञान देते हैं, गणित की उलझनें सुलझाते हैं, और उसके अंदर विज्ञान की समझ विकसित करते हैं। उसे भाषा का ज्ञान दिया जाता है, ताकि वह अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सके। इस तरह विद्यार्थी जीवन सफलता और पूर्णता को प्राप्त करता हुआ प्रतिभाशाली बनता है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर, विद्यार्थी जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण चरण होता है। इस अवस्था में विद्यार्थी विभिन्न प्रकार के संवेगों का अनुभव स्वयं में करता है। यदि इन संवेगों के उचित विकास हेतु विद्यालय उन्हें उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है, तो उनकी संवेगात्मक बुद्धि को सकारात्मक दिशा दी जा सकती है। प्रस्तुत शोध-पत्र विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि को ज्ञात करने अथवा वस्तुस्थिति को जानने हेतु किया गया एक प्रयास है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी किशोरावस्था में प्रवेश कर चुके होते हैं, इस स्तर पर विद्यार्थी अनेकों प्रकार के संवेगो का अनुभव करता है, उनके संवेगों को पहचानना, उसे सही दिशा देना अत्यंत आवश्यक होता है।

### अध्ययन की सार्थकता

संवेगात्मक अस्थिरता उसके शैक्षणिक उपलब्धि को भी प्रभावित करती है, फलस्वरूप इस अस्थिरता की स्थिति में वह अपने भविष्य हेतु उपर्युक्त योजना बनाने में सक्षम नहीं हो पाता है। वर्तमान समय में ऐसे विषयों पर अध्ययन की आवश्यकता है क्योंकि इन विषयों पर किया गया अध्ययन विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को उनकी कार्ययोजना को बनाने में मदद करेगा। प्रस्तुत लेख में शोधकर्त्री ने अनेकों पत्र पत्रिकाओं और शोधों का अध्ययन किया और पाया कि वर्तमान समय में यह अत्यंत प्रासंगिक विषय है और इस कार्य हेतु विभिन्न जनसांख्यिकीय चरो को सम्मिलित करते हुए उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन विषय चयन किया गया है।

## संबंधित साहित्य की समीक्षा

यादव (2014) द्वारा संवेगात्मक बुद्धि एवं सरकारी और निजी स्कूलों के छात्रों की आत्म अवधारणा का अध्ययन किया और पाया कि सरकारी और निजी स्कूल के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि में काफी भिन्नता हैं वे अपने स्वंय की अवधारणा में काफी भिन्न होते हैं।

तपस (2015) द्वारा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षणिक उपलब्धि पर अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि लिंग के आधार पर छात्राओं में संवेगात्मक बुद्धि छात्रों की तुलना में अधिक थी।

मारिया (2017) द्वारा छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि और सामाजिक कौशल के बीच संबंध पर अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि सामाजिक कौशल की अवधारणाओं के लिए उच्च स्कोर तथा छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि के लिए कम स्कोर पाया गया।

चम्बरिन (2018) द्वारा किशोरावस्था में शैक्षणिक उपलब्धि और संवेगात्मक बुद्धि पर अध्ययन किया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि किशोरावस्था में संवेगात्मक बुद्धि का शैक्षणिक कारकों पर प्रभाव पड़ता है।

## समस्या कथन

"विद्यार्थियों (उच्चतर माध्यमिक स्तर) की संवेगात्मक बुद्धि का एक अध्ययन"

## संक्रियात्मक परिभाषा

### *उच्चतर माध्यमिक स्तरः*

उच्चतर माध्यमिक स्तर का अभिप्राय 11वीं तथा 12वीं के विद्यार्थियों से है। प्रस्तुत लेख में 11वीं के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

### *संवेगात्मक बुद्धिः*

अपनी भावनाओं, संवेगों को समझना, उनका उचित तरह से प्रबंधन करना ही भावनात्मक समझ है। व्यक्ति अपनी भावनात्मक समझ का उपयोग कर सामने वाले व्यक्ति से ज्यादा अच्छी तरह से संवाद कर सकता है और ज्यादा बेहतर परिणाम पा सकता है।

## अध्ययन के उद्देश्य

1. लिंग के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर का पता करना।
2. गैर सरकारी एवं सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर का पता करना।
3. माध्यम के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर का पता लगाना।
4. माता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर का पता लगाना।
5. पिता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर का पता लगाना।

## परिकल्पनाएं

1. लिंग के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
2. गैर सरकारी एवं सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
3. माध्यम के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं हैं।
4. शहरी एवं ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
5. माता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
6. पिता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

## अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

(1) अरुण कुमार सिंह एवं श्रुति नरेन (2006) द्वारा निर्मित एवं मानकीकृत संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण

## शोध विधि

प्रतिदर्श सांखिकीय प्रविधियां अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

## समष्टि

अध्ययन हेतु कोडरमा जिले के समस्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी समष्टि के रूप में है।

## प्रतिदर्श

50 उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों को प्रतिदर्श के रूप में लिया गया हैं जिनमें सरकारी विद्यालयों से कुल 25 और गैर सरकारी विद्यालयों से 25 विद्यार्थियों का चयन किया गया है जिसमें 25 छात्र तथा 25 छात्राओं को प्रतिदर्श के रूप में लिया गया। विद्यार्थियों का चयन सांयोगिक विधि द्वारा किया गया है।

## सांखिकीय प्रविधियां

1. माध्य 2. प्रमाणित विचलन 3. टी-अनुपात 4. सह-संबंध 5. अनोवा

## अध्ययन की परिसीमाएँ

प्रस्तुत अध्ययन की निम्नलिखित परिसीमाएँ हैं:

1. प्रस्तुत अध्ययन कोडरमा जिले तक सीमित है।
2. यह अध्ययन 11वीं कक्षा के विद्यार्थियों तक सीमित है।
3. प्रतिदर्श के रूप में केवल 50 विद्यार्थियों का चयन किया गया है।

## परिकल्पनाओं का विश्लेषण

### *परिकल्पना - 1*

**लिंग के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।**

***तालिका संख्या - 1: लिंग के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि***

| *लिंग* | *संख्या* | *माध्य* | *मानक विचलन* | *टी - परीक्षण* | *सार्थकता स्तर* |
|---|---|---|---|---|---|
| छात्रा | 25 | 20.78 | 3.219 | .288 | |
| सार्थक नही | | | | | |
| छात्र | 25 | 21.26 | 3.895 | | |

(0.05: सार्थकता के स्तर पर टी का मान 1.96)

तालिका संख्या 1 से स्पष्ट होता है कि लिंग के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं का संवेगात्मक बुद्धि का माध्य 20.78 तथा मानक विचलन 3.21 है, वही छात्रों का माध्य 21.26 तथा मानक विचलन 3. 89 है। टी-अनुपात का मान .288 है जो 0.05 सार्थकता स्तर पर दिए गए टी-अनुपात तालिका मूल्य (1.96) से कम है। अत: नल परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लिंग के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

### *परिकल्पना - 2*

**गैर-सरकारी एवं सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।**

***तालिका संख्या - 2: गैर-सरकारी एवं सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि***

| *विद्यालय के प्रकार* | *संख्या* | *माध्य* | *मानक विचलन* | *टी - अनुपात* | *सार्थकता स्तर* |
|---|---|---|---|---|---|
| सरकारी | 25 | 20.63 | 3.2 | 1.995 | |
| सार्थक | | | | | |
| गैर सरकारी | 25 | 21.58 | 3.8 | | |

(0.05: सार्थकता के स्तर पर टी का मान 1.96)

तालिका संख्या 2 से स्पष्ट होता है कि सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि स्तर का माध्य 20.63 तथा मानक विचलन 3.2 है, गैर सरकारी का माध्य 21.58 तथा मानक विचलन 3.8 है। टी-अनुपात का मान 1.99 है जो 0.05 सार्थकता स्तर पर दिए गए टी-अनुपात तालिका मूल्य (1.96) से अधिक है। इसलिए नल परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है और कहा जा सकता है कि गैर सरकारी एवं सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर है।

***परिकल्पना - 3***

**माध्यम के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।**

***तालिका संख्या - 3: माध्यम के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि***

| *माध्यम* | *संख्या* | *माध्य* | *मानक विचलन* | *टी - अनुपात* | *सार्थकता स्तर* |
|---|---|---|---|---|---|
| अंग्रजी | 25 | 21.19 | 2.9 | .614 | |
| सार्थक नहीं | | | | | |
| हिंदी | 25 | 20.89 | 3.8 | | |

(0.05: सार्थकता के स्तर पर टी का मान 1.96)

तालिका संख्या 3 से स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों का संवेगात्मक बुद्धि का माध्य 21.19 तथा मानक विचलन 2.9 है। हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों का माध्य 20.89 तथा मानक विचलन 3.8 है। टी-अनुपात का मान .614 है जो 0.05 सार्थकता के स्तर पर टी-अनुपात तालिका मूल्य (1.96) से कम है। इसलिए नल परिकल्पना को स्वीकृत किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि माध्यम के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

***परिकल्पना - 4***

**शहरी एवं ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।**

***तालिका संख्या - 4: शहरी एवं ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि***

| *निवास स्थान* | *संख्या* | *माध्य* | *मानक विचलन* | *टी - अनुपात* | *सार्थकता स्तर* |
|---|---|---|---|---|---|
| ग्रामीण | 25 | 20.78 | 3.8 | 0.452 | |
| सार्थक नहीं | | | | | |
| शहरी | 25 | 21.26 | 3.04 | | |

(0.05: सार्थकता के स्तर पर टी का मान 1.96)

तालिका संख्या 4 से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि का माध्य 20.78 तथा मानक विचलन 3.8 है तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों का माध्य 21.26 तथा मानक विचलन 3.04 है। टी-अनुपात का मान 0.452 है जो 0.05 साथर्कता के स्तर पर दिए गए टी-अनुपात तालिका मूल्य (1.96) से कम है। अत: नल परिकल्पना को स्वीकृत किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शहरी एवं ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नही है।

***परिकल्पना - 5:***

**माता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।**

***तालिका संख्या - 5: माता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि***

| *शैक्षणिक स्तर* | *संख्या* | *माध्य* | *मानक विचलन* | *टी - अनुपात* | *सार्थकता स्तर* |
|---|---|---|---|---|---|
| इंटर मी.एवं.इंटर मी. से कम | 25 | 20.67 | 3.6 | 2.3 | सार्थक |
| सार्थक स्नातक एवं स्नातक से अधिक | 25 | 21.90 | 3.2 | | |

(0.05: सार्थकता के स्तर पर टी का मान 1.96)

तालिका संख्या 5 से स्पष्ट होता है कि ऐसे विद्यार्थी, जिनकी माताओं का शैक्षणिक स्तर इंटर मीडिएट एवं इंटर मीडिएट से कम है, का माध्य 20.67 तथा मानक विचलन 3.6 है, ऐसे विद्यार्थी जिनकी माताओं का शैक्षणिक स्तर स्नातक एवं स्नातक से अधिक है, का माध्य 21.90 तथा मानक विचलन 3.2 है। टी-अनुपात का मान 2.3 है, जो 0.05 सार्थकता स्तर पर टी-अनुपात तालिका मूल्य (1.96) से ज्यादा है। इसलिए नल परिकल्पना को अस्वीकृत किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि माता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर है।

***परिकल्पना - 6***

पिता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

***तालिका संख्या 6: पिता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि***

| *शिक्षा स्तर* | *संख्या* | *माध्य* | *मानक विचलन* | *टी - अनुपात* | *सार्थकता स्तर* |
|---|---|---|---|---|---|
| इंटर मी.एवं.इंटर मी. से कम | 25 | 20.50 | 3.6 | 2.216 | सार्थक |
| सार्थक स्नातक एवं स्नातक से अधिक | 25 | 21.53 | 3.3 | | |

(0.05: सार्थकता के स्तर पर टी का मान 1.96)

तालिका संख्या 6 से स्पष्ट होता है कि ऐसे विद्यार्थी, जिनके पिता का शैक्षणिक स्तर इंटरमीडिएट एवं इंटरमीडिएट से कम है, का माध्य 20.50 तथा मानक विचलन 3.6 है वही ऐसे विद्यार्थी जिसके पिता का शैक्षणिक स्तर स्नातक एवं स्नातक से अधिक है, का माध्य 21.53 तथा मानक विचलन 3.3 है। टी-अनुपात का मान 2.216 है जो 0.05 सार्थक स्तर पर दिए गए टी-अनुपात तालिका मूल्य (1.96) से अधिक है। इसलिए नल परिकल्पना को अस्वीकृत किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पिता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर है।

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि लिंग, माध्यम एवं क्षेत्र के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है और विद्यालय के प्रकार, पिता और माता के शैक्षणिक स्तर के आधार पर विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर पाया गया। उच्चतर माध्यमिक स्तर, संवेगात्मक बुद्धि ,जनसांख्यिकीय, चर । विद्यार्थी और शिक्षा का एक दूसरे से बड़ा ही गहरा संबंध है। शिक्षा मनुष्य के लिए खान-पान से भी अधिक आवश्यक है। शिक्षा प्रत्येक समाज और राष्ट्र के लिए उन्नति की कुंजी है। अज्ञानता मनुष्य के लिए अभिशाप है, शिक्षा के द्वारा ही हम सत्य और असत्य को जान पाते हैं। विद्यार्थी राष्ट्र की सबसे बड़ी ताकत और सम्पत्ति होते हैं। विद्यार्थी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है विद्या घ अर्थी जिसका अर्थ है, विद्या प्राप्ति का इच्छुक। मनुष्य के जीवन का वह समय, जो शिक्षा प्राप्त करने में व्यतीत होता है, 'विद्यार्थी जीवन' कहलाता है। मनुष्य जीवन के अंतिम क्षणों तक कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण करता ही रहता है। प्राचीन काल में पूरे जीवन को कार्य की दृष्टि से चार भागों में बांटा गया था, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। यह पहला ब्रह्मचर्य-काल ही विद्यार्थी जीवन माना जाता हैं। विद्यार्थी जीवन साधना और तपस्या का जीवन है। यह काल एकाग्रचित्त होकर अध्ययन और ज्ञान-चिंतन का है। यह काल सांसारिक भटकाव से स्वयं को दूर रखने का काल है। विद्यार्थियों के लिए यह जीवन अपने भावी जीवन को ठोस नींव प्रदान करने का सुनहरा अवसर है।

## संदर्भ सूची


- भार्गव, एस. (1977) आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
- माथुर, एस. एस. (2013) शिक्षा की दार्शनिक तथा समाजिक आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा मंगल, एस.के. (2008) शिक्षा में सांख्यिकी (2एडी), पी.एच.आई.प्र.लि., जयपुर
- मंगल, एस. के. शुभ्रा. (2014) व्यावहारिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियाँ, पी एच.आई., प्र.लि. दिल्ली वालिया, जे.(2010) शिक्षा तकनीकी, अहम पाल पब्लिशर्स, पंजाब
- गुप्ता, एस० पी० एवं गुप्ता, ए०. (2008) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद जायसवाल,एस०(1992)शिक्षा मनोविज्ञान, रेलवे क्रासिंग सीतापुर रोड, लखनऊ
- शर्मा, आर० ए० (2011)शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर लाल बुक, डिपो, मेरठ
- तपस, (2015) उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षणिक उपलब्धि Journal of Employment Counseling V- 90, January.(2), Pages 74-83 प्राप्ति 20 Dec 2018.
- यादव(2014) संवेगात्मक बुद्धि और सरकारी और निजी स्कूलों के छात्रों की आत्म अवधारणा प्रारंभिक शिक्षा और विकास, V 28(8) p996-1010-http://www-wiley-com/Wiley CDA प्राप्ति 2 July 2018
- चेम्बरिन, एशले (2018). किशोरावस्था में अकादमिक-संबंधित कारक और भावनात्मक बुद्धि v88(7)v2018 जुलाई http://academicjournals.org/journal/ERR प्राप्ति 9 सितम्बर
- मारिया, एस. (2017). छात्रों की भावनात्मक और व्यवहारिक कठिनाइयों के शिक्षकों की भावनात्मक खुफिया और छात्रों के सामाजिक कौशल का संबंध : प यूरोपीय शिक्षा जर्नल ऑफ एजुकेशन, अ40 द्ध4ऋ च447- 464 2017 http%//www-tandf-co-uk/journal प्राप्ति 1 जनवरी

# भारत में राष्ट्रीय पोषण प्रबंधन नीतियों का मूल्यांकन


## डॉ० बबिता बी० शुक्ला

*सहायक प्राध्यापक ( अर्थशास्त्र ), श्री. एम.डी. शाह महिला कालेज मलाड ( पश्चिम )*


*"पर्याप्त भोजन के विना भारत द्वारा माननीय कल्याण बढ़ाने तथा सामाजिक न्याय एवं लोकतन्त्र प्राप्त करने की सभी आशाये पूर्ण होनी असम्भव हो जायेगी" –फोर्ड फाउण्डेशन कृषि दल।*

पोषण एक गतिशील प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत भोजन को जलाया जाता है, और उसका उपयोग शरीर के पालन हेतु किया जाता है। यह वह रसायन है, जिसकी आवश्यकता किसी जीव के उसके जीवन और वृद्धि के साथ-साथ उसके शरीर के उपापचय की क्रिया को चलाने के लिए भी पड़ती हैं । और जिसे वो अपने वातावरण से ग्रहण करता है। Nutrition Nutritious शब्द बना है से जिसका अर्थ होता है Supple at the breast अर्थात स्तपान करना। पोषण एक ऐसी प्रक्रिया है जो ऊतकों का निर्माण और उनकी मरम्मत करती हैं। यह शरीर को उष्मा और ऊर्जा प्रदान करते हैं। और यही उर्जा शरीर की सभी क्रियाओं को चलाने के लिए आवश्यक होती है। मुख्य रूप से ये पोषक तत्व होते हैं।

1) कावोहायड्रेट्स 2) प्रोटीन 3) वसा 4) विटामिन 5) खनिज लवण। प्रत्येक व्यक्ति को पोषणिक की कभी से विभिन्न प्रकार के रोगों की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है।

1) प्रोटीन शरीर में उत्तकों, मांसपेशियों और रक्त जैसे महत्वपूर्ण द्रव्यों का निर्माण, संक्रमण का सामना करने के लिए इन्जाइम और रोग प्रतिकारक तत्वों के विकास में सहायता करता है। प्रोटीन के स्रोत ताजा या सुखाया हुआ दूध, पनीर दही, तिलहन और अनाज है।
2) बसा-बसा शक्ति के संकेन्द्रित स्रोत का काम करती है और पुलनशील विटामिनों की पूर्ति करती हैं। बस के स्रोत मक्खन, घी, वनस्पति तेल और वसा, तिलहन और मछली का तेल और अण्टे की जर्दी आदि हैं।
3) कार्बोहाइड्रेट - यह शरीर को शक्ति प्रदान करता है। इसके स्रोत अनाज, वाजरा, कन्दमूल जैसे कि आळू, चुरून्दर, अरवी, टेपिओका आदि और चीनी तथा गुड़।
4) विटामिन: शरीर की चमड़ी और श्लेष्म झिल्ली को स्वाथ रखना और रात्री अन्धता से बचाने का कार्य ए विटामिनस द्वारा किया जाता है। इसके स्रोत मछली का तेल कलेजी, दूध के उत्पादक मक्खन घी, गाजर, फल और पत्तेदार सब्जियाँ आदि विटामिन बी ख्र 1 : - यह सामान्य भूख, पाचन शक्ति तथा स्वस्थ स्नायु प्रणाली और भोजन की शर्करा को शक्ति में बदलता है। इसके स्रोत कलेजी, अण्डे, फलिया, दाले, गिरी, तिलहन, खनीर, अनाज, सेला, चावल आदि हैं।

   **विटामिन बी - 2 :** - यह कोशिकाओं को आक्सीजन के उपयोग में सहायता देता है। आँखो को स्वास्थ और साफ रखता है तथा नाक मुंह के आसपास पपड़ी नही जमने देता हैं तथा मुंह के कोरों को फटने से बचाता है। इसके स्रोत दूध, सपरेटा, दही, पनीर, अण्डे, कलेजी और पत्तेदार सब्जियाँ आदि हैं।

   **विटामिन सी :**- यह कोशिकाओं को मजबूद बनाता है, रक्त वाहिक की भिंतियों को शक्तिशाली बनाता है, संक्रमण की शेकधाम और रोग से जल्दी मुक्ति पाने की शक्ति प्रदान करता है। इसके स्रोत आवंला, अमरुद, नींबू की जाति के फल ताजी सब्जियाँ और अंकुरित दालें ।

   **विटामिन डी :**- शरीर को काफी मात्रा में कैल्शियम ग्रहण करने और हड्डी मजबूत बनाने में सहायता देता है। इसके स्रोत दूध, मक्खन, अंडे की जर्दी, दूध, पनीर, मछली, तेल और घी आदि है।
5) कैल्शियम और फास्फोरस यह हड्डियाँ और दांत बनाने, रक्त बढ़ाने तथा पेशियों और नाण्डियों को ठीक रूप से काम करने में सहयाक होता है।

अत: स्पष्ट है कि पोषक तत्व वह रसायन होता है, जिसकी आवश्यकता किसी जीव को उसके जीवन और वृद्धि के साथ साथ उसके शरीर के उपापचय की क्रिया को चलाने के लिए पड़ती है। और जिसे वो अपने वातावरण से ग्रहण करता है। यह शरीर को समृद्ध करते हैं। शरीर के सभी अंग सुचारू रूप से कार्य करें और व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वास्थ रहे इसके लिए पोषक तत्वों की जरूरत होती है। भोजन में पोषक तत्वों की कमी को कुपोषण कहते है। जिन तत्वों की कमी होती है। उनके कारण निम्नलिखित रोग का शिकार व्यक्ति हो जाता है, जैसे- प्रोटीन की कमी से शरीर की वृद्धि रुक जाती है। मांस पेशिया ढीली हो जाती है, श्वास नली से सम्बंधित रोग होते है।

काब्रोहाइड्रेटस की कमी से शरीर कमजोर हो जाता है। भोजन ठीक से नही पचता हैं। रक्त में शर्करा की मात्रा कम हो जाती हैं। वसा की कमी से मांसपेशियाँ कमजोर हो जाती है। त्वचा रुखी हो जाती है। विटामिन की कमी से रतौंधी, वेरी-वेरी स्कर्वी, रिकेट्स हीमोफिलिया रोग होते है। खनिज लवण की कमी के कारण अस्थि मृदुलता, घेघा, रक्ताल्पता रोग होते हैं।

हमारे अधिकाश देशवासियों का पोषण अपर्याप्त है। और विशेषकर बच्चों का चूंकि आज के बच्चे कल के नागरिक होगे इसलिए बच्चों के सुस्वास्थ्य की नीवं प्रारम्भ से ही डालणी अत्यन्त आवश्यक है।

पिछले 50 वर्षो के दौरान, बच्चों में मर्यादित एवं अत्यन्त अल्प- पोषण काफी कम हुआ है और जनसंख्या के सभी अंगों की पोषणिक अवास्था में सुधार हुआ हैं।

भारी ऊर्जा अभाव अभी भी हल्के रूप से विद्यमान हैं। अल्प पोषण जिन वर्गो में समस्या बनी हुई हैं, उनमें शामिल हैं -

क) गर्भवती और स्तनदात्री माताएँ

ख) एक तिहाई नवजात बच्चे जिनका जन्म पर भार 2.5 किलोग्राम से कम हैं।

ग) विटामिन 5 ए के अभाव के कुछ कम तीव्र रूप जिनके कारण कुछ परिस्थितियों में अन्थापन भी हो सकता है।

घ) आयोडीन नमक का सर्वव्यापक प्रयोग अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका और आयोडीन सम्बंधी विकृतियों में कोई महत्वपूर्ण कभी नहीं हुई।

ड) लौह- अभाव के कारण रक्तक्षीणता ओर इसका स्वास्थ्य पर प्रभाव।

***अत्यंत ऊर्जा अभाव की रोकधाम के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम चलाए गए***

**प्रायोगिक पोषण प्राजेक्ट :-** 1963 में चालू किया गया और इसका उद्देश्य गर्भवती एवं पालक माताओं को सुरक्षित खाद्य के रूप में सब्जियाँ और फल उपलब्ध कराने के उद्देश्य से इनके उत्पादन एवं उपभोग को बढावा देना था।

**विशेष पोषण प्रोग्राम :-** 1970 में आरम्भ किया गया और इसका उद्देश्य गर्भवती एवं पालक माताओ को 500 किलो कैलोरी ओर 25 ग्राम प्रोटीन उपलब्ध कराना और बच्चों को 300 किलो कैलोरी और 10 ग्राम प्रोटीन सप्ताह में छह दिन उपलब्ध कराना था।

**समन्वित बाल विकास सेवाएँ** - कार्यक्रम 1975 में चालू किया गया और इसका उद्देश्य बच्चों और गर्भवी अथवा पालक माताओं को खाद्य अनुपूरण उपलब्ध कराना था मंजीवी योजना ने इस प्रोग्राम की समीक्षा करते हुए उल्लेख किया "पिछले दो दशकों में प्राप्त किए गए अनुभव से संकेत मिलता है कि सबसे अधिक जरूरत मंदों को यह सुविधा उपलब्ध न हुई, जबकि इसकी उन्हें सख्त आवश्यकता है, उपलब्ध कराया गया खाद्य प्रतिस्थापक के रूप में अधिक और अनुपुरक के रूप में कम कार्य करता है" यह कार्यक्रम 1996 तक देश में 4,200 बालकों में 5.92 लाख आंगनवाड़ियों में उपलब्ध है। 1996 में इस प्रोग्राम से 185 लाख बच्चे और 37 लाख माताएँ लाभ प्राप्त कर रही थी। जबकि पालक माताओं ने समन्वित बाल विकास सेवाओं के क्षेत्रो से स्तन -पोषण प्राप्त करने वाले 6 मास पर अर्ध-ढोस अनुपूरक चालू किए, गैर- बाल विकास क्षेत्रों में केवल 19% ने ऐसा किया। समन्वित बाल विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन से पता चलता हैं कि इसके परिणाम स्वरूप पोषणिक स्तर में सुधार के रूप में लाभ प्रभावशाली नही कहे जा सकते।"

**दोपहर के भोजन का कार्यक्रम :-** दोपहर के भोजन का कार्यक्रम बालवाड़ियों स्कूलो में जाने वाले 2-14 वर्ष के बच्चों के लिए चालू किया गया। प्रत्येक लाभ प्राप्तकर्ता पर 44 से 90 पैसे प्रतिदिन खर्च करने की योजना बनायी गयी। यह योजना उन गरीब बच्चों के लिए नही हैं जो स्कूल नहीं जाते। इस प्रोग्राम का नाम वदल कर 1995 में प्राथमिक शिक्षा के लिए पोषणिक सहायता रखा गया। ताकि सर्वव्यापक प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। 1997 तक 4,426 बालकों में 5.57 करोड़ बच्चे इस प्रोग्राम के आधीन लाए गए।

राष्ट्रीय पोषण निरीक्षण वोर्ड के अनुसार 1975-80 में 31% परिवारों में ऊर्जा उपभोग परिवार के सभी सदस्यों में अपर्याप्त था। यह वात ध्यान देने योग्य है कि 25% परिवारों में केवल बालिगों के लिए ऊर्जा उपभोग पर्याप्त था परन्तु स्कूल पूर्व बच्चों में ऐसा नही था ।

पोपण सम्बंधी शिक्षा, विशेषकर स्त्रियों के लिए परिवारों अन्दर वितरण में सहायता सिद्ध हो सकती है। यह साधनों का प्रयोग हरी और पत्तेदार सब्जियों के लिए निर्देशित कर सकती है। और ऐसी वास्तुओं जैसे आयोडीन युक्त नमक के प्रयोग से आयोडीन की कमी को कम करने में मदद दे सकती है ।

परिवार के सभी सदस्यों के लिए पोषण सम्बंधी शिक्षा की जरुरत हैं। ताकि गर्भवती ओर स्तनदात्री माताओं के लिए उनके समान्य भोजन से 16 से 20% अधिक भोजन की व्यवस्था आश्वात की जा सके।

ऐसा करना इसलिए अनिवार्य है कि कम वजन वाले बच्चों का आपात घटाया जा सके ताकि प्रत्येक बच्चे के जीवन में एक अच्छी शुरुआत हो सके ।

## राष्ट्रीय पोषण नीति :- ( National Nutrition Policy )

राष्ट्रीय पोषण नीति 1993 में अपनायी गयी और इसके आधीन सन 2000 तक निम्नलिखित लक्ष्य प्राप्त करने का निश्चय किया गया।

1) स्कूल - पूर्व बच्चों में मर्यादित और अत्यधिक कुपोषण के आपात का स्तर कम करके आधा करना।

2) चिरकालीन अल्पपोषण को घटाना और जन्म पर कम वजन वाले वच्चों के अपात को कम करके 10% तक लाना।

3) सूक्ष्म पोषकों के अभाव को समाप्त करना। इनमें

   क) विटामिन ए के अभाव के कारण होने वाले अन्धेपन को समाप्त करना ।

   ख) लौह- अभाव के कारण गर्भवती स्त्रियों में रक्तक्षीणता को कम करके 25% तक लाना।

   ग) आयोडीन अभाव के कारण उत्पन्न होने वाली विकृतियों का कम करने के लिए आयोडीन युक्त नमक के प्रयोग को सर्वव्यापक बनाना।

4) वृध्दावस्था पोषण पर उचित वल देना।

5) खाद्यन्नों के उत्पादन को बढ़ाकर 2500 लाखटन करना।

6) गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों द्वारा पारिवारिक खाद्य सुरक्षा को उन्नत करना और उचित भोजन और स्वस्थ जीवन शैली प्रोन्नत करना।

खाद्य और पोषण सुरक्षा नौंवी योजना के नौ मुख्य लक्ष्यों में से एक हैं। इसके लिए रणनिती के रूप में राष्ट्रीय पोषण नीति लागू की जानी चाहिए। और

इसके लिए राष्ट्रीय पोषण कार्य योजना तैयार की गयी हैं। नौंवी योजना में यह अनुमान नहीं लगाया गया कि इसके लिए कितना व्यय करना होगा और राष्ट्रीय पोषण 1 नीति के लिए आधार संरचना के रूप में कैसा ढांचा निर्माण किया जाए। परन्तु नौंवी योजना इस निष्कर्ष का उल्लेख करती हैं, "यह प्रत्याशा की जाती है कि केन्द्र और राज्यों द्वारा रोजगार आश्वासन कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध करायी गयी राशियों से यह संभव होगा कि समन्वित वाल विकास सेवाओं के खाद्य अनुपूरक अंग को सर्व व्यापक बनाया जाए, प्रोग्रामों की गुणवत्ता और क्षेत्र विस्तार को उन्नत करना होगा ताकि देश राष्ट्रीय पोषण नीति में सुनिश्चित पोषण एवं स्वास्थ्य सम्बंधी लक्ष्यों को शीघ्र प्राप्त कर सके।" किन्तु सभी उद्देश्यों को नौवी योजना के दौरान प्राप्त करना संभव नहीं। यह भी प्रत्याशित है कि त्वरित आर्थिक विकास, रोजगार जनन में सुधार, सकल देशीय उत्पाद और प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि के फलस्वरूप देश और व्यक्ति दोनों के लिए संभव होगा कि वे पोषण और स्वास्थ्य दोनों में विनियोग में ही महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त करेगें।

## पोषण नीति के लिए निर्धारित लक्ष्य

15 अगस्त 2001 को प्रधानमंत्री ने राष्ट्रीय पोषण मिशन (National Nutrition Mission) की घोषणा की जिसके निम्नलिखित लक्ष्य होगे।

1) अल्प- पोषण (Under Nutrition) को कम करना ।

2) व्यविर - पोषण कमियों अर्थात लौह, आयोडन, विटामिन ए की कमी को कम/दूर करना।

इसको दृष्टि में रखते हुए, दसवी योजना में 2007 तक प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए है:-

क) पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा को बढ़ाना ताकि शिशु मृत्यू वाल- पोषण और देखभाल में उन्नति लायी जाए ताकि

   1) तीन वर्षो से कम आयु वालो अल्प वजन के बच्चों के वर्तमान स्तर को 47% से घटा कर 40% पर लाया जा सके, और

   2) 0-6 वर्ष के आयु के बच्चों में वर्तमान घोर अल्प- पोषण को 50% कम किया जा सके।

ख) रक्त क्षीपाता को 25% कम करना और मर्यादित घोर रक्त क्षीणता को 50% कम करना।

ग) विटामिन ए की कमी को एक स्वास्थ्य समस्या के रूप में दूर करना, और

(घ) आयोडीन की कमी से जनित बीमारियों की 2010 तक 10% से कम करना।

इस उद्देश्य के लिए 3,948 करोड़ रुपये की आवश्यकता है। प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना समेत राज्य के पास 1.2004 करोड़ रुपये अभी भी उपलब्ध है। और इसलिए दसवी योजना में 2,744 करोड़ रुपये के प्रावधान की जरूरत है।

बच्चों के कुपोषण की समस्या के समाधान हेतु शासन एवं समाज द्वारा भी अभियान चलाये गए, जिसमें बच्चों को स्कूलो में नि: शुल्क भोजन के माध्यम से विटामिन व आयरन की गोलियों की पूर्ति, व्यवहारिक पोषण योजना लागू की गई। व्यवहारिक पोषण में सस्ते दामों पर पौष्टिक व्यजन तैयार करना सिखाया गया ताकि व्यंजन बनानेका व्यावहारिक ज्ञानां शप्त हो और खान पान संबंधी आदतों में भी सुधार हो।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1 डी. एन. श्रीवास्तव; आहार एवं पोषण; एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस; 1 जानवरी, 2015

2 डॉ. अनीता सिंह; संपूर्ण आहार और पोषण विज्ञान; स्टार प्रकाशन; दिल्ली, 2016

3 डॉ. सबा अजीज फातिमा; डॉ. पल्लवी मिश्रा; उपचरत्मक प्रबंधक एवं सामुदायिक पोषण; स्टार प्रकाशन; आगरा; 2017

4 डॉ. एस. नारायण मूर्ति; स्वास्थ्य शिक्षा तथा खेल पोषण; स्पोर्ट्स प्रकाशन; 1 जनवरी, 2018

5 डॉ. वृंदा सिंह; आहार विज्ञान एवं पोषण; पंचशील प्रकाशन; जयपुर, राजस्थान; 1 जनवरी, 2019

# सामाजिक जीवन का यथार्थ और कथा साहित्यः अलका सरावगी


## डॉ० सविता वर्मा

*शोध निर्देशिका, श्री रावतपुरा सरकार यूनिवर्सिटी, रायपुर छ.ग.*

## खेमवती साहू

*शोधार्थी, श्री रावतपुरा सरकार यूनिवर्सिटी, रायपुर, छ.ग.*



### सारांश

श्रेष्ठ साहित्य समाज का द्योतक होता है और श्रेष्ठ समाज श्रेष्ठ साहित्य का विधायक। इसी स्थिति को स्पष्ट करते हुए रत्नाकर पाण्डेय लिखते हैं कि – ''साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध मानवता और सभ्यता के विकास का मूल आधार है।

साहित्यकार सामाजिक चेतना से अनुप्राणित रहता है। उसका दृष्टिकोण चाहे आदर्शवादी हो, चाहे यथार्थवादी हो, उसके साहित्य में जहाँ एक और सांस्कृतिक यथार्थ को व्यंजित करने की तत्परता रहती है वहीं पर समाज के वांछित विकास के लिए बेहतर विकल्प देने की अभिलाषा भी रहती है।

साहित्यकार जिस समाज का अंग होता है उसी समाज का वह चित्रण करता है। इस चित्रण में समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर आदर्श की स्थापना करता है, अथवा उसका यथातत्य चित्रण कर एक संकेत देकर दूर हट जाता है। परिणामतः समाज उस चित्रण से प्रभावित होकर स्वचिन्तन के लिए विवश हो जाता है। वाल्मिकी ने अपनी रामायण में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का चित्रण कर अपने दृष्टिकोण के अनुसार समाज के विभिन्न पहलुओं की विवेचना कर यह बताया है कि मानव समाज किस पथ का अनुसारा करने से पूर्ण संतोष और सुख का अनुाव कर सकता है। गोस्वामी तुलसी दास ने भी अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर रामराज्य और राम परिवार को मानव-समाज के सम्मुख आदर्श के रुप में प्रस्तुत किया है।

साहित्यकार समाज का संवेदनशील सदस्य होने के कारण सामाजिक जीवन की यथार्थ स्थितियाँ उसे सामान्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक तीव्रता से प्रभावित करती है। साहित्याकार केवल दिशा ही नही देता बल्कि अपने समकालीन समाज को सजग और सचेत भी करता है। अलका सरावगी अपने इस प्रभाव के बारे में एक साक्षात्कार में कहती हैं – ''अगर आप कोई रचना लिखते हैं तो वह सामाजिक व राजनीतिक नहीं हो ऐसा हो ही नहीं सकता, माने व्यक्ति समाज व राजनीति का हिस्सा है, तो जो कुछ भी आप लिख रहे हैं, आप एक छोटी सी कहानी भी लिख महत्वपूर्ण है। 19 वीं शताब्दी में ही साहित्य समाज के अंतरावलंबन को लेकर विशद विवेचन सामने आया। टेन का कहना है कि किसी भी युग की सांस्कृतिक अन्विति का अध्ययन ''जाति-धर्म, युग-धर्म और सामाजिक प्रवृत्तियों के' समीकृत अध्ययन से हो सकता है।

अनेक साहित्यकारों ने यथार्थ की प्रधानता देकर समाज चित्रण किया है। समाजवादी विचारधारा का आधार लिया है, तथा उस विचारधारा में मौलिक चिन्तन जोड़कर उसे विकसित भी किया है। इन सभी साहित्यकारों के बारे में डॉ. रामदरश मिश्र कहते हैं कि – ''समाजवादी उपन्यास में सदैव सामान्य पीसी हुई जनता और जीवन की नवीन शक्तियों के प्रति सहानुभूति तथा उन्हें स्थापित करने का भाव परोपजीवी, असंगतियों से त्रस्त, जूठी शान से गर्बीले लोग और सड़ी-गली प्राचीन जिन्दगी के ठेकेदारों के प्रति कठोर आक्रोश दिखाई पड़ता है।'' इन साहित्यकारों पर परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों एवं आर्थिक दबावों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। उनके साहित्य का यथार्थ उनके जीवन का भुक्तिभोगी यथार्थ है।

अलका जी ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से कतिपय सामाजिक समस्याओं को यथार्थ रुप में प्रस्तुत किया है। अलका जी समकालीन समस्याओं को कथा-साहित्य की विषयवस्तु में समन्वित करके उनपर गहरा चिन्तन-मनन किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त महानगरीय जीवन का अध्ययन युक्ति संगत है।


### 'कलि-कथा': वाया बाइपास'

अलका जी ने 'कलि-कथा': वाया बाइपास' में मारवाड़ी प्रभाव के साि बंगाली समाज को जोड़ा है और दोनों समाज के सांस्कृतिक पहलुओं को ही नहीं, बल्कि समाज से जुड़े इतिहास और राजनीतिक पक्षों को भी उद्घाटित रने का प्रयास किया है। स्वयं लेखिका के शब्दों में – ''दो संस्कृतियाँ – यह मरुभूमि की रेतीली बालू से आई हुई, दूसरी बंगाल की सभ्य श्यामला धरती पर पनपी हुई। इस धरती ने इन्हें ठौर भी दिया दूर मरूभूमि के वाशिंदों को..... कलकत्ते की तरह यहाँ संस्कृतियाँ समानान्तर नहीं चलती – यहाँ इनके रास्ते एक-दूसरे से बार-बार मिल जाते हैं।'' ''बंगाली व मारवाड़ी जाति दोनों समाजों को लेखिका ने अनेक

कोणों से देखा, उनका रहन-सहन, रीति-रिवाज, व्यावसायिक स्तर, स्त्रियों की दशा, दोनों समाज के लोगों की एक-दूसरे के प्रति मानसिकता, दोनों का जीवन स्तर आदि पक्षों को उजागर किया है। इसी सन्दर्भ में प्रबोध कुमार लिखते हैं कि - ''अलका सरावगी का उपन्यास बंगाली व मारवाडियों का सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास है।''

मारवाड़ी समाज केवल अर्थ केन्द्रित होकर ही रह जाता है, जबकि बंगाली लोग अर्थ केन्द्रित नहीं, समाज केन्द्रीत होते हैं - इसी कारण अमोलक, संपत चाचा, अकाल, महामारी, युद्ध व साम्प्रदायिक दंगों के समय लोगों का बचाव व समाज सेवा का काम करते हैं। ''उसके पिता व चाचा .... हिन्दु, मुसलमानों से श्ज्ञांति की अपील कर रहे हैं। एक सारजेन्ट साथ लेकर अमोलक कुछ लोगों के साथ पैदल घूम रहा है। बड़ा सेवा भाव है इस लड़के में।'' जबकि मारवाड़ी समाज के लोग इनके कार्यों को उचित नहीं मानते, किशोर के मामा इसीलिए अमोलक व उसके पिता की आलोचना करते हैं। ''पैसा कमाना छोड़ अपने मूल वैश्व धर्मसे नीचे उतरकर दान माँगते फिर रहे हैं, करेंगे देश सेवा, मारवाडिय्यों के न ाम पर कलंक हैं ये लोग .... बहुत अपने पुरखों कानाम उजागर कर रहे हैं।

## उपसंहार

अलका सरावगी ने अपने कथा-साहित्य में सामाजिक जीवन के यथार्थ का केवल चित्रण नहीं किया, बल्कि सामाजिक के अन्तरविरोधों और प्रतिरोधी शक्तियों का परिचय भी कराया है, जो मानवीय विकास में बाधक है। उन समस्त प्रतिरोधी शक्तियों का विरोध अलका जी के कथा-साहित्य में स्पष्ट दिखायी देता है।

कलकत्ता में अकाल के समय लोगों की हालत बहुत दयनीय हो गई थी। इन्हीं मजबूरियों का फायदा कलकत्ता में आए अमेरिकन सैनिक उठाते हैं। अमोलक का निम्न कथन इस बात को स्पष्ट करता है - ''सारे शहर में इन लोगों की बदमाशियों के किस्से ..... लगता है ये लोग पूरे कलकत्ता को रंड़ीखाना बना देंगे।''

अत: लेखिका ने 'कलि-कथा' में पूरे समाज व देश में फैली रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, वेश्यावृत्ति आदि सामाजिक प्रसंगों को किशोरबाबू की कथा से जोड़ते हुए चित्रित किया है।

## संदर्भ ग्रन्थ

(1) हिन्दी साहित्य कोष भाग-1
(2) हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना - डॉ. रत्नाकर पाण्डेय
(3) 'कलि-कथा वाया बाइपास' - प्रयोगात्मक संदर्भ - रामगोपाल मीना
(4) जैनेन्द्र के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ - डॉ. सुरेश गायकवाड़

# विरमगाम में देसाई राजवंश की स्थापना


## पटेल बाबूभाई अमराभाई

*पीएच.डी. स्कोलर ( इतिहास ) हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण*


### वैरीसिंह:

देसाई पाटीदार स्वयं को ब्रह्मामाजी के पुत्र काश्य पी ऋषि के वंशज कूर्म ऋषि को अपना पूर्वज मानते हैं और खुद को खुरमी कहते हैं। कन्बी क्रिया का बिगड़ा हुआ रूप है। कन्बीयों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। परंतु प्रारंभ में वे क्षत्रिय थे। और एक सैन्य कमांडर के रूप में उन्होंने शानदार प्रसिद्धि हासिल की है। कई प्रसिद्ध राजवंशों में एक सैनिक के रूप में सेवा करने के बाद, वह गुजरात के निवासी थे और उंझा गाँव में बस गये। परन्तु चावदास के समय में वे उंझा छोड़कर ईडर चले गये। मुस्लिम शासन काल के दौरान, उन पर अत्याचार होने लगा, वे इदर छोड़कर चंपानेर चले गए, लेकिन क्योंकि मुहम्मद बेगड़ा ने किले पर विजय प्राप्त कर ली, इसलिए उन्हें चंपानेर छोड़कर पाटन में शरण लेनी पड़ी। वहां वे रेशम, जूली और किंखाब बुनकर सुखपूर्वक जीवन-यापन कर रहे थे।

लेकिन महमंद बेगड़ा के उस गढ़ को जीतने के बाद पानी फिर गया. कीड़ों के नेता वैर सिंहा की वीरता, वीरता, चालाकी और रणनीति के कारण उस पर विजय पाना कठिन था। लेकिन बाकलिया के विस्फोट के कारण पतई रावल के बहनोई शिवाजी ने किले के दरवाजे खोल दिये थे। लड़ते-लड़ते पतई रावल मारा गया। और उसके वीर सरदार वैरीसिंह तथा अन्य सरदारों को जीवित पकड़ लिया गया। बादशाह उन सभी को अपनी बनाई हुई नई राजधानी महमदाबाद में ले आया और कैद कर लिया।

इस समय मटर परगने में मटरिया राव नामक राजपूत राजा शासन कर रहा था। उनसे झगड़ा करने पर बादशाह ने उन्हें पकड़कर जेल में डाल दिया और मटर परगना खालसा बना दिया। इस मतरिया राव की बहन की शादी विरमगाम के झाला सरदार विरमदेव से हुई थी। उसके पति से हर दिन कोई न कोई आग्रह कर रहा था कि वह अपने भाई को छोड़ दे, इसलिए सम्राट की बेगम सरखेज के दिन कब्र पर श्रद्धांजलि देने आने वाली है। यह सुनकर वीरमदेव वहीं छिप गया और आते ही बेगम को उठाकर विरमगाम की ओर भाग गया। उसने बादशाह से कहा कि 'जब तक आप मेरे जीजा को मुक्त करके उनका राज्य नहीं सौंप देंगे, तब तक बेगम नजर नहीं आएंगी।', उसने वैसा ही किया, लेकिन वह वीरमदेव के क्रोध से उबर नहीं पाया, जिससे उसने बेगम का कब्जा नहीं छोड़ा।'

इस प्रकार महमंद बेगड़ा ने वैरसिंह को रिहा कर दिया, जिसे कैद कर लिया गया था, और उसे बहुत सम्मान दिया और उसे वीरमगाम पर कब्जा करने और बेगम को वापस पाने के लिए एक बड़ी सेना के साथ वीरमगाम भेजा। उसने क्षैतिज मार्ग लेते हुए चुमवाल के सीतापुर गांव में डेरा डाला और वहां से अपने विशिष्ट लोगों को भेजकर किले में प्रवेश किया, बाद में दोनों के बीच जानलेवा युद्ध हुआ, लेकिन वीरमदेव के घमंडी किले रक्षकों की गलती का फायदा उठाते हुए वैरसिंह के गुप्त सैनिकों ने दरवाजा खोला। भोर होने पर वीरमदेव शत्रु को प्रवेश करते देख महल से बाहर भागे, लेकिन अंतत: वैरसिंह के हाथों उन्होंने विजय प्राप्त की और बेगम को बंदी बना लिया और बेगम के साथ वापस लौट आये। अत: बेगदा ने खुश होकर उसे वीरगाम की जागीर उपहार में दे दी। इस प्रकार वैर सिंह से देसाई वंश की स्थापना वीरगाम में हुई, उन्होंने अपने जीवन के अंत तक राज्य पर शांतिपूर्वक शासन किया। लेकिन गवर्नर और सैन्य नेता ज्यादातर मुसलमान थे।

### किशोर दास:

वैर सिंह के बाद किशोर दास गद्दी पर बैठे। उनके समय में जूनागढ़ के झालावाड आदि प्रांतों पर जोर देना बंद कर दिया गया। किशोर दास के भाई प्रहलादजी को प्रशासक कसम अली ने सुपाड़ी की जागीर देने की शर्त पर बाध्य किया। वह सफल हुए और देसाई गिरि का अधिकार हो गया। हालाँकि, किशोर दास के समय में, झालों ने वीरगाम पर फिर से कब्जा कर लिया। लेकिन देसाइयों ने झालों के अधित्यों को स्वीकार कर लिया और वीरगाम की जागीर को वैसे ही बरकरार रखा। उनके बाद रामजी, फिर गंगादास, गंगादास, फिर करमनदास और त्यामरबाद क्रमश: सियोजी, रणमलजी और नाथाभाई गद्दी पर बैठे।

नाथाभाई के ४ बेटे थे जिनके नाम वेनाजी- शानाजी- भानाजी और पारखाजी थे जिनमें वेनाजी के वंशज देसाईगिरी करते हैं। शनजना मार्फतिया देसाई को कहा जाता है.

### शनाजी:

शानाजी की मार्फतिया देसाई कहलाई। और पारखाजी की घंटियाँ देसाई, जबकि भानाजी के वंशज पटलाई बनाते हैं। इसी समय सम्राट बहादुर शाह ने झाला (१५३७ ई.) से वीरमगाम परगने का खालसा छीन लिया।

### वेणीदास:

नाथभाई की मृत्यु के बाद वह गद्दी पर बैठे। इस समय गुजरात पर अकबर ने कब्जा कर लिया और मुगल साम्राज्य के शासन में आ गया। तो शहजादो सलीम जो बाद में मुगल सम्राट जहांगीर के नाम से जाना गया। वह गुजरात के सुबो के रूप में अहमदाबाद आये। हालांकि अहमदाबाद गुजरात की राजधानी है, लेकिन यहां की हवा उन्हें पसंद नहीं आई। इसलिए दिल्ली. बाद में उनका पुत्र सम्राट बनने के बाद चालयोर वापस चला गया। उसने शाहजहाँ को नौकर बनाकर भेजा (१६१८ ई.) लेकिन इसके कारण उसके दीवान बकर अली खान से काठियावाड़ की फिरौती नहीं वसूली जा सकी। अत: सूबा ने वेणीदास को देसीगिरी का अधिकार दिया और साथ ही संग्रह पर साढ़े सात प्रतिशत का वेतन बांधकर जकात वसूल करने का अधिकार भी दे दिया। वेनिदास ने इस बार धंधुका, चुमवाल और काठियावाड़ डिवीजनों के दंगाई लोगों को अपने अधीन कर लिया और उन्हें भयभीत कर दिया।

## मकानजी:

वेणीदास की मृत्यु के बाद माकनजी गद्दी पर बैठे। उनके समय में उनके चचेरे भाई मुगलजी के पुत्र गणेशजी और भीमजी को बादशाह जहांगीर से देसाई दस्तुबारी में भाग लेने की अनुमति मिली। माकनजी के बाद महोतजी और महोतजी के बाद त्रिकमजी गद्दी पर बैठे। जब औरंगजेब सुबो था तो उसने त्रिकमजी को देसगिरि की सनद दी। अत: सम्पूर्ण झालावाड़ एवं सता को ध्वस्त कर दिया गया।

## चचेरा भाई:

त्रिकमजी के बाद, भानाजीभाई तीन बार दिल्ली के सम्राट शाहजहाँ को सम्मान देने गए। फिर उसे सम्राट ने कपड़े पहनाये। भानजीभाई ने चुमवाल और धधुका के दंगाइयों को अपने वश में कर लिया। जब बादशाह शाहजहाँ बीमार पड़ गये तो उनके चारों बेटे गद्दी के लिए अंदर ही अंदर लड़ने लगे, इस कीमत को पूरा करने के लिए त्यादर के गुजरात के सूबा शहजादा मुराद ने नमक अगर की उपज से ३० हजार नजरान इकट्ठा किये। औरंगजेब के दिल्ली की गद्दी पर बैठने के बाद अहमदपुर, दासदा, परगना अलादादु को एक डाकू ने नष्ट कर दिया। अत: भानाजी भाई ने उन्हें अपने अधीन कर लिया और परगना पुन: आबाद कर लिया। अत: सम्राट ने प्रसन्न होकर उन्हें दासदा परगने के पांच गांव सावदा, गोरियावाड, बामनवा, नवरंगपुरा तथा जरवला दे दिये (१६९० ई. में)। उसके कुछ समय बाद भानजीभाई की मृत्यु हो गई।

## उदय कर्णजी:

भानजीभाई के बाद उदयकर्णजी गद्दी पर बैठे। पुराने किले के जीर्ण-शीर्ण हो जाने के कारण १७ ई. में उसने पाँच दरवाजों और दो खिड़कियों वाला एक गोलाकार प्राचीर बनवाया। वह भाग परकोटा कहलाता है। उस हिस्से में उन्होंने एक अलग किलेनुमा राजगादी भी बनवाई। ई.१७२९ में पेशवा चिमनाजी आपा और जनरल कंथाजी कदम ने ८०,००० की सेना के साथ ढोलका पर हमला किया और उस पर कब्जा कर लिया। वहां से लौटकर उन्होंने विरमगाम को घेर लिया। उदयकर्णजी ने मराठों के सभी आक्रमण विफल कर दिये, लेकिन साहूकारों ने लूटे जाने के डर से साढ़े तीन लाख रुपये दे दिये। मराठों को वापस लौटा दिया गया।

हालाँकि देसाइयों के मन में विरमगाम के कसाबाउटियों के प्रति गुप्त द्वेष था, उनके नेता डोलू टांक के भाई अली टांक को उदयकर्णजी ने गुलाम बना लिया और इनाम के रूप में लाखपुर गाँव दे दिया। हालाँकि, उसने कसाबपति की शिक्षाओं के साथ विश्वासघात किया और अपने स्वामी को मार डाला। (१७३० ई.)

उदयकर्णजी ने वीरमगाम में सोमवार, वैशाख सूद-पी, १७ आरपी, वि.सं. १७८१ को राज्य-चिह्न स्थापित किया। था इसके बाद १८८३ ई. में इसकी दोबारा मरम्मत करायी गयी।

## नाना साहेब पेशवा:

नाना साहब १८५७ ई. में अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम के नेता थे। नाना साहब पेशवा वीरागम में पेशवा थे। तो स्वाभाविक रूप से नाना साहब की नजर वीरगाम पर थी इसलिए पेशवाओं ने नाना साहब की मदद की।

## भावसिंहजी:

उनके पुत्र भावसिंहजी छोटे ठाकोरों के रसाला के साथ विरमगाम आए, बाबी सलाबत खान भी देसाई की सहायता के लिए आए। लेकिन अलीटैंक नाशी अहमदाबाद गए और सूबा को वीरमगाम पर हमला करने के लिए राजी किया। सलाबत खान को धोखे से जहर दे दिया गया था ताकि जब इसका पता चले तो उसकी सेना ने डेसाईयों को छोड़ दिया।

इसलिए, कसाबाउटियों ने सूबा शेर बुलंद खान और उनके चाचा चिचंददास की सरदारी को जीवित पकड़ लिया। इसलिए सूबा ने विरमगाम की सरदारी अपने बेटे बाबी कमालुद्दीन को सौंप दी, इस बार पीतांबर नाम का एक देसाई भाग गया और कोडा के ठाकोर कानाजी से मिला और चुमवालियाओं की मदद ली। रात में, उसने सूबा की सेना पर एक आश्चर्यजनक हमला किया, उसने उन सभी को रिहा कर दिया और उन्हें विरमगाम में खदेड़ दिया, जिससे चुमवालिया उत्साहित हो गए और कमालुद्दीन को हरा दिया और विरमगाम पर कब्जा कर लिया। लेकिन अलीटैंक ने फिर से मदद पाकर वीरमगाम पर पुन: कब्जा कर लिया। भावसिंहजी ढोलक गए और दामाजी गायकवाड़ से मिले। मराठी सेना रात में वीरमगाम वापस आई और मानसरोवर से उनके महल के किले की दीवार को तोड़ दिया। नाशी ने चन्नियार के ठाकोर के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। अत: दामाजी राव के सरदार रंगोजी ने छणियार को नष्ट कर दिया। लेकिन अलीटैंक निराश नहीं हुआ।

अहमदाबाद के नये सूबेदार, जोधपुर के राजा, अभय सिंह की अनुमति प्राप्त करने के बाद, वह बाबी जावर्दखान के साथ फिर से विरमगाम पर चढ़ गये।

इसमें कुछ विश्वासघात है. डिप्टी सूबा ने फिर से वीरमगाम पर चढ़ाई की, लेकिन वीरमगाम का किला मजबूत था और उसमें हिलती हुई झीलें थीं, इसलिए उसने दुश्मनों को रोकने के लिए अहमदाबाद की सड़क पर लगे तख्तों को तोड़ दिया और इस तरह किले को मजबूत किया और अंदर से इसकी रक्षा करना शुरू कर दिया। अंदर एक झील थी और अन्न भंडार भरे हुए थे और भोजन और पानी खत्म होने की कोई चिंता नहीं थी, इसलिए दामाजी को किसानों के जासूसों द्वारा लंबे अंधेरे चौलोर के बारे में पता चला और मदद के लिए आए। इस प्रकार दोनों ओर से चिल्लाने पर सुबो भाग गया। लेकिन भावसिंहजी की पीड़ा का कोई अंत नहीं था।

## संदर्भसूची

(१) शास्त्री हरिप्रसाद गंगाप्रसाद, 'गुजरात का प्राचीन इतिहास', गुजरात विश्वविद्यालय, ग्रंथ निर्माण बोर्ड अहमदाबाद, १९६७
(२) शास्त्री डी.के., 'गुजरात का माध्यकालीन राजपूत इतिहास', १९५६
(३) आचार्य एन.ए., 'वाघेला काल गुजरात का सांस्कृतिक इतिहास', ग्रंथ-आर, (टाइप किया गया शोध प्रबंध १९६४)
(४) रावल प्रफुल्लद्य जे., मेरा गांव वीरमगाम, सूचना पुस्तिका, भाग्य दिवस शराफी, सहकारी समिति लिमिटेड, २०१० विरमगाम के उज्ज्वल मोती छोटेलाल पारेख

# नरेन्द्र मोदी काल में भारत-नेपाल सम्बन्ध


## डॉ० मन्मथ नारायण सिंह

*सहायक प्रोफेसर, विश्वविद्यालय विभाग, राजनीति विज्ञान, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड*



### सार तत्त्व

समसामयिक लोकतांत्रिक देशों में भारत एक महान लोकतांत्रिक गणराज्य है, जो धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी तथा लोककल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त को समन्वित रूप में स्वीकार करता है। भारत विश्व राजनीति के साथ-साथ दक्षिण एशियाई राजनीति को सकारात्मक रूप में प्रभावित करता रहा है। भारत की वैदेशिक नीति प्राचीन समय से ही बसुधैव कुटूम्बकम पर आधारित रहा है, जिसका समर्थक गुजराल सिद्धान्त (1997), पड़ोसी नीति (2005) तथा नेवरहूड फस्ट (2014) द्वारा किया जाता रहा है। दूसरी ओर भारत का एक पड़ोसी देश नेपाल है, जो उत्तर-पूर्व में स्थित है। नेपाल दुनिया का भू-आवृत्ति तथा हिमालय की गोद में बसा हुआ एक छोटा सा देश है। यह देश भारत और चीन के बीच अवस्थित होने के कारण एक बफर स्टेट का कार्य करता है।



***मूल शब्दः*** लोकतंत्र, गणतंत्र, कूटनीति, विदेश नीति, राजतंत्र, बफर स्टेट, माओवाद, नक्सलवाद, वामपंथ, बसुधैव कुटूम्बकम।


### प्रस्तावना

भारत तथा नेपाल के बीच का सम्बन्ध ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनीतिक तथा कूटनीतिक दृष्टिकोण से महत्वूपर्ण है। वर्ष 1962 के चीन आक्रमण के बाद भारत के लिए नेपाल के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखना और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। वस्तुतः भारत के उत्तर-पूर्व में स्थित नेपाल सामरिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आज भारत की एक बहुत बड़ी सीमा नेपाल की सुरक्षा पर निर्भर करती है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने 17 मार्च, 1950 को कहा था, "जहाँ तक कुछ एशियाई गतिविधियों का सम्बन्ध है, भारत तथा नेपाल के बीच किसी प्रकार का सैन्य समझौता नहीं है, लेकिन नेपाल पर किए जाने वाले किसी भी आक्रमण को भारत सहन नहीं करत सकता।" अक्टूबर, 1956 में भारतीय राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी नेपाल यात्रा के दौरान भी लगभग नेहरू के समान ही कहा था कि नेपाल की शांति और सुरक्षा के लिए कोई खतरा, भारतीय शांति और सुरक्षा के लिए खतरा है। नेपाल के मित्र हमारे मित्र हैं, नेपाल के शत्रु हमारे शत्रु हैं। स्पष्ट स्वतंत्र भारत शुरू से ही नेपाल में शांति और सुव्यवस्था का पक्षधर रहा है।

नेपाल वर्ष 1947 में संविधान निर्माण की बात सोंची तथा भारत से एक वरिष्ठ राजनीतिज्ञ सुझावकर्त्ता की माँग किया। भारत के एक वरिष्ठ राजनीति श्री प्रकाश को नेपाल भेजा गया, जिनके सुझाव पर नेपाल में एक लोकतांत्रिक संविधान बना। हालांकि उसे राजशाही ने स्वीकार नहीं किया। भारत के द्वारा 1949 में नेपाल के पास महत्वपूर्ण सन्धि का प्रस्ताव रखा गया, परन्तु नेपाल सरकार ने उसे स्वीकार नहीं किया। तिब्बत में चीन की गतिविधियाँ बढ़ने से नेपाल की सुरक्षा के बारे में भारत की चिंता बढ़ गई और 17 मार्च, 1950 को भारतीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने संसद में कहा कि हम नेपाल पर किसी प्रकार के संभावित आक्रमण का जबाव देंगे। 30 जुलाई, 1950 को भारत और नेपाल के बीच एक सन्धि हुई। सन्धि का मुख्य उद्देश्य आपसी विश्वास को बढ़ाना था। इसी समय राणाशाही से मुक्ति के लिए नेपाल में विरोध शुरू हो गया। 16 नवम्बर, 1950 को नेपाल के राजा त्रिभूवन ने राजपरिवार के अपने 14 सदस्यों के साथ राजमहल को परित्याग कर भारत में शरण लिया। भारत के सहयोग से राणाशाही का अन्त हुआ। राणाशाही की समाप्ति के बाद महाराणा नेपाल के वास्तविक शासक बने तथा वहाँ लोकतंत्र की स्थापना हुई।

भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में नेपाल की सदस्यता की वकालत किया, जिसके प्रयास से 1955 में नेपाल, संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना।[1] 1955-56 के बीच भारत एवं नेपाल के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम करने के लिए दोनों देशों के राष्ट्राध्यक्षों के द्वारा एक-दूसरे के देश में यात्रा की गई तथा मित्रता को बढ़ाने की दिशा में प्रयास करने की बात कही गई। दूसरी ओर 1955 से ही चीन ने नेपाल में अपनी सक्रियता का परिचय देना शुरू किया। 1956 के वर्ष में नेपाली प्रधानमंत्री ने चीन की यात्रा किया, तो जनवरी, 1957 में चीनी प्रधानमंत्री ने नेपाल की यात्रा किया। चीन ने नेपाल को आर्थिक सहयोग प्रदान करने की बात कही। 1959 में नेपाली प्रधानमंत्री ने पुनः चीन की यात्रा किया तथा चीनी प्रधानमंत्री को नेपाल की यात्रा हेतु आमंत्रित किया। स्पष्टतः भारत के साथ कायम दोस्ती को अनदेखा करते हुए नेपाल, चीन की ओर आकर्षित होने लगा। नेपाल की विदेश नीति के इस बदलाव को देखते हुए, भारत का चिन्तित होना आवश्यक था। नेपाली महाराजा महेन्द्र ने काठमाण्डु ल्हासा मार्ग बनाने के लिए चीन के साथ समझौता कर लिया, जिसका भारत ने विरोध किया। 1962 में चीन के द्वारा भारत पर आक्रमण कर दिया गया, जिसमें नेपाल तटस्थ रहा। स्पष्टतः 1956 से 1962 तक भारतीय दृष्टिकोण नेपाल के प्रति लचीला था, तब भी नेपाल भारत की ओर कम आकर्षित हुआ। 1962 से 1977 तक नेपाल तथा भारत के बीच के सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाने की दिशा में कई प्रयास किए गए।

भारत तथा नेपाल के बीच का सम्बन्ध 1977 के बाद व्यापक राजनीतिक, कूटनीतिक एवं सामरिक महत्त्व रखता है। मार्च, 1978 में दोनों देशों के बीच दा महत्वपूर्ण सन्धियाँ हुई, जिसके माध्यम से विनिर्मित लगभग 60 वस्तुओं पर से तटकर हटा लिया गया। इतना ही नहीं, भारत ने नेपाल को 16 आवश्यक वस्तुएँ देते रहने का दायित्त्व लिया। भारत के द्वारा नेपाल को अनेक परियोजनाओं में मदद प्रदान की गई, जिसमें देवीघाट, त्रिशुल, कर्नाली, पंचेश्वर जल-विद्युत योजनाएँ,

चक्र नहर परियोजना, कोशी और गंडक परियोजना आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल में संचालित हो रहे त्रिभूवन गणपथ, त्रिभूवन हवाई अड्डा, काठमाण्डू-रक्सौल टेलीफोन संयंत्र वीरगंज, हतौदा रेल निर्माण जैसी परियोजनाओं में भी भारत ने नेपाल को सहायता दिया। स्पष्टत: 1977-80 के बीच भारत, नेपाल से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के दिशा में कार्य करता रहा।

भारत-नेपाल सम्बन्ध वर्ष 1980 से वर्तमान समय तक उतार-चढ़ाव का रहा है। 1985 में नेपाल नरेश ने भारत की यात्रा किया तथा दोनों देशों के बीच पारगमन सन्धि को 1989 तक बढ़ा दिया गया। 1980-1988 तक भारत तथा नेपाल के बीच लगभग सामान्य सम्बन्ध रहा। 1989 में जब भारत-नेपाल के बीच व्यापार तथा पारगमन सन्धि पुन: आगे नहीं बढ़ाया गया, तो दोनों देशों के बीच का मधुर सम्बन्ध नकारात्मक रूप में प्रभावी होने लगा। अप्रैल-मई, 1991 में नेपाल की राजनीतिक व्यवस्था में हो रहे व्यापक लोकतांत्रिकरण का भारत ने समर्थन किया तथा उसे सहयोग करने की बात भी कहा।[2] 5-10 दिसम्बर, 1991 तक नेपाली प्रधानमंत्री गिरिजा प्रसाद कोईराला ने भारत की यात्रा किया। कोईराला को भारत यात्रा से दोनों देशों के सम्बन्धों को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण आधार मिला। अप्रैल, 1993 में नई व्यापार व्यवस्था के अन्तर्गत नेपाली वस्तुओं को बिना सीमा शुल्क के भारत में प्रवेश कराने की बात की गई तथा द्विपक्षीय व्यापार समझौता को आगे बढ़ाने पर भी विश्वास जताया गया। भारतीय उपराष्ट्रपति के.आर. नारायणन के निमंत्रण पर नेपाल के युवराज दीपेन्द्र वीर विक्रम साहदेव ने 1994 में अपनी पहली सरकारी यात्रा भारत के लिए किया। 7 फरवरी, 1995 को नेपाली प्रधानमंत्री श्री माधव कुमार ने भारत की पाँच दिवसीय यात्रा की।[3] इस यात्रा के दौरान 1950 में की गई भारत-नेपाल सन्धि में संशोधन करने की माँग की गई। 12 फरवरी, 1996 से 17 फरवरी, 1996 तक नेपाली प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा ने भारत की यात्रा किया, जिस दौरान महाकाली बेसिन परियोजना टनकपुर बाँध से नेपाल को बिजली और पानी देने सम्बन्धी प्रस्ताव पर भारत ने सहमति प्रदान कर दिया। भारतीय प्रधानमंत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल उच्चस्तरीय प्रतिनधिमण्डल के साथ 5-7 फरवरी, 1997 को नेपाल की यात्रा पर रहे। इस दौरान दोनों देशों के बीच व्यापार समझौता हुआ तथा नागरिक उड्डयन के क्षेत्र में भी एक सहमति पर हस्ताक्षर हुआ। गुजराल की नेपाल यात्रा ने नेपाल की एक बड़ी उपलब्धि यह रही कि उसने बांग्लादेश से अपने देश में जाने के लिए 61 कि.मी. के पारगमन मार्ग की अनुमति भारत से प्राप्त कर लिया। मई, 1998 में के.आर. नारायणन ने राष्ट्रपति के रूप में तीन दिवसीय यात्रा पर नेपाल गए।[4] दूसरी ओर 26 जनवरी, 1999 को नेपाली महाराजाधिराज ने भारतीय गणतंत्र दिवस के अवसर पर मुख्य अतिथि की कुर्सी पर बिराजमान हुए।[5] स्पष्टत: 1980 से लेकर 2000 तक का भारत नेपाल सम्बन्ध सामान्य और मधुर ही रहा। भारतीय विदेश मंत्री यशवंत सिंह ने अगस्त, 2001 में नेपाल की सद्भावना यात्रा किया तथा द्विपक्षीय व्यापार सम्बन्धी समझौते पर अधिकाधिक जोर दिया। मार्च, 2010 में नेपाल के प्रधानमंत्री शेरबहादुर देउबा ने भारत की यात्रा की, जिसमें व्यापार में पारगमन सन्धि पर हस्ताक्षर करके उसे 7 मार्च, 2007 के लिए प्रभावी बनाया गया अर्थात् नवीनीकरण की गई।[6] 1 फरवरी, 2005 को नेपाल में राजशाही के द्वारा शेरबहादुर देउबा की सरकार को बर्खास्त कर दिया गया, जिससे वहाँ राजनीतिक संकट उत्पन्न हो गया। नेपाल में इस आपातकाल के माध्यम से संचार माध्यमों पर कठोर नियंत्रण लगा दिया गया, हालाँकि अन्तर्राष्ट्रीय दबाव में 7 फरवरी, 2005 तक देश का विदेश से संचार आंशिक रूप में बहाल कर दी गई। नेपाल में आपातकाल की समाप्ति तथा लोकतंत्र की बहाली के लिए बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय दबाव को देखकर नेपाली महाराजा ज्ञानेन्द्र ने 21 अप्रैल, 2006 को राष्ट्र के नाम अपने सम्बोधन में जनता को सत्ता सौंपने की घोषणा किया तथा आम चुनाव कराने की बात कही।[7] यह उल्लेखनीय है कि लोकतंत्र की बहाली के लिए भारतीय प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने अप्रैल, 2006 में कर्ण सिंह को विशेष शांति दूत बनाकर नेपाल भेजा था। 25 अप्रैल, 2006 को नेपाल में संसद की बहाली की गई तथा 30 अप्रैल, 2006 को गिरिजा प्रसाद कोईराला ने प्रधानमंत्री पथ की शपथ लिया।[8] इसके साथ ही नेपाल में लोकतंत्र स्थापित हुआ। जून, 2006 में माओवादी गुट भी नेपाल की राजनीतिक व्यवस्था का अंग बन गया तथा नेपाली विधायिका ने एक संविधान बनाने की बात कही, जिसमें लोकतांत्रिक मान्यताओं को अधिकाधिक महत्त्व प्रदान किया गया। माओवादियों ने तो राजा के पद को समाप्त करने की बात कही है। नेपाली सत्ता पर माओवाद का बढ़ते हुए बर्चस्व को देखकर भारत का चिन्तित होना स्वाभाविक है, क्योंकि भारतीय राज्य बिहार में नक्सलवादी और माओवादी गतिवधियाँ इससे अत्यधिक उत्साहित हो सकती है। नेपाली राजनीतिक व्यवस्था में मधेशियों (वैसे नेपाली लोग, जो भारतीय मूल के हैं) की अल्प भूमिका को लेकर फरवरी, 2007 के शुरू में टकराव उपस्थित हो गई। 7 फरवरी, 2007 को तो पुलिस फायरिंग में लगभग दर्जन भर मधेशी मारे गए।[9] नेपाल सरकार के द्वारा मधेशी समाज के खिलाफ की जा रही कार्यवाही के कारण लगभग दस हजार मधेशी भारत में प्रवेश कर गए। इससे भारत सरकार का नाखुश होना स्वाभाविक था। भारत सरकार ने नेपाल सरकार को शांतिपूर्ण ढंग से मधेशी समस्या का समाधान की बात कहीं, तो संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी नेपाल से मधेशी समस्या का समाधान की बात कही। नेपाली प्रधानमंत्री गिरिजा कोईराला राष्ट्र के नाम अपने सम्बोधन में संविधान में संशोधन करने का फैसला किया तथा मधेशियों को समान अधिकार देने की बात कही। इसके बाद भी इन देशों के बीच सामानय स्थिति रही। स्पष्टत: 2000 से लेकर वर्ष 2014 तक भारत-नेपाल का सम्बन्ध लगभग सामान्य और मधुर ही कहा जाएगा।

नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत में वर्ष 2014 में सरकार गठित हुई। मोदी ने भी गुजराल डॉक्टरीन, 1997 तथा पड़ोसी नीति, 2005 को महत्वपूर्ण मानते हुए अपने पड़ोसी देशों को महत्व प्रदान किया है। मोदी के लिए भारत की पड़ोसी नीति में नेपाल और भूटान का सबसे अधिक महत्व रहा है। नरेन्द्र मोदी ने तो 'नेबरहुड फर्स्ट' की नीति को महत्व दिया है। प्रधानमंत्री बनने के बाद नरेन्द्र मोदी की पहली नेपाल यात्रा 3-4 अगस्त, 2014 को सम्पन्न हुई,[10] जिसमें दोनों देशों के बीच अधिक मधूर सम्बन्ध स्थापित करने पर बल दिया गया। जब वर्ष 2015 में नेपाल में भूकम्प आया तो भारत की NDRF ने वहाँ सराहनीय कार्य एवं सहयोग किया। यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 2015 में मधेशियों के लेकर नेपाल सरकार का रूख नकारात्मक भले ही था, लेकिन भारत सरकार ने नेपाल को सहयोग किया। फरवरी, 2018 में विदेश मंत्री सुषमा स्वराज की नेपाल यात्रा से दोनों देशों के सम्बन्ध को बेहतर बढ़ाने पर बल दिया गया तथा रक्सौल-कठमांडु रेल परियोजना को जमीन पर उतारने हेतु सर्वे की बात की गई। नेपाली प्रधानमंत्री की अप्रैल, 2018 में भारत यात्रा सम्पन्न हुई। उनकी यात्रा से दोनों देशों के बीच बेहतर सम्बन्ध पर बल दिया गया।[11] 11 से 12 मई, 2018 का नरेन्द्र मोदी की नेपाल की दूसरी यात्रा हुई तथा 30-31 अगस्त, 2018 को चतुर्थ BIMSTEC समिति को लेकर तीसरी यात्रा हुई।[12] इस दौरान नरेन्द्र मोदी ने नेपाल को खुश करने का जोरदार प्रयास किया तथा के०पी० ओली को 'वाम-नास्तिकता' से अलग

रखने का प्रयास भी किया। प्रधानमंत्री मोदी की रामायण सर्किट कूटनीति को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। मोदी ने कहा कि नेपाल के बिना उनकी यात्रा अधूरी है; इतिहास अधूरी है तथा राम भी अधूरे है। स्पष्टत: प्रधानमंत्री मोदी ने भारत-नेपाल के सांस्कृतिक सम्बन्ध को अधिक मजबूत बनाना चाहा। मोदी ने इस बात पर बल दिया कि भारत और नेपाल वर्तमान और भविष्य में अत्यधिक घनिष्ठ रूप में जुड़े रहें। अपनी नेपाल यात्रा में मोदी ने नेपाल में रोजगार, हाइड्रोपावर, ऊर्जा, रोड, आयल पाइप लाइन, पर्यटन तथा कनेक्टीविटी बढ़ाने पर बल दिया। मोदी ने नेपाल के साथ भारत की द्विपक्षीय रक्षा और सुरक्षा सहयोग को अधिक मजबूत बनाने की बात कही।

नेपाल को भारत के द्वारा लगातार मदद किया जाता रहा है, परन्तु वह चीनी कूटनीति का कभी-कभी शिकार भी होता रहा है। इधर वामपंथी नेपाली प्रधानमंत्री के०पी० ओली के कारण तो नेपाल का लगातार चीन की ओर झुकाव हो रहा है तथा भारत से वह अपने-आपको अलग करता जा रहा है। वर्ष 2019 में चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने नेपाल की यात्रा किया, तबसे नेपाल तथा भारत में लगातार अनावश्यक विवाद को बढ़ावा दिया जा रहा है। फिर भी भारत ने नेपाल को हमेशा की तरह मदद करता रहा है।

## अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारत-नेपाल सम्बन्ध को वर्ष 1950 से लेकर वर्तमान तक का सामान्य अध्ययन तथा नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति एवं कूटनीति का अवलोकन है। इस आलेख का उद्देश्य भारत और नेपाल के सम्बन्ध में किसी दूसरी शक्ति यानी चीन की राजनीति व कूटनीति को भी स्पष्ट करना है। इस आलेख के माध्यम से नेपाल की 'बफर स्टेट' के रूप में भूमिका की सार्थकता का अवलोकन भी अपेक्षित है। भारत-नेपाल विषय पर शोध आलेख का लेखन शैक्षणिक दृष्टिकोण से तो महत्वपूर्ण है ही, राजनीतिक, सामरिक एवं कूटनीतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। इस विषय पर शोध आलेख के लेखन से भारत-नेपाल सम्बन्धों में मतभेद के वास्तविक बिन्दू को ढूँढ़ा जा सकता है; इनके सन्दर्भ में दोनों देशों के बीच बेहतर सम्बन्ध कायम करने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिया गया है। स्पष्टत: प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य व औचित्य स्पष्ट है।

## परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक "भारत-नेपाल सम्बन्ध तथा नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति व कूटनीति: एक अध्ययन" है। इस शोध आलेख की परिकल्पना निम्नलिखित रूप में अपेक्षित है:

1. भारत की विदेश नीति में पड़ोसी राष्ट्रों का हमेशा ही महत्व रहा है तथा नरेन्द्र मोदी सरकार भी पूर्व की भाँति भविष्य में भी नेपाल को महत्व प्रदान करती रहेंगी।
2. नेपाल की विदेश नीति चीन के प्रभाव में भी प्रभावित होती रही है, वर्तमान में भी चीन की सरकार और विचारधारा के प्रभाव में नेपाल का दृष्टिकोण भारत से विपरीत दिखता है, परन्तु अन्तत: नेपाल का झुकाव भारत की ओर ही होगा।

शोध आलेख के माध्यम से भारत-नेपाल सम्बन्धों के मतभेद के वास्तविक बिन्दू को रेखांकित करना अपेक्षित है।

## साहित्य सर्वेक्षण

भारत-नेपाल सम्बन्ध तथा नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति एवं कूटनीति पर अबतक कई महत्वपूर्ण अध्ययन हुए हैं। इस विषय पर प्राथमिक एवं द्वितीय स्रोत उपलब्ध है। साहित्य सर्वेक्षण के अन्तर्गत हमने द्वितीय एवं सहायक स्रोतों को अध्ययन का प्रमुख आधार बनाया है। साहित्य सर्वेक्षण की अनिवार्यता को देखते हुए हमने अपने प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी के निम्नलिखित प्रमुख पुस्तकों का अध्ययन किया है:

1. वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति, तृतीय संशोधित संस्करण, निकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2004
2. प्रो० बी०एम० जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
3. डॉ० एस०पी० सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2019
4. डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा एवं शशी के० जैन, राजनय के सिद्धान्त, कॉलेज बुक्र डिपो, जयपुर, 2006
5. भोला चटर्जी, ए स्टडी ऑफ रिसेन्ट नेपालीज पॉलिटिक्स, द वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता, 1967
6. लियो ई० रोज, नेपाल स्ट्रैटजी फॉर सरवाइवल, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1991

## शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक एवं वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्य सर्वेक्षण का अवलोकन किया गया है, जिसके सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि इसमें तुलनात्मक पद्धति का भी आंशिक प्रयोग किया गया है।

## निष्कर्ष

अबतक के विवेचन से स्पष्ट है कि भारत-नेपाल सम्बन्ध वर्ष 1950 से वर्तमान तक परिवर्तित होता रहा है, परन्तु भारत की वैदेशिक नीति व कूटनीति हमेशा ही नेपाल के प्रति सकारात्मक रही है। नरेन्द्र मोदी की वैदेशिक नीति व कूटनीति भी नेपाल के प्रति पूर्ववत् ही दृष्टिगोचर हो रही है। चीन के हस्तक्षेप के कारण कभी-कभी भारत-नेपाल सम्बन्ध विपरीत रूप में प्रभावित हुआ है। अभी हाल में भारत-नेपाल के बीच तनाव की स्थिति कायम है। इसके पीछे चीन की कूटनीति तथा वाम नास्तिकतावाद की भूमिका है। भारत ही नहीं, नेपाल के हित में है कि दोनों एक-दूसरे से बेहतर सम्बन्ध रखें। प्रस्तुत शोध आलेख की वांछनीयता,

उपादेयता एवं सार्थकता बिल्कुल स्पष्ट है।

## सन्दर्भ-ग्रन्थ


1. डॉ० के०के० शर्मा, भारत-नेपाल सम्बन्ध: एक राजनीतिक अध्ययन, 1988
2. बी० एल० फड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, साहित्यभवन पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ-302
3. तथैव, पृष्ठ-303
4. तथैव, पृष्ठ-303
5. 27 जनवरी, 1999, हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र, पटना
6. 8 मार्च, 2007, हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र, पटना
7. द हिन्दू, 22 अप्रैल, 2006, नई दिल्ली
8. द हिन्दू, 2 मई, 2006
9. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, पटना, 8 फरवरी, 2007
10. दैनिक समाचार, हिन्दुस्तान, 5 अगस्त, 2014, पटना।
11. इंडियन वायर, 9 अप्रैल, 2018
12. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, पटना सितम्बर, 2018

# भारत का परमाणु सिंद्धान्तः चीन व पाक के सन्दर्भ में विश्लेषण


## डॉ० रजवन्त सिंह

*Dr. Rajwant Singh, Associate Professor, MDPG Collage , Pratapgarh*


भारत के प्रथम प्रधानमंत्री प0 नेहरू एवं उनके समकालीन भारतीय परमाणु वैज्ञानिक डॉ0 होमी जहाँगीर भाभा, परमाणु शक्ति के विनाशकारी स्वरूप से परिचित थे। अतः उन्होंने शान्ति एवं मानवता के हित में परमाणु हथियारों के लिए काम करने के बजाए, परमाणु शक्ति के विकासात्मक व कल्याणकारी स्वरूप पर ध्यान केंद्रित किया। 1962 में चीन के हाथों भारत की पराजय एवं 1964 में चीन द्वारा परमाणु विस्फोट के उपरांत भारत को अपनी परमाणु नीति में परिवर्तन करना पड़ा। प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने 1968 के परमाणु अप्रसार संधि (NPT) को भेदभाव पूर्ण कह कर अस्वीकार्य कर दिया। 1974 में भारत ने प्रथम परमाणु परीक्षण का निर्णय लिया और परमाणु हथियारों के निर्माण के संदर्भ में 'विकल्प खुला रखने की नीति' अपनाई। 1978 की देशाई सरकार को छोड़कर आगे आने वाली सभी सरकारों ने इसी नीति को जारी रखा।

विकल्प खुला रखने की नीति के चलते भारत में न केवल 1995 में विस्तारित NPT बल्कि 1996 में प्रस्तावित CTBT पर भी हस्ताक्षर नहीं किया। परमाणु अप्रसार संधियों के लिए बढ़ते दबाव के अलावा उत्तर से पूरब तक (चीन) पश्चिम (पाकिस्तान) और दक्षिण (हिन्द महासागर) में परमाणु हथियारों की उपस्थिति को देखते हुए भारत सरकार ने मई 1998 में द्वितीय परमाणु परीक्षण के माध्यम से भारत को परमाणु शक्ति सम्पन्न देश घोषित कर दिया। तत्कालीन ''प्रधानमंत्री बाजपेई ने संसद में यह बयान दिया कि ''पोखरन प्प् हमारी नीतियों की निरन्तरता है... भारतीय सुरक्षा परिवेश के समक्ष उत्पन्न खतरों का परिणाम है। साथ ही NPT एवं CTBT जैसी संधियों की उपज है।"[1] परमाणु शक्ति सम्पन्नता के उपरांत भारत ने अपने परमाणु सिद्धांतों का निर्धारण किया।

## भारत द्वारा परमाणु सिद्धान्त की घोषणा

सुरक्षा विशेषज्ञ डॉ0 के0 सुब्रमण्यम तथा जनरल के0 सुन्दर जी लम्बे समय से परमाणु हथियारों की वकालत कर रहे थे। अन्ततः ''भारत सरकार ने परमाणु शक्ति संम्पन्नता की घोषणा के साथ परमाणु सिंद्धान्तों के निर्धारण के लिए एक ''राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार बोर्ड" (NSAB) का गठन किया, जिसका अध्यक्ष डॉ0 के0 सुब्रमण्यम को नियुक्त किया गया। इस सलाहकार बोर्ड में केवल गैर सरकारी विशेषज्ञों को जगह दी गयी। इस बोर्ड ने भारत के सुरक्षा संदर्भों को ध्यान में रखकर एक ड्राफ्ट तैयार किया जिसे अगस्त 1999 में सार्वजनिक कर दिया गया"।[2] इसी ड्राफ्ट को आधार बनाकर जनवरी 2003 में भारत सरकार ने परमाणु सिद्धांन्तों की आधिकारिक घोषणा कर दी। भारतीय परमाणु सिद्धान्त में निम्न बातों का समावेश है।

### *(I) प्रथम प्रहार न करने का सिद्धांतः*

इसका तात्पर्य यह है कि जब तक कि कोई देश भारतीय भूमि अथवा सशस्त्र बलों पर परमाणु हमला नहीं करेगा तब तक भारत उस पर नाभकीय अस्त्रों का प्रयोग नहीं करेगा। इस नीति से भारत यह स्पष्ट करना चाहता है कि उसका परमाणु हथियार आक्रमण के बजाय सुरक्षा के लिए है। इससे पाकिस्तान एवं चीन जैसे परमाणु शक्ति सम्पन्न पड़ोसी भी भारत के प्रथम प्रहार न करने को लेकर आश्वस्त हो सकते हैं।

### *(II) किसी गैर परमाणु राष्ट्र पर हमला न करने का आश्वासनः*

भारत के ज्यादातर पड़ोसी व दुनिया के अधिकांश देश गैर परमाणु राष्ट्र हैं जिन्हें इस सिद्धांत से यह आश्वासन दिया गया है कि उन्हें भारतीय परमाणु हथियारों से डरने की आवश्यकता नहीं है।

### *(III) विश्वसनीय न्यूनतम निवारक शक्ति का निर्माण व रख रखावः*

भारत असीमित परमाणु शक्ति भंण्डारण का पक्षधर नहीं है। वह उतना ही परमाणु हथियार रखेगा जितना कि उसकी सुरक्षा के लिए जरूरी है। यह एक सामरिक क्षेत्र की कूटनीतिक शब्दावली है जिसका सहारा लेकर निर्णयकर्ता जितना चाहे उतना हथियारों का भण्डारण कर सकता है क्योंकि विश्वसनीय न्यूनतम निवारक शक्ति एक अपरिभाषित शब्दावली है, जिसका इच्छानुसार विस्तार किया जा सकता है।

### *(IV) परमाणु हमले का लक्ष्य पूर्ण विनाशकारी (Massive Retaliation) होगाः*

परमाणु हथियार दहशत पैदा करने वाले हथियार होते हैं। अतः शत्रु को हमला करने से रोकने हेतु अथवा प्रतिरोधक बल प्राप्त करने के लिए इस सिद्धांत का उदेश्य शत्रु को अस्वीकार्य क्षति पहुँचाने वाले पूर्ण विनाशकारी हमले का विश्वास दिलाना है।

### *(V) रासायनिक व जैविक हथियारों के विरूद्ध परमाणु हमले की नीतिः*

यदि कोई देश, चाहे वह परमाणु राष्ट्र हो अथवा गैर परमाणु राष्ट्र, भारतीय भूमि अथवा बलों पर रासायनिक या जैविक हथियारों से हमला करेगा तो उसके विरूद्ध परमाणु हथियारों का प्रयोग किया जायेगा। यह सिद्धांत मूल ड्राफ्ट में नहीं था, जिसे बाद में 2003 में परमाणु सिद्धांत में जोड़ा गया है।

### *(VI) राजनीतिक नियंत्रण आधीन छब का गठनः*

यह सिद्धांत यह आश्वस्त करता है कि परमाणु हथियारों के प्रयोग का निर्णय एक निर्वाचित एवं जिम्मेदार सरकार के हाथ में रहेगा। भारत ने 04 जनवरी 2003 को ''परमाणु कमाण्ड अथारिटी'' का गठन कर दिया है। इसका दो भाग है, पहला- प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करने वाली राजनीतिक परिषद जिसे परमाणु हथियारों के प्रयोग का निर्णय लेने का अधिकार है। दूसरा- राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहाकर के नेतृत्व में संचालित कार्यकारी परिषद, जो राजिनीतिक परिषद को निर्णय हेतु इनपुट प्रदान करेगा तथा निर्णय के उपरान्त उसका क्रियान्वयन सुनिश्चित करेगा। भारत में परमाणु बटन प्रधानमंत्री के हाथ में है।

### *(VII) आगे परमाणु परिक्षण न करने की नीतिः*

दूसरे परमाणु परीक्षण के उपरान्त भारतीय परमाणु वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार्य किया कि भारत बिना वास्तविक परीक्षण के परमाणु हथियारों की गुणवत्ता व तकनीकी उन्नयन हेतु डिजीटल परीक्षण में सक्षम है। इसे ध्यान में रख कर भारत सरकार ने अब वास्तविक परीक्षण न करने का आश्वासन दिया है।

### *(VIII) पारदर्शी व भेदभाव रहित परमाणु अप्रसार व निसस्त्रीकरण का समर्थनः*

भारत की आरंम्भिक दौर से ही यह नीति रही है कि उसने पारदर्शी व भेदभाव रहित परमाणु संधियों का समर्थन किया है किन्तु भेदभाव पूर्ण NPT व CTBT को आज तक स्वीकार्य नहीं किया है। ''भारत परमाणु हथियार रहित विश्व की परिकल्पना को मान्यता देता है बशर्ते कि सभी परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र पारदर्शी तरीके से परमाणु नि:शस्त्रीकरण के भेदभाव रहित व्यवस्था को स्वीकार्य करके ''GlobalZ ero'' के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तैयार हों"।[3]

## परमाणु हथियारों व बलों की तैनाती तथा द्वितीय प्रहार क्षमता पर विशेष जोरः

भारत के परमाणु सिद्धांत दस्तावेज में परमाणु अस्त्रों व बलों कि तैनाती तथा स्थल वायु व समुद्र से परमाणु हमला करने कि त्रिआयामी क्षमता के अलावा परमाणु शीर्ष (Nuclear warhead) लगे लम्बी दूरी तक मार करने में सक्षम वेलेस्टिक व क्रूज मिसाइलों और पण्डुब्बिओं से छोड़े जाने वाले SLBM पर जोर दिया गया है। भारतीय परमाणु सिद्धांत में प्रथम प्रहार न करने की बचनबद्धता के वजह से द्वितीय प्रहार क्षमता पर ज्यादा भरोसा किया गया है जिसके लिए ''उत्तरजीविता (Survivability) के महत्व को रेखांकित करते हुए परमाणु हथियारों व उसके भण्डार को किसी सम्भावित चोरी, नुकसान तबाही, तोड़फोड़, अनाधिकार प्राप्ति व प्रयोग से सुरक्षा देने की प्रतिबद्धता व्यक्त की गयी है। उत्तरजीविता हेतु प्रारम्भिंक चेतावनी क्षमता व प्रभावी आसूचना के साथ-साथ कमाण्ड व नियंत्रण प्रणाली की गोपनीयता व अभेद्यता बनाये रखते हुए शस्त्रों को ऐसे स्थानों पर छुपाकर रखना है जो शत्रु के लिए अज्ञात हो"।[4] जिससे कि शत्रु के प्रथम प्रहार के बावजूद प्रभावी द्वितीय प्रहार क्षमता शेष रहे।

## चीन के संदर्भ में भारत के परमाणु सिद्धांत की समीक्षाः

चीन के हाथों 1962 के युद्ध में मिली पराजय और 1964 में चीन द्वारा परमाणु विस्फोट के उपरान्त भारत ने अपने परमाणु नीति में परिवर्तन किया और उसका परमाणु कार्यक्रम इस बात के तरफ भी अग्रसर हुआ कि परमाणु हथियार क्षमता कैसे विकसित की जाए। 1998 में भारत द्वारा स्वत: को परमाणु राष्ट्र घोषित करने से पहले भारतीय रक्षा मंत्री जार्ज फर्नाडिंज ने यह बयान दिया था कि चीन हमारा प्रथम शत्रु है। इससे भारत का संकेत स्पष्ट था कि भारतीय परमाणु हथियार कार्यक्रम मुख्यत: चीन के संदर्भ में है। इसके बावजूद जब भारत ने अपने परमाणु सिद्धांत की रूपरेखा अगस्त 1999 में प्रस्तुत की तो उसमें NFU (No first use) की अवधारणा समाहित थी, जिसकी जबरदस्त आलोचना की गयी। इसके पीछे तर्क यह था कि परम्परागत हथियारों में ताकतवर चीन को आक्रमक गतिविधियों से रोकने के लिए प्रथम प्रहार की सम्भावना को बनाया रखा जाना चाहिए था। इस तथ्य को लेकर आज भी भारतीय परमाणु सिद्धांत NFu~ की आलोचना होती है।

परमाणु प्रतिरोधकता सिद्धांत के जानकार इस बात को जानते हैं कि परमाणु हथियार युद्ध लड़ने के हथियार न होकर शुत्र को युद्ध से प्रतिरोधित करने के हथियार हैं, जिससे कि वह शत्रु ऐसा कोई कार्य न करे जो हमारी सुरक्षा अथवा राष्ट्रीय हितों को क्षति पहुंचाने वाली हो। दो परमाणु राष्ट्रो के बीच प्रभावी परमाणु प्रतिरोधकता तभी प्राप्त की जा सकती है जबकि प्रतिरोधक के पास द्वितीय प्रहार क्षमता हो। चीन की विशाल परिधि, समुद्र एवं स्थल पर बिखरे परमाणु हथियार तथा हाइड्रोजन बम सहित 400 से अधिक परमाणु हथियारों का जखीरा, सक्षम पूर्व चेतावनी एवं मिसाइल बचाव प्रणाली तथा सम्पूर्ण भारतीय क्षेत्रों पर स्टील्थ तकनीकी से युक्त चौथी एवं पांचवी पीढ़ी के हवाई जहाजों एवं लम्बी दूरी तक मार करने में सक्षम मिसाइलों, जिन्हें कि स्थल जल व हवा से छोड़े जाने की क्षमता चीन के पास भारत के विरूद्ध असंदिग्ध रूप से उपलब्ध है, उसे भारत के विरूद्ध द्वितीय प्रहार क्षमता प्रदान करती है। ऐसे में भारतीय परमाणु सिद्धांत में प्रथम प्रहार होने अथवा न होने का कोई वास्तविक अर्थ नहीं है।

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि चीन को भारत के विरूद्ध आक्रमक गतिविधियों से कैसे रोका जाए? आज भारत के पास 150 से उपर परमाणु हथियार हैं, जिसमें हाइड्रोजन बम की क्षमता भी शामिल है। भारती सेना में परमाणु हथियार गिराने में सक्षम मिग 29, SU 30èसुखोई व राफेल जैसे तीसरी एवं चौथी पीढ़ी के विमान तथा लम्बी दूरी तक (5000 किमी0 से उपर) मार करने व परमाणु शीर्ष ले जाने में सक्षम मिसाइलें मौजूद हैं। भारतीय डिलीवरी सिस्टम भी स्टील्थ तकनीकी से युक्त है। भारत के पास पूर्व चेतावनी प्रणाली (AWACS), एयर डिफेंस सिस्टम (S 400) तथा एक मजबूत नौसेना जिसमें दो परमाणु पन्डुबियों सहित 18 पन्डुबियाँ जो परमाणु शीर्ष से युक्त SLBM फायर करने में सक्षम हैं, मौजूद है। भारत ने परमाणु हथियारों को स्थल एवं जल के एक विशाल क्षेत्र में फैला रखा है जिसको आवश्यक होने पर स्थल वायु एवं समुद्र से छोड़ा जा सकता है। भारत की इस परमाणु क्षमता को निश्चित प्रतिकार (Assured

Retaliation) से आगे निश्चित विनाश (Assured Distuaction) की सीमा तक ले जाकर ही चीन के विरूद्ध विश्वसनीय प्रतिरोधक बल प्राप्त किया जा सकता है। चीन के विरूद्ध भारत की निश्चित विनाश क्षमता अभी संदिग्ध है।

जहाँ तक चीन की परम्परागत सेनाओं द्वारा भारतीय सीमा में घुसपैठ को रोकने का प्रश्न है उसके लिए सीमावर्ती क्षेत्रों में मजबूत मोर्चे बन्दी के अलावा परम्परागत शक्ति के अन्तर को भरने के लिए सीमा पर तैनात सेनाओं को सामरिक परमाणु हथियारों (Tactical Nuclear Weapon) से लैस करना होगा। परमाणु सिद्धांतकार वूफ्रे कहता है कि ''सामरिक परमाणु हथियारों द्वारा परम्परागत शक्ति को स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है। युद्ध के स्वत: वृहद स्वरूप ग्रहण करने का भ्रम (Possbility of Escalation) उत्पन्न करके शत्रु को कुतरने (थोड़ा-थोड़ा करके जमीन हड़पने) के प्रयासों से विमुख करने का उद्देश्य पूरा किया जा सकता है"।[5]

## पाकिस्तान का परमाणु बम कार्यक्रम एवं भारतीय परमाणु सिद्धांत:

''पाकिस्तान का परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम डॉ नजीर अहमद की अध्यक्षता में गठित एटामिक एनर्जी कौसिंल के माध्यम से प्रारम्भ हुआ। इस कौसिंल को सरकार ने 1956 में पाकिस्तानी एटामिक एनर्जी कमीशन में परिवर्तित कर दिया"।[6] ''जुल्फीकार अली भुट्टो जो 1958 से 1977 तक पाकिस्तान के नाभिकीय कार्यक्रम के प्रभारी थे, ने एक अभियान के तहत हजारों पाकिस्तानी नौजवानों को नाभिकीय विज्ञान के अध्ययन के लिए विदेश भेजा ताकि परमाणु कार्यक्रम हेतु तकनीकी क्षमता व प्रशिक्षण प्राप्त किया जा सके"।[7] भारत से 1965 और 1971 के परम्परागत युद्धों में पराजित होने के उपरान्त पाकिस्तान ने परमाणु बम प्राप्त करने का निश्चय किया। पाकिस्तान के लिए परमाणु बम विकसित करने का श्रेय डा0 अब्दुल कादिर खान को दिया जाता है जिन्होंने ''नीदरलैंड में यूरेनिय संवर्धन संयत्र में परमाणु ईंधन कम्पनी URENCO के लिए काम करते हुए गैस सेन्ट्रीफ्यूज यूरेनियम इनरिचमेंन्ट तकनीकि में प्रशिक्षण प्राप्त किया और वहाँ से प्राप्त ज्ञान के साथ 1975 में पाकिस्तान आ गये"।[8] डॉ0 खान के निर्देशन में पाकिस्तान ने एक गुप्त अभियान के तहत परमाणु बम के लिए जरूरी तकनीकी, संसाधन व उपकरण अनेक देशों विशेषत: यूरोपीय देशों से प्राप्त किया। अनाधिकारिक रूप से प्राप्त सूचना के अनुसार पाकिस्तान ने 1987 तक परमाणु हथियार विकसित कर लिया। पाकिस्तान में तैनात अमेरिकी अधिकारी रीचर्ड वार्लो ने अमेरिकी सरकार को लिखे गये पत्र के माध्यम से यह रहस्योद्घाटन किया कि पाकिस्तान ने परमाणु हथियार विकसित कर लिया है। परमाणु हथियार विकसित करने के उपरान्त पाकिस्तान ने भारत के विरूद्ध 1989 में ऑपरेशन टोपाक के माध्यम से आतंकवाद का प्रत्यायोजन शुरू किया। लगातार आतकंवादी गतिविधियों को संचालित करने के बावजूद परमाणु ढाल के चलते पाकिस्तान भारत के परम्परागत हमले से बचा हुआ है। मई 1998 में भारतीय परमाणु परीक्षण (पोखरण II) के बाद पाकिस्तान ने मई के अंत में परमाणु परीक्षण कर आधिकारिक तौर पर स्वत: को परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र घोषित कर दिया। इस परीक्षण से पाकिस्तान ने यह दावा किया कि उसके पास हाइड्रोजन बम तथा सामरिक परमाणु हथियार बनाने की क्षमता मौजूद है।

पाकिस्तान का परमाणु कार्यक्रम भारत केन्द्रित है और उसके परमाणु सिद्धांत में प्रथम प्रहार की छूट है। पाकिस्तानी परमाणु विस्फोट के समय राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने यह घोषणा की कि परमाणु हथियारों के होने का तात्पर्य है कि उनका किन्हीं परिस्थितियों में प्रयोग किया जायेगा। पाकिस्तानी परमाणु क्षतरी के नीचे भारत के विरूद्ध चलने वाले आतंकवाद से निपटने के लिए, भारतीय संसद पर हुए आतंकवादी हमले के बाद 2001 में Pro active strategy का भारत ने निर्माण किया, जिसके अस्तित्व को 2017 में जनरल विपिन रावत ने पहली बार Cold start strategy के नाम से स्वीकार कर लिया। कोल्ड स्टार्ट और प्रो एक्टिव रणनीतियों में सिर्फ नाम का भेद है। संसद पर हुए हमले के उपरान्त भारत को जवाबी कार्यवाही के लिए सैनिकों को जुटाने एवं तैनात करने में दो महीने लग गये जिससे कि पाकिस्तान को शतर्क हो जाने का मौका मिल गया और वह दण्डात्मक कार्यवाही से बच गया। इसी के बाद भारतीय रणनीतिकारों ने प्रो एक्टिव अथवा ''कोल्ड स्टार्ट रणनीति का निर्माण किया, जिसमें ऐसी सैन्य तैयारी अपेक्षित है कि आक्रमण आदेश के 48 घंटे के भीतर पाकिस्तान को परमाणु प्रतिकार का मौका दिये वगैर तीनों सेनाओं की संयुक्त आक्रामक कार्यवाही के माध्यम से शत्रु को आश्चर्य चकित कर उद्देश्य प्राप्त करना अपेक्षित है"।[9]

पाकिस्तान ने कोल्ड स्टार्ट अवधारणा को निष्प्रभावी बनाने के लिए ''सामरिक परमाणु हथियार आधारित प्रतित्युत्तर" (Tactical Nuclear Weapon Base Response) रणनीति अपनानें का दावा किया है। इस रणनीति में पाकिस्तान द्वारा TNW बनाने एवं उसे भारत पाक सीमा पर नम्र (मारक क्षमता 60 किमी0) जैसी मिसाइलों पर तैनात करने के अलावा स्थानीय कमाण्डर को भारत के अचानक परम्परागत आक्रमण अथवा भारतीय सेना द्वारा पाकिस्तानी भूमि पर कब्जा करने की दशा में प्रयोग की अनुमति दी गयी है। ''तत्समय संयुक्त राष्ट्र में तैनात पाकिस्तानी राजनयिक मसीहा लोधी के अनुसार सामरिक परमाणु हथियारों के प्रति पाकिस्तान के आकर्षण का आधार भारत के परम्पारगत सैन हमले का प्रतिकार करना है"।[10]

भारत के परम्परागत हमले से बचने के लिए पाकिस्तान ने अपने परमाणु सिद्धांत में प्रथम प्रहार पर रोक नहीं लगायी है। आज पाकिस्तान के पास 150 से उपर परमाणु हथियार हैं। उसने 2000 किमी0 तक मार करने में सक्षम वैलेस्टिक एवं क्रूज मिसाइलें प्राप्त कर ली हैं। उसके पास परमाणु हथियार ले जाने में सक्षम मिराज III व V, एफ-16 तथा जे0एफ0-17 जैसे विमान हैं। पाकिस्तान ने फ्राँस से अगोस्ता पन्डुब्बी प्राप्त की है जिससे परमाणु मिसाइलों को फायर किया जा सकता है। इस तरह पाकिस्तान के पास भारत के विरूद्ध स्थल वायु व समुद्र से प्रथम प्रहार की क्षमता मौजूद है किन्तु संदिग्ध द्वितीय प्रहार क्षमता के कारण वह भारत पर सामान्य परिस्थिति में परमाणु हमले का निर्णय नहीं ले सकता क्योंकि भारत के पास पाकिस्तान के विरूद्ध प्रभावी द्वितीय परमाणु प्रहार क्षमता मौजूद है।

भारत की परमाणु क्षमता इतनी है कि वह प्रथम प्रहार से पाकिस्तान की द्वितीय परमाणु प्रहार क्षमता को करीब-करीब नष्ट कर सकता है परन्तु भारत का परमाणु सिद्धांत प्रथम प्रहार की इजाजत नहीं देता। उस स्थिति में जबकि भारत के परम्परागत हमले से पाकिस्तान पूर्ण पराजय की कगार पर पहुँच जाए, वह भारत के विरूद्ध प्रथम प्रहार का निर्णय लेकर भारी भौतिक व मानवीय क्षति पहुँचा सकता है। इस स्थिति से बचने के लिए भारत को पाकिस्तान के विरूद्ध Pre empitive stratigy का पालन करना चाहिए जहाँ परमाणु हमले की स्पष्ट आशंका की दशा में पहला हमला जरूरी हो जाता है। भारत को चाहिए कि वह अपने परमाणु सिद्धांत में संशोधन करके कुछ दशाओं में प्रथम प्रहार को मान्यता दे दे।

## निष्कर्षः

परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र होने बावजूद भारत पश्चिम से पाकिस्तान के प्रत्यायोजित आतंकवाद तथा उत्तर से पूरब तक चीन के सीमा घुसपैठ से पीड़ित है। चीन से बचने के लिए सीमावर्ती क्षेत्र में सुदृढ़ मोर्चेबन्दी के अलावा परम्परागत सेना की शक्ति विषमता को समाप्त करने के लिए भारतीय फोजों को TNW से लैस किया जाना चाहिए। चीन के किसी दुस्साहस को रोकने के लिए उक्त परम्परागत उपायों के अलावा परमाणु क्षेत्र में निश्चित विनाश क्षमता प्राप्त करना अति आवश्यक है। पाकिस्तान द्वारा चलाये जा रहे प्राक्सी युद्ध का परमाणु हथियारों से रोकथाम अथवा इलाज सम्भव नहीं है। अतः सीमा चौकसी, सटीक आसचूना, त्वरित एवं प्रभावी प्रति आतंकवाद की कार्यवाही तथा आतंक प्रभावित क्षेत्र में जनता का विश्वास हासिल कर सफलता प्राप्त की जा सकती है।

## संदर्भः


1. राष्ट्रीय सुरक्षा के मूलाधारः लेखकः डा0 सूरत पाण्डेय, द्वितीय संस्करण 1999, प्रकाशक- प्रकाश बुक डिपो बरेली, पृष्ठ संख्याः 111 पर उपलब्ध।
2. राजेश राजा गोपालन का आलेखः 'India"s Nuclear Policy" oscokbV% nids.mod.go.kzp (http.//www.nids.mod.go.kzp.) पर उपलब्ध।
3. परमाणु सिद्धान्तों का विस्तृत विवरण भारत सरकार की वेबवाइटः archive.pib.gov.in(http//archive.pib.gov.in) पर उपलब्ध है।
4. राष्ट्रीय सुरक्षा के आयाम- लेखकः प्रो0 शेखर अधिकारी, प्रथम संस्करणः 2019, प्रकाशकः आर0डी0यू0 पब्लिशिंक हाउस, प्रयागराज। पृष्ठ संख्याः 215 पर उपलब्ध।
5. राष्ट्रीय सुरक्षा- लेखकः जे0एम0 श्रीवास्तव एवं प्रो0 हर्ष सिन्हां, तृतीय संशोधित संस्करण 2017, प्रकाशकः ए0एस0आर0 पब्लिकेशन्स, सरोजनी नगर, लखनऊ। पृष्ठ संख्याः 526 पर उपलब्ध।
6. राष्ट्रीय सुरक्षा- लेखकः जे0एम0 श्रीवास्तव एवं प्रो0 हर्ष सिन्हां, तृतीय संशोधित संस्करण 2017, प्रकाशकः ए0एस0आर0 पब्लिकेशन्स, सरोजनी नगर, लखनऊ। पृष्ठ संख्याः 533 पर उपलब्ध।
7. बदलती दुनिया में भारतीय विदेश नीति (2) लेखक-वी0पी0 दत्ता, द्वितीय संस्करण 2009 प्रकाशक हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दि0वि0वि0 पृष्ठ संख्याः 489 पर उपलब्ध।
8. राष्ट्रीय सुरक्षा के आयाम- लेखकः प्रो0 शेखर अधिकारी, प्रथम संस्करणः 2019, प्रकाशकः आर0डी0यू0 पब्लिशिंक हाउस, प्रयागराज। पृष्ठ संख्याः 220 पर उपलब्ध।
9. इण्डियन एक्सप्रेस पेपर की वेबसाइट पदकपंदमगचतमेण्बवउ पर 21 सितम्बर 217 का आलेख-Whatis India"s Cold Start Doctring? देखिए।
10. त्रैमासिक पत्रिका इण्डियन डिफेंस रिब्यू में ब्रिगेडियर पी सुब्रमण्यम का 30 अक्टूबर 2016 का आलेख ''Pakistan"s Tactical Nuclear Weapons and India"s Respons जो पत्रिका की वेबसाइट www.indiandifencereview.com पर उपलब्ध है।

# डिजिटल युग का हिंदी साहित्य पर प्रभाव और डिजिटल छत्तीसगढ़ी की स्वरूप संभावनाएं


## डॉ० बृजेन्द्र पाण्डेय

*सहायक प्राध्यापक, मानव संसाधन विकास केन्द्र, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर*



## सारांश

डिजिटल काल तकनीकी और सूचना के उस युग को संदर्भित करता है जहां डिजिटल प्रौद्योगिकी के प्रयोग ने हमारे जीने, काम करने और संवाद करने के ढंग को बदल दिया है। यह स्मार्टफोन, कंप्यूटर और इंटरनेट जैसे डिजिटल उपकरणों के व्यापक उपयोग की विशेषता है, जिसने हमें जानकारी तक पहुंचने, साझा करने, दूसरों के साथ जुड़ने और व्यापार करने के तरीके में क्रांति ला दी है। डिजिटल युग का संस्कृति, कला और साहित्य सहित आधुनिक समाज के वस्तुतः हर पहलू पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

डिजिटल युग साहित्य में एक ऐसा समय है जब डिजिटल तकनीक ने लेखन, प्रकाशन और पठन के ढंग को पूरी तरह से बदल दिया है। डिजिटल साधनों ने लेखकों और प्रकाशकों के लिए नए माध्यम खोले हैं जिससे वे अपने लेखन को अधिक पाठकों तक पहुंचा सकते हैं। इसके साथ ही, डिजिटल प्रौद्योगिकी ने पाठकों को लेखन सामग्री अधिक सरलता से उपलब्ध कराया है और उन्हें अधिक विकल्प प्रदान किया है। इस प्रकार डिजिटल युग ने हिंदी साहित्य में बड़े संवाद का रूप ले रखा है।

डिजिटल युग में जिस तरह से हिन्दी साहित्य लिखा, वितरित और उपभोग किया जा रहा है, लेखकों और प्रकाशकों के लिए दर्शकों तक पहुँचने के नए रास्ते खोल दिए हैं, और उन्होंने पाठकों को साहित्य तक पहुँचने और उससे जुड़ने के अधिक विकल्प प्रदान किए हैं।

डिजिटल तकनीक ने सूचना तक पहुँचने, बनाने और साझा करने के तरीके में क्रांति ला दी है और साहित्य सहित लगभग हर उद्योग पर इसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। डिजिटल प्रौद्योगिकी के उदय ने लेखकों, प्रकाशकों और पाठकों के लिए एक दूसरे के साथ बातचीत करने के नए अवसर पैदा किए हैं और साहित्य के उत्पादन, वितरण और उपभोग के तरीके को बदल दिया है।



**मूल शब्दः** परिवर्तन, विकास, मशीनी अनुवाद, छत्तीसगढ़ी, नियम आधारित प्रणाली, उपलब्धता, कंप्यूटरीकृत


## परिचय

हिंदी साहित्य पर डिजिटल युग के सबसे महत्वपूर्ण प्रभावों में से एक पारंपरिक प्रिंट प्रकाशन से डिजिटल प्रकाशन में बदलाव है। ई-पुस्तकों और ई-पाठकों के आगमन के साथ, पाठक अब कभी भी और कहीं भी हिंदी साहित्य का उपयोग कर सकते हैं। इससे न केवल हिंदी साहित्य अधिक सुलभ हुआ है बल्कि हिंदी भाषी क्षेत्रों की पारंपरिक सीमाओं से परे हिंदी साहित्य की पहुंच भी बढ़ी है।

डिजिटल प्रकाशन के अलावा, डिजिटल युग ने हिंदी लेखकों के लिए अपने काम को बढ़ावा देने और सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से नए दर्शकों तक पहुंचने के नए अवसर भी खोले हैं। फेसबुक, ट्विटर और इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म हिंदी लेखकों के लिए पाठकों से जुड़ने, उनके काम को बढ़ावा देने और प्रतिक्रिया प्राप्त करने के शक्तिशाली साधन बन गए हैं।

इसके अलावा, डिजिटल युग ने हिंदी साहित्य के नए रूपों, जैसे डिजिटल कविता और इंटरैक्टिव स्टोरीटेलिंग के उद्भव को भी सक्षम किया है, जो पाठकों के लिए आकर्षक साहित्यिक अनुभव बनाने के लिए डिजिटल मीडिया की अनूठी विशेषताओं का उपयोग करते हैं।

हालाँकि, डिजिटल युग हिंदी साहित्य के लिए अपनी चुनौतियाँ भी लाया है। सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक फेक न्यूज और गलत सूचनाओं का प्रसार है, जो हिंदी साहित्य और उसके लेखकों की विश्वसनीयता को नुकसान पहुंचा सकता है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल क्षेत्र में अंग्रेजी का बढ़ता वर्चस्व हिंदी साहित्य के लिए व्यापक दर्शकों तक पहुंचना मुश्किल बना सकता है।

## सकारात्मक प्रभाव

- हिंदी साहित्य पर डिजिटल युग का सबसे बड़ा सकारात्मक प्रभाव प्रकाशन का लोकतंत्रीकरण रहा है। डिजिटल प्लेटफॉर्म ने लेखकों के लिए स्वयं-प्रकाशन करना और छोटे प्रकाशकों के लिए बड़े प्रकाशन गृहों के साथ प्रतिस्पर्धा करना आसान बना दिया है। इसके परिणामस्वरूप हिंदी साहित्य में स्वरों और दृष्टिकोणों की एक अधिक विविध श्रेणी बन गई है।

- डिजिटल तकनीकों ने पाठकों के लिए उनके स्थान या भाषा कुशलता की फिक्र किए बिना हिंदी साहित्य तक उनकी पहुँच को आसान बना दिया है। ई-बुक्स, ऑडियो बुक्स और ऑनलाइन पत्रिकाओं ने हिंदी साहित्य को वैश्विक दर्शकों तक पहुंचाना संभव बना दिया है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म ने पाठकों को लेखकों और प्रकाशकों के साथ जुड़ने, प्रतिक्रिया प्रदान करने और समुदाय की भावना को बढ़ावा देने में सक्षम बनाया है।

### नकारात्मक प्रभाव

- डिजिटल युग ने जहां हिंदी साहित्य में कई सकारात्मक बदलाव लाए हैं, वहीं इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी पड़े हैं। स्व-प्रकाशन और डिजिटल वितरण की आसानी के परिणामस्वरूप कम गुणवत्ता वाली सामग्री की बाढ़ आ गई है, जिससे पाठकों के लिए ढेर के बीच गुणवत्तापूर्ण साहित्य खोजना कठिन हो गया है।
- डिजिटल तकनीकों ने पारंपरिक प्रकाशन उद्योग को भी बाधित कर दिया है, जिससे कई लोगों की नौकरी छूट गई है और बुक स्टोर्स बंद हो गए हैं। इसने कई लेखकों, संपादकों और पुस्तक विक्रेताओं की आजीविका को प्रभावित किया है।
- इसके अतिरिक्त, डिजिटल तकनीकों के प्रसार से पढ़ने की आदतों में बदलाव आया है, कई पाठक छोटे, छोटे आकार की सामग्री को पसंद करते हैं। इससे उपन्यास और गैर-काल्पनिक पुस्तकों जैसे लंबे प्रारूप वाले साहित्य की लोकप्रियता में गिरावट आई है।

कुल मिलाकर, डिजिटल युग हिंदी साहित्य के लिए अवसर और चुनौतियां दोनों लेकर आया है। यह हिंदी लेखकों, प्रकाशकों और पाठकों पर निर्भर है कि वे इन परिवर्तनों को नेविगेट करें और डिजिटल युग की नई वास्तविकताओं को अपनाएं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि हिंदी साहित्य फलता-फूलता और विकसित होता रहे।

## छत्तीसगढ़ी भाषा और साहित्य का मशीनी अनुवाद

छत्तीसगढ़ी से हिंदी नियम आधारित मशीनी अनुवाद प्रणाली के मुद्दे भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के लिए मशीनी अनुवाद प्रणालियों की मांग बढ़ रही है। छत्तीसगढ़ी युवा छत्तीसगढ़ राज्य की भाषा होने के कारण स्वचालित भाषा अनुवाद प्रणाली की आवश्यकता है। यह पेपर नियम आधारित छत्तीसगढ़ी से हिंदी मशीनी अनुवाद (एमटी) प्रणाली का प्रस्ताव करता है जो छत्तीसगढ़ी को स्रोत भाषा और हिंदी को लक्ष्य भाषा के रूप में लेती है। इसमें अनुवाद के लिए विचार किए जाने वाले मुद्दों पर भी चर्चा की गई है। चूंकि इन दोनों भाषाओं के बीच बहुत अधिक संरचनात्मक अंतर नहीं है, इसलिए उत्पादन नियमों का निर्माण, उत्पादन नियमों को जोड़ना और बदलना नियम आधारित प्रणाली में आसान है क्योंकि हिंदी भाषा के लिए नियम आधार मौजूद है।

भारत एक बहुभाषी देश है जिसमें 22 भाषाएँ और 720 बोलियाँ लोगों द्वारा बोली जाती हैं। ऐसे बहुभाषी और रूपात्मक समृद्ध देश के लिए भाषा की समझ एक बड़ी समस्या है। ऐसी समस्या को मशीनी अनुवाद (डज) प्रणाली द्वारा हल किया जा सकता है। वे स्वचालित प्रणाली हैं जो स्रोत भाषा लेती है और उसे लक्ष्य भाषा में परिवर्तित करती है। कुछ क्षेत्रीय भारतीय भाषाओं के लिए पहले ही कुछ काम किया जा चुका है । इन क्षेत्रीय भारतीय भाषाओं को मोटे तौर पर उच्च और निम्न संसाधन भाषाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है।

उच्च संसाधन भाषाएँ वे भाषाएँ हैं जिनके व्याकरण नियम और अन्य साहित्यिक कार्य सार्वजनिक डोमेन में उपलब्ध हैं जैसे मराठी, तमिल और मलयालम आदि। कुछ क्षेत्रीय भारतीय भाषाएँ हैं जिन्हें कम संसाधन वाली भाषाएँ कहा जाता है जैसे भोजपुरी, मगही और निमाड़ी आदि। व्याकरण नियम और अन्य साहित्यिक कार्य सार्वजनिक डोमेन में उपलब्ध नहीं हैं।

क्षेत्रीय भाषाओं के लिए मशीनी अनुवाद प्रणाली बनाने के लिए, स्रोत भाषा को लक्ष्य भाषा में स्वचालित रूप से परिवर्तित करने के लिए विभिन्न मशीनी अनुवाद दृष्टिकोण हैं। जिनमें से कुछ हैं: डायरेक्ट मशीन ट्रांसलेशन डायरेक्ट एमटी तकनीक 1950 के दशक के दौरान एमटी के लिए नए आविष्कार किए गए कंप्यूटरों का उपयोग करने के लिए विकसित की गई थी। प्रत्यक्ष अनुवाद प्रणाली द्विभाषी शब्दकोश की सहायता से शब्द-दर-शब्द अनुवाद करती है।

छत्तीसगढ़ राज्य के लिए, छत्तीसगढ़ी राज्य की भाषा है। यह एक कम संसाधन वाली भाषा है। छत्तीसगढ़ सरकार शासकीय कामकाज में छत्तीसगढ़ी भाषा को बढ़ावा दे रही है। लेकिन, छत्तीसगढ़ राज्य के कई नागरिक और सरकारी अधिकारी जो गैर हैं छत्तीसगढ़ी भाषियों को हिंदी से छत्तीसगढ़ी और छत्तीसगढ़ी से हिंदी में रूपांतरण में दिक्कत आ रही है। इस पेपर का मुख्य उद्देश्य मशीनी अनुवाद से संबंधित विभिन्न मुद्दों को संबोधित करना है। चूँकि छत्तीसगढ़ी एक कम संसाधन वाली भाषा है जिसके कारण इस भाषा का साहित्यिक कार्य अधिक उपलब्ध नहीं है। छत्तीसगढ़ी हिंदी मशीनी अनुवाद प्रणाली के साथ एक और चुनौती छत्तीसगढ़ी कॉर्पस और द्विभाषी शब्दकोश का निर्माण है ताकि रूपांतरण के लिए आवश्यक मशीनी अनुवाद उपकरण बनाए जा सकें। 56,819 द्विभाषी युग्म और छत्तीसगढ़ी भाषा के लिए एक व्याकरण से युक्त छत्तीसगढ़ी हिंदी शब्दकोष द्वारा बनाया गया है।

## रूपांतरण में मुद्दे

छत्तीसगढ़ी से हिंदी में रूपांतरण के दो महत्वपूर्ण मुद्दे हैं (i) छत्तीसगढ़ी से हिंदी शब्दकोश बनाना (ii) उत्पादन नियम का निर्माण। छत्तीसगढ़ी को हिंदी में पूर्ण रूप से परिवर्तित करने के लिए शब्दकोश से छत्तीसगढ़ी हिंदी द्विभाषी जोड़ी ली गई, जो कृति देव हिंदी फॉन्ट में थी और रूपांतरण यूनिकोड में किया गया है क्योंकि यह एक मानक वर्ण सेट एन्कोडिंग तकनीक है जो विभिन्न प्रकार के वर्णों का समर्थन कर सकती है। यूनिकोड विभिन्न प्रकार के बिट एन्कोडिंग जैसे 8 बिट और 16 बिट का उपयोग करता है। इस एन्कोडिंग तकनीक को विकसित किया गया है ताकि एक एकल चार्टर सेट सभी लिपियों के सभी वर्णों के साथ-साथ कुछ सामान्य प्रतीकों का भी समर्थन कर सके।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बड़ी छलांग लगाने वाले पहले कदम 1990 और 2000 के दशक के मध्य में शुरू हुए और संयोग से वर्ष 2000 में ही छत्तीसगढ़ राज्य अस्तित्व में आया। यह शोध लेख इस बात पर केंद्रित है कि कैसे दो दशकों में ई-गवर्नेंस और सरकारी कामकाज में आसानी प्रदान करने

के लिए डिजिटल तकनीक के उपयोग के मामले में यह अपेक्षाकृत नया रूप मजबूत हो गया है, जो अन्यथा अपनी लालफीताशाही के लिए बदनाम है और इसे एक समय लेने वाली प्रक्रिया माना जाता है। एक सीधे विचार के माध्यम से, वर्तमान प्रशासन एक सावधानीपूर्वक नियंत्रित सभ्यता और एक सूचना बजट पर निर्भर राष्ट्र को बेहतर बनाने के लिए डिजिटल इंडिया अभियान को आगे बढ़ा रहा है। डिजिटल व्यवस्था में जहाँ साहित्य का स्वरूप परिवर्तित हुआ है वहीँ साहित्यिक जगत के समक्ष ऐसी समस्यायें खडी कर दी हैं जिनसे निजात पाना आसान नहीं। साहित्य की मात्रा तो बढती जा रही है किन्तु उसका गुणात्मक स्तर घट रहा है। सोशल नेटवर्क व्हाट्सएप, फेसबुक, ब्लॉग, ट्वीटर आदि के माध्यम से कई संवेदनशील मुद्दे उठ खडे होते हैं। कौतुहल, हिंसा और सेक्स जैसी प्रवृत्तियों को को उकसाने वाले सन्देश और कथन से व्यक्ति की नैतिक आचरण पर प्रभाव पड रहा है। गलत और अफवाहों से भरी सूचनाओं का प्रसार सोशल नेटवर्किंग का सबसे बडा दोष है। कई लोग मानसिक तनाव के शिकार के साथ मानसिक रूप से विकृत हो रहें हैं। बच्चों और युवाओं पर सीधा असर नजर आता है। साइबर क्राइम को बढावा मिला है। साहित्य में उच्च विचार व चिंतन गौण एवं मनोरंजन का व्यापार महत्वपूर्ण होता जा रहा है मनुष्य यथार्थवाद और काल्पनिकता में अंतर करना ही भूल गया है। बाजार में गूगल जैसे प्रतिष्ठानों ने हिंदी व अन्य लोग परिभाषा हेतु कुछ सॉफ्टवेयर बनाए हैं और यूनिकोड के विकास के कारण अब हिंदी जैसी भाषा इन्टरनेट पर ठोस रूप में उपस्थिति दर्ज करा पाई है। संक्रमण के इस दौर में डिजिटल व्यवस्था का महत्व हैद्य इस व्यवस्था में साहित्य की प्रचार-प्रसार क्षमता व नवोदित लेखकों के उभरने की दृष्टि से भी सहायक है किन्तु हमें साहित्य की मूल उद्भावनाओं के संरक्षण की ओर भी पूर्ण सक्रियता के साथ ध्यान देने की आवश्यकता है। साहित्य की सशक्त अभिव्यक्ति के साथ एक हिम्मेदारी का एहसास भी जरुरी है। सोशल नेटवर्किंग की विभिन्न कंपनियों को एक ऐसी पालिसी बनाना होगा जिससे विषम परिस्थितियों और दुर्घटनाओं से बचा जा सके। लेखक और पाठक और उपयोगकर्ता भी अपनी जिम्मेदारी समझे और इन तकनीकी सुविधाओं का उपयोग सतर्कता के साथ करने और जनमानस में इसके सदुपयोग हेतु जागृति लाने का प्रयास करें। तब ही सही अथों में हम साहित्य की साधना कर पाएंगे।

## निष्कर्ष

दुनिया भर में हिंदी बोलने वालों की संख्या एक अरब तीस करोड़ से ज्यादा हो चुकी है। डिजिटल दौर में तकनीकी का विकास ही नहीं बल्कि वैश्विक स्तर पर साहित्य और संस्कृति का विस्तार भी हो रहा है। इस विस्तार में हिंदी समेत तमाम क्षेत्रीय भाषाओं ने अपनी वैश्विक स्थिति को मजबूत किया और एक पहचान कायम की है। इंटरनेट और तकनीक के माध्यम से साहित्य को रंगत देने वालों में बहुत से लोग शामिल हैं। अच्छा साहित्य पढने- संसार उपलब्ध करानेके अनेक सार्थक प्रयास हुए हैं- लिखने के शौकीनों की मननपसंद रचना, जिसके लिए साहित्य के मुरीदों को पुस्तकालयों के चक्कर नहीं लगाने पड़ते। ये लोग साहित्य की परंपरागत धारा से नही जुड़े, फिर भी इन साहित्य प्रेमियों ने कविता और अन्य विधाओं के साहित्य को एक सहज उपलब्ध छतरी के नीचे लाने का सार्थक प्रयास किया।

भू-मंडलीकरण के दौर में सिमटी दुनिया में आज साहित्य के अनाम योद्धाओं के प्रयास से विपुल साहित्य आज इंटरनेट सोशल मीडिया पर उपलब्ध है। आप मनपसंद कवि की कविता सुन व् देख सकते हैं। यहां तक कि बाल पाठकों को रोचक तरीके से कविता पढाना और सिखाना आसान हो गया है। मोबाइल एप और इंटरनेट के जरिये ये और आसान हुआ है। बदलाव के दौर में आज हिंदी साहित्य का चेहरा नयी रंगत लिए हुए आशावाद का संचार कर रहा है। इस नयी जमीन पर हिंदी ने अपने पंखों को विस्तार दिया है। साहित्य पर केन्द्रित अनेक वेबसाइट्स और ब्लॉग आज बेहद लोकप्रिय हैं। कुल मिलाकर, डिजिटल युग हिंदी साहित्य के लिए अवसर और चुनौतियां दोनों लेकर आया है। यह हिंदी लेखकों, प्रकाशकों और पाठकों पर निर्भर है कि वे इन परिवर्तनों को समझें और डिजिटल युग की नई वास्तविकताओं को अपनाएं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि हिंदी साहित्य फलता फूलता और विकसित होता रहे। डिजिटल युग ने जहाँ हिंदी साहित्य में कई सकारात्मक बदलाव लाए हैं, वहीँ इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी पड़े हैं। स्व-प्रकाशन और डिजिटल वितरण की आसानी के परिणाम स्वरुप कम गुणवत्ता वाली सामग्री की बाढ आ गई है, जिससे पाठकों के लिए ढेर के बीच गुणवत्ता पूर्ण साहित्य खोजना कठिन हो गया है।

## सन्दर्भ


1. https://the-next.eliterature.org/
2. https://www.setumag.com/2018/05divya online-literature.htm
3. actualdadiliterature.com
4. शिक्षा के क्षेत्र में प्रोद्योगिकी का उपयोग
5. इलेक्ट्रॉनिक्स इंग्रजी-हिंदी शब्द संग्रह
6. हिंदी सेवी सम्मान योजना
7. जे. दशोरा, डिजिटल इंडिया: सीमाएं और अवसर । शिक्षा में उन्नत अनुसंधान और नवीन विचारों का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल। 3(3) (2017), पीपी 1592-1603।
8. के. निकम, ए.सी. गणेश, और एम. तमीजचेलवन, भारत का बदलता चेहरा। भाग ए: डिजिटल विभाजन को पाटना। पुस्तकालय समीक्षा. 53(4) (2004),
9. https://hi.quora.com

# गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में प्रकृति चित्रण


## प्रो० ( डॉ० ) कल्पना शर्मा

*शोध निर्देशिका, शासकीय कमला राजे कन्या स्नातकोत्तर स्व0 महाविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश*

## नेहा लाक्षाकर

*शोधार्थी, हिंदी विभाग, शासकीय कमला राजे कन्या स्नातकोत्तर स्व0 महाविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश*


### प्रस्तावना

तुलसी का साहित्य ही नहीं वरन्, सम्पूर्ण भारतीय साहित्य प्रकृति चित्रण से परिपूर्ण है। हमारे धार्मिक ग्रंथ, ऋषी-मुनियों की वाणी, कवियों की रचनाएं, संत- महात्माओं के अनमोल वचन सभी प्रकृति की महत्ता से भरी पड़ी हैं। हमारे जीवन में प्रकृति की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रकृति और मनुष्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध प्राचीनकाल से रहा है। प्रकृति और मानव का संबंध उतना ही पुराना है, जितना सृष्टि के उद्‌भव और विकास के इतिहास का। सर्वप्रथम मानव शिशु ने जब आंख खोली तब प्रकृति की गोद में ही और आंख बंद की तब भी प्रकृति की गोद में। मनुष्य सदियों से ही प्रकृति की गोद में फलता-फूलता रहा है। इसी प्रकार से संपूर्ण मानव असीम ज्ञान हासिल करता आ रहा है।

मनुष्य भी प्रकृति लोग का ही प्राणी है। मानव और प्रकृति के इस संबंध में अभिव्यक्त धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में चिरकाल से होती रही है। यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो इस प्रतिबिंब में मानव की सहचरी प्रकृति है। मानव और प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं। प्रकृति की अखंड अविरल महिमा का वर्णन डॉ.किरण कुमारी गुप्ता जी की पंक्तियों में देखा जा सकता है- "वास्तव में प्रकृति यदि मानव की माता नहीं तो धात्री अवश्य है। आरम्भ से प्रकृति अपनी ममतामयी- क्रोड़ में मानव को धारण करती है और उसका पोषण करती है। वायु-व्यंजन करता, निर्झरों का कल-कल शब्द संगीत सुनाता, नक्षत्र गण गुपचुप कहानियां कहते, कलियाँ चुटकी बजा-जाकर उसे पास बुलाती। प्रकृति की गोद मे मानव सुख का अनुभव करता है और सहचर्यजन्य मोह का स्वाभाविक रूप से उसके हृदय में प्रादुर्भाव हो जाता है।इस भांति आलम्बन रूप से प्रकृति मानव को प्रभावित करती और उसे आकर्षित करती है।"[1]

सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, तारे, नभ, नक्षत्र, वन, जंगल, झरना, वायु, वर्षा, बादल, बिजली, धूप-छाँव, हरियाली, वनस्पतियां, समुद्र, झरनें, कल-कल करती नदियाँ, वनों में उछलते कूदते पशुओं के झुंड, धरती और आकाश में संदेशों को पहुंचाने वाले कलरव करते पक्षियों के समूह सभी प्रकृति के ही अंग हैं और इन सभी ने मनुष्य को जो भी शिक्षा दी है अथवा दे रहें हैं, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। जीवन संघर्ष की कटु विभीषिका से थक जाने, मन के उदास होने पर मनुष्य वहीं लौट जाना चाहता है जहाँ प्रकृति का ऐश्वर्य बिखरा पड़ा है, जहां मनोरम दृश्यों की छटा देखते ही हृदय के बंधन खुल जाते हैं और असीम आनन्द की फुहारें शीतलता प्रदान करती हैं।

### तुलसी के प्रकृति का चित्रण

तुलसी प्रकृति के नाना रूपों का चित्रण करते हैं। कवि के काव्य में आलंबन एवं उद्दीपन दोनों ही रूपों का चित्रण मिलता है। जहां तुलसी ने सीता हरण हो जाने पर मानस में राम के दु:खी होने पर प्रकृति दु:खी होती है। राम सीता के वियोग में दु:खी होकर लता, खग, मृग आदि से सीता का पता पूछते हैं जिसको कवि ने बड़े मार्मिक ढंग से चित्रित किया है- हे खग, हे मृग, हे मधुकर श्रेनी।

*तुम देखी सीता मृग नैनी।*[2]

श्रीरामजी के वियोगरूपी बुरे रोग से सताए हुए पशु, पक्षी, हाथी, घोड़े ऐसे दु:खी हो रहे हैं कि देखे नहीं जाते। नगर के स्त्री-पुरुष सभी अत्यंत राम के दु:ख से दु:खी है। मानो सभी अपनी सारी संपत्ति गवा बैठे हैं-

*खग मृग हय गय जाहिं न जोए।*
*राम वियोग कुरोग वियोगे।।*
*नगर नारि नर निपट दुखारी।*
*मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी।।*[3]

तुलसीदास तीर्थराज प्रयाग की सौंदर्य का जिक्र करते हैं। गंगा, यमुना और सरस्वती तीन नदियों का संगम तीर्थराज प्रयाग का अत्यंत सुशोभित सिंहासन है। अक्षय वट प्रयाग का क्षत्र है।जो मुनियों के मन को भी मोहित कर देता है। यमुना जी और गंगा जी की तरंगे उसके श्याम और श्वेत चंवर है, जिसको देखकर ही दु:ख दरिद्रता नष्ट हो जाती है। ऐसे सुहावने पवित्र तीर्थ राज का दर्शन कर श्रीराम ने भी सुख को प्राप्त किया-

*संगम सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अक्षयबट मुनि मनु मोहा।।*
*चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होंहि दुख दारिद भंगा।।*
*अस तीरथपति देखि सुहावा।सुख सागर रघुबर सुखु पावा।।*[4]
*इस प्रकार तुलसीदास ने प्रयाग के सौंदर्य को उद्घाटित किया है।*

भारतवर्ष सांस्कृतिक राष्ट्र है। गंगा-जमुना एक नदी नहीं भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ है। राम और कृष्ण भारतीय जीवन में आदर्श एवं चरित्र के उत्कृष्ट आधार है। मध्य कालीन कवियों ने राम एवं कृष्ण भक्ति की सुमधुर गंगा प्रवाहित की। राम एवं कृष्ण गंगा-जमुनी संस्कृति के प्रतीक है। तुलसीदास मध्यकाव्य के प्राणभूत कवि है। गंगा के कई रूपों का वर्णन एक नदी नहीं भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व है। रामचरित मानस में तुलसी दास कहते है-

*"माघ मकरगत रवि जब होई*[5]
*तीरथपतिहिं आव सब कोई।*
*देव दनुज किंनर नर श्रेंनी।*
*सादर मज्जहि सकल त्रिवेणी।।''*
*-रामचरित मानस, ब./43*

प्रयाग में गंगा, यमुना, सरस्वती के संगम पर माघ माह में मेला का वर्णन करते हुए कहते है, इसमें स्नान का अप्रतिम कल है।

अयोध्या में तुलसी दास कहते है-

*"नदी पुनीत पुरान बखानी।*
*अत्रिप्रिया नि जतप बल आनी।*
*सुरसरि धार नाऊँ मंदाकिनी।*
*जो सब पातक पोतक डाकिनि।''*
*-अयोध्याकांड, रामचरित/131*

पुनीत नदी जिसकी प्रशंसा पुराणों में है। यहाँ गंगाजी की धारा का मंदाकिनी नाम है, यह चित्रकूट के प्रसंग में कहा गया है। गंगा की उद्गम स्थली हिमालय है। गंगोत्री से निकल कर उत्तरांचल से विविध शहरों में अपनी धारा से संस्कृति पोषित करती गंगा नदी आस्था के केन्द्र में है। शिव की जटाओं में समाहित गंगा हर भारतीयों के मन में माता के रूप में बसती है। षोडस संस्कारों में गंगा का अत्यधिक महत्व है। मानस में एक स्थल पर कवि कहते है-

*"नदी पनच सर सम दम दाना।*
*सकल कलुष कलि साउज नाना।*
*चित्रकूट जनु अचल अहेरी।*
*चुकई न घात मार मुठभेरी।।''*
*-रामचरित, अयोध्या, 132*

नदी धनुष की प्रत्यञ्या है। शम, दम, दान, वाण है। इस प्रकार मध्य काव्य में नदी का अत्यधिक महत्व वर्णित है।

गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, बरसाना के जीवन का सुन्दर, एवं सटीक वर्णन इन कवियों ने नदियों के साथ जोड़ कर किया है। तुलसीदास जी ने कहा है-

*मज्जहिं सज्जन वृंद बहु,*
*पावन सरजू नीर।*
*"वरस परस मज्जन अरू पाना।*
*हरदू पाप कह वेद पुराना।*
*नदी पुनीत अमित महिमा अति।*
*कहि न सकइ सारदा विमल मति।।''*
*-रामचरितमानस, बाल./34*

'मानस' में प्राकृतिक सौंदर्य देखते ही बनता है। जिन तालाबों और नदियों में श्रीराम स्नान करते हैं, वह देवसरोवर और देवनदियां भी उनकी प्रशंसा करती हैं। जिस कल्पवृक्ष के नीचे बैठते हैं। वह भी श्रीराम की बढ़ाई करते हैं। पृथ्वी भी उनके चरण कमल का धूल स्पर्श कर अपना सौभाग्य मानती है। रास्ते में बादल छाया करते हैं देवता गण फूलों की वर्षा करते हैं और सिहाते हैं। पर्वत, वन और पशु पक्षियों को देखते हुए राम रास्ते में चले जा रहे हैं।वह सौंदर्य अद्वितीय है-

*छांह करहिं घन बिबुधगन बरसहिं सुमन सिहाहिं।*
*देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं ।।*

तुलसी के साहित्य में प्रकृति पर्यवेक्षण की परिगणना भी प्रचुर मात्रा में दिखाई देती है।पथिक वेश में सीता एवं लक्ष्मण के साथ वन पथ पर चलते हुए राम का वाल्मीकि आश्रम के निकट परिलक्षित होने वाला यह प्राकृतिक सौंदर्य अनुरंजन की भावना से युक्त है। सुंदर वन, तालाब और पर्वत देखते हुए प्रभु श्री रामचंद्र वाल्मीकि आश्रम में पधारते हैं। राम जी देखते हैं कि उनका निवास स्थान बहुत खूबसूरत है, जहां सुंदर पर्वत, वन और निर्मल जल है। तालाबों में कमल और वनों में वृक्ष फल फूल रहे हैं तथा मकरंद रस में मस्त होकर भंवरे सुंदर गुंजार कर रहे हैं। बहुत से पशु-पक्षी कोलाहल कर रहे हैं और बैर से रहित होकर प्रमुदित मन से विचरण कर रहे हैं। इस पवित्र और सुंदर मनोहर आश्रम को देखकर कमलनयन श्री राम जी प्रसन्न होते हैं-

*देखत बन सर सैल सुहाए। वाल्मीकि आश्रम प्रभु आये।।*
*राम दीख मुनि वासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन।।*
*सरनि सरोज बिपट बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले।।*
*खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं।।*
*सूचि सुंदर आश्रम निरखि हरसे राजीव नयन।*
*सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगे आयउ लेन।।*[6]

स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने यहां प्रकृति चित्रण के पार्श्वभूमि ने प्रतिकूल जीव जंतुओं को बैर विहीन होकर संचरण करते हुए निश्चय ही दिखाया है परंतु, यह प्रभाव प्रकृति की अपनी निजी सत्ता का नहीं बल्कि, उसके पीछे महर्षि वाल्मीकि जी की अपनी तपो साधना का भी विशाल परन्तु अप्रत्यक्ष योग है।

तुलसीदास ने चित्रकूट के प्रकृति सौंदर्य की छटा जो मानस में दर्शाई है वह अद्वितीय है। सुहावना पर्वत है और सुंदरवन। हाथी, सिंह, हिरण तथा पशु- पक्षियों का विहार स्थल है। वहां पवित्र नदी है जिसकी पुराणों में भी उल्लेख है। जिसको अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया जी ने अपने तपोबल से पृथ्वी पर लायी थीं।वह गंगा जी की अविरल धारा है जिसका नाम मंदाकिनी है-

*सैलु सुहावन कानन चारु। कहि केहरि मृग बिहग बिहारु।।*
*नदी पुनीत पुरान बखानी।अत्रिप्रिया निज तप बल आनी।।*
*सुरसरि धार नाउ मंदाकिनि।।*[7]

आगे तुलसीदास जी चित्रकूट के ही अनुपम प्रकृति सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि-जब से श्री रामजी चित्रकूट में आकर रहे तब से वन में नाना प्रकार के वृक्ष फल-फूलों से लद गए। उन पर लिपटी हुई सुंदर बेलों में आभा आ गई। नीलकंठ, कोयल, तोते, पपीहे, चकवे तथा चकोर आदि पक्षी कानों को मधुर लगने वाली और मन को मोहने वाली तरह-तरह की बोलियां बोलने लगे-

*फूलहिं फलहिं बिपट बिधि नाना।*
*मन्जु बलित बार बेलि बिताना।।*
*नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर।*
*भांति भांति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर।।*

चित्रकूट के सुंदर प्रकृति चित्रण की छवि तुलसीदास जी अंकित करते हैं-हाथी, बंदर, सुअर तथा हिरण यह सभी बैर छोड़कर साथ-साथ रहने लगते हैं।शिकार के लिए घूमते हुए पशुओं के समूह राम को देखकर विशेष प्रफुल्लित होते हैं।जगत में जितने देवताओं के वन है सभी से राम के वन को देखकर सिहाते हैं। गंगा, सरस्वती, सूर्यकुमारी यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि पुण्यमयी नदियां धन्य हैं-

*करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा।।*
*फिरत अहेर राम छवि देखी। होंहि मुदित मृग बृंद बिसेसी।।*
*बिबुध बिपिन जहं लगि जग मोही। देखि राम बनु सकल सिहाहीं।।*
*सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरी धन्या।।*

हिमालय आदि कितने पर्वत हैं। सभी चित्रकूट का गुणगान करते हैं। चित्रकूट के पशु-पक्षी, बेल, वृक्ष, तृण, अंकुरादि सभी धन्य हैं।

तुलसीदास ने प्रकृति का चित्रण आलंबन में कम उद्दीपन रूप में अधिक किया है। उद्दीपन रूप सांकेतिक होते हुए भी पूर्ण समर्थ है। जो वर्षा ऋतु संयोगावस्था में प्रिया के साथ रहने से उल्लासित होती थी अब वही वर्षा ऋतु वियोगावस्था में दुखी करती है ।प्रिया से वियुक्त राम को आकाश में गरजते हुए बादल क्षुब्ध कर देते हैं। इस बेला में प्रणेश्वरी सीता की क्या दशा होगी इसे सोचते ही उनका मन कांप उठता है- घन घमंड नभ गरजत घोरा ।प्रियाहीन डरपत मन मोरा।। इन पंक्तियों में हृदय की रागात्मक दशा का कितना मार्मिक चित्रण है।

मानस के किष्किंधाकांड में वर्षा एवं शरद ऋतु के चित्रण की झलक में दिखाई देती है। शुभ्रस्फटिक शिला पर बैठे हुए राम ने जब वर्षाकालीन मेघों पर अपना पहला दृष्टि प्रक्षेप किया,तब उनके हृदय से प्राकृतिक आह्लाद की स्फूर्ति अनुप्राणित होती है। वर्षा ऋतु बीत गई निर्मल शरद ऋतु आ गई, परंतु सीता की कोई खबर नहीं मिली-

*बरषा गत निर्मल ऋतु आयी। सुधि न तात सीता कै पाई।।*[8]

प्रकृति चित्रण विशेष रूप से हमें रामचरितमानस के किष्किंधाकांड एवं अरण्यकांड में देखनेको मिलता है।इसके अतिरिक्त प्रकृति उपदेशिका का रूप लेकर हमारे सामने उपस्थित होती है। प्रकृति के हरितांचल में कल्लोल करते हुए गोदावरी एवं पंपा सरोवर के तट पर पहुंच कर ही कवि उनके स्वतंत्र सौंदर्य का दर्शन करता है। तुलसी के शिव पंपासरोवर को एक उपदेशक के रूप में देखते हैं–

*बांधे घाट मनोहर चारी। संत हृदय जस निर्मल बारी।।*

*जँह जँह पियन्हि विविध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा।।*[9]

संत कवि की दार्शनिक दृष्टि है जो सरोवर के पवित्र जल को संत के पवित्र हृदय के समान बतलाती है।

पम्पासरोवर के वर्णन में तुलसी को हम कमल पत्रों की सघनता से सरोवर के स्वच्छ जल को ढका हुआ और वर्षा प्रसंग में मार्गों को हरित तृण से आच्छादित बताकर अपने प्रेम का परिचय देते पाते हैं और साथ ही जब हम उन्हें गुलाबों की चटकाहट, पुष्पित पलाशादिकों के उल्लासमय करुण राग चपला की चमक, चंद्रिका चन्चितयामिनी की शीतलता तथा चकोर चक्का –चकवाओं की प्रेमचर्या के मध्य जीवन विहीन आक और जवास तथा जलाशयों में अनन्यमनस्कता के साथ चुपचाप पड़े रहने वाले काई का उल्लेख करते हुए देखते हैं, तो हमें प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म उपादानों के प्रति उनके अनुराग की सूक्ष्मता एवं सघनता का भी अनुभव किए बिना नहीं रह पाता। तुलसी ने प्रकृति का नवीन चित्रण किया है, फिर भी उनकी केंद्रीय भावना उपदेश परक रही है।तब पर भी इस चित्रण में तुलसी का प्रकृति के प्रति अनुराग व स्नेह प्रकट होता है।

उन्होंने जहां वर्षा ऋतु के आगमन में नवीन पल्लव और हरे–भरे भूमि का चित्रण किया है वहीं आक और जवास के सूखे वृक्षों का वर्णन करना नहीं भूलते हैं। तुलसीदास के उपदेश बहुल एवं परंपरा युक्त प्रकृति चित्रण को स्वीकार करते हुए हम इस तथ्य से पराङ्गमुख नहीं रह सकते कि समग्र रूप में हिंदी के समूचे भक्ति युग का प्रथम उपदेश बहुल होकर हमारे सामने उपस्थित होता है।

श्यामसुंदर दास ने प्रकृति के प्रति तुलसीदास के विस्तृत सहज एवं निश्छल अनुराग को लक्ष्य करते हुए लिखा है कि– "प्रकृति प्रेम के लिए उनके हृदय में जो कोमल स्थान या उसी का प्रसाद है कि हिंदी में स्वीकृत विवरण मात्र दे देने की परंपरा से ऊपर उठकर कहीं कहीं उनकी प्रतिभा ने प्रकृति के पूर्ण चित्रों का निर्माण किया है। प्राकृतिक दृश्यों के यथातथ्य चित्रण की जो क्षमता यत्र– तत्र गोसाईं जी में दिखाई देती है वह हिंदी के और किसी कवि में देखने को नहीं मिलती।"[10]

## निष्कर्ष–

तुलसी ने अपने भाव को प्रकृति के माध्यम से प्रकट किया है। मानव के विभिन्न भाव स्तरों का चित्रण वाणी तथा विचार के द्वारा प्राणियों की भावानुभूति की अभिव्यक्ति मूक किंतु जीवंत अभिनय के द्वारा प्रकृति भावना का चित्रण मानवीकरण की अपूर्व दृश्य छटा से वर्णित किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने मानवलोक जीवलोक एवं प्रकृतिलोक के द्वारा अपने भावों को व्यक्त किया है।व्यापक गहन और वैविध्यपूर्ण भाव दशाओं के चित्रण से तुलसी की महाकवित्व शक्ति परिलक्षित होती है।

गोस्वामी जी अपनी शील संरक्षिका एवं धार्मिक प्रकृति का, जिसे उन्होंने अपने जीवन एवं समाज दर्शन का अभिन्न अंग बना लिया, परिचय देना प्राकृतिक चित्रण के प्रसंग में भी नहीं भूले हैं। एक शब्द में उनकी प्रकृति समाज और जीवन से निरपेक्ष नहीं थी।उन्होंने सापेक्ष प्रकृति के भव्य स्वरूप का ही हमें निदर्शन कराया है और इस संबंध में तो हमारा यह कथन भी आयुक्त ना होगा कि प्रकृति की प्रयोगशाला में बैठकर सबसे पहली बार हिंदी कवियों की श्रेणी में गोस्वामी जी ने ही मानवीय मूल्यों का इतनी सूक्ष्मता के साथ विश्लेषण किया है।

मनुष्य की महानता पर उनका अखंड विश्वास था। वे स्वयं भी एक महान मानवतावादी, समन्वय वादी लोकमंगल के कवि थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी प्रकृति को मनुष्य के मंगल विधान की क्रिया में ही नियोजित होते दिखाया है।यह उनकी हृदयहीनता का ही नहीं प्रयुत अप्रमेय एवं संवेदनशीलता का ही ज्वलंत प्रमाण है। मनुष्य के सुख– दु:ख, राग–विराग, आकर्षक एवं विकर्षण के लिए, उसके संपूर्ण सद एवं असद व्यापारों के लिए तुलसी जी की प्रकृति एक स्वछ एवं निर्मल दर्पण का काम करती दिखाई पड़ती है। उसकी प्रतिक्रिया से प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकती। हिंदी में गोस्वामी तुलसीदास जी के प्रकृति चित्रण में देखने को मिलता है।

## संदर्भ


1. गुप्ता, डॉ. किरण कुमारी, हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण– पृ0 11।
2. सिंह, डॉ. विजयपाल, रामचरितमानस –तुलसीदास अयोध्याकाण्ड पृ. 221।
3. सिंह, डॉ. विजयपाल, रामचरित मानस –तुलसीदास – अयोध्याकाण्ड पृ 148।
4. सिंह, डॉ. विजयपाल, अयोध्याकाण्ड पृ.106।
5. श्रीरामचरित मानस, तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर।
6. श्रीरामचरित मानस, तुलसीदास, अयोध्याकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ.106।
7. श्रीरामचरित मानस, तुलसीदास, अयोध्याकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ.106।
8. श्रीरामचरित मानस, तुलसीदास, किष्किंधाकांड, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ.643।
9. श्रीरामचरित मानस, तुलसीदास, अरण्यकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ.386।
10. कल्याण पत्रिका गोरखपुर (गोस्वामी का काव्य सौंदर्य) अंक 2 सितम्बर 1938 पृ.222।

# भारतीय साहित्य, सभ्यता, संस्कृति का प्राचीन स्वरूप और महत्त्व


## दिलीप कुमार

*असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, श्री बजरंग स्नातकोत्तर महाविद्यालय दादर आश्रम, सिकन्दरपुर, बलिया (उ0प्र0)*


भारतीय साहित्य, संस्कृति व सभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति व सभ्यता है। इसे विश्व की सभी संस्कृतियों की जननी माना जाता है। जीने की कला हो, विज्ञान हो या राजनीति का क्षेत्र भारतीय संस्कृति का सदैव विशेष स्थान रहा है।[1] अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ-साथ नष्ट होती रही हैं किंतु भारत की संस्कृति व सभ्यता आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ अजर-अमर बनी हुई है।[2]

### साहित्यिक स्रोत-

प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक बुद्धि पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी, इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि वैदिक ऋषियों और बौद्ध, जैन आचार्यों की सूचियाँ विद्यमान है। किंतु प्राचीन भारतीयों की इतिहास-विषयक संकल्पना आधुनिक इतिहसकारों की संकल्पना से भिन्न होने के कारण हमें प्राचीन भारतीय साहित्य में कोई शुद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं मिलते। वैसे युवान च्वांग ने लिखा है कि भारत के प्रत्येक प्रदेश में राजकीय अधिकारी प्रमुख घटनाओं को लिखते थे। महाकाव्यों और पुराणों में हमें राजवंशों की सूचियाँ मिलती है किंतु उनमें भी प्राचीन राजाओं के नाम कहाँ तक ऐतिहासिक हैं, यह कहना कठिन है।

प्राचीन भारतीय साहित्य को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं: धार्मिक साहित्य और धर्मेत्तर साहित्य। धार्मिक साहित्य का हम तीन भागों में विवेचन करेंगे-ब्राह्मण साहित्य, बौद्ध साहित्य और जैन साहित्य। 'ब्राह्मण साहित्य' में सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद है। इस ग्रंथ से प्राचीन आर्यों के धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर कुछ अधिक और राजनीतिक जीवन पर कुछ कम प्रकाश पड़ता है। उत्तरवैदिक काल (लगभग 1000 ई0पू0 से 600 ई0पू0) के आर्यों के जीवन का अध्ययन करने के लिए इतिहासकार यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद संहिताओं का उपयोग करते हैं। इन तीनों संहिताओं में यजुर्वेद और सामवेद के अधिकतर मंत्र ऋग्वेद से ही लिए गए है, इसलिए अथर्ववेद का ही विशेष महत्व है। अथर्ववेद में हमें उस समय के समाज का चित्र मिलता है जब आर्यों ने अनार्यों के अनेक धार्मिक विश्वासों को अपना लिया था।[3] सभी वेदों के अलग-अलग ब्राह्मण ग्रंथ है। ये गद्य में हैं और कर्मकांड की पद्धति का उल्लेख करते हैं किंतु इनसे हमें उत्तर वैदिक काल के आर्यों के विस्तार और उनके धार्मिक विश्वासों की जानकारी मिलती है: उपनिषद् भी इसी काल की रचनाएं हैं। इनसे हमें आर्यों के प्राचीनतम दार्शनिक विचारों का ज्ञान होता है, जैसे कि सृष्टि की रचना किसने की? जीव क्या है? मृत्यु के उपरांत जीव का क्या होता है? आदि। उपनिषदों की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा यह है कि जीवन का उद्देश्य मनुष्य की आत्मा का विश्व की आत्मा से मिलना है। उसीसे मनुष्य को वास्तविक सुख मिल सकता है। इसकी 'पराविद्या' या 'अध्यात्मविद्या' कहा गया है। उपनिषदों में ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वर, छान्दोग्य वृहदारण्यक, मैत्रायगी और कौषीतकी महत्वपूर्ण है।'

वैदिक काल के अंत में वेदों का अर्थ ठीक प्रकार से समझने के लिए वेदांगों की रचना हुई। वेदों में छह अंग हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छंद और ज्योतिष।[4] वैदिक स्वरों का शुद्ध उच्चारण करने के लिए 'शिक्षा शास्त्र' का निर्माण हुआ। ऐसे सूत्र जिनमें विधि और नियमों का प्रतिपादन किया गया है, 'कल्पसूत्र' कहलाते है। कल्पसूत्रों के तीन भाग है: श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र और धर्म सूत्र। श्रौत सूत्र में यज्ञ-संबंधी नियमों का उल्लेख है। गृह्य सूत्रों में मनुष्यों के लौकिक तथा पारलौकिक कर्तव्यों का विवेचन है। धर्म सूत्रों में धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कर्तव्यों का उल्लेख है। व्याकरण-ग्रंथों में सबसे महत्वपूर्ण पाणिनिकृत अष्टाध्यायी है। ई0पू0 दूसरी शती में पतंजलि ने अष्टाध्यायी पर महाभाष्य नामक टीक लिखी जिसने हमें पुष्यमित्र शुंग के विषय में कुछ जानकारी मिलती है। यास्क ने निरूक्त (ई0पू0 पांचवीं शताब्दी) की रचना की। इसमें वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति का विवेचन है। वेदों में अनेक छंदों का प्रयोग मिलता है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल में ही छंदशास्त्र का बहुत विकास हो चुका था। ज्योतिष शास्त्र की भी प्राचीनकाल में बहुत उन्नति हुई।

सूत्र साहित्य के बाद स्मृतियों की रचना हुई। सबसे प्राचीन स्मृति मनु की है। इसका रचनाकाल ई0पू0 200 से 200 ई0 के बीच माना जाता है। याज्ञवल्क्य (100 ई0 से 300 ई0) कृत स्मृति एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ है। नारद (300 ई0 से 400 ई0) और पाराशर (300 ई0 से 500 ई0) की स्मृतियों से गुप्तकाल के सामाजिक व धार्मिक जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। बृहस्पति (300 ई0 से 500 ई0) और कात्यायन (400 ई0 से 600 ई0) की स्मृतियाँ भी गुप्तकाल की ही रचनाएँ है।

महाकाव्यों में रामायण और महाभारत सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। पहली या दूसरी शताब्दी में रामायण में केवल बारह हजार श्लोक थे। अपने वर्तमान रूप में रामायण संभवत: दूसरी शती ईस्वी के अंत में विद्यमान थी। महाभारत का रचनाकाल ई0पू0 400 से 400 ई0 के बीच माना जाता है। तब भी इन महाकाव्यों से उत्तर-वैदिक काल में आर्यों के जीवन के विषय में कुछ जानकारी मिलती है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित व्यवसायों और भोजन के आधार पर देवराज चानना इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि इस ग्रंथ में दो विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों पर रहने वाले दो प्रमुख मानवीय वर्णों का वर्णन है। कृषि पर आधारित लोग वनों को साफ

करके उन्हें कृषि योग्य बना रहे थे। इसी प्रकार महाभारत और मनुस्मृति का तुलनात्मक अध्ययन करके बी0 एस0 सुक्थंकर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जिन भृगुवंश के लोगों ने मनुस्मृति की रचना की थी, उन्होंने भारत वंश की कथा के इतनी लोकप्रिय होने के कारण धर्म के मूल सिद्धांतों को प्रतिपादित करने वाले आख्यानों को इस कथा में जोड़कर इसे एक धर्मशास्त्र बना दिया क्योंकि उउस समय वैदिक साहित्य में प्रतिपादित सिद्धांतों को ठीक प्रकार से समझना जनसाधारण के लिए कठिन हो गया था।[5]

मुख्य पुराण अठारह है। इनमें मार्कण्डेय, ब्राह्मण्ड, वायु, विष्णु, भागवत और मत्स्य संभवत: प्राचीन पुराण हैं, शेष बाद की रचनाएं है। मत्स्य, वायु और विष्णु पुराणों में प्राचीन राजवंशों का वर्णन है। इन राजवंशों का जो वर्णन इन पुराणों में मिलता है वह एक-दूसरे से भिन्न है और वह कहीं-कहीं अन्य साधनों से प्राप्त साक्ष्य से मेल नहीं खाता। किंतु महाभारत युद्ध के पश्चात् जिन राजवंशों ने ईसा की छठी शताब्दी तक राज्य किया उनके विषय में जानकारी प्राप्त करने का एकमात्र साधन पुराण ही है। प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास लिखने के लिए भी पुराण बहुत उपयोगी है। रोमिला थापर की हाल की रचनाओं ने पौराणिक प्रमाणों की उपयोगिता पर नवीन प्रकाश डाला है। उन्होंने वंशावलियों की तिथिक्रमता और ऐतिहासिक उपादेयता को सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण से देखा है और कबीलों के संगठन, उनके उउपनिवेशन, आर्थिक आधार आदि को उजागर किया है। पुराण अपने वर्तमान रूप में संभवत: ईसा की तीसरी और चौथी शताब्दी में लिखे गए।

## संस्कृति शब्द का अर्थ

संस्कृति किसी भी देश, जाति और समुदाय की आत्मा होती है। संस्कृति से ही देश, जाति या समुदाय के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है जिनके सहारे वह अपने आदर्शों, जीवन मूल्यों, आदि का निर्धारण करता है। अत: संस्कृति का साधारण अर्थ होता है-संस्कार, सुधार, परिष्कार, शुद्धि, सजावट आदि। आज के समय में सभ्यता और संस्कृति को एक-दूसरे का पर्याय समझा जाने लगा है जिसके फलस्वरूप संस्कृति के संदर्भ में अनेक भ्रांतियाँ पैदा हो गई हैं। लेकिन वास्तव में संस्कृति और सभ्यता अलग-अलग होती है। सभ्यता का संबंध हमारे बाहरी जीवन के ढंग से होता है यथा- खान-पान, रहन-सहन, बोलचाल आदि जबकि संस्कृति का संबंध हमारी सोच, चिंतन और विचारधारा से होता है। संस्कृति का क्षेत्र सभ्यता से कहीं अधिक व्यापक और गहन होता है। सभ्यता का अनुकरण किया जा सकता है लेकिन संस्कृति का अनुकरण नहीं किया जा सकता है।

सभ्यता और संस्कृति दोनों के क्रियाकलाप अलग-अलग हैं लेकिन दोनों परस्पर जुड़े हुए भी हैं। सभ्यता में मनुष्य के राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, प्रौद्योगिकीय व दृश्य कला रूपों का प्रदर्शन होता है जो जीवन को सुखमय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जबकि संस्कृति में कला, विज्ञान, संगीत, नृत्य और मानव जीवन की उच्चत्तर उपलब्धियाँ सम्मिलित हैं। अत: यही कहा जा सकता है कि सभ्यता वह है जो हम बनाते हैं तथा संस्कृति वह है जो हम हैं।

## भारतीय संस्कृति का प्राचीन स्वरूप एवं महत्व

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। यह माना जाता है कि भारतीय संस्कृति यूनान, रोम, मिस्र, सुमेर और चीन की संस्कृतियों के समान ही प्राचीन है। कई भारतीय विद्वान तो भारतीय संस्कृति को विश्व की सर्वाधिक प्राचीन संस्कृति मानते हैं।

**धर्म**- भारत में हिंदू धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म ऐसे धर्म थे जो मूल रूप से लगभग 500 से 400 ईसा पूर्व भारत में विकसित हुए थे। ये भारतीय मूल के सभी धर्म धर्म और कर्म की सरल अवधारणाओं पर आधारित हैं। धर्म का तात्पर्य आपकी विचारधाराओं से है और कर्म का तात्पर्य आपके द्वारा किये गये कार्यों से है भारत पर मुस्लिम आक्रमणों और दिल्ली सल्तनत के उदय के बाद आने वाले वर्षों में भारत में इस्लाम भी समृद्ध हुआ। अंग्रेजों के आगमन और भारत पर उनके उपनिवेशीकरण के बाद ईसाई धर्म को भी भारत में धर्मों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया था अन्य धर्म जैसे सिख धर्म, पारसी धर्म और यहूदी धर्म भी देश में फैल गए।

**दर्शन**- भारतीय दर्शन का प्रारम्भिक उद्भव हुआ। हिंदू दार्शनिक उपदेश के लिए छह विद्यालय थे। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत हिंदू दर्शन के छह मुख्य विद्यालय थे। इन 6 विद्यालयों के अलावा, जैनियों के लिए आजीविका और बौद्धों के लिए चार्वाक भी थे। इन स्कूलों का औपचारिक कामकाज 1000-500 ईसा पूर्व से शुरू हुआ। इनमें से कई स्कूल 20 वीं सदी तक लोगों को ज्ञान प्रदान करके जीवित रहे लेकिन दुर्भाग्य से, कुछ स्कूल समय के साथ पहले ही विलुप्त हो चुके हैं। स्कूलों के बीच प्रतिस्पर्धा का उच्चतम स्तर 800 ई. से 200 ई. तक देखा गया

**धर्मग्रंथों**- भारतीय संस्कृति शास्त्रों की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। यह दुनिया के सबसे पुराने ग्रंथों में से एक है जिसे 'वेद' के नाम से जाना जाता है। वेद हिंदू धर्म का सबसे पहला ज्ञात ग्रंथ है और यह संस्कृत में लिखा गया था। वेदों के 4 मुख्य विभाग थे। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद। वेदों के अलावा, उपनिषद और पुराण भी थे जिनमें मानव जीवन और धर्म के बारे में बहुत वास्तविक जानकारी थी। भगवत गीता का धार्मिक ग्रंथ भी यहीं लिखा गया था। रामायण (500 ईसा पूर्व- 200 ईसा पूर्व) और महाभारत (कुरुक्षेत्र युद्ध के बारे में, जिसके बारे में माना जाता है कि यह 3000 ईसा पूर्व में हुआ था) जैसे पौराणिक महाकाव्य भी भारत में लिखे गए थे।

**वसुधैव कुटुंबकम**- भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक व्यवस्थित रूप हमें सर्वप्रथम वैदिक युग में प्राप्त होता है। वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं। प्रारंभ से ही भारतीय संस्कृति अत्यंत उदात्त, समन्वयवादी, सशक्त एवं जीवंत रही हैं, जिसमें जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति का अद्भुत समन्वय पाया जाता है। भारतीय विचारक आदिकाल से ही संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में मानते रहे हैं इसका कारण उनका उदार दृष्टिकोण है। हमारे विचारकों की 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम' के सिद्धांत में गहरी आस्था रही है। ववस्तुत: शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास ही संस्कृति की कसौटी है। इस कसौटी पर भारतीय संस्कृति पूर्ण रूप से उतरती है। प्राचीन भारत में शारीरिक विकास के लिये व्यायाम, यम, नियम, प्राणायाम, आसन ब्रह्मचर्य आदि के द्वारा शरीर को पुष्ट किया जाता था। लोग दीर्घ जीवी होते थे।

**आश्रम व्यवस्था**- आश्रम व्यवस्था का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है। प्राचीन भारत के धर्म, दर्शन, शास्त्र, विद्या, कला, साहित्य, राजनीति, समाजशास्त्र इत्यादि में भारतीय संस्कृति के सच्चे स्वरुप को देखा जा सकता है।

**मानव संस्कृति**- यह संस्कृति ऐसे सिद्धांतों पर आश्रित है जो प्राचीन होते हुए भी नये हैं। ये सिद्धांत किसी देश या जाति के लिये नहीं अपितु समस्त मानव जाति के कल्याण के लिये हैं। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति को सच्चे अर्थ में मानव संस्कृति कहा जा सकता है। मानवता के सिद्धांतों पर स्थित होने के कारण ही तमाम आघातों के बावजूद भी यह संस्कृति अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सकी है। व यूनानी, पार्शियन, शक आदि विदेशी जातियों के हमले, मुगलों और अंग्रेजी साम्राज्यों के आघातों के बीच भी यह संस्कृति नष्ट नहीं हुई। अपितु प्राणशीलता के अपने स्वभावगत गुण के कारण और अधिक पुष्ट एवं समृद्ध हुई।

प्राचीन सभ्यताएँ मूल्यों, सार्वभौमिक गुणों, नैतिकता और नैतिकता पर महत्वपूर्ण सबक प्रदान करती हैं। उन्होंने सम्मान, वीरता, ज्ञान, प्रेम, साहस और मानवता की संस्कृतियों पर प्रकाश डाला, जिन्होंने सदियों से मानव जीवन का मार्गदर्शन किया है, और आज भी हमारे जीवन में उनके महत्व पर जोर दिया है। उदाहरण के लिए, प्राचीन भारतीय सभ्यता ने नैतिक आचरण को नियंत्रित करने वाले धर्म की एक समानांतर दृष्टि साझा की थी। संस्कृत साहित्य और महाकाव्य, महाभारत और रामायण, नैतिक दुविधाओं पर महत्वपूर्ण टिप्पणी प्रस्तुत करते हैं और सम्मान, कर्तव्य और साहस का पाठ पढ़ाते हैं। प्राचीन यूनानी सभ्यता में, दर्शनशास्त्र ने नैतिक बहस का मार्ग प्रशस्त किया। इन सभ्यताओं का अध्ययन करने से हम अपने विचारों पर पुनर्विचार कर सकते हैं, अपनी मूल्य प्रणालियों को समृद्ध कर सकते हैं और नैतिकता की अधिक समावेशी समझ को बढ़ावा दे सकते हैं।

प्राचीन सभ्यताओं की खोज रचनात्मकता को बढ़ावा देती है, कल्पना को बढ़ावा देती है और राजनीति, दर्शन, साहित्य और विज्ञान जैसे क्षेत्रों में योगदान देती है। कई आधुनिक आविष्कार और तकनीकी सफलताएं प्राचीन डिजाइनों और सिद्धांतों से प्रेरित हैं। प्राचीन सभ्यताओं का अध्ययन करके हम वर्तमान मुद्दों को हल करने के लिए प्रेरणा और नए दृष्टिकोण पा सकते हैं। प्राचीन सभ्यताओं ने कला और वास्तुशिल्प डिजाइनों के उल्लेखनीय रूपों का निर्माण किया जो दुनिया भर में लोगों को मोहित करते रहे हैं। कला और सौंदर्यशास्त्र के इन रूपों का अध्ययन करने से हमें उनके मूल्यों, मान्यताओं और सामाजिक मानदंडों की झलक मिलती है। मिस्र के पिरामिड, चीन की महान दीवार और रोम में कोलोसियम जैसी वास्तुकला उपलब्धियाँ, इन सभ्यताओं की इंजीनियरिंग और वास्तुशिल्प कौशल को उजागर करती हैं। ये उपलब्धियाँ पीढ़ियों के बीच सहयोग, कल्पनाशीलता, संसाधनशीलता और लचीलेपन पर मूल्यवान सबक प्रदान करती हैं।

## निष्कर्ष

भारत को एक ऐसा देश कहा जा सकता है जो आज भी अपनी मूल परंपराओं से जुड़ा हुआ है। इसमें एक अच्छी बात भी है और एक बुरी बात भी। सबसे पहली बुरी बात यह है कि सामाजिक स्थिति के आधार पर भेदभाव होता है। प्राचीन काल में देखा गया था कि समाज में जाति के आधार पर विभाजन किये जाते थे और किसी तरह यह आज भी सीमित मात्रा में प्रचलित है। अच्छी बात यह है कि भारतीय सांस्कृतिक मूल्य अभी भी बरकरार हैं क्योंकि बच्चे अभी भी अपने माता-पिता का सम्मान करते हैं और उन्हें भगवान के समान मानते हैं। भारतीय किसी अतिथि या व्यक्ति का सम्मान करने के लिए हमेशा हाथ जोड़कर और झुककर अभिवादन करते हैं हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति और परंपरा वास्तव में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ चलती हैं। निस्संदेह भारत का एक महान इतिहास है और भारतीय संस्कृति और परंपरा के साथ-साथ भारतीय सांस्कृतिक मूल्य भारत के अतीत को बहुत समृद्ध बनाते हैं। यदि हम देश के इतिहास में अच्छे बिंदुओं का उपयोग कर सकें तो हम फिर से वही महान देश बन सकते हैं जो हम पहले थे। अत: यह स्पष्ट रूप से उल्लेखनीय है कि भारत में कभी भी एक ही संस्कृति पूर्ण रूप से व्याप्त नहीं रही और न ही शायद किसी भी बड़े प्रदेश में कभी एक ही संस्कृति रही है। इस देश में आध्यात्मिक संस्कृति की प्रमुखता रही है। अत: संस्कृति में बदलाव निरंतर रहेगा।

## संदर्भ


1. उपाध्याय, वासुदेव शरण: प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पटना, 1972, पृ0 75।
2. मेकर बेबर, रिलिजन्स अव इण्डिया, पृ0 52-64।
3. मिश्र, आर0एन0: प्राचीन भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था एवं धर्म, भोपाल, 1991, पृ0 147।
4. उपाध्याय, वी0: वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ0 235।
5. काणे, पी0वी0: हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग 2, भाग 3, पूना, 1941, 1946, 1953।

# कृषि विकास एवं मृदा उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव

**मनोज पटेल**

***शोधार्थी-भूगोल विभाग, सर्वोदय पी0जी0 कालेज घोशी, मऊ, उ0 प्र0***

मिट्टी एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। कृषि की जड़ मिट्टी और पानी है। इन दोनों का योग अच्छी फसल उत्पादन की गारंटी है। विकास और समृद्धि के पैमाने तय करते समय वर्तमान समाज की भविष्य की संभावनाओं पर भी विचार किया जाना चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं कर सकते हैं, तो अनुचित कार्यो और निर्णयों के दुष्प्रभाव का सामना करने में देर नहीं लगेगी। यदि मिट्टी प्रबंधन पर उचित ध्यान नहीं दिया गया, तो अगली पीढी भुखमरी, कुपोषण और भूख जनित बीमारियों से नहीं बचेगी।

वर्तमान परिवेश के मद्देनजर मिट्टी की घटती उर्वरता को बचाना नितांत आवश्यक है। तभी टिकाऊ उत्पादन संभव होगा। पिछले कई वर्षो से फसलों की उत्पादकता स्थिर या कम हो रही है, जिसका मुख्य कारण बिगड़ती स्वास्थ्य और कृषि भूमि की उर्वरता कम होना है। आधुनिक खेती में, बौना, अर्ध-बौना और संकर किस्मों की खाद्य फसलें, गहनं कृषि प्रणाली, जैविक उर्वरकों के उपयोग में कमी, रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित उपयोग और कृषि रसायनों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। मिट्टी में अत्यधिक और असंतुलित कृषि रसायनों के उपयोग ने मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को भी बदल दिया है, जिससे मिट्टी पर उगाई गई फसलों पर प्रभाव पड़ता है।[1]

उपरोक्त कारकों के कारण निस्संदेह कृषि उत्पादन बढ़ा है लेकिन मिट्टी की उर्वरता पर कृषि रसायनों के प्रतिकूल प्रभाव के कारण मिट्टी की उत्पादकता कम हो रही है। मिट्टी की उर्वरता का अर्थ है कि मिट्टी की भौतिक, रासायनिक और जैविक परिस्थितियाँ फसल उत्पादन के लिए अनुकूल हैं। स्थायी और टिकाऊ उत्पादन के लिए भूमि को स्वस्थ रखना आवश्यक है ताकि हम वर्तमान में खाद्य आपूर्ति के साथ साथ भविष्य की आवश्यकता का भी ध्यान रख सकें।

जनपद संत कबीर नगर में कृषि विकास एवं भूमि उपयोग पर पारिस्थितिकी के प्रतिकूल प्रभाव का सूक्ष्मस्तरीय अध्ययन हेतु विकासखण्ड स्तर पर भूमि उपयोग के आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है। जिसमें वन भूमि, कृषि योग्य बंजर भूमि, वर्तमान परती भूमि, अन्य परती भूमि, ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि, कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि, चारागाह भूमि, उद्यानों, बागों, वृक्षों एवं झाड़ियों की भूमि तथा शुद्ध बोया गया क्षेत्र सम्मिलित है।

अध्ययन क्षेत्र संत कबीर नगर जनपद ग्रामीण परिवेश एवं कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था पर आधारित जनपद है। जनपद में भूमि उपयोग सम्बन्धी तथ्यों के विवेचन से स्पष्ट है कि भूमि उपयोग प्रतिरूप के अन्तर्गत सम्मिलित क्षेत्र में निरन्तर परिवर्तन होता आ रहा है, विकासखण्डस्तर पर वर्ष-2001 की तुलना में वर्ष-2021 में कृषि विकास एवं भूमि उपयोग प्रारूप में परिवर्तन का अध्ययन निम्न सारणी से स्पष्ट है-

***सारणी***

***जनपद - संत कबीर नगर: विकासखण्डवार कृषि विकास एवं भूमि उपयोग***

***(वर्ष 2001 के आधार पर वर्ष 2021 में)***[2]

| fooj.k | Oku | df"k ;kX; cWtj Hkfe | orZeku ijrh | vU; ijrh | Ålj ,oa df"k ds v;kX; Hkfe | df"k ds vfrfjDr vU; mi;kx Hkfe | pkjkxkg | m\|kuk] ckxk] o{kk ,oa >kfM+;k dh Hkfe | 'kq) ckr;k x;k {k= |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सेमरियावा | 237.14 | 156.94 | −33.82 | 228.4 | −63.78 | 31.32 | 244.82 | 18.86 | 02.44 |
| मेहदावल | 196.47 | −16.20 | −54.99 | 88.44 | −73.04 | 61.17 | 525.00 | 23.44 | −1.25 |
| बघौली | 187.94 | 911.11 | −56.40 | 200.96 | −63.52 | 33.73 | 132.75 | −03.71 | −5.39 |
| खलीलाबाद | 188.33 | 13.33 | 95.25 | 75.81 | −55.80 | 86.53 | 112.75 | 115.22 | −2.90 |
| नाथ नगर | 85.00 | 152.94 | −83.01 | 89.26 | −39.24 | 14.26 | 163.15 | −24.83 | −49.00 |
| हैसर बाजार | 254.44 | −55.21 | −82.91 | 36.36 | −67.58 | −15.97 | 100.00 | −23.45 | −52.12 |
| सांथा | 962.60 | −58.31 | −67.44 | 622.17 | −71.75 | 0.83 | 143.90 | −67.80 | −42.28 |
| बेलहर कला | 0 | −19.52 | −576.9 | 145.71 | 1.66 | 102.81 | 300.00 | −17.54 | 09.89 |
| पौली | 0 | −28.10 | −28.20 | 84.14 | 3.38 | 0.52 | 1085.7 | 403.33 | 34.14 |
| ;kx tuin | 187-85 | 33--27 | &55-66 | 126-01 | &47-44 | 49-37 | 234-84 | &13-09 | &7-45 |

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि विकासखण्डस्तर पर वर्ष-2001 के आधार पर वर्ष-2021 में भूमि उपयोग प्रारूप में सभी विकासखण्डों में परिवर्तन सकारात्मक रुप से वन क्षेत्रफल में, अन्य परती भूमि में, कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि में (हैसर बाजार को छोड़कर), चारागाह भूमि में हुआ है। जबकि नाकारात्मक परिवर्तन वर्तमान परती भूमि, ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि में तथा शुद्ध बोया गया क्षेत्र में (अधिकांश विकासखण्ड़ों में) नाकारात्मक परिवर्तन हुआ है।

मिट्टी की उर्वरता उर्वरता घटाने वाले कारक- मिट्टी की उर्वरता उर्वरता घटाने वाले कारक निम्नलिखित है-

रासायनिक उर्वरकों का अनुचित और असंतुलित उपयोग- कृषि में रासायनिक उर्वरकों का अनुचित और असंतुलित उपयोग मिट्टी की उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। रासायनिक उर्वरक इतने असंतुलित होते जा रहे हैं कि अब दुष्प्रभाव दिखने लगे हैं। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश, पौधों के लिए तीन मुख्य पोषक तत्व, देश के कई कृषि क्षेत्रों में अनिश्चित अनुपात में उपयोग किए जा रहे हैं। हमारे देश में पिछले वर्षों में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश का अनुपात 9: 3: 1 रहा है, जो बहुत असंतुलित है। मुख्य रूप से फसल में नाइट्रोजन प्रदान करने वाले रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते उपयोग से मिट्टी में कुछ गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो रही है, जिससे मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वहीं, फसलों की गुणवत्ता और पैदावार भी घट रही है।

दोषपूर्ण सिंचाई प्रणाली- मिट्टी की उर्वरता में कमी हमारे देश में एक चिंता का विषय है। दोषपूर्ण सिंचाई प्रणाली प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसके लिए जिम्मेदार है। आज, किसान बिना किसी समझ के देश के कई हिस्सों में सिंचाई के पानी का उपयोग कर रहे हैं। परिणामस्वरूप, कृषि में उत्पादन की लागत न केवल बढ़ जाती है, बल्कि मिट्टी की उर्वरता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सिंचाई के पानी के अनियमित और अनियंत्रित उपयोग से पानी का ठहराव, मिट्टी की व पोषक तत्वों की हानि, मिट्टी की उर्वरता में कमी और मिट्टी का कटाव जैसी समस्याएं पैदा हो रही हैं। खेत के उस हिस्से की भौतिक स्थिति जिसमें सिंचाई का पानी लंबे समय तक भरा रहता है, खराब हो जाता है। मिट्टी की संरचना गंभीर रूप से विकृत है। आखिरकार, मिट्टी की उत्पादकता और उर्वरता में काफी गिरावट आती है।

भूमि उपयोग प्रतिरुप में असन्तुलन एवं भूमि उपयोग की पोषणीयता को चुनौती देता हुआ दूसरा पक्ष प्राकृतिक जलाशयों का अवसाद से पटते जाना तथा विलुप्त होना है। यह एक विडम्बना ही है कि क्षेत्र में एक ओर प्राकृतिक जलाशय अनुपयोगी एवं घटते जा रहे हैं, तो दूसरी ओर कृषिगत भूमि असगंत सिंचाई योजनाओं के चलते जल प्लावनता का शिकार होकर बंजर की कोटि में परिणत हो रही है।

मिट्टी का अनुचित और अत्यधिक दोहन- वर्तमान में, गहन फसल प्रणाली के तहत मिट्टी के अनुचित और अत्यधिक दोहन के कारण मिट्टी की उर्वरता कम हो रही है जो फसल की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही है। प्रत्येक फसल के बाद भूमि में पोषक तत्वों की कमी होती है, जिसकी भरपाई करना बहुत जरूरी है अन्यथा मिट्टी की उर्वरता, मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता घट जाती है। मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश का अनुपात उच्च उपज वाले बौने, अर्ध बीज और फसलों की संकर किस्मों की निरंतर खेती के कारण बिगड़ रहा है। फसलों को विभिन्न पोषक तत्वों की अलग- अलग मात्रा की आवश्यकता होती है। किसी एक पोषक तत्व की कमी को दूसरे तत्व की आपूर्ति से पूरा नहीं किया जा सकता है। उत्तर पश्चिम में धान- गेहूं के फसल चक्र के तहत, न केवल मिट्टी में कार्बनिक कार्बन की मात्रा कम हो जाती है, बल्कि कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जस्ता, लोहा और बोरान की भी कमी होती है।[3]

**खेती में कृषि रसायनों का बढ़ता उपयोग**- पिछले कई दशकों में, जहरीले कृषि रसायनों जैसे जड़ी बूटी, कीटनाशकों और संयंत्र नियामकों के अत्यधिक और असंतुलित उपयोग से मिट्टी की उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। उपर्युक्त रसायनों के उपयोग से खरपतवार, कीट और रोग नियंत्रित होते हैं, लेकिन ये जहरीले कृषि रसायन मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरता कम हो जाती है। आज किसानों को इन रसायनों के उपयोग सही ज्ञान नहीं होने के कारण उपजाऊ भूमि बंजर भूमि में बदल रही है। साथ ही, मिलावटी और नकली कृषि रसायनों के उपयोग के कारण मिट्टी की उर्वरता कम हो रही है। कृषि में उपयोग किए जा रहे इन रसायनों के अत्यधिक उपयोग से प्राकृतिक संसाधनों - भूजल, सतही जल, मिट्टी, जीव और पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रह है।

**निम्न गुणवत्ता वाले सिंचाई जल**- खेती में सिंचाई का पानी बहुत महंगा उपकरण है, जिसके कारण लागत और उपज का अनुपात असंतुलित हो रहा है। कछुआ क्षेत्रों के पानी को देखना और पीना सही लगता है, लेकिन वास्तव में यह मिट्टी और फसलों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। फसल के उत्पादन में लंबे समय तक इस तरह के पानी के लगातार उपयोग के कारण, पहले तो उपज धीरे- धीरे कम होने लगती है और बाद में भूमि बांझ हो जाती है।4

नमक या खारे पानी से सिंचाई करने से मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस तरह खारे और कम गुणवत्ता वाले पानी के उपयोग से खेती योग्य भूमि की उर्वरता लगातार कम हो रही है। लंबे समय तक खारे पानी से सिंचाई करने पर बीजों का अंकुरण कम हो जाता है। पौधों की प्रारंभिक अवस्था में, विकास कम होता है और पौधे छोटे रहते हैं। इसलिए निम्न गुणवत्ता वाला पानी मिट्टी की उर्वरता के लिए हानिकारक है।

**सतह और भूजल का अत्यधिक दोहन**- सिंचित क्षेत्रों में सतह और भूजल के अनुचित और अत्यधिक दोहन के कारण जल स्तर लगातार गिर रहा है जो भूमि की उर्वरता और फसलों की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। अंधाधुंध सिंचाई और फसलों में सिंचाई बढ़ाने से न केवल पानी की बर्बादी होती है, बल्कि उत्पादन की लागत भी बढ़ जाती है।

वर्तमान परिवेश में, गहन फसल प्रणाली और मशीनीकरण के कारण भूजल पर दबाव इतना बढ़ गया है कि भूमिगत जल स्तर दिन ब दिन गिरता जा रहा है। खेती में पारंपरिक सिंचाई प्रणालियों का उपयोग किया जा रहा है जिसमें खेतों में सिंचाई का पानी भर गया है। इससे बहुत सारा पानी यहाँ चला जाता है या मिट्टी में रिसने से नष्ट हो जाता है, जिसका अंततः मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।[5]

**जैविक खादों का कम उपयोग**- आजकल कृषि में पशुधन की संख्या कम हो रही है। पहले, खेती बैलों पर निर्भर थी। खेती के मशीनीकरण के कारण पूरे गाँव में बैलों की जोड़ी नहीं है। जिसके कारण खेतों में गोबर की खाद और पशुओं के उत्सर्जन का बहुत कम उपयोग किया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप

मिट्टी में जीवाणु पदार्थ की कमी होती है। इसके अलावा, फसल चक्र में दलहन और फसल अवशेषों का समावेश कम बार किया जा रहा है। किसान बहुउद्देशीय पौधों की पत्तियों का उपयोग खाद के बजाय ईंधन के रूप में कर रहे हैं।

आधुनिक खेती में, जैविक उर्वरकों और रासायनिक उर्वरकों की बजाय, एकल तत्व उर्वरकों का उपयोग बढ़ रहा है, जिसका मिट्टी में जीवाणु पदार्थ की कमी के कारण कई लाभकारी सूक्ष्मजीव मिट्टी अपघटन और अपघटन में सक्रिय रूप से भाग लेने में सक्षम साबित नही होते हैं।

संयोजन बिगड़ रहा है। खाद और हरी खाद का सीधा प्रभाव मिट्टी की उर्वरता पर पड़ता है। इस प्रकार जीवाणुओं की संख्या कम हो रही है। ये त्वरित तो लाभदायक होते हैं, जो अंततः मिट्टी की उर्वरता के लिए घातक सिद्व होते है।

**कृषि भूमि का बिगड़ता स्तर**- ट्रैक्टर और भारी मशीनरी की खेती में, प्रयोग सुरक्षित नहीं हैं, जिसके कारण अधिकांश वर्षा जल नष्ट हो जाता है। इसी समय फसलों को दिए जाने वाले पोषक तत्वों का एक बड़ा हिस्सा भी बारिश के पानी से धुल जाता है। कृषि के मशीनीकरण के कारण, कृषि भूमि का स्तर बिगड़ रहा है जिसके कारण पूरे क्षेत्र में सिंचाई के पानी और पोषक तत्वों का वितरण समान रूप से नहीं किया जाता है।

अधिकांश किसान खेतों की समतलता के महत्व को नजरअंदाज कर देते हैं, ताकि पूरे खेत में मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता समान न रहे। फसल की औसत उपज में अंततः गिरावट आती है। कभी कभी एक ही प्रकार के कृषि उपकरणों की बार-बार जुताई करने और एक ही गहराई पर उप तल में हल के नीचे कठोर परतों के बनने से मिट्टी में हवा और नमी की आवाजाही बाधित होती है। इसी समय, पौधों की जड़ें भी ठीक से विकसित नहीं होती हैं।

## निष्कर्ष एवं सुझाव

वर्तमान परिवेश में बढ़ते आधुनिकीकरण के कारण कृषि योग्य भूमि का क्षेत्र दिन-प्रतिदिन घटता जा रहा है। भविष्य में इसके बढ़ने की संभावना नहीं है। देश की बढ़ती आबादी को खाद्यान्न की आपूर्ति करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन किया जा रहा है। जिसका परिणाम आज हम देख रहे हैं कि भूमि उत्पादकता, गिरते भूजल स्तर, घटते जल स्रोतों, घटते जैव विविधता, सूखे, बाढ़ और जलवायु परिवर्तन में कमी आ रही है।

नई कृषि नीति को अपनाने से कृषि में पशु और वृक्ष का समायोजन तो भंग हुआ ही, कृषि में विविध रूपों में रसायनों एवं कीटनाशक के निवेश से कृषि का मूल आधार भूमि (मिट्टी) संसाधन ही संकटग्रस्त हो गया है। अध्ययन क्षेत्र संत कबीर नगर जनपद में बृहद् एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का अभाव सामान्य बात हो गयी है। अतः यह आशंका निर्मूल नहीं लगती कि वर्तमान कृषि पद्धति के बने रहने पर भूमि की उत्पादन क्षमता भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ रहेगी।

यदि हम समय पर मुख्य रूप से मिट्टी और जल संरक्षण के प्राकृतिक संसाधनों पर विशेष जोर नहीं देते हैं, तो भविष्य में भोजन की गंभीर समस्या का सामना करना पड़ सकता है। इस संबंध में, मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता बढ़ाने में सटीक खेती महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। सटीक खेती सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित कृषि विज्ञान की एक आधुनिक अवधारणा है जो पर्यावरण के अनुकूल है, किसानों के लिए उपयोगी है और उत्पादन बढ़ाने के लिए संभावनाओं के साथ साथ प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव को कम करने में मदद करती है। यह क्षेत्र की स्थानीय जानकारी प्राप्त करने के लिए जीआईएस, जीपीएस, रिमोट सेंसिंग सिस्टम और सूचना प्रौद्योगिकी जैसी अत्याधुनिक तकनीकों का उपयोग करता है।

उपरोक्त सभी तंत्रों से जानकारी एकत्र करके लागत उपकरणों की मात्रा निर्धारित की जाती है। खेती को स्थान विशेष कृषि के रूप में भी जाना जाता है। इसमें कॉस्ट्रिंग टूल्स का अत्यधिक उपयोग किया जाता है। खेती में लागत वाले उपकरण जैसे खाद और उर्वरक, सिंचाई, कीटनाशक और शाकनाशियों आदि का उपयोग केवल उसी स्थान पर किया जाता है जहाँ फसल को इनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है। पारंपरिक खेती में, किसान उपर्युक्त विधियों का पूरे क्षेत्र में समान रूप से उपयोग करते हैं जिसमें न केवल संसाधनों का दुरुपयोग होता है बल्कि मिट्टी की उत्पादकता में कमी और उत्पादन लागत में वृद्धि के साथ साथ पर्यावरणीय क्षति भी होती है। आने वाले समय में खाद्य उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्पादन लागत को कम करके और उपलब्ध संसाधनों जैसे कि उर्वरक, सिंचाई जल, कीटनाशकों आदि का बेहतर उपयोग सुनिश्चित करके मिट्टी की उत्पादकता और उर्वरता बनाए रखना नितांत आवश्यक है।

## संदर्भ


1. रोया चौधरी, एसपी मृदा ऑफ इंडिया काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसोर्सेस, नई दिल्ली, 1963, पृ0 34।
2. स्रोतः जिला सांख्यिकीय पत्रिका, वर्ष 2002 और 2021 के आधार पर परिगणित।
3. बंसल पी. सी. (1987) भारत की समस्याओं की कृषि, नई दिल्ली, पृ0 23।
4. सिंह, बी एन, कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, पृ0 97।
5. कमलेश, एस, आर, (1996)ः कृषि भूगोल, बिलासपुर संभाग में कृषि विकास का स्तर, वसुन्धरा प्रकाशन, पृ0 65।

# समकालीन साहित्य में सामाजिक चेतना


## डॉ० हीरालाल शर्मा

*सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय बिलासा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय बिलासपुर ( छ.ग. )*


आज हिन्दी कविता मानव जीवन एवं समाज में घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। कविता एवं जीवन स्थितियां परस्पर एक हो गयी है। समकालीन कविता में राजनैतिक और सामाजिक संदर्भों में परंपरागत भारत के सामाजिक आर्थिक ढांचे में परिवर्तन दिखाई देना स्वाभाविक हैं, क्योंकि साहित्य वैयक्तिक नही सामाजिक सम्पत्ति है, व्यक्ति एवं साहित्य पर देशकाल परिवेश समाज का प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता हैं। हिन्दी कविता संवेदना की दृष्टि के संदर्भ में भी यह एक बड़े परिवर्तन का गवाह है। यह परिवर्तन कविता की विषयवस्तु और शिल्प के संदर्भ में सूक्ष्म है। कला और कविता का कोई भी दौर अपने समय के सामाजिक परिवेश के प्रत्यक्ष और परोक्ष भावों से अछूता नहीं रह सकता।

भारतीय वर्ण व्यवस्था की जड़े जितनी गहरी है, उतनी विवादास्पद भी। इसका परिणाम कार्य, गुण, धर्म आधारित हो गया है, परिणामतः, जातीय समीकरण बनते चले गये, जो समाज के टूटन का पर्याय भी हैं, रामधारी सिंह दिनकर जी ने लिखा है शूद्र और नारी को वही स्थान मिलना चाहिये जो उच्च वर्ग को प्राप्त है, तो कुछ ऐसे भी लोग मिलते है, जिनके लिये कविता, मनोरंजन की वस्तु हो सकती है, लेकिन कविता मन बहलाव व मनोरंजन नहीं वरन, जीवन-समाज की सच्चाई है। कविता के साथ जीवंत संपर्क महत्वपूर्ण है।

समकालीन साहित्य के प्रचार एवं प्रसार में असंख्य छोटी-मोटी पत्रिकाओं का विशेष दायित्व रहा है, किसी मानव समाज एवं समुदाय की कल्पना भाषा के जन्म के कारण ही कर सकते हैं, किसी भी भाषा का साहित्य अपने समाज का अंग नही वरन् उसका स्मारक भी है क्योंकि इतिहास व समाज के बदल जाने पर भी स्मारक नहीं बदला करते। जहां साहित्य समाज की उदात्त संस्कृति का घोतक हैं और मानवता की निधि है, वहीं भाषा जीवन की एक दिशा है। समकालीन कविता नई कविता का न तो विकास है, न ही उसका विकसित रूप हैं, इसका अपना शिल्प और पहचान हैं।

समकालीन साहित्य का दायित्व सामाजिक ही हैं। मूलतः गरीबी, बेकारी, मंहगाई, अन्याय, अत्याचार, शोषण, दलित कथा, मजदूर, किसान, अपेक्षा पूर्ति का अभाव समकालीन दिव्यमान रहा है। ये सभी बाते समकालीन कवियों को उद्वेलित करती हैं, जो मानव चेतना की दुहाई देती है। बावजूद इसके की जीवन की समस्त विपदाएं स्वीकारेय हैं और आस्था के प्रति समर्पित। तात्कालीन परिदृश्य धर्म, सम्प्रदाय, जाति एवं वर्ग में विभक्त है, जिससे क्षेत्रीयता, जातिवाद व अलगाव की स्थिति का प्रतिस्थापन स्वाभाविक है. किन्तु समकालीन साहित्य व कविता का समन्वय उस वैज्ञानिक उपलब्धियों के सहारे नवीन आयाम देने का प्रयास है।

आचार्य नंद दुलार बाजपेयी जी का कथन है कि समकालीन कवि अपनी अपार सहानुभूति से पददतिल मानव में अशेष निहित शक्तियों और संभावनाओं का उल्लेख करता है। भाईचारा, विश्व बंधुत्व परोपकार सहिष्णुता एवं शिवत्व की स्थापना के साथ सौन्दर्यबोध कराना प्रमुख लक्ष्य है। समकालीन कविता का एक अंश दृष्टव्य है-

*पूरा परिवार भूख ग्रसित है, बच्चे भूखे है,*
*माँ के चहरे पर पत्थर, पिता जैसे काठ, अपने ही आग में जल रहा है,*
*ज्यों सारा घर-घूमिल, भूख, जंगल से लेकर, शहर तक फैली हुई हैं,*
*मौसम गाने का है, घर में भूख नाच-गा रही है,*
*गरीबी और सूदखोरी मानव को चूस रही हैं।।*

कुमार विमल ने लिखा है मंडियों में चीजों की कीमतें बढ़ रही है, लोग उदास हो रहे हैं।- समकालीन कविता दलित-विमर्श पर चिंतन करती हैं, अस्पृश्यता समाज का क्लेश है। जिसके विरूद्ध गांधी जी ने बिगुल फूंका, जिसे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, स्वामी दयानंद सरस्वती, आदि विचारकों ने अस्पृश्यता का विरोध किया है और गहरी आत्मीयता का परिचय दिया है-

**दृष्टव्य-**

दलितों के लिए, मुल्क की आजादी का, तुम्हारे लिए कभी कोई अर्थ नहीं रहा, अश्पृश्यता से होती है, मानव की मानव द्वारा अवहेलना, जब समता का अधिकार मिला है, ईश्वर द्वारा, तो फिर से धर्म के कुछ ठेकेदार, क्यों करते है उसकी अवमानना।

समकालीन कविताओं में जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण- संग्राम जिन्दगी है, लड़ना उसे पड़ेगा, जो लड़ नहीं सकेगा, आगे नहीं बढ़ेगा, हर एक मोर्चे पर, संग्राम छिड़ रहा है, देखो कदम कदम पर व्यवधान अड़ रहा है, उसको विजय मिलेगी, संघर्ष जो करेगा।।

-सुरेन्द्र प्रसाद

संस्कृति और मनुष्य का परस्पर घनिष्ठ संबंध रहा है ऐसे ही साहित्य एवं समाज का अन्योन्याश्रित संबंध रहा है। हिन्दी साहित्य में नूतन विकासात्मक परिवर्तन का यही कारण है, चाहे वीरगाथा काल हो, भक्तिकाल हो अथवा वर्तमान कालीन साहित्य, सब में नूतन प्रवृत्तियां दिखाई देती है। समकालीन पद्य एवं गद्य साहित्य में नव विमर्श काफी वैविध्यपूर्ण हैं, जो हिन्दी प्रेमियों के लिए रोचक और उपादेय भी, क्योंकि साहित्य में जीवन की व्याख्या होती हैं। जिससे व्यक्ति समाज राष्ट्र एवं विश्व को नई दिशा मिलती है। साहित्य नव विमर्श में नए विचारों का प्रस्फुटन होता है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण समकालीन साहित्य है, मैने स्वयं ने अनुभव किया है कि जब-जब भी हिन्दी साहित्य का इतिहास एवं हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं के अध्ययन अध्यापन का अवसर निर्मित हुआ है, तब-तब एक नई बात दृष्टगोचर हुई है। मेरे दृष्टिकोण से हिन्दी साहित्य में सामाजिक चेतना वाली बात भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता को इसका श्रेय मिलना चाहिये ठीक उसी तरह नारी चेतना के तह, नारी केवल भोग्या नही समाज के गौरव का प्रतीक एवं देश की श्रेष्ठ रक्षिका के रूप में बल मिलना चाहिये। सामाजिक चेतना का मूल मंतव्य समाज-सुधार हो गया। निजत्व की भावना, स्वदेश प्रेम, अतीत का गौरव गान, प्रेरणा बनी।

यथा-

*डंका कूच का बज रहा मुसाफिर, जागो रे भाई,*
*देखो लाद चले, पन्थी सब तुम क्यों रहे भुलाई।।*

समकालीन बात- वैसे भी असहमति बुद्धि का स्वाभाविक लक्षण है, सभ्यता और संस्कृति के विकास की बात, असहमति से ही होती है, फिर भी हमे समझना होगा, असहमति पूर्वाग्रह न हो, और दुराग्रह तो बिलकुल भी नहीं। इसके लिए दृढ़ता और जड़ता में अंतर समझना आवश्यक होगा। जैसे-गांधी जी को लेकर जो विचार आज भी विकसित है, जैसे- विश्व पर न जाकर स्वदेश में ही स्वदेशी, कितनी बहसें होती है, जैसे कोई गांधी गिरी करता हैं, तो कोई गांधी टोपी पहनता है, तो सच बात यह है कि गांधी के आदर्श कितने कारगर है।

गांधी वैश्विक हैं वे दृष्टि हैं, उनकी प्रासंगिकता हमेशा बनी रहेगी। ये असहमतियां और बहसें उतनी ही प्राचीन हैं जितना हमारी सभ्यता और संस्कृति। गांधी एक असंगत स्वभाव का नाम है। तुलसीदास ने काफी पहले कहा था-

*वाक्य ग्यान अत्यंत निपुन, भव पार न पावें कोई।।*

समकालीन कविता नई कविता का न तो विकास है, और न ही उसका विकसित रूप है। यह कविता अपनी तरह का अनूठा है, जिसका अपना कथ्य शिल्प और व्यक्तित्व है, जो नई कविता से बिलकुल भिन्न है, समकालीन कविता का सामाजिक दायित्व प्रभावोत्पादक रहा हैं। जिसकी अपनी मानवीय संवेदनाएं हैं। मनुष्य को उसके असली परिवेश में लाने का व्यक्तित्व के पुनर्निर्माण का प्रयास है। जिससे मानव दायित्व बोध से प्रेरित होकर स्वस्थ समाज की अवधारणा का प्रेरक, इकाई बने। समकालीन कविता सुखमय और अनदेखी समाज की कल्पना करता है, जिसे मूर्त रूप देना भी समकालीन कवियों का कार्य रहा हैं।

किसी मानव समाज एवं समुदाय की कल्पना भाषा को जन्म के कारण ही संभव हो सका हैं, किसी भी भाषा का साहित्य अपने समाज का अंग नही वरन् उसका स्मारक भी है, क्योंकि इतिहास और समाज के बदल जाने पर भी स्मारक नहीं बदला करते। जहां साहित्य समाज को उदात्त संस्कृति का घोतक है, और मानवता का निधि है, वहीं भाषा जीवन की एक दिशा है।

समकालीन साहित्य छायावाद के पतन के साथ ही हिन्दी काव्य में विभिन्न प्रकार के वादों का उदय हुआ, एक लोकप्रिय काव्य अभिव्यक्ति प्रगतिवाद के नाम से मशहूर हुई

इसमें बाल कृष्ण शर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है, हरिवंशराय बच्चन ने हिन्दी साहित्य को अपने तीनों काव्य मधुशाला, मुधबाला और मुधकलश से और अधिक समृद्ध किया है। इनकी कविताओं को कभी-कभी हृदयवान या भावनाओं की कविता के रूप में जाना जाता है, इसके पश्चात् प्रयोगवाद एक आंदोलन के रूप में आया, और इसमें रची सारी कविताएं प्रयोगवादी कविता कही गई जो बाद में नई कविता का स्वरूप प्राप्त की, इस वाद में कविता ने नये प्रतीक और प्रतिमान प्रयोगित हुये इस आंदोलन के प्रमुख अग्रणी साहित्यकारों में सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, शिव मंगल सिंह सुमन, गिरिजा कुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, निर्मलवर्मा आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखित है। तारसप्तक इसी काल की देन है, जो हिन्दी साहित्य का क्रांतिकारी संकलन के रूप में जाना जाता हैं। इसी समय मुक्तिबोध जी का चांद का मुंह टेढ़ा हैं, का प्रकाशन भी संभव हुआ।

## संदर्भ ग्रंथ-


1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का भूमिका- रामविलास शर्मा
3. हिन्दी साहित्य- विविध आयाम- डॉ. पण्डया
4. हिन्दी साहित्य- नव विमर्श, डॉ. पण्ड्या
5. समकालीन पत्रिका

# नाटककार भवभूति की कृतियों में प्रकृति एवं पर्यावरण चिन्तन


## उदयन कुमार

*शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, रामचन्द्र चन्द्रवंशी विश्वविद्यालय, विश्रामपुर, पलामू, झारखण्ड*


संस्कृत काव्य में पर्यावरण को निरन्तर स्थान मिलता रहा है, वेदों में उसके विस्मय विमुग्धकारी रूप वेल-बूटों की तरह सज्जित हैं तो लौकिक संस्कृत में आदिकवि वाल्मीकि ने भी कविदृष्टि से प्रकृति का दर्शन कराया है। रामायण में इसे मानवीय भावों या जीवन परिस्थितियों के उद्दीपक के रूप में लिया तो कालिदास ने कल्पना या सादृश्य विधान का चित्रण ही प्रकृति के सहारे किया है। भारवि, माघ, बाणभट्ट, श्रीहर्ष आदि ये कवि संस्कृत की किसी भी शाखा से सम्बद्ध हों, सभी ने अपने-अपने ढंग से पर्यावरण को ग्रहण किया है।

पर्यावरण शब्द से तात्पर्य- परितः आवृणोति जीवजगदिति पर्यावरणम। समग्रामपि चेतनपदार्थानामस्तित्वं भौतिकपरिस्थितिषु समबलम्वितं दृश्यते। वातावरणप्रकृतिपरिवेशादिभिः शब्दैरपि एतदेव आख्यायते। सकलप्रपंचाधारभूतापृथ्वी, यत्र सर्वभूतानि निवसन्ति तान्येव जैविकाजैविकघटकानि पर्यावरणनाम्ना आख्यायन्ते।

प्रकृति और पर्यावरण प्रायः समान अर्थों में ही प्रयुक्त होते हैं। एक-दूसरे के घटक तत्त्वों में लगभग ऐक्य है इसलिए पर्यावरण के साथ-साथ प्रकृति शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। काव्य और प्रकृति का परस्पर प्रगाढ सम्बन्ध रहा तथा काव्यात्मक परिकल्पना के आदिम स्फुरण में भी जिन भौतिक या आधिभौतिक तत्त्वों ने प्रेरणा प्रदान की होगी, उनमें प्रकृति के मोहक अथवा विस्मयकारी रूपों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। मानवजीवन स्वयं भी तो प्रकृति के विशाल जीवन का ही अभिन्न अंग है तथा प्रकृति ने स्वयं ही अपने प्रतिबिम्बों को हृदय के विविध भावों के रूप में मूर्त्त कराया है। क्रान्तदर्शी ऋषियों की दृष्टि सर्वप्रथम प्रकृति के अनन्त में विस्मय तथा रहस्यमयी सौन्दर्य बिम्बों पर टिकती है। अनन्तर उन्हें मानवीकरण या दैवीकरण के प्रकृष्ट कलात्मक सांचे में ढालती है। भारतीय संस्कृति प्रकृति की गोद में वनों से ढके हुए तपोवन एवं आश्रमों में ही विकसित हुई। जहाँ भविष्यद्रष्टा ऋषि मन्त्रों के माध्यम से पर्यावरण की शुद्धि के लिए प्रार्थना किया करते थे-

*ऊँौ शान्तिरन्तरिक्षः शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः*

*शान्तिरौषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः।।1*

संस्कृत नाटक के क्षेत्र में कालिदास के अनन्तर सबसे लोकप्रिय व प्रख्यात नाम भवभूति का ही है। लौकिक संस्कृत में वे ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्हें कालिदास की श्रेणी में रखा जा सकता है। एक सूक्ति के अनुसार तो उनका उत्तररामचरित शाकुन्तल से भी उत्कृष्ट माना गया है-

*उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।*

भवभूति की यह प्रशंसा कुछ अतिरंजित होने पर भी सर्वथा निराधार नहीं है। वस्तुतः भवभूति की प्रतिभा के कुछ ऐसे पक्ष हैं जिनमें कालिदास भी उनकी बराबरी नहीं कर सकते। मानव हृदय के तीव्र भावोद्वेगों, विक्षुब्ध अन्तरात्मा की गम्भीर वेदनाओं का जैसा मार्मिक चित्रण भवभूति ने किया है वैसा किसी अन्य ने नहीं। नाटक के क्षेत्र में भवभूति एक नूतन दृष्टि लेकर अवतीर्ण हुए तथा उन्होंने अपनी कृतियों में अनेक नये प्रयोग किये हैं, जो उनकी मौलिक व स्वतन्त्र प्रतिभा के परिचायक हैं। प्रकृति व पर्यावरण के चित्रण में भवभूति की दृष्टि नूतनता लिए हुए है। जहाँ कालिदास व अन्य कवि प्रकृति के मधुर व कमनीय रूपों के प्रेमी हैं, वहाँ भवभूति को उसके विकट, भयावह व उग्ररूपों से अनुराग है।

इनके तीन नाटक उपलब्ध होते हैं तथा ये ही सम्पूर्ण कीर्ति के आधार हैं। इनमें से दो महावीरचरित व उत्तररामचरित रामकथा पर आधारित हैं तथा तीसरा मालतीमाधव मालती व माधव की कल्पित प्रणय कथा पर। भवभूति चूँकि नाटककार के रूप में प्रख्यात हैं तो उन्हें अपने तीनों रूपकों में प्रकृति या पर्यावरण की एक विशिष्ट सीमा में आबद्ध रहना पड़ा है तथा उनके प्रकृति चित्र किस प्रकार विकास पाते हैं, इसका विवरण प्रस्तुत है-

## महावीरचरित में पर्यावरण

भवभूति की तीनों नाट्यकृतियों में पर्यावरण के चित्रण की रीति एवं सौन्दर्य स्तर में उनके परिपक्व मस्तिष्क तथा नाट्यकला की प्रखरता दृष्टिगत होती है। इनकी किसी भी नाट्यकृति में प्रकृति चित्रण की दृष्टि से कोई स्पष्ट भेदप्रतीति नहीं होती जो कालिदास के ऋतुसंहार और मेघदूत के बीच दिखाई देती है। महावीरचरित के परिप्रेक्ष्य में बात करें तो प्रकृति का यत्किंच रूप प्राप्त होता है उसमें कलात्मक दृष्टि से किसी प्रकार की न्यूनता नहीं मिलती है, वस्तु, भाव के साथ प्रकृति का सामंजस्य मिलता है-

*गर्जाजर्जरितासु दिक्षु बधिरे तत्स्फूर्जथुस्फूर्जितै-*
*र्व्याप्ते भ्राम्यति दुष्प्रभंजनजवादभ्रेऽप्यदभ्रे मुहुः।*
*आक्षिप्यान्धयति द्रुमान्धतमसे चक्षुः प्रविश्य क्षपा*
*यत्रासीत्क्षपिता क्षरज्जलधरे त्वक्सारलक्षीकृते।।2*

उक्त श्लोक में लक्ष्मण ने दण्डकारण्य में आकाशमार्ग से दिखाई देने वाले बांसों के झुरमुट से संलग्न उस जीर्ण कन्दरा की ओर राम का ध्यान आकृष्ट किया है, जहाँ सीता विरहित होकर उन दोनों ने बिजली की कड़क, मेघाच्छन्न आकाश के भयंकर गर्जन, सघन वृक्षों द्वारा आपातित सूचीभेद्य अन्धकार तथा निरन्तर बरसते मेघों से युक्त एक रात बितायी थी। सीता के खो देने के पश्चात् राम के प्राणों में जो तूफान समा गया था, उनके भीतर और बाहर जो आकुलता, सघन आर्द्रता एवं अन्धकार घिर आये थे, उन सबका जीवन्त प्रतिनिधित्व करने वाला प्रस्तुत श्लोक भवभूति की विराट् एवं संवेदनशील प्रकृति का एक सुन्दर निदर्शन है। यहाँ कन्दरा का सूनापन प्रकृति के उस क्षोभ के चित्रों से और भी घनीभूत हुआ सा लगता है, राम के संतप्त हृदय की मूक एव अमूर्त ज्वालाएँ सदेह होकर प्रकृति के विराट् स्वरूप में प्रतिध्वनित होती हुई सी प्रतीत होती है। स्पष्ट है कि यहाँ राम या सीता के किसी भाव विशेष का आरोप प्रकृति पर नहीं किया गया है- प्रकृति की कल्पना उनके जीवन से सर्वथा स्वतन्त्र की गई है। फिर भी मानो वह राम के विषाद एवं विरह शोक के समास में स्थित है, राम के प्रति सहानुभूति एवं प्रीति के मधुर भाव संजोए हुई है। राम अपनी चिन्ता, व्याकुलता एवं आँसुओं में अकेले नहीं है; उसके आस-पास का पर्यावरण भी उनके शोक से उद्विग्न एवं तरल होकर मानो उनके प्रिया विरहित जीवन का संवेदनशील मित्र है। पंचवटी दर्शन के एक श्लोक में पर्यावरण को और भी सहचररूप में भवभूति ने प्रस्तुत किया है-

*एताः भुवः परिचिनोषि मिलत्तमालच्छायान्धकारिततुषारनिकुंजपुंजाः।*
*उन्मूर्च्छदच्छमलयाचलतुंगश्रृंगप्राग्भारनिष्पतितनिर्झरपूरभाजः।।3*

यहाँ राम ने 'एताः भुवः परिचिनोषि' कहकर वस्तुतः लक्ष्मण का ध्यान सघन तमालवृक्षों की छाया से अन्धकारमय शीतल निकुंजों तथा मलय पर्वत के उत्तुंग शिखरों से प्रवहमान उच्छलित निर्झरों से कहीं दूर खींचना चाहा है। निस्सन्देह दण्डक के ऐसे प्रकृति चित्र राम के लिए अत्यन्त मनोरम है, किन्तु यहाँ प्रकृति की रमणीयता से कहीं अधिक राम का तन्निविष्ट सीता शोक अभिप्रेत है।

## सागर और सेतु

कालिदास ने रघुवंश में जिस समुद्र की वर्णना 16 श्लोकों में की, भवभूति ने उस समुद्र की वर्णना में एक ही श्लोक प्रस्तुत किया -

*साक्षात्किलाष्टमूर्तेस्तिस्येषा मूर्तिरम्मयी प्रथमा।*
*गीतः सागर इति नृभिरपरिच्छेद्यात्मगाम्भीर्यः।।4*

उक्त श्लोक के माध्यम से भवभूति ने सागर का एक साधारण चित्र प्रस्तुत किया है क्योंकि विस्तृत कथा को मंच पर उपस्थित करते समय कई ऐसे चित्रों को या तो छोड़ देना पड़ता है या उनका दिङ्मात्र संकेत करके आगे बढना पड़ता है। हाँ, कथावस्तु के लिए अपेक्षित तत्त्वों का वर्णन करने में भवभूति कभी नहीं हिचकते। जैसे सागर पर निर्मित नल-सेतु सीता की प्राप्ति का निमित्त है, इसलिए इस सेतु के चित्रांकन में भवभूति संकोच नहीं करते हैं।

कथा के नाट्यमर्म को प्रकट करने के प्रक्रम में भवभूति अनन्त सागर को ही स्थूल समझते हैं, किन्तु उसके अपार विस्तार पर बने उस अपेक्षाकृत अत्यन्त छोटे तथा सीमित पुल को बड़े ही सशक्त शब्दों में व्यक्त करते हैं। सीता अपनी सहज जिज्ञासा में सेतु को धवलंसुअं विअ अहिणवतिणच्छण्णासु भूमिसु कह जाती हैं। यहाँ समुद्र के गहरे नीले जल को अभिनव तृणाच्छन्न भूमि कहकर व्यापक सौन्दर्य के साथ जल पर आस्तीर्ण सेतु को धवलांसुक की उपमा देकर एक नितान्त उपयुक्त एवं रम्य सादृश्य की अवतारणा की गई है। इससे स्पष्ट है कि भवभूति पर्यावरण के विभिन्न तत्त्वों के प्रभावपूर्ण प्रस्तुतीकरण को नाटकीय भावध ारा के विकास का अभिन्न अंग बना लेते हैं।

भवभूति ने पर्यावरण को अपनी अद्भुत प्रतिभा के माध्यम से प्रस्तुत कर नाटकीय वातावरण को चित्रमय एवं संवेदक बना कर प्रस्तुत किया है। अयोध्या प्रत्यागमन के समय विभीषण राम का ध्यान कावेरी के तटवर्ती प्रदेशों की ओर आकृष्ट करते हैं-

*यत्पर्यन्तमहीध्रसीम्नि कुहलीमाध्वीकधारोद्गिर-*
*द्भृष्यत्पूगवनीधनीकृततलैस्तुंगैर्जरच्छाखिभिः।*
*लक्ष्यन्ते विविधाश्रमाः स्थिरतपः स्वाध्यायसाक्षात्कृत-*
*ब्रह्माणो निवसन्ति यत्र मुनयः कल्पस्थितेः साक्षिणः।।5*

कावेरी के पर्यन्तभाग में फैली हुई वन श्री आकृष्ट करती है। एक ओर कावेरी नदी के तीर से संलग्न सुदूर विस्तृत पर्वतों की प्रशान्त उपत्यकाएँ, ताम्बूली लता से आविष्ट तथा उसके मकरन्द पान से मदमत्त से दिखाई देने वाले सुपारी वृक्षों से सघन एवं विशालकाय पुराने पेड़ तथा दूसरी ओर उन्हीं एकान्त स्थलियों में यत्र-तत्र खड़े मन्वन्तर पुराण मुनियों के आश्रम। इन सबका परस्पर सामंजस्य पर्यावरण एवं मनुष्य के बीच प्रगाढ सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। किसी भी मंच पर प्रकृति के ऐसे सुविशाल अंचल को दृश्यबद्ध करना न तो सम्भव है और न काम्य ही, यह तो भवभूति जैसे कलाविद् की लेखनी का ही चमत्कार है कि नाटकीय वृत्त पर बिना कोई अनावश्यक भार दिये हुए भी अपनी सूक्ष्म शब्दतूलिका से पर्यावरण को प्रस्तुत कर दिया है।

## निर्झरिणी

भवभूति ने चित्रात्मक शब्दों की कोमल ध्वनि के माध्यम से विपिन, पर्वत, आश्रम आदि की उद्वेगरहित, सुकुमार तथा स्निग्ध प्रकृति को व्यंजित किया है। उनकी प्रकृति में उच्छलता, उद्वेग और विस्मयोत्पादक पौरूष के बिम्ब स्वत: ही नाचने-थिरकने लग जाते हैं। कहीं-कहीं प्रकृति जीवन के कमनीय पक्षों की उत्ताल गत्यात्मकता या प्रच्छन्न वीर्यवत्ता को भी कवि ने प्रस्फुटित किया है-

*इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्तप्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।*

*फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुंजस्खलनमुखरभूरिस्रोतसोनिर्झरिण्य:।।6*

प्रस्तुत श्लोक प्रकृति की चण्डिमा, आक्रोश व विद्रोह प्रकट न कर जम्बू व वेतसकुंज, पक्षीकूजन, कूलंकषा पहाड़ी, नदी की कुंज प्रतिहत तरंगों का मोहक वर्णन करता है। यद्यपि कोमलता का भवभूति ने प्रयास किया है परन्तु सम्पूर्णतया कोमल नहीं कहे जा सकते हैं, एक उदाहरण और देखा जा सकता है-

*स्थितमुपनतजृम्भारम्भबिम्बै: कदम्बै: कृतमतिकलकण्ठैस्ताण्डवं नीलकण्ठै:।*

*अपि च विघटमानप्रौढता पिंछनील: श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवाह:।।7*

इस श्लोक में सीता वियुक्त राम के आकुल हृदय के विरहोच्छ्वास को बताया है जिसे समिद्ध करने में यहाँ कदम्ब, तमाल, कोकिल, नीलकण्ठ एवं मेघों ने अपने अपने ढंग से योगदान किया है तो कहीं-कहीं बड़ी ही प्रचण्डता का वातावरण प्रस्तुत किया है-

*दधति कुहरभाजामात्र भल्लूकयूनामनुरसितगुरुणि स्त्यानमम्बूकृतानि।*

*शिशिरकटुकषाय: स्त्यायते सल्लकोनामिभदलितविशीर्णग्रन्थि निष्यन्दगन्ध:।।8*

तरुण भालुओं की गुर्राहट तो अपने-आप ही एक भयानक वस्तु है, पर्वत की गुफाओं से प्रतिध्वनित दिखाकर कवि ने उसकी तीव्रता एवं प्रचण्डता को मानो साकार कर दिया है। पर्वतवासी मधुर स्वर वाले पशु-पक्षियों की अपेक्षा भालू की गुर्राहट का उद्देश्य प्रकृति की विलक्षणता को दिखाता है। साथ ही गजभक्ष्य सल्लकी वृक्षों की भग्न शाखाओं से क्षरित होते रस की तीव्र गन्ध को फैलाते हुए दिखाया गया है। किन्तु यहाँ की इस गन्ध विकिरण के पीछे जंगली हाथियों के द्वारा तोड़ी गई, रोंदी गई तथा मसली गई सल्लकी की कोमल शाखाओं के हरे घाव का चित्र कहीं अधिक प्रभावोत्पादक है।

## मालतीमाधव और पर्यावरण

मालतीमाधव श्रृंगार रस का एक प्रकरण है, जिसमें श्रृंगार की पृष्ठभूमि एवं रति के उद्दीपन रूप में प्रकृति के तत्त्वों की व्यापक उद्भावना की गई है। महावीरचरित की तुलना में प्रस्तुत प्रकरण में पर्यावरण के तत्त्वों को काफी नवीनता के साथ प्रसारित किया गया है। मालतीमाधव में पर्यावरण का हर अंश मुख्यरूप से रति का परिपोषक उद्दीपक बनकर आया है। प्रकरण का नवम् अंक इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है, इसमें मालती के खो जाने पर माधव निराश होकर विन्ध्य के घने जंगलों में भटकता है। माधव अपनी विरह कथा को किसी नगर या जन संकुल स्थान में भी झेल सकता था, विन्ध्य के जंगल अनिवार्य नहीं थे फिर भी गहन कानन में उन्मुक्त वातावरण में जिस प्रकार उसके विरहमान को पनपने दिया जाता है। उससे न केवल भवभूति के प्रकृति-प्रेम, प्रत्युत उनकी प्रौढकला भी झलकती है।

यों तो हमारे आसपास का पर्यावरण सुख और दु:ख दोनों ही अवस्थाओं में हमारा संवेदनशील सहचर सिद्ध होता है, किन्तु दु:ख की काली बदलियों से घिरा हुआ मानवमन जितना परित्राण एवं अवलम्ब प्रकृति के सहृदय प्रांगण में प्राप्त करता है उतना अन्यत्र नहीं। मालतीमाधव के नवम अंक में माधव के दुस्सह वियोग की उपयुक्त पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति उपस्थित है-

*वानीरप्रसवैर्निकुंजसरितामासक्तवासं पय:*

*पर्यन्तेषु च यूथिकासुमनसामुज्जृम्भितं जालकै:।*

*उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरेरालम्ब्य सानूतित:*

*प्रागभारेषु शिखण्डिताण्डवविधौ मेघैर्विताना्यते।।9*

मकरन्द की उक्ति से प्रकृति के विविधरंगी कानन की रमणीयता के साथ-साथ माधव की विरहवेदना के विपरीत, प्रकृति के रासविलास के चित्रों से नायक की मनोव्यथा का तीखापन भी भासता है। कहीं-कहीं वर्णनात्मक पद्धति से वन प्रान्तर, पर्वत आदि की महिमान्वित छटा बड़े सीधे ढंग से व्यक्त की गई है-

*अयमभिनवमेघश्यामलोतुंगसानुर्मदमुखरमयूरीयुक्तसंसक्तकेक:।*

*शकुनिशबलनीडानोकहस्निग्धवर्ष्मा, वितरति बृहदश्मा पर्वत: प्रीतिमक्ष्णो:।।10*

यहाँ सौदामिनी अनगढ एवं कठोर पर्वत में भी हमें सौन्दर्य के दर्शन कराती है। नये-नये सांवले मेघों से भरी हुई ऊँची चोटियाँ, आनन्दातिरेक से आत्मविस्मृत सी होकर बोलने वाली मयूरी, पक्षियों के विचित्र नीडों से युक्त वृक्षपंक्ति तथा विशाल शैल खण्ड आदि पर्वत श्रृंगार की विविध सामग्री जैसी सामने उभरती है। जो वस्तुएँ स्वभावत: कोमल, मसृण व मनोहारी हों, उनको शब्दबद्ध करना कठिन नहीं है बल्कि पर्वत जो अपनी कठोरता के लिए ख्यात है उनसे भी मोहक संगीत का निष्कासन निश्चय ही भवभूति की शब्दतूलिका का ही चमत्कार है। ऐसे पर्वतों से जब निर्झर फूटते हैं या नदियाँ गिरती हैं तो वहाँ भी अलौकिक रूप विलास दिखाई देता है। ऐसे प्रपातों में प्रकृति की अल्हड तरुणाई को कवि ने बड़े ही मौलिकरूप से समर्थता ही है-

*यत्रत्य एष तुमुलध्वनिरम्बुगर्भगम्भीरनूतनघनस्तनितप्रचण्डः।*

*पर्यन्तभूधरनिकुंजविजृम्भमाणो हेरम्बकण्ठरसितप्रतिमानमेति।।11*

सिन्धु नदी के इस तटप्रपात की संकुल ध्वनि की उपमा मेघ गर्जन से देते हैं तो सजल मेघ का सादृश्य लाकर प्रपात की ध्वनि को विशिष्टता दी है। भूध रनिकुंजविजृम्भमाण को देखें तो पर्वत की कन्दरा के लिए निकुंज शब्द लिया है जो कि हरे-भरे लता-गुल्मों एवं वनस्पतियों से आवेष्टित है। अतः एक ओर तो ऐसी गुफाओं की श्याम शाद्वलता हमारे सामने आती है और दूसरी ओर उनमें प्रपात के शब्दों का प्रतिध्वनन भी एक विशिष्ट प्रकार के अनुगूँज को मूर्त करता हुआ प्रतीत होता है। गजस्तनितवत् वनप्रान्तर में प्रसारित इस अनुगूँज में कवि ने गणेशकंठ की ध्वनि का सादृश्य ला और भी प्रीत बनाया है।

## ग्रीष्म ऋतु

भवभूति ने प्रकृति की कालगत भंगिमाओं में ग्रीष्मकालीन मध्यान्ह की चित्रमयता को बड़े ही सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है-

*काश्मर्याः कृतमालमुद्गतदलं कोयष्टिकष्टीकते*

*तीराश्मन्तकशिम्बिचुम्बिनमुखा धावन्त्यपः पूर्णिकाः।*

*दात्यूहैस्तिनिशस्य कोटरवति स्कन्धे निलीय स्थितं*

*वीरून्नीडकपोतकूजितमनुक्रन्दन्त्यधः कुक्कुभाः।।12*

ग्रीष्म में 'गंभीर' जैसे कितने वृक्ष होते हैं जिनके पत्ते झड़ जाते हैं उन नग्नप्रायः वृक्षों पर आवासी पक्षी आरग्वध जैसे वृक्षों के हरे-भरे सघन पत्तों की ओट में जाने के लिए सचेष्ट हैं। पूर्णिका नामक चिड़िया तटवर्ती तृणों में चोंच मार-मार कर अपने खाघ्द्य की तलाश करती है किन्तु ग्रीष्म की ज्वाला ने उसकी प्यास को भूख की तुलना में काफी बढा दिया है; फलतः वह पत्तों का स्पर्शमात्र करती है। चिलचिलाती दुपहरी में कालकण्ठक पक्षी वृक्षकोटर में छुपे हैं। उध र कुकुभ लता-गुल्मों में छिपे कबूतरों की ध्वनि निकाल कर दुपहरी को काटने में लगे हैं। इस उद्धरण में एक ओर ग्रीष्म की प्रचण्डता है तो दूसरी ओर विविध प्राणियों की अन्तः एवं बाह्य प्रकृति का मार्मिक रूपायन।

मानवजीवन का प्रकृति के साथ अनादिकाल से ही गहन सम्बन्ध रहा है। संस्कृत के कवियों ने इस चिरन्तन सत्य को बड़ी भावुकता व कलात्मकता के साथ अपनी सर्जना में उतारा है। संवेग या भावुकता के क्षणों में पर्यावरण का मानव भावों पर या मानवभावों का पर्यावरण पर आरोप-प्रत्यारोप अवश्यंभावी सा हो जाता है। भावुक माधव मालती के कोमल कर-स्पर्श की अनुभूति व्यक्त करता है-

*आमूलकण्टकितकोमलबाहुनालमाद्रांगुलीदलमनंगनिदाघतप्तः।*

*अस्याः करेण करमाकलयामि कान्तमारक्तपंकजमिव द्विरदः सरस्याः।।13*

कोमलांगी मालती का हाथ ईषत् रक्त है, अतः उसकी उपमा आरक्त पंकज से दी है; उसकी पतली नरम अंगुलियाँ कमलपंखुडी सम, भुजा नालदण्डवत् सुकुमार हैं, जो माधव के करस्पर्श मिलने के संवेग में पूरी की पूरी रोमांचित हो गई है। यहाँ मालती को पूर्णतः प्रकृति में ऐसा सराबोर बताया है कि माधव एवं मालती की तत्कालीन रागात्मक अनुभूतियाँ मूर्त्त हो कर हमारे मन-प्राणों में छा जाती हैं। स्वयं माधव कामाग्नि में झुलसता हुआ मानो कोई जंगली हाथी हो जो ग्रीष्म की प्रखर ज्वाला में झुलसता हुआ किसी पुष्कर से अपने स्थूल शुण्ड में कंटकित नाल से युक्त आर्द्र रक्तकमल को ग्रहण कर रहा हो तथा उससे अपने संतप्त शरीर या प्राणों में शीतलता का संचार कर रहा हो। प्रकृति के विलास भरे सौन्दर्य के अजस्र स्रोत में प्रेमी हृदय को अपनी प्रिया की एक-एक भंगिमा विभ्रम की झलक मिलती है। प्रिया के सामीप्य में प्रकृति की लीलाभूमि जहाँ समवेत रूप से प्रणयी के उच्छ्वसित प्राणों में प्रियतमा की मांसल अनुभूति का सर्जन करती है और लगता है कि प्रेमी के साथ प्रकृति नहीं वरन् उसकी प्रेमिका ही है। इस तरह एक सहचर के रुप में भी प्रकृति को दिखाया गया है। प्रिया के संयोग या वियोग में प्रकृति रूपों की एक से एक मनोहर छटाएँ संस्कृत नाटकों तथा काव्यों में प्रायः सर्वत्र मिल सकती हैं। प्रकृति के इन चित्रों की तरह कमनीय व मनोहर चित्र इस प्रकरण में और भी हैं तथापि महावीरचरित की अपेक्षा मालतीमाधव में काफी प्रसार और व्यंजना के साथ प्रकृति उपस्थित हुई है।

## उत्तररामचरित में पर्यावरण

यदि महावीरचरित में पर्यावरण स्वल्प स्थिति में है और मालतीमाधव में अतिशय विस्तार तो उत्तररामचरित में संतुलित स्थिति में है। यह संतुलन कवि की कला और अनुभूतियों का चरम बिन्दु है। इस नाटक में पर्यावरणीय तत्त्व प्रत्येक दृष्टि से वस्तु, नेता एवं रस के अनुषंगी एवं परिपोषक होकर आये हैं। उत्तररामचरित की में भवभूति ने वस्तु विकास में वनदेवता वासन्ती, नदीदेवता भागीरथी, तमसा, मुरला तथा पृथ्वी आदि दैवीकृत पात्रों के माध्यम से मनुष्य, प्रकृति और देवताओं के भाव-तादात्म्य का हृदयग्राही चित्रण भवभूति की कला व प्रतिभा का परिचायक है।

अपनी तीनों कृतियों में वे सर्वत्र अपेक्षाकृत गम्भीर, कठोर एवं गहन की ओर अधिक आकृष्ट हुए हैं। विशेषतः उत्तररामचरित तो उनके गम्भीर जीवनदर्शन का चूडान्त निदर्शन है। इसमें जिस करुणा की इतनी मार्मिक व्यंजना हुई है, वह वस्तुतः कवि के कालगत गाम्भीर्य का ही पर्याय है। यहाँ करुणा के विकट एवं गम्भीर उद्घोष में जिन तत्त्वों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता की है, उनमें पर्यावरणीय तत्त्वों का विशेष महत्त्व है। पूर्व के दोनों नाटकों में पर्यावरणीय तत्त्वों को कोई व्यक्तित्व न मिलकर एक परिमार्जक या अनुषंगी का ही काम मिला है किन्तु उत्तररामचरित में प्रकृति ठीक उसी भूमिका में उतरी है जैसी शाकुन्तल में है। नाटक में निर्वासित सीता के रक्षक के रूप में गंगा और पृथिवी दोनों का व्यक्तित्व उतना ही दिव्य और आकर्षक है जितना अरुन्धती और कौशल्या का। सप्तम अंक के अन्तर्नाटक मंय उनकी भूमिका मानव हृदय को छूकर भावविभोर करने वाली है। द्वितीय अंक में वन-श्री या वनदेवता वासन्ती के रूप में सदेह प्रकट होती है तो तृतीय अंक में सीता की सहचरी के रूप में तमसा और मुरला नामक नदियों का साहचर्य है।

इस प्रकार सीता और राम के व्यथित हृदय के आश्वस्त करने तथा उनके भावात्मक मिलन की सम्यक् पृष्ठभूमि तैयार करने में पर्यावरण के ही मूर्त एवं अमूर्त तत्त्व सहायक हैं- तमसा, मुरला, वासन्ती और पंचवटी के बन्धुरूप वृक्ष, मृग आदि इसी उद्देश्य की सिद्धि में मानव पात्रों की तरह ही प्रयुक्त हुए हैं। उत्तररामचरित का अधिकांश भाग प्रकृति के परिवेश में ही है। दूसरे और तीसरे अंक तो सम्पूर्णत: दण्डकारण्य में ही पिरोये गये हैं। चतुर्थ-पंचम अंकों की घटनाएँ वाल्मीकि के आश्रम या समीपस्थ प्रदेशों में घटित हैं। छठे अंक का युद्ध चित्र भी आश्रम के पास प्रकृति के विशाल प्रांगण में अंकित है। इस तरह भवभूति ने कानन में भी राम के साथ वन्यजीवन के प्रसंगों की भावभूमियाँ जगाई हैं, जिनका प्रकृति से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। कवि ने अपने पाठक व दर्शकों को करुण रस अवस्था तक पहुँचाने के लिए जिन कलात्मक उपकरणों का आश्रय लिया है, उनमें विकट, कठोर एवं गम्भीर प्रकृति का भी बहुत बड़ा हाथ है। सीता विरहित राम जब रोते हैं तो पत्थर तक रोने लगते हैं, वज्र हृदय भी विदीर्ण हो जाता है-

*अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम।14*

तृतीय अंक की समर्थ पार्श्वभूमि के रूप में दण्डकारण्य की प्रकृति की मानवभावों के साथ उपयुक्त संगति देखी जा सकती है। शम्बूक को दण्डित करने के क्रम में राम अनजाने में ही प्रकृति की उस रमणीय लीलाभूमि में प्रवेश कर सुपरिचित नदी, निर्झर, पर्वत आदि का पुन: साक्षात्कार करते हैं-

*स्निग्धश्यामा: क्वचिदपरतो भीषणाभोगरुक्षा:,*
*स्थाने-स्थाने मुखरककुभो झांकृतैर्निर्झराणाम।*
*एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्रा:*
*सन्दृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागा:।।15*

## दक्षिणारण्य प्रकृति

भवभूति ने प्रकृति के दण्डक, जनस्थान और पंचवटी नामक चरणों में उसके दो भिन्न स्वरों के दर्शन कराये हैं- एक तो राम आद्यन्त जिस प्रकृति के दर्शन करते हैं, वह मर्मस्पर्शी होते हुए भी कोमल और सरल है। दूसरे शम्बूक के मुख से प्रकृति का परुष और जटिल रूप प्रकट होता है परन्तु दोनों की अपनी -अपनी अर्थवत्ता है। राम के व्यक्तित्व हेतु सरल प्रकृति और प्राणों में छिपे बवंडर के लिए कठोरता और निविडता के रूप में प्रकृति वर्णन हैं। शम्बूक की प्रकृति का स्फुट प्रयोजन है। इसके अगम्य कठोर गह्वरों में सीता के पावन स्नेह की स्रोतस्विनी प्रवाहित कर देना, उसके संवेगी प्रवाह में विरोधी लहरों के घात-प्रतिघात से उत्पन्न ऐसा कलोल भर देना कि राम अनिर्भिन्न नहीं रह सकें-

*एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो*
*मेघालम्बितमौलिनीलशिखरा: क्षोणीभृतो दक्षिणा:।*
*अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-*
*रुत्तालास्त इमे गभीरपयस: पुण्या: सरित्संगमा:।।16*

स्वयं शम्बूक अपने इस नाटकीय प्रयोजन में कुछ नहीं कह पाता, किन्तु उसके द्वारा वर्णित प्रकृति अपनी विकट भाव भंगिमाओं में सब कुछ प्रकट कर देती है जो भवभूति का कलात्मक लक्ष्य है। द्वितीय अंक में वर्णित प्रकृति के एक उद्धरण में वासन्ती द्वारा कठोरीभूत दिवस के विषय बताया गया है-

*कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन सम्पातिभि-*
*र्घर्मस्रंसितबन्धनै: स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम।*
*छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वच:*
*कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुला: कूले कुलायद्रुमा:।।17*

गर्मी के दिनों में जंगली नदियों की तटवर्तिनी शुभ्रजलराशि पर वृक्षों से जो अनायास पुष्पवृष्टि होती रहती है, उसके पीछे दो प्रबल हेतु हैं- हाथियों का अपने कण्डूयुक्त मस्तकों को उन वृक्षों से रगड़ना तथा गर्मी के कारण पुष्प-वृन्तों का शिथिल पड़ जाना। पुष्प वृष्टि की इस सामान्य क्रिया को कवि ने अतिशय मोहक बना दिया है। चतुर्थ चरण में कूंजते तथा कुट-कुट करते पक्षियों की चहल-पहल प्रयुक्त शब्दों की ध्वनिमात्र से प्रकट होती हुई सी लगती है। तीसरे चरण में तो कवि ने ग्रीष्म प्रकृति के एक भरे पूरे तथा अपेक्षाकृत उपेक्षित सौन्दर्य को थोड़े से गिने-चुने पदों के माध्यम से ही साकार कर दिया है। अपरिष्करमाण जैसे पद की संगति में विष्किर का प्रयोग कितना साभिप्राय और मनोहर है।

जनस्थान के मध्यवर्ती प्रशान्त-गम्भीर वनों की एक और विकट भंगिमा पर दृष्टिपात कीजिए-

*गुंजत्कुंजकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक-*
*स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुल: क्रौंचावतोऽयं गिरि:।*
*एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिता: कूजितै-*
*रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसा:।।18*

यहाँ स्वभाव से ही ढीठ कौए भी उल्लुओं के अव्यक्त शब्दों से युक्त सनसनाते वेणुगुच्छों की तुमुल ध्वनि से डरकर नि:शब्द होते दिखाये गये हैं। अन्तिम दो पंक्तियों में वनप्रकृति का एक कठोर एवं भयानक यथार्थ चित्रित किया गया है। पुराने चन्दनवृक्ष अपेक्षाकृत अधिक सुगन्धित होते हैं, अत: अपने प्राणों का

लोभ छोड़कर भी स्वभाव से ही सुगन्ध के प्रेमी बड़े-बड़े जंगली सर्प उनसे लिपटे रहते हैं। उधर सर्पों के शत्रु मयूर भी उन वृक्षों पर फुदकते रहते हैं, किन्तु उनके फड़-फड़ उड़ते रहने से वे सर्प क्षुब्ध होकर भी चन्दन वृक्ष का मोह नहीं त्यागते और उसके कन्धों पर छअपट करते हुए रेंगते रहते हैं। प्रकृति का ऐसा विकट यथार्थ भवभूति जैसे महाकवि की ऊर्जस्वी कल्पना से ही इतना प्राणवन्त होकर प्रकट हुआ है।

संक्षेपत: अपनी तीनों ही नाट्यकृतियों में भवभूति एक विशिष्ट प्रकृति-कवि के रूप में प्रकट हुए हैं। उनके लिए प्रकृति मानव भावों की अलंकृति की सीमाओं में ही नहीं दीखती; वे उसके व्यापक स्वच्छन्द जीवन की विविध भंगिमाओं का भी कलात्मक अंकन करते हैं। अपनी अन्त:प्रकृति के गाम्भीर्य के अनुरूप ही उन्होंने बाह्य प्रकृति के ताण्डव की ओर अधिक ध्यान दिया है और उसकी विकट मुद्राओं को अपनी ओजस्विनी वाणी प्रदान की है।

## सन्दर्भ सूची


1. काण्व संहिता - 36.17
2. महावीरचरितम् - 7.12
3. महावीरचरितम् - 7.11
4. महावीरचरितम् - 7.9
5. महावीरचरितम् - 7.13
6. महावीरचरितम् - 5.40
7. महावीरचरितम् - 5.42
8. महावीरचरितम् - 5.41
9. मालतीमाधवम् - 9.15
10. मालतीमाधवम् - 9.5
11. मालतीमाधवम् - 9.3
12. मालतीमाधवम् - 9.7
13. मालतीमाधवम् - 6.20
14. उत्तररामचरितम् - 1.28
15. उत्तररामचरितम् - 2.14
16. उत्तररामचरितम् - 2.30
17. उत्तररामचरितम् - 2.9
18. उत्तररामचरितम् - 2.29

# स्वयं सहायता समूह, लघु ऋण एवं महिला सशक्तिकरण: एक विश्लेषण


## डॉ० राजेश गौतम

*एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, किशोरी रमण पी.जी. कॉलेज, मथुरा ( उ.प्र. )*



## सारांश

स्वंय सहायता समूह एक ऐसा माध्यम है जिसकी सहायता से महिलाओं ने एक नई पहचान बनाई है। इसके साथ ही स्वंय सहायता समूह ने समूह की महिलाओं को अन्य महिलाओं के साथ अपने सम्बन्धों को मजबूत करने तथा एक दूसरे की मदद करते हुए अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने मे विशेष योगदान दिया है। अब तक हुए विभिन्न प्रकार के अध्ययन इस बात को इंगित करते है कि समूह बनने के बाद तथा इसकी सदस्य बनने के बाद महिलाओं की सामाजिक पूंजी (कल्चरल कैपिटल) में वृद्धि हुई है अत: प्रस्तुत पेपर स्वंय सहायता समूह बनने के बाद महिलाओं के जीवन मे आये परिवर्तनों को समझनें का प्रयास करता है।



**मूल शब्द:** स्वंय सहायता समूह, महिला एंव लघु ऋण।


## प्रस्तावना

भारत एक ग्रामीण देश है जहाँ लगभग 70 प्रतिशत लोग कृषि कार्यों से जुड़े हैं। कृषि कार्यों के अतिरिक्त इनके पास अन्य कोई व्यवसाय नहीं है और न ही आय के अन्य साधन। खेती का कार्य साल भर में इनको 3-4 महीने ही मिलता है, इसलिए शेष महीनों में पर्याप्त आय जुटाने के लिए इन्हें कई अन्य प्रयत्न करने पड़ते हैं और आवश्यकता पड़ने पर इन्हें अपनी जमीनों और गहनों को गिरवी रखना पड़ता है, जिन्हें बाद में छुड़ाना इनके लिए अत्यधिक कठिन होता है। इस स्थिति में पुरुष वर्ग तो शहरों में मजदूरी करने लगता है किन्तु महिला के लिए यह एक संकट की घड़ी होती है, जिसमें न तो उसे खेतों पर काम मिलता है और न ही आजीविका चलाने के अन्य साधन।

इस दिशा में स्वयं सहायता समूह महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं जिसमें बांग्लादेश के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मुहम्मद युनुस का प्रयास उल्लेखनीय रहा है। इन्होंने 1970 से ही लघुवित्त आन्दोलन की शुरुआत की थी जिसके तहत गरीबों, विशेषकर औरतों को बिना किसी शर्त के ऋण देने की व्यवस्था की गयी और आज लघुवित्त आंदोलन विश्व के 7 हजार संस्थाओं द्वारा चलाया जा रहा है, जिससे लगभग 1 करोड़ 6 लाख लोगों को रोजगार दिया जा चुका है। वास्तव में स्वयं सहायता समूह गाँव के व्यक्तियों का एक ऐसा संगठन है जो अपनी इच्छा से संगठित होकर, नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी बचत कर सामूहिक निधि में जमा करते हैं तथा जिसका उपयोग सदस्यों की आकस्मिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया जाता है। इस प्रकार समूह के सदस्य हफ्ते अथवा महीने में एक बार बैठक कर विभिन्न विषयों पर चर्चा कर, एक दूसरे की समस्याओं का समाधान करते हैं, जिससे ये महिलायें गरीबी, बेरोजगारी तथा निरक्षरता के चक्रव्यूह से निकलकर सशक्तिकरण की दिशा में कदम बढ़ा रही हैं और न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक एवं राजनैतिक आयामों पर भी सशक्तिकरण की ओर अग्रसर हैं।

इस प्रकार प्रत्येक समूह अपने कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए कुछ नियम बनाते हैं, जैसे-समूह की नियमित मीटिंग होना तथा प्रत्येक सदस्य का मीटिंग में उपस्थित होना। मीटिंग में अनुपस्थित होने अथवा समय से ऋण न जमा करने पर अनुपस्थित सदस्यों द्वारा पाँच रूपये दण्ड के रूप में जमा करना आदि। अत: नियमों के आधार पर समूह का सफलतापूर्वक संचालन किया जाता है और प्रत्येक सदस्य पर मासिक बचत के लिए सामूहिक दबाव के माध्यम से बचत को प्रोत्साहित किया जाता है, इसके अतिरिक्त अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ये समूह किसी सरकारी अथवा गैर सरकारी संगठन से जुड़कर अपने व्यवसायिक क्रियाओं को आगे बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहते हैं। एक अन्य अध्ययन जिसमें पाया गया कि महिला स्वयं सहायता समूह को सहबैंक सम्बद्धता कार्यक्रम के तहत तीन लाख तक के ऋणों पर ब्याज सहायता देकर इन्हें सात प्रतिशत की वार्षिक दर पर ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है।

स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिलाओं के नेटवर्क में भी बढ़ोत्तरी हो रही है। अभी तक जो महिलायें घर के कामों तक सीमित थीं, वो आज बाहर निकलकर सामूहिक स्तर पर विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में संलग्न हैं। सामूहिक स्तर पर चिप्स, पापड़, अचार, मुरब्बा आदि का निर्माण कर उन्होंने बाजार में बेंचकर अतिरिक्त आय के सृजन का प्रयास किया, किन्तु बाद में प्रशिक्षण न मिलने के कारण इन महिलाओं ने इस व्यवसाय को छोड़कर मुर्गी, बकरी, भैंस पालन व्यवसाय को अपनाया तथा अंडे, मुर्गी-बकरी और दूध बेंचकर परिवार की आय में वृद्धि की और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ाया, जो महिला सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण आयाम है।

इस प्रकार स्वयं सहायता समूहों के निष्पादन से सम्बन्धित किये गये विभिन्न सर्वेक्षणों में यह तथ्य उभरकार सामने आया है कि स्वयं सहायता समूहों को लघु ऋण प्रदान करने से ग्रामीण महिलाओं की भौतिक गतिशीलता, निर्णय के अधिकारों में वृद्धि, सौदा शक्ति तथा विभिन्न स्तरों पर समस्या समाधान करने की शक्ति में वृद्धि होने के कारण ग्रामीण विकास प्रक्रिया में उनका योगदान उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इसी को देखते हुए केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा इनके विकास के निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं। सरकार के इस प्रयास की सार्थकता भी सामने आ रही है कि इसी गाँव की महिलायें घर के बाहर निकलकर बैंक, ब्लाक, हास्पिटल तथा बाजार के कार्यों को स्वयं कर रही हैं और विभिन्न व्यवसायों को कुशलता पूर्वक कर यह सिद्ध कर चुकी हैं कि मात्र वे घर के कामों में ही कुशल नहीं, बल्कि सामुदायिक स्तर पर भी विभिन्न आर्थिक क्रियाओं को करने में भी निपुण हैं। इस प्रकार महिलाओं द्वारा महिला सशक्तिकरण का यह प्रयास सराहनीय है।

## स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य

स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य ग्रामीण निर्धनों, मुख्य रूप से महिलाओं को लघु ऋण उपलब्ध कराना है तथा इसके साथ ही साथ बैंकिंग गतिविधियों के साथ जोड़कर बचत तथा महिलाओं में आपसी सहयोग को बढ़ावा देना है। इसके अतिरिक्त इसका प्रमुख उद्देश्य महिलाओं में समानता तथा सम्बद्धता को विकसित करना, आत्म विश्वास बढ़ाना, आत्म निर्भरता बढ़ाना तथा उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना है, जिससे वे व्यक्तिगत स्तर पर सशक्त होने के साथ-साथ सामूहिक स्तर पर भी सशक्त हो सकें और अपने अधिकारों के लिए सामने आ सकें।

## स्वयं सहायता समूह का संचालन

समूह के सुचारु रूप से संचालन के लिए प्रत्येक समूह अपने सदस्यों में से ही तीन प्रतिनिधि-अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष तथा सचिव की नियुक्ति करता है, ताकि समूह क्रियाविधि, सुचारु रूप से चल सके। पदाधिकारियों को चुनने का आधार मुख्यत: शिक्षा तथा अत्मविश्वास होता है, ताकि समूह में हिसाब-किताब का काम ये स्वयं कर सकें। प्राय: सुविधादाता द्वारा कभी-कभी इनको समूह चलाने की ट्रेनिंग भी दी जाती है। प्रत्येक महीने समूह की नियमित मीटिंग होती है, जो कि किसी सार्वजनिक स्थान अथवा प्रत्येक सदस्य के घर बारी-बारी से होती है। समूह की मीटिंग में प्रत्येक सदस्य का उपस्थित होना अनिवार्य होता है, अथवा अनुपस्थित होने की पूर्व सूचना सदस्य द्वारा समूह में उपलब्ध करायी जाती है, जिससे समूह के कार्यों का बेहतर नियोजन हो सके। कभी-कभी समूह के सदस्यों द्वारा अपने पड़ोसी से समूह में बचत का पैसा भेज दिया जाता है, जो कि यह इंगित करता है। समूह बनने के बाद महिलाओं का "नाइबरहुड रिलेशन" भी मजबूत हुआ है। मीटिंग के दौरान प्राय: महिलाओं द्वारा आपस में विभिन्न विषयों पर चर्चा होती है, जैस-ऋण के लेन-देन, बचत, नये सदस्यों के शामिल होने की प्रक्रिया, गाँव की समस्या तथा समाधान, पर्यावरणीय समस्या, स्वास्थ्य समस्या, बच्चों की शिक्षा, राजनैतिक भागेदारी, ऋण का उपयोग तथा बचत के तरीके आदि। समूह के सदस्य इस बात के लिए एक दूसरे को प्रोत्साहित भी करते हैं कि वे किस प्रकार छोटी-छोटी बचत कर एक बड़ी राशि समूह से प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार यह पाया गया कि समूह नियमित मासिक मीटिंग के अतिरिक्त समूह कभी-कभी आकस्मिक मीटिंग भी करता है, जिसका प्रमुख उद्देश्य महिलाओं को त्वरित ऋण उपलब्ध कराना है, जिसके लिए ये अपने बचत के पैसे से आपस में लेन-देन करती हैं। अतिरिक्त बचे हुए पैसे को समूह कार्यवाही रजिस्टर पर अंकित कर, नजदीक के किसी बैंक, जहाँ समूह का सामूहिक खाता होता है जमा किया जाता है और बैंक इन्हें इनकी बचत पर 2 प्रतिशत ब्याज भी देता है। इसके अतिरिक्त समूह की महिलाओं को किसी व्यवसाय को करने के लिए बैंक द्वारा सब्सिडी उपलब्ध कराई जाती है, जिसपर कोई ब्याज नहीं लिया जाता है। इस प्रकार महिलायें समूह में आपस में लेन-देन कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, जो कि न केवल उनको आत्मनिर्भर बनाता है बल्कि साहूकारों के चंगुल से भी बचाता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि समूह की क्रियाओं में भाग लेकर महिलाएं विभिन्न कार्यों से जुड़कर विकास के नये आयाम से जुड़ गयी हैं तथा समूह के स्तर पर नेतृत्व करने के साथ-साथ परिवार एवं समुदाय के स्तर पर नेतृत्व करने की क्षमता भी उभरी है। महिला सशक्तिकरण का प्राथमिक उद्देश्य ही यह है कि उनको अपने अधिकारों के प्रति सशक्त किया जाये और परिवार में निर्णय के स्तर पर ज्यादा से ज्यादा भागीदारी बढ़ाई जाये।

इस प्रकार ग्रमीण महिलाओं को स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाने में स्वयं सहायता समूह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, जिसके अन्तर्गत स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके तहत अब तक 30 हजार से ज्यादा स्वयं सहायता समूहों का गठन किया जा चुका है। विभिन्न तथ्यों से स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं, कि इन्हीं समूहों के माध्यम से महिलाओं पर किये गये घरेलू हिंसा तथा शोषण पर प्रभावशाली ढंग से रोक लगायी गई है, जिससे समाज में महिलाओं की स्थिति में कुछ हद तक सुधार भी आया है। अत: स्वयं सहायता समूह ने महिलाओं को विकास की मुख्य धारा से जोड़कर उनके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सशक्तिकरण की दिशा की ओर उन्मुख किया है, जिससे ग्रामीण महिलाएं अपनी एक विशेष पहचान तो बना ही रही हैं, साथ ही साथ गाँव के विकास में अहम भूमिका भी निभा रही हैं, जो कि सराहनीय है।

## सन्दर्भ


1. बुर्रा एन, देशमुख रानाडिव, जॉय एण्ड मुर्थी के0 माइक्रों क्रेडिट पावर्टी एण्ड इम्पावरमेन्ट, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली-2005
2. यादव चन्द्रभान: महिलाओं की सफलता का सशक्त माध्यम स्वयं सहायता समूह, कुरुक्षेत्र-जुलाई, 2013
3. पार्थसारथी एस0 के0 अवेयरनेस, ऐसेस, एजेन्सी: इक्सपीरियंसेस आफ स्वयं शिक्षण प्रयोग इन माइक्रो फाइनेन्स एण्ड वूमेन इम्पावरमेन्ट-2005
4. लक्ष्मी रामचन्द्र एण्ड पार्टी: सेल्फ हेल्प ग्रुप इन बेलारी: माइक्रो फाइनेन्स एण्ड वूमेन इम्पावरमेन्ट, द जनरल आफ फैमिली वेलफेयर, वोल्यूम-55, नं0-2-2009
5. शर्मा, डी0, शांति मैत्री मिशन संस्थान, मरुस्थलीय ग्रामीण विकास का पुरोधा, कुरुक्षेत्र, जुलाई-2013
6. एन0डी0 जार्ज, भारत में लघुवित्त, मुद्दे और रणनीतियां, योजना, जनवरी-2008
7. एम0 श्रीवास्तव, मुहम्मद युनुस का योगदान, योजना, 2008
8. गुप्ता एवं एस0, स्वयं सहायता समूह के द्वारा ग्रामीण भारत का विकास, कुरुक्षेत्र, जुलाई-2013

# निष्कवच: पुरुषों को छलती 'नीरा' के बहाने उभरता नया नारी रूप


## डॉ० नमिता जायसवाल

*प्राध्यापिका, बेथुन महाविद्यालय, हिंदी विभाग, कोलकाता ( पश्चिम बंगाल )*


स्त्री की ज्वलंत समस्याओं का प्रत्यक्ष अध्ययन, विश्लेषण और तद्जनित स्त्री मनोविज्ञान तक पहुंचने, उसे चाहने, विचारने के प्रयास के सत्य निष्ठ आचरण को निष्पक्ष भावों से अपनी कृतियों द्वारा सत्य का स्थापन करने वाली लेखिका 'राजी सेठ' का उपन्यास 'निष्कवच' दो कथा कृतियों को समेटे हुए है। "दो अलग-अलग कथाएं होते हुए भी उनमें एक तारतम्य है। आज जब चारों ओर पुरुष -प्रधान समाज में नारी के प्रति हो रहे अन्याय और अत्याचार को उजागर किया जा रहा है, ये कथाकृतियां टूटे जीवन- मूल्यों की धुंध में पनप रही उसके स्वार्थांधता को रेखांकित करती है। जिससे प्रेरित होकर दो युवतियां दो होनहार युवकों को उनकी धुरी से हटाकर उनका भरपूर शोषण करती हुई उन्हें हतप्रभ कर देती है, पूरी तरह ध्वस्त कर देती है और अपनी इस करनी पर इतराती है।"[1] यह उपन्यास स्त्री जाति की सुदीर्घ संयोजित गरिमा के आकलन का लेखा जोखा है। जो नारी या पुरुष किसी के अवांछित आचरण का बिना किसी पूर्वाग्रह के पर्दाफाश करते हुए अपनी चेतना युक्त आपत्ति दर्ज कर अपने सृजन की अस्मिता को स्थापित करता है।

"राजी सेठ एक संवेदनशील कथाकार है जो व्यक्ति के परिवेश में व्याप्त दबावों को न केवल महसूस करती है बल्कि उसकी संपूर्ण मानसिकता में यहां तक कि उसके प्रत्यक्ष व्यवहार में भी उनके प्रभावों को तौलती है एवं अपनी रचनाओं में पूरी ईमानदारी एवं संयम के साथ उन्हें करती है।"[2] राजी सेठ कृत 'निष्कवच' (1995)का कथा वृतांत (एक) में ऐसी किशोरी की कथा है जो उपेक्षा, अवहेलना और विषम परिवेश की माटी में पनपते हुए अपनी निर्लिप्त मानसिकता के अधीन विद्रोहिणी, क्रूर और निर्मम हो उठती है। उसकी परिस्थितियों ने जहां उसमें हीन भावना भर उसे कुंठित, आतंकित एवं आशंकित किया है, वही उसके आत्मीय परिवेश ने उसे उसके अपने मनोभावों और चारित्रिक विशेषता के कारण अपनेपन से वंचित भी किया है। बनावटी अपनेपन की आच्छन्नता ने उसे वितृष्णा से भरा भी है। हालांकि नायिका अपनेपन की प्राप्ति की विधाओं के लिये स्वयं भी आग्रही नहीं दिखती है।

अठ्ठारह-उन्नीस वर्षीय नायिका नीरा अपनी मां जिसे उसके पिता ने उसकी गर्भस्थ अवस्था में ही अपनी पत्नी यानि की नीरा की मां के जेवरात गहने चुराकर उसे निसंग करते हुए पलायन करता है। असहाय परिस्थितियों में गुजर बसर करते हुए उसकी मां किसी तरह अपने भाई की मदद से प्राइमरी स्कूल की प्रधानाध्यापिका की नौकरी पाती है। नीरा का अहं और भी ज्यादा आहत तब होता है जब नीरा की मां के हृदय में उसके अशुभ संतान होने की स्थिति दर्ज होती है और मां उसे अच्छी पढ़ाई लिखाई के दलील पर दूसरे शहर अपनी चचेरी बहन के घर उसे भेज देती है। नीरा कहती हैं- "तुम मेरी मम्मी की बात कर रहे हो न? मैं कुछ भी नहीं हूं उनके लिए। जब जहां चाहा, ठेल दिया। मेरी पढ़ाई -लिखाई की बात को प्रमुख बनाकर..।"[3] अपनी इन सब धारणाओं के कारण वह असहज हो गई है। रिश्तो के प्रति अनादर से भरी नीरा एक अद्भुत मानसिक अवसाद से घिरी हुई है। उसे जीवन आधार विहीन, अर्थहीन सा लगता है। अपनी वंचना के लिए वह अपनी नजर में सर्वथा निर्दोष है और यही उसकी जहनी शिकायत भी है।

नीरा कर्तव्य सचेतन नहीं अधिकार सचेतन है। अपनी मां के दूसरों के लिए अपनेपन के एहसास को धिक्कारती हुई अपने लिए किए गए अपनी मां के त्याग को साफ नकारती है। उसके लिए ही दोबारा घर न बसा कर उसके भविष्य को सुरक्षित करने वाली मां के लिए नीरा कहती है- "उसमें अभी क्या कमी है। स्कूल की वह छोटी-छोटी छोकरियां उन्हें ज्यादा प्यारी लगती है, क्योंकि हर समय आसपास मंडराती रहती हैं। यह मुझसे नहीं होता।"[4] दरअसल नीरा आत्मकेंद्रित है।वह किसी के करीब न जाकर दृष्ट भाव से किसी को करीब पाना चाहती है। वह किसी से कुछ बांटने को तैयार नहीं है, विशेषकर अपना प्राप्य स्नेह, उसे आधिपत्य चाहिए पूरा का पूरा। अपनी मां का अपने छात्रों के साथ जुड़ाव लगाव उसमें द्वेष पैदा करता है, अपनापन न पाने की कसक भोगती हुई नीरा का विश्वास अपनेपन की परिभाषा से उचट गया है। बड़ी बेबाकी से विशाल से कहती है- "सच तो यह है कि वह मुझे कभी अपनी मां ही नहीं लगती। कुछ कहते रहो, कभी नहीं समझती! बस, हर समय पट्टी-स्लेट लेकर बैठे रहो। छोकरियों से बतियाते रहो। मन से उनसे मेरी एक मिनट को नहीं बनती। काश! मेरी भी तुम्हारे- जैसी मां होती..।"[5] व्यवहार आचरण के माध्यम से नीरा अपने को अपनेपन से विहीन, अस्तित्व विहीन, अस्वीकृति सी पाती है। अपनेपन के बारे में अपनी पीड़ा व्यक्त करती हुई वह अनायास कह उठती है "कितना अजीब होता है न इतनी बड़ी दुनिया में कुछ भी अपना न होना. कितना हताश करता है. .।"[6] उसे अपनी मौसी द्वारा दिया गया अतिरिक्त अपनापन सहज नहीं बल्कि बनावटी और दया की भीख जैसी लगती है, जिसे स्वीकारने के लिए उसका स्वाभिमानी मन तैयार नहीं। उसके अंतर्मुखी मौसेरे भाई विशाल का संकुचित व्यवहार उसे अपनी उपेक्षा सी ही लगती है। जो अपने आगे की पढ़ाई के लिए बाद में लंबे समय के लिए दूसरे शहर चला जाता है।

नीरा के अंदर एक ऐसी हीनभावना घर बना चुकी है जो उसे दूसरे को आरोपित करने के साथ अपनी किसी कमी की ओर इशारा करती दिखती है। नीरा एक जीवंत व्यक्तित्व है और वह भी नारी रूप में। अपने को खोया पायी हुई नारी अपने वर्ग के संदर्भ में अपनी तलाश को, अपनी पहचान को अपने बहुआयामी सत्ता के किसी भी एक माध्यम के, रास्ते तलाशना चाहती है। यौवन के चरण पर कदम रखती नीरा की भी यही छटपटाहट है। नीरा सौंदर्य सचेतन नारी है गुण

सचेतन नहीं। अपने को उपेक्षित अस्वीकृत समझने वाली नीरा में एक तरफ दूसरों की दृष्टि उपेक्षा कर प्रतिशोध की भावना रची बची है तो दूसरी तरफ अपने स्वीकृति की अदम्य लालसा भी हिलोरे ले रही है। उपेक्षा करने की संतुष्टि लाभ करती है वह मौसी, मौसा और मौसेरे भाई विशाल की उपेक्षा करके। पर अपनी स्वीकृति की तलाश में वह हाथ बढ़ाती है। विशाल के आत्मसत्ता सम्पन्न स्वाभिमानी पुरुष अहं की प्रतिमूर्ति, स्वावलंबिता के पर्याय के मूर्त रूप अभिन्न मित्र बासू की तरफ। जो अपने परिवार की अभिजात्य पृष्ठभूमि को नकारता उसकी बैसाखियों के सहारे चलने को सख्ती से अस्वीकारता अपने को स्वयंभू सिद्ध करने के लिए जोखिम से भरा युद्ध कर रहा है। बासू की अडिग और दृढ़ मनोवृति नीरा को अपने आत्मसाधन और स्वीकृति परीक्षा का सबसे मजबूत उपादान लगता है। बासू की असामान्य ऊर्जा और आत्मसत्ता संपन्न व्यक्तित्व नीरा के लिए चुनौती बन खड़ा होता है। नीरा बासू से घनिष्ठता बढ़ाती है उसपर डोरे डालती और अपने रूप लावण्य के शिकंजे में धीरे-धीरे उसे कस लेती है। बासु के सानिध्य में वह दीप्त होने लगी थी। उसके साहचर्य से ज्यादा प्रभाव उसकी दीप्ति में बासु पर काबू पा लेने की अपनी सफलता का था। विशाल, बासू और नीरा के गहराते संबंधों से चिंतित हो जाता है क्योंकि वह जानता है कि "बासू अलोच अडूब. . परंपरा- विरोधी। बंधन काट सकता है, ओढ़ नहीं सकता। उसका फक्कड़पन किसी दूसरे के दिये अर्थ का मोहताज नहीं और ख्वाहमखाह शहीद हो जाए, ऐसा उसका स्वभाव नहीं, फिर क्यों उसके रास्ते में अड़ना।"[7] (चह.27) विशाल की मां को नीरा के विवाह की जल्दी बाजी है। विशाल को जब अपनी मां के इस प्रयास का पता चलता है तो वह उत्सुकता वश नीरा से इतनी जल्दी उसके विवाह के बारे में उसकी राय जानना चाहता है और बदले में नीरा का जवाब होता है- "कभी तो लगता है फालतू में बँध जाएँगे !फिर लगता है बड़ा अच्छा लगेगा। कोई बिल्कुल अपना तो होगा।"[8]

कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें दूसरों की व्यथा का एहसास ही नहीं होता है और नीरा शुरू से आखरी तक ऐसे ही हृदयहीन है। नीरा कुछ ऐसी ही मिट्टी की बनी है जिससे बने लोग जीवन को चापकर रखने के चाव से भरे होते हैं। विशाल की मां अर्थात् उसकी मौसी को उसकी यह ललक डराती थी। विशाल की मां को उसकी चिंता थी कि वह एक भगोड़े बाप की बेटी थी, जिससे उसकी शादी में अड़चन आने की संभावना थी और पढ़ने तथा करियर बनाने की चाह भी उसमें नहीं थी।वह पढ़ाई से कहीं ज्यादा ध्यान रूप रंग के रखरखाव में देती थी जबकि उसकी मौसी उसे करियर बनाने के माध्यम से आत्मनिर्भर बनना चाहती थी। पर सौंदर्य सचेतन और अपनी परिस्थितियों के प्रति लापरवाह नीरा में अपने जड़ों की तलाश में पुरुष का आश्रय ही आकांक्षित दिखता है। नीरा की आस्था अपनी अस्मिता के लिए गुणाश्रित नहीं सौंदर्याश्रित है। इन दिनों विशाल के मित्र बासू से, जो उनके घर आता जाता रहता है, नीरा की घनिष्ठता बढ़ती जाती है। उसे बासू का सानिध्य प्रफुल्लित और दीप्त करता है। विशाल जब उसे पढ़ने -लिखने पर जोर देने को कहता है तो वह जवाब देती है- "अच्छा बस! तुम्हें किताबें चाटनी हैं तो चाटो। मैं तो ...अभी बासू आएगा तो उसके साथ बैठकर शतरंज खेलूंगी।"[9]

बासू का मांसल शरीर पुरुषोंचित व्यक्तित्व से भरा पूरा है। वह आश्वस्त युवक है और जोखिम की हदों से टकराने का अदम्य साहस है। बेपरवाही और फक्कड़पन है। बासू आत्मसत्ता संपन्न ऐसा युवक है जिसे अपने अभिजात परिवार की बैसाखियों पर चलना मंजूर नहीं। वह अपने सामर्थ्य से ही अपनी उपलब्धि करना चाहता है। वह किसी घेरे में बंध कर जीने का आग्रही नहीं है। उसका मानना है कि प्यार, घर, कोमलता आदमी को डरपोक और प्रोटेक्टिव बनाती है। बासू की मित्रता से नीरा में एक उत्साह उत्पन्न होता है। बासू का उसे इंतजार रहता था। उसके फुर्सतीपन में एक क्षिप्रता आ गई थी।जीवन के बहुमुखी अर्थो की तड़प उसमें जाग उठी थी।उसका उदास जीवन उमंगों की तरंगों में हिलोरे लेने लगा था। "बासु के आते ही वह शतरंज पसारकर बैठ जाती। काम जो भी रहता- घर या कॉलेज का, उसे पटापट निपटाती। कुछ तो था कि उसके हाथों -पैरों का मिजाज बदल रहा था।"[10]

बासू के चरित्र को पहचानने वाला विशाल, उनकी बढ़ती नजदीकियों से चिंतित हो उठता है कि कहीं नीरा फिर से वंचना का शिकार न हो जाए। इस ख्याल से वह तड़प उठता है। नीरा को वह उसके बारे में यह बताकर आगाह करना चाहता है कि "जितना वह बाहर से दिखता है... दोस्त-यार, आत्मीय, अपना -जैसा- उतना भर वह नहीं है।...वह निस्संग, निर्मम, दूराग्रही ही उतना ही है..।"[11] नीरा भी बंधनमुक्त रहने के आकांक्षी बासू के विचारों से भलीभाँति अवगत है। फिर भी बासू उसे अच्छा लगता है। विशाल की चेतावनी का जवाब देते हुए कहती है- "फिर कुछ नहीं। वह मुझे अच्छा लगता है। अपना लगता है। इतना अच्छा मुझे अब तक कोई नहीं मिला।"[12] विशाल जब उसे समझाता हुआ कहता है कि उसके साथ नीरा का गहराता संबंध अगर शादी में नहीं रूपांतरित हुआ तो बदनामी की वजह से उसकी शादी होनी मुश्किल हो जाएगी। वैसे भी उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि की वजह से उसकी शादी में पहले ही दिक्कत की संभावना है। तब नीरा पीड़ा से तड़पकर कह उठाती है "तभी तो..तभी तो।"

नीरा आत्म केंद्रित है।अपनी मां के भीतर वाले हिस्सों का नापने का आग्रह उसमें नहीं है न ही उसमें सहानुभूति ही। जिसके बदले में वह अपने मां के संरक्षण और दुलार की कमाई कर सकती थी, जैसा कि उसकी मां की छात्रिया सहज कर लेती थी, जिसकी डाह नीरा में थी। उसकी मां को नीरा से किसी तरह की कोई ऐसी बात, ऐसी भावना नहीं मिली। हालांकि दोनों ही प्यार की भूखी थी और एक दूसरे की जरूरत भी।पर नीरा के निर्मोहीपन से उसकी मां निराश है। नीरा के इस मनोभाव के बाबत संदर्भ में विशाल की मां कहती है- "हारी- बीमारी में वह ही तो काम आएगी बेचारी के। अब अपने बच्चों को अच्छा लगे, न लगे। खुद तो कुछ करेंगे नहीं और मिलना सब कुछ चाहिए।"[13] जाहिर है कि नीरा स्वार्थी है। अतिशय महत्वाकांक्षी है। अपनी परिस्थितियों में अपने को घिरा पाकर वह अपनी कम से कम सुरक्षा के लिए बसु जैसे को हथिया लेने को हर कीमत पर आमादा है और इसमें वह सफल भी होती है। बासू उसके सामने अपने को निरस्त पाता है। ऐसे जाल में कस लिया है नीरा ने उसे कि उसका सारा व्यक्तित्व, उसका सारा पौरुष गल कर बह गया है। विशाल जब उसे नीरा के साथ मेलजोल की मनाही करता है, उसे लांक्षित करता है तो बासू बेबसी से कह उठता है- "तुम्हें गाली देना है तो दो, पर समझो तो.. कुछ तो समझो। कितनी-कितनी एग्रेसिव है वह.. धोकर रख देती है और मैं एक इंसान हूं.. एक पुरुष. नपुंसक तो मैं भी नहीं हूं। कोई कहां तक बच सकता है।"[14] नीरा के प्रभाव में फंसा अपनी बेबसी जाहिर करता बासू आगे कहता है- "यह क्यों नहीं समझते कि मैं अपने को बचा नहीं पा रहा हूं।"[15]

ऐसा प्रबल प्रभाव था नीरा के नारीत्व का या उसके सौंदर्य का तथा उसके उधाम मनोभाव का। पर जब नीरा के लिए समृद्ध चावला परिवार के इकलौते बेटे रमन के विवाह का प्रस्ताव आता है तो नीरा बिना किसी पूर्व भूमिका के, अब शादी का मन बना लिए बासू की संपूर्ण उपेक्षाकर रमन से जुड़ जाती है। यूं लगता है कि वह बासू को पहचानती तक नहीं। स्वयंभू बनने का इरादेवाला, आत्मसत्ता से संपन्न, पारिवारिक मोह माया को निरस्त करने वाला आत्मकेन्द्रित बासू ध्वस्त हो जाता है, वह भी नीरा के ऐसे हाथों से जिन्हें आज तक कोई महत्व नहीं दिया गया। अपने को रौदा गया महसूस करता बासू कहता है रमन का

हवाला देते हुए जो समृद्ध है और इंजीनियर भी "....मैं तैयार नहीं था? हां..शुरू में..पर अब तो वह तैयार नहीं थी, उसे अभी यह सब नहीं करना था शादी-वादी. बच्चे -कच्चे। अब यह इंजीनियर.. बाबू क्या 'अभी' में नहीं आते? मैं नहीं रह गया था, ध्वस्त करने को।"[16] यानी बासू उससे शादी करने को तैयार था। पर बासू तो उसके अपने शक्ति परीक्षण की वह जमीन था जिस पर सफल प्रयोग से अपने आत्मविश्वास को पुष्ट कर वह अच्छे विकल्प की तलाश में जुट पाती। तभी तो विशाल जब नीरा को रमन के चुनाव पर बासू की प्रतिक्रिया बताते हुए बताता है कि बासू उसे क्रूर, स्वार्थी, चालाक कहता है और कहता है कि नीरा ने उसे ठगा है, यूज किया है तो वह निर्लिप्त सी कहती है- "भूल जाएगा। जैसे मैं भूलती जा रही हूं..तेजी से।"[17]

दरअसल नीरा परंपरागत भारतीय नारी मन के कोमल भावों से अलग एक महत्वाकांक्षी, आत्मकेन्द्रित, चालाक स्वार्थी और ऐसी निर्मोही नारी है जो सिर्फ लेना जानती है देना नहीं। उसकी अवसरवादिता और संवेदनहीनता उसे परंपरागत नारी के संदर्भ में कटघरे में खड़ा कर देती है।उसमें अस्मिता की तलाश तो है, पर उसकी जड़ें अपनी स्वावलंबिता या आत्मनिर्भरता की गुणों से नहीं जुड़ी। वह अपने सौंदर्य शक्ति का उपयोग कर पुरुष विजय के माध्यम से अपने को तलाशती है। पाश्चात्य नारी के स्वार्थसिक्त दर्शन उसमें प्रतिबिंबित है। वह तोड़फोड़ कर आगे बढ़ना चाहती है, अबाध, संवेदनशील ढंग से। उसे प्यार सिर्फ अपने से है, उसे परिवेश से नहीं जहां उसे अपनेपन की तलाश है वह भी आधिकारिक ढंग से। राजी सेठ कहती है- "स्वतंत्रता का अर्थ अपने जकड़े हुए जीव को मुक्त, समर्थ, सशक्त समझदार करना है, अपना आत्मप्रत्यय विकसित करना है। दूसरों की देखादेखी, प्रदर्शन, अनुकरण, तोड़फोड़ में उतरना नहीं। जरूरत चीजों को बदलने की है, तोड़ने की नहीं।"[18] नारी की अस्मिता यात्रा पर लेखिका का यह निष्पक्ष क्रुर व्यंग्य है। नारी ने जिस सौंदर्य देह को अपनी पूंजी बनाई थी जब उसका वही सौंदर्य विकृत हो जाता है, स्तन के गांठ की शल्य प्रक्रिया के साथ तो सवाल यह उठता है कि अब उसकी पूंजी क्या होगी अपने अस्तित्व के लिए क्योंकि अमर गुणों को तो उसने कभी प्रश्रय दिया ही नहीं, श्रयतल देह उसके अस्तित्व को क्या सुरक्षित रख सकेग। "अपना रास्ता हर कोई चलकर ही पार करता है। उसे कूद कर पार नहीं किया जा सकता। अपनी लड़ाई को अपनी जमीन पर, अपने हथियार से लड़ना होता है तभी उसमें निदान की संभावना होती है।"[19]

## संदर्भ


1. रांग्रा, रणवीर, निष्कवच, अक्षरा, अप्रैल -जून 1996, भोपाल, पृ. 82
2. प्रसाद, प्रसून, साक्षात्कार, फरवरी-मार्च, 1993, भोपाल, पृ. 106
3. सेठ, राजी, निष्कवच, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, पृ.12
4. वही, पृ.12
5. वही, पृ.12-13
6. वही, पृ.12
7. वही, पृ.27
8. वही, पृ.12
9. वही, पृ.15
10. वही, पृ.22
11. वही, पृ.28
12. वही, पृ.29
13. वही, पृ.31
14. वही, पृ.37
15. वही, पृ.37
16. वही, पृ.49
17. वही, पृ.56
18. डालमिया, दिनेशनंदिनी (संपा.), नारी एक सफर, ज्ञान भारती, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृ.146
19. डॉ.शुक्ला, उमा(संपा.), आधुनिक कथा साहित्य में नारी स्वरूप और प्रतिमा, अरविंद प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण 1995, पृ.6

# राष्ट्रीय बंसत की प्रथम कोकिला सुभद्रा कुमारी चौहान


## डॉ० रोशनी मिश्रा

*सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग, दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर ( छ.ग. )*


छायावाद के लगभग समानांतर चलने वाले राष्ट्रीय सांस्कृतिक, साहित्यक आंदोलन के बड़े रचनाकारों में सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम सम्मान से लिया जाता है। सुभद्रा कुमारी चौहान हिंदी साहित्यकारों की उस परंपरा का सशक्त प्रतिनिधित्तव करती है, जिन्होंने बाल्यकाल या विद्यार्थी जीवन से अपनी लेखकीय प्रतिभा का परिचय देना आरंभ कर दिया था। 16 अगस्त नागपंचमी के दिन सन1904 में इलहाबाद के पास निहालपुर गॉव में इनका जन्म हुआ था। उनके सहज स्नेही मन और निरछल स्वभाव का जादु सब पर चलता था। उनका जीवन प्रेम से युक्त था और निरंतर निर्मल प्यार बाँट कर भी खाली नहीं होता था। उन्होंने देश के स्वाधीनता आंदोलन में भी बढ़ चढ़ कर भाग लिया। 1922 का जबलपुर का झंडा सत्याग्रह देश का पहला सत्याग्रह था और सुभद्रा जी पहली महिला सत्याग्रही थी। सामाजिक जीवन में साधारण-जनों के दुखों समस्याओं का निवारण भी अपने स्तर पर अत्यंत समरसता से किया। उनमें बड़े सहज ढंग से गंभीरता और सजगता का अद्‌भूत संयोग था। सुभद्रा जी का विवाह माखन लाल चतुर्वेदी जैसे देशभक्त के पट्ट शिष्य लक्ष्मण सिंह चौहान जैसे युवा लेखक व पत्रकार से हो गया। फिर तो गाँधी जी का अनुगमन आजादी की लड़ाई में सक्रिय हिस्सेदारी जेल यात्रा, समाज-सेवा और कहानी कविता मुख्य धारा के साथ-साथ बच्चों के लिए भी लिखना सुभद्राकुमारी चौहान की जीवन चर्चा से अनिवार्य रूप् से जुड़ गया। वे जिस सहजता से देश की पहली स्त्री सत्याग्रही बनकर जेल गई थी, उसी तरह अपने घर गृहस्थी, बच्चों के प्रति गृहस्थी के छोटे-छोटे कामों में व्यस्त रहती थी। सुभद्रा जी ने असहयोग आंदोलन में अपने को दो रूपों में झोंक दिया-

1. देश सेविका के रूप में
2. देश भक्त कवि के रूप में

गार्हस्थिक और राष्ट्रीय दायित्वों के प्रति चौतन्य रहकर नवदाम्पत्य की रंगीन दुनिया की अपेक्षा कारागार को सहज स्वीकार करने वाली सुभद्रा जी ने अपने संघर्षशील जीवन को भी सुख भरे सुनहरे बादलों से घिरा बताया है।

*सुख भरे सुनहरे बादल*
*रहते हैं मुझको घेरे।*
*विश्वास प्रेम साहस है,*
*जीवन के साथी मेरे।।*

इसके पीछे उनकी आत्म विश्वासमयी चेतना ही थी। उनकी इस चेतना का साक्ष्य उनकी मित्र महादेवी जी से प्रसंगवश कहे हुए इस कथन से मिलता है। ''मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूँ, मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते है, स्त्रियाँ गाती रहे, कोलाहल होता रहे।''

कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में लिए निर्णय (असहयोग आंदोलन के संदर्भ में) से प्रेरित होकर इन्होंने पढ़ाई और पति ने वकालत छोड़ दी। दोनों पुरी तरह देश और समाज के प्रति समर्पित हो गए। वे एक यशस्वी कन्या, समर्पित पत्नी, ममतामयी माँ, उदार मित्र सजग स्फूर्तिवान नारी, धैर्यमयी कुशल गृहस्थिन, निष्ठावान राजनीतिक कार्यकर्ता, उदान्त मन: स्पर्शी कहानीकार व भाव प्रवण कवयित्री थी। स्वतंत्र भारत में वे मध्यप्रांत विधान सभा थी सदस्य मनोनीत की गई। उनका पहला काव्य संग्रह 'मुकुल' था त्रिधारा में भी उनकी कविताएँ संकलित है। उनकी 'झांसी की रानी' कविता आजादी की लड़ाई के दौर की अत्यंत लोकप्रिय रचना है। उनकी इस रचना ने जनचेतना में जादुई स्फुरण जगाने के साथ लोक जीवन का कंठहार बन जाती है। बुन्देली लोक शैली में रचे गए छंद में उनकी 'झाँसी वाली रानी' तत्कालीन समाज में स्वतंत्रता का मंत्र फूँकने के कारण ऐतिहासिक महत्त्व और अपने बोलचाल किंतु रोमांचक कथा विन्यास असाधारण कथा-चयन, अनूठी पदावली और उदान्त चरित्रांकन के कारण साहित्य के इतिहास में अमर रचना बन गई है।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाते हुए उन्होंने आनंद और जोश में कविताएँ लिखी है-

*सबल पुरूष आदि भीरू बनें,*
*तो हमको दे वरदान सखी।*
*अबलाएँ उठ पड़े देश में,*
*करे युद्ध घमासान सखी।।*

असहयोग आंदोलन के लिए आह्वान- इस शैली में तब हुआ है जब स्त्री सशक्तिकरण का अधिक प्रभाव न था। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी पुत्री का कन्यादान करने से मना कर दिया था, क्योंकि कन्या कोई वस्तु नहीं जो दान की जाये। स्त्री स्वतंत्रय का कितना बड़ा पग था यह। वीरों का कैसा हो बसंत उनकी एक ओर प्रसिद्ध देश प्रेम की कविता है। जिसकी राष्ट्र भावना लय और भाव गंभीरता अनोखी थी। स्वदेश के प्रति डालियाँ वाले बाग से बसंत आदि श्रेष्ठ कवित्व से भरपूर कविता हैं। साथ ही राष्ट्रभाषा के प्रति भी उनका गहरा सरोकार है-

*हिंदी प्यारी हिंदी का*
*प्यारे भारत वर्ष कृष्ण की*
*उस प्यारी कालिंदी का।*

'बालिका का परिचय' बिटिया के महत्व को इस प्रकार प्रस्थापित करती है-

*दीपशिखा है, अंधकार की,*
*घनी घटा की उजियाली।*
*उषा है यह कमल भृंग की,*
*है, पतझड़ की हरियाली।।*

वास्तव में उनकी कविताएँ परिवार और राष्ट्र के प्रति एक सजग नागरिक संवेदना से रची गई है। उनकी कविताएँ उनके जीवन और सोच की एकता को प्रकट करती है। उन्होंने जो सोचा किया वही रचा भी। वे हिंदी की पहली साहित्यकार है, जिन्होंने परिवार की संवेदना पर कविता को एकाग्र किया। घरेलु जीवन की अंतरंग अभिव्यक्ति के कारण उनकी कविताओं में अद्‌भूत संवेदनशीलता, सहजता और मार्मिकता हैं। मुक्तिबोध ने सुभद्रा जी की 'सफलता का रहस्य' शीर्षक लेख में उनकी पारिवारिक संवेदना की ओर ध्यान आकृष्ट लिया है। उनकी दृष्टि में 'सुभद्रा जी की पारिवारिक भावनाएँ कर्तव्याभिमुख हैं। 'परिवार' शब्द यहाँ नागरिक शास्त्र के 'कुटुम्ब' का पर्यायवाची नहीं है। जो अपना सा हो जाए, वहीं परिवार का व्यक्ति है। परिवार के प्रति अपनी भावनाओं को प्रकट करते हुए वे उनके द्वारा उनकी विवके चेतना को सुषुप्त नहीं करनी वरन् उसे जागृत करके एक आदर्श की ओर उन्मुख कर देती है। यह आदर्श सामाजिक राष्ट्रीय हैं जाहिर है, इस आदर्श की अभिव्यक्ति स्वाधीनता की चेतना में होती है, जो सुभद्रा जी की अभिव्यक्ति का दूसरा महत्वपूर्ण विषय है।''

प्रणय और वात्सल्य की अनुभूतियों में सुभद्रा जी की पारिवारिकता और उनकी अंतरंग सहजता मूर्त होती है। मुक्तिबोध ने लिखा है - ''इस पारिवारिकता ने ही उनके काव्य में एक विशेष प्रकार की ऋजुता और समीपता का गुण उत्पन्न किया। उसे अधिक मूर्तता प्रदान की।''

इस संदर्भ में मुक्ति बोध ने उनकी एक कविता उद्‌घृत की है-

*बहुत दिनों तक हुई प्रतिक्षा,*
*अब रखा व्यवहार न हो।*
*अजी बोन तो लिया करो तुम,*
*चाहे मुझ पर प्यार न हो।*
*जरा जरा सी बातों पर*
*मत रूठो मेरे अभिमानी*
*लो प्रसन्न हो जाओ गलती,*
*मैनें अपनी ही मानी।*
*मैं भूलों की भरी पिटारी,*
*और दया के तुम आगार।*
*सदा दिखाई दो तुम हँसते,*
*चाहे मुझसे करो न प्यार।*

मुक्ति बोध की इस पर टिप्पणी है-''हिंदी साहित्य में कदाचित पहली बार प्रणय के मानव संबंध को उसकी उचित भूमिका प्रसंग में रखकर देखा गया है।'' ऐसी ही मार्मिकता और माधुर्य उनकी मातृगर्व और वात्सल्य से भरी कविताओं में भी है। इनमें से एक कविता सभी ओर मुक्ति बोध-ध्यान दिलाये हैं-

*मैं बचपन को बुला रही थी,*
*बोल उठी बिटिया मेरी,*
*नंदन वन सी फूल उठी*
*यह छोटी सी कुटिया मेरी।*
*माँ-ओ कहकर बुला रही थी*
*मिट्टी खाकर आई थी।*
*कुछ मुँह में, कुछ लिए हाथ में,*
*मुझे खिलाने लाई थी।*
*मैनें पूछा यह क्या लाई।*

*बोल उठी वह, माँ काओं।*
*हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से,*
*मैंने कहा तुम्हीं खाओं।*

सुभद्रा कुमारी चौहान की काव्य संवेदना का दूसरा पहलु है- राष्ट्रीय चेतना। स्वतंत्रता-संग्राम में प्रत्यक्ष भाग लेने के कारण राष्ट्रीय भावना उनके समूचे व्यक्तित्व की पहचान बन गई थी। उनके हृदय का अनुराग अपनों के सिमटे दायरे से निकलकर अपने देश और देशवासियों के प्रति अनुराग से जुड़ गया था। इसका प्रमाण उनकी ये पक्तियाँ हैं-

*गिरफ्तार होने वाले हैं, आता है वारंट अभी।*
*धक् सा हआ हृदय, मैं सहमी हुए निकल आशंक सभी।*
*किंतु सामने दिख पड़े मुस्कुरा रहे थे खड़े-खड़े।*
*रूके नहीं आँखों से आँसू, सहसा हपके बड़े-बड़े।*
*पगली यों ही दूर करेगी, माता का यह कौरव कपअं*
*सका वेग भावों का, दीखा अहा, मुझे यह शैख स्पष्ट।*
*तिलक, लाजपत, गाँधी जी, बंदी कितनी बार हुए।*
*जेल गए जनता ने पूजा, संकट में अवतार हुए।*
*मैं पुलमित हो उठी यहाँ भी, आज गिरफ्तारी होगी।*
*फिर जी धड़का, क्या भैया की सचमुच तैयारी होगी।*
*सदियों सोई हुई वीरता जागी, मैं भी वीर बनी।*
*जाओं भैया विदा तुम्हें करती हूँ, मैं गंभीर बनी।*
*याद भूल जाना मेरी उस आँसू वाली मुद्रा थी।*
*कर लो अन स्वीकार बधाई छोटी बहन सुभद्रा की।*

सुभद्रा जी की राष्ट्रीय कविताओं में अति उत्साह, ओज या, शोर मचाती भावुकता नही बल्कि जीवन की अंतरंग ऊष्मा है। उनकी भावुकता, कर्तव्य बोध जागने वाली विवकेशीलता से संतुलित होती हैं। दूसरी तरफ भावुकता उनकी कविताओं को बोधगम्य और मर्मस्पर्शी बनाती है। प्रेम वात्सल्य, दाम्पत्य भाव, स्वजनों के प्रति अनुराग, उत्सर्ग और उत्साह-सुभद्रा जी के तमाम मनोभाव राष्ट्रप्रेम की पृष्ठभूमि में आकार लेते हैं। मुक्तिबोध ने ठीक ही कहा है कि - सुभद्रा जी के काव्य में भावों के बहुत गहरे रंग नहीं है, पर भावों की गहराई हैं स्वाभाविकता हैं सरलता हैं। उनका देशप्रेम बौद्धिक आवेग से नहीं, ठोस जमीनी हकीकत से पैदा होता है।'' राष्ट्रीय आंदोलन के परिवेश में रची बसी कवमित्री के लिए ही यह संभव था कि वह अपनी समूची चेतना को- माँ, पत्नी, बहन होने के ऐहसास को देशानुराग में विसर्जित कर दे। देश प्रेम को सरस भाव से व्यक्त करने के कारण ही कवि शमशेर ने उन्हें 'राष्ट्रीय बसंत की प्रथम कोकिला' कहा है।

उन्हें ओजस्वी और देश भक्ति पूर्व कविताओं के लिए तो जाना जाता हैं। मैं बचपन को बुला रही थी। बोल उठी बिटिया मेरी (मेरा नया बचपन) यह मेरी गोद की शोभा सुख-सुहाग की लाली (बालिका का परिचय) या मैं नन्हें से ओंठ और यह लंबी सी हिचकी देखों (इसका होना) जैसी मातृवत्सलता की अद्वितीय कविताओं के लिए भी जाना जाता हैं विडंबन यह है कि 'भग्नावशेष, अमराई, अभियुक्त, वेश्या की लड़की, गौरी, तांगेवाला, कैलाशी नानी, गुलाब सिंह, बिसाहा, तीन बच्चे, जैसे सामाजिक स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, स्वाधीनता आंदोलन की सक्रियता से लेकर जेल जीवन से जुड़ी अत्यंत मार्मिक एवं बोलती कहानियों के लिए सुभद्रा जी को बिल्कुल ही नहीं जाना जाता। खेदजनक तो यह है कि आज भी हम सुभद्रा कुमारी चौहान को पढ़ने जानने के लिए गंभीर और सचेष्ट नहीं है।

# जॉन रॉल्स का न्याय सिद्धांत


## डॉ० आलोक कुमार पाण्डेय

*असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राणा प्रताप पी.जी. कॉलेज, सुल्तानपुर, उ.प्र.*


जॉन रॉल्स (1921-2002) 20वीं सदी के सबसे प्रभावशाली राजनीतिक दार्शनिकों में से एक थे। उनकी प्रमुख कृति "ए थ्योरी ऑफ जस्टिस" (A Theory of Justice) (1971) ने आधुनिक राजनीतिक चिंतन को एक नई दिशा दी। उन्होंने "न्याय को निष्पक्षता" (Justice as Fairness) के रूप में परिभाषित किया और यह दिखाने का प्रयास किया कि एक लोकतांत्रिक समाज में स्वतंत्रता और समानता को किस प्रकार संतुलित किया जा सकता है। उनकी बाद की रचनाएँए जैसे "पॉलिटिकल लिबरलिज्म" (1993) और "द लॉ ऑफ पीपल्स" (1999), बहुलतावादी समाजों और वैश्विक न्याय के मुद्दों से संबंधित हैं। जॉन रॉल्स ने आधुनिक राजनीतिक दर्शन में न्यायए समानता और लोकतांत्रिक संस्थाओं की भूमिका को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके सिद्धांतों ने राजनीतिक और नैतिक चिंतन की दिशा को नया आयाम दिया और आज भी उनकी विचारधारा राजनीतिक सिद्धांतों और सार्वजनिक नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। रॉल्स का न्याय का सिद्धांत हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि हमारी संस्थाएँ कितनी न्यायसंगत हैं और कैसे समाज में निष्पक्षता और समानता सुनिश्चित की जा सकती है।

समकालीन राजनीतिक चिंतन के अंतर्गत जॉन रॉल्स के न्याय का अपना विशेष महत्व है। जॉन रॉल्स ने अपनी विख्यात कृति ए थ्योरी ऑफ जस्टिस 1971 के अंतर्गत अपने न्याय सिद्धांत का वर्णन किया है। रॉल्स कहता है कि एक आदर्श समाज की सबसे प्रमुख विशेषता न्याय का स्थान है। यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि केवल न्याय की स्थापना से दुनिया का कोई भी समाज एक उत्तम समाज हो जाएगा। हम इतना जरूर कह सकते हैं कि न्याय किसी उत्तम समाज की स्थापना की प्रथम आवश्यक शर्त है। अगर किसी समाज में न्याय के नियमों की अनदेखी होती है तो वह समाज निश्चित रूप से पतन की तरफ अग्रसर है।

## जॉन रॉल्स विचार में न्याय का प्रश्न

सर्वप्रथम प्रश्न यह उठता है कि न्याय क्या है? इस विषय पर विभिन्न विचारकों ने अपने.अपने अलग.अलग विचारों को प्रस्तुत किया है। सभी विचारों का न्याय को देखने का अपना अपना अलग.अलग तरीका रहा है। इसी क्रम में रॉल्स ने न्याय के विषय पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि "न्याय" (जस्टिस) मूलत: प्राथमिक वस्तुओं (प्राइमरी गुड्स) के न्यायपूर्ण वितरण की समस्या है। उसका मानना है कि अगर प्राकृतिक प्राथमिक वस्तुओं को सभी लोगों में न्याय पूर्ण तरीके से वितरित किया जाए न्यायपूर्ण समाज की अस्तित्व को प्राप्त किया जा सकता है।

रॉल्स अपने न्याय के सिद्धांत को शुद्ध प्रक्रियागत न्याय के रूप में मानता है और कहता है कि के पालन के द्वारा एक शुद्ध तात्विक न्याय (Substantial Justice) की प्राप्ति की जा सकती है। रॉल्स ने अपने सिद्धांत में जेरेमी बेंथम के उपयोगितावादी सिद्धांत की आलोचना प्रस्तुत की है। रॉल्स कहता है कि बेंथम का उपयोगितावादी सिद्धांत जो अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख की वकालत करता हैए एक अपूर्ण न्याय का सिद्धांत है। क्योंकि अधिकतम व्यक्तियों की सुख को बढ़ाने की प्रक्रिया में समाज के कुछ लोगों हितों की अनदेखी की जाती है। यह भी संभव है कि अधिकतम व्यक्तियों सुख को अधिकतम बनाने चक्कर में कुछ लोगों को दासत्व की स्थिति प्राप्त हो जाए। रॉल्स कहता है की सुखी लोगों के सुख को चाहे जितना क्यों ना बढ़ा दिया जाएए उससे दुखी लोगों के दुख के हिसाब हिसाब बराबर नहीं किया जा सकता। रॉल्स ने अपनी थियरी ऑफ जस्टिस (1971) की रचना उस समय की थी जब अमेरिका में अश्वेत लोगों के अधिकारों की मांग को लेकर आंदोलन चल रहे थे। तत्कालीन उदारवादी पूंजीवादी व्यवस्था की एक अत्यंत बड़ी खामी सामने आ रही थी कि पूजावादी व्यवस्था में आय और संपत्ति की विषमता बढ़ती जा रही थी। अत: उदारवादी पूंजीवादी व्यवस्था को आने को आलोचनाओं का सामना करना पड़ रहा था जिसको रक्षित करने के लिए रोल ने अपने न्याय का सिद्धांत प्रस्तुत किया था।

## रॉल्स की तर्क प्रणाली

अपने न्याय सिद्धांत की स्थापना की प्रक्रिया को संदर्भ में जॉन रॉल्स सामाजिक समझौते सिद्धांत का सहारा लेता है। जिसका उपयोग हॉब्स और लॉक जैसे विद्वानों ने राज्य की स्थापना के संदर्भ में किया था। लेकिन यहां पर रॉल्स सामाजिक समझौते के सिद्धांत का उपयोग न्याय के नियमों के चयन के लिए करता है। इस सामाजिक समझौते की इसके अंतर्गत रॉल्स यहपरिकल्पना करता है कि समाज के सभी व्यक्ति अपने "मूल स्थिति" में "अज्ञानता के परदे" के पीछे अवस्थित है। मूल स्थिति को "ओरिजिनल पोजीशन" और "अज्ञाता के पर्दे" को "वेल ऑफ इग्नोरेंस नाम से जाना जाता है। मूल पोजीशन और यह ओरिजिनल पोजीशन का अर्थ है कि व्यक्ति को अपनी वर्तमान तत्कालीन सामाजिक.आर्थिक परिस्थितियों से अलग कर दिया जाए। अर्थात उसे अवस्था में व्यक्ति अज्ञानता के परदे के पीछे स्थित है। उसे काल्पनिक स्थिति में समाज के लोगों को अपनी आवश्यकताओंए हितोंएनिपुणताओंए या योग्यताओं बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है। यह नहीं पता कि वह श्वेत है या अश्वेतए प्रोटेस्टेंट है या कैथोलिकए हिंदू है या मुस्लिमए उच्च तबके का या निम्न तबके का। लेकिन रॉल्स कहता है कि इस

मूल स्थिति में भी समाज के व्यक्तियों को न्याय का बोध है। अब पोजीशन में अब इस ओरिजिनल पोजीशन में समाज के लोगों द्वारा न्याय के सिद्धांतों का प्रतिपादन या खोज करने का प्रयास किया जाता है। क्योंकि व्यक्ति को पता नहीं है कि उसके आवश्यकता है स्वार्थ हित निपुणताएं इत्यादि किस प्रकार की हैं इसीलिए वह न्याय के सिद्धांतों का चयन करने में अत्यंत सावधानी बरतेगा। क्योंकि उसको पता है कि अज्ञानता के पर्दे के हटने के पश्चात वह इनमें से कोई एक हो सकता है। अर्थात वह समाज मे सबसे हाशिये पर खड़ा हुआ व्यक्ति हो सकता है। वह सबसे खराब स्थिति में हो सकता है

## रोल की न्याय के प्रमुख सिद्धांत प्रमुख विशेषताएं

रॉल्स यह तर्क देता है कि न्याय के सिद्धांतों की स्थापना के समय समाज का प्रत्येक व्यक्ति वार्ताकार या नेगोशिएटर की भूमिका में हैं। ओरिजिनल पोजीशन या मूल स्थिति की समाप्ति के पश्चात प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वास्तविक स्थिति का पता लगेगा। अपनी वास्तविक स्थितको जानने पर यह संभव है कि वह व्यक्ति को खुद समाज के सबसे हाशिये पर पाए। तब व्यक्ति यह सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा की अत्यंत हीनतम स्थिति में होने के बावजूद उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। तभी वह अपने आप को सुरक्षित महसूस करेगा। आगे रॉल्स यह तर्क देता है कि प्रत्येक व्यक्ति इस स्थिति में न्याय के तीन मूल सिद्धांतों की स्थापना का प्रयास करेगा।

## न्याय का प्रथम सिद्धांत. समान स्वतंत्रता का सिद्धांत

इसके अंतर्गत रॉल्स कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके विकास के लिए वे आवश्यक और जरूरी स्वतंत्रता प्राप्त होने चाहिए। इस प्रकार की स्वतंत्रता में राजनीतिक सहभागिता की स्वतंत्रताए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रताए धार्मिक स्वतंत्रताए कानून के समक्ष समानता इत्यादि शामिल है। क्या यह स्वतंत्रता निर्बाध होगी या इस पर कुछ विवेकपूर्ण अंकुश लगाया जा सकता है। इस संदर्भ में रॉल्स कहता है कि इस इन स्वतंत्रताओं पर युक्ति.युक्त नियंत्रण तभी लगाया जा सकता है जब उससे स्वतंत्रता की कुल मात्रा में अर्थात सभी की स्वतंत्रता की मात्रा में वृद्धि या विस्तार होता हो।

### *2 ) सामाजिक आर्थिक विषमताएं इस ढंग से व्यवस्थित की जाए कि .*

a) समाज की सबसे निम्नतम स्थिति में उपस्थित लोगों को अधिकतम लाभ पहुंचे।

b) यह सामाजिक आर्थिक विषमता उन पदों और स्थितियों के साथ जुड़ी है उनमें अवसर की उचित सामान्य उचित समानता का सिद्धांत भी लागू होना चाहिए।

यहां पर रॉल्स2a सिद्धांत को डिफरेंस प्रिंसिपल (ffDierence Principle) या भेद मूलक सिद्धांत का नाम देता है। भेद मूलक सिद्धांत का मुख्य लक्ष्य यह है यदि प्राथमिक वस्तुओं का वितरण समान नहीं है उसको किसी प्रकार की छूट दी जा सकती है जब उस आसमान वितरण से समाज के हीनतम स्थिति में रहने वाले व्यक्ति को अधिकतम लाभ हो। प्राथमिक वस्तुओं से यहां तात्पर्य है अधिकार और स्वतंत्रताए शक्तियां और अवसरए आई और संपदाए तथा आत्म सम्मान के साधन। इस भेद मूलक सिद्धांत की शर्तों को पूरा करने के बाद ही समाज में प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था और कुशलता के मानदंड को लागू किया जा सकता है। इसीलिए रॉल्सपर यह आरोप लगता है कि उसने पूंजीवादी व्यवस्था को बनाए रखने का न्याय संगत आधार ढूंढ लिया। इस प्रकार उसे पूंजीवादी व्यवस्था का ही समर्थक माना जाता है।रॉल्स के सिद्धांत में उपस्थित रोल के न्याय के सिद्धांत में उपस्थित न्याय के नियमों के क्रम निम्नलिखित हैं.

1) पहले समान स्वतंत्रता का सिद्धांत

2) दूसरा भेद मूलक सिद्धांत

3) अवसर की उचित समानता का सिद्धांत

रॉल्स कहता है की स्वतंत्रता के राहुल कहता है कि न्याय के इन सिद्धांतों को एक विशेष क्रम में लागू किया जाना चाहिए। जिसे वह लैक्सिकल आर्डर का नाम देता है। इसका तात्पर्य है सर्वप्रथम समान स्वतंत्रता का नियम लागू होना चाहिए। उसके पश्चात तीसरा अवसर की उचित समानता का सिद्धांत लागू होना चाहिए। और सबसे अंत में भेद मूलक सिद्धांत को लागू किया जाना चाहिए। कुल मिलाकर रॉल्स यह कहना चाहता है कि प्राथमिक वस्तुओं के समान वितरण में कोई भी ढील तभी किया जाना चाहिए जब उसका परिणाम स्पष्ट होए और उसका लाभ समाज के सबसे हाशिये पर उपस्थित व्यक्ति या समुदाय को हो।

## संदर्भ सूची:


- अमर्त्यसेन, विचारों की दुनिया में न्याय, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2010.
- सैमुअलफ्रीमैन, रॉल्स, रूटलेज, 2007.
- जॉनरॉल्स, ए थ्योरी ऑफ जस्टिस, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971.
- लीफवेंअर, "जॉन रॉल्स" स्टैनफोर्ड इनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी.
- ओ० पी० गाबा, राजनीति.सिद्धांत की रूपरेखा, नेशनल पेपरबैक, 2020.
- राजीव भार्गव और अशोक आचार्य, राजनीति सिद्धांत: एक परिचय, पियर्सन, 2011.

# वैदिक कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था


## डॉ० प्रेरणा माथुर

*सहायक आचार्या, प्राच्य संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ*


समाज शब्द की निष्पत्ति "सम्" उपसर्ग पूर्वक "अज्" धातु से हुई है जिसका अर्थ है मनुष्यों का समुदाय। मानवेतर प्राणियों के समुदाय को "समाज न कहकर" समुदाय कहा जाता है।[1] संस्कृत में ''सामाजिक'' व्यक्ति के रूप में उसी को मान्यता दी जाती है जो अपनी जागरूकता और आदान-प्रदान की क्रियाओं द्वारा समाज की रक्षा करने में समर्थ हो। एक पाश्चात्य विद्वान् के अनुसार मनुष्यों के ऐसे संग्रह को ''समुदाय'' की संज्ञा दी जानी चाहिए जो सामाजिक सम्बन्धों के कारण एक दूसरे के समीप[2] है। वस्तुत: समाज केवल व्यक्तियों का समुदाय मात्र ही नहीं है अपितु शरीर के विभिन्न अंगों की तरह समाज के सदस्यों के बीच में भी एक समन्वय होता है। प्रत्येक व्यक्ति इस समुदाय या समाज की एक-एक इकाई होता है और उन इकाइयों का समन्वय ही ''समाज'' होता है।

कालान्तर में जब उन व्यक्तियों की आवश्यकताएँ तथा उनकी बुद्धि विकसित हुई तब उनमें अन्योन्याश्रित रहने की प्रवृत्ति बलवती हुई। परिणामत: एक सुगठित समाज की नींव पड़ी और उन्होंने एक जगह मिलकर रहना प्रारम्भ किया। इस प्रकार एक सुन्दर सुगठित समाज की संरचना हुई।

वैदिककाल में वर्णव्यवस्था इस देश की संस्कृति तथा सामाजिक संघटनों की प्राण थी। उसी समय में भारत के आर्यों ने समाज को चार भागों में विभक्त किया था। इस विभाजन के अनेक दृष्टिकोण थे। अर्थशास्त्र की दृष्टि से साधारणतया यह विभाजन श्रम-विभाजन के आधार पर किया गया था। वैदिककाल में आर्यों ने अपनी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए श्रम-विभाजन के सिद्धान्त को अपनाया। जिन लोगों ने अध्ययन, अध्यापन एवं पौरोहित्य कार्य में मन लगाया, वे ब्राह्मण; जो शासन-सम्बन्धी तथा युद्ध-सम्बन्धी कार्य में लगे वे क्षत्रिय, कृषि, पशुपालन एवं व्यापार, उद्योग-धन्धे में जिन लोगों ने मन लगाया वे वैश्य कहलाये और जो सेवा का कार्य करते थे वे शूद्र कहलाये। आरम्भ में वे वर्ग के रूप में थे किन्तु बाद में वे वर्ण कहलाने[3] लगे।

ऋग्वेद संहिता में समाज को पुरुष का रूप दिया गया है और उसके भिन्न-भिन्न अंगों का वर्णन भी किया गया है जिस प्रकार आधुनिक समाजशास्त्र के विद्वान् मानव समाज को एक सजीव शरीरधारी मानते हैं। उसी प्रकार ऋग्वेद में भी जीवित पुरुष माना गया है। समुदाय व जागृति के भाव को व्यक्त करने के लिए जागृति ही ऋग्वेद संहिता[4] के पुरुष सूक्त में समाज को पुरुष कहा गया है। उस समाज रूपी पुरुष के चार अंग बतलाये गये हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जिनकी उत्पत्ति उस विराट् पुरुष के शरीर से हुई है।

वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इसी कारण वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों को अलग-अलग विद्वानों के मत के आधार पर प्रतिपादित किया गया है उनमें से कतिपय सिद्धान्तों की विवेचना प्रस्तुत है-

परम्परा के आधार पर- वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में परम्परागत सिद्धान्त सबसे प्राचीन है। इस सिद्धान्त की पुष्टि ऋग्वेद में वर्णित पुरुष सूक्त[5] के आधार पर की जा सकती है। इसके अनुसार विराट पुरुष के शारीरिक अंगों से विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति मानी गई है, उस विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उरु से वैश्य और पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है। महर्षि व्यास ने श्रीमद्भगवद् गीता[6] में स्वयं भगवान् कृष्ण के मुख से कहलाया है कि गुण और कर्मों के आधार पर मैने चारों वर्णों की सृष्टि की है। मनु[7] के अनुसार इन वर्णों की उत्पत्ति लोकवृद्धि के लिए है। यहाँ एक बात विशेष जानने योग्य यह है कि विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष के विभिन्न अंगों से मानी गयी है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन अंगों में वर्णों को उत्पन्न करने की क्षमता थी यह वर्णन पूर्णतया प्रतीकात्मक है और अंगों की उच्चता के अनुसार वर्णों की विशेषता को दर्शाता है। जिस प्रकार प्रत्येक अंग का पूरे शरीर के अस्तित्व में एक विशेष कार्य होता है उसी प्रकार प्रत्येक वर्ण का भी समाज के अस्तित्व में कोई न कोई कार्य अवश्य निहित होता है जैसे ब्राह्मणों[8] की उत्पत्ति मुख से मानी गयी है इस कारण ब्राह्मणों का कार्य मुख से सम्बन्धित है अर्थात् ज्ञान सम्बन्धी कार्य उनका मुख्य कर्त्तव्य है। भुजाएँ शक्ति की द्योतक हैं इसलिए क्षत्रियों[9] का कार्य शक्ति से सम्बन्धित होता है अर्थात् मनुष्यों की रक्षा करना। वैश्यों[10] की उत्पत्ति उरु से हुई है इस कारण उनका कार्य व्यापार और वाणिज्य से सम्बन्धित है क्योंकि समाज के अस्तित्व के लिए व्यापार और वाणिज्य उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि शरीर के अस्तित्व के लिए जांघ का और पादों का कार्य पूरे शरीर को गतिशील रखते हुए उसकी सेवा करना अस्तु शूद्रों[11] की उत्पत्ति विराट् पुरुष के पैरों से मानी गयी है। इसीलिए शूद्रों को सेवाका कार्य सौंपा गया है। इस प्रकार समाज के विभिन्न समुदायों में श्रम विभाजन द्वारा समाज के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिये ही विराट् पुरुष ने चार वर्णों की संरचना की जिससे एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण के व्यक्ति पर अधिकार न जमा सके। इसी उद्देश्य से विराट पुरुष ने किसी एक वर्ण को सर्वशक्तिमान् नहीं बनाया।

रंग के आधार पर- महर्षि भारद्वाज के मतानुसार ब्रह्मा ने सबसे पहले ब्राह्मणों की सृष्टि की थी परन्तु त्वचा के आधार पर विभिन्न रंगों की कल्पना करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति हुई है अर्थात् ब्राह्मणों का रंग सफेद, क्षत्रियों का लाल, वैश्यों का पीला और शूद्रों का काला होता है किन्तु उपर्युक्त भारद्वाज का यह सिद्धान्त महर्षि भृगु को स्वीकार नहीं है। एक बार भारद्वाज मुनि ने भृगु ऋषि से पूछा था कि वर्णों के हजारों भेद हो सकते हैं तो फिर समाज को केवल चार भागों में ही क्यों विभाजित किया गया। उसके उत्तर में भृगु ने कहा था कि रंग का यह सिद्धान्त त्वचा के रंग से उतना अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि कर्म और गुण से। दूसरे शब्दों में विभिन्न वर्णों के रंग से उनकी त्वचा का नहीं अपितु गुण का रंग प्रगट होता है, जैसे जो लोग भोग में अधिक आनन्द पाते थे, कठोरता या क्रोध का गुण जिनमें निहित था, जो वीरता के गुण से युक्त तथा जो अपने धर्म के प्रति उदासीन थे इस प्रकार के लाल या लोहित

गुण अर्थात् रजोगुण प्रधान व्यक्ति क्षत्रिय कहलाये; उसी प्रकार जो लोग अपने द्विज धर्म से उदासीन होकर पशुपालन, व्यापार आदि में संलग्न हो गये वे लोग वैश्य कहलाये क्योंकि इन लोगों में पीतगुण अर्थात् तमो मिश्रित रजोगुण विशिष्ट रूप में पाये जाते हैं। उसी प्रकार जो लोग धर्म को छोड़कर मिथ्या भाषण, अन्य प्राणियों को सताने लगे और लोभाकृष्ट हो गये। इस प्रकार के कलुषित विचार होने के कारण कृष्ण गुण अर्थात् तमः प्रधान व्यक्ति शूद्र कहलाये। इस प्रकार भृगु ऋषि के अनुसार सर्वप्रथम ब्राह्मणों की सृष्टि हुई; तदनन्तर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य द्विज भी कहलाते हैं। इस प्रकार जब इन्हीं द्विज के विभिन्न सदस्यों में अलग-अलग रंग, गुण विकसित होने लगे तो उन रंगों या कर्मगुणों के आधार पर इन्हें अलग-अलग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- चार वर्णों में विभाजित किया गया।

कर्म तथा धर्म के आधार पर- कर्म और धर्म के आधार पर भी वर्ण की उत्पत्ति का विचार किया जा सकता है। वर्णव्यवस्था सामाजिक-व्यवस्था का ही एक अभिन्न अंग है। समाज-व्यवस्था को संगठित रूप में तभी रखा जा सकता है जबकि तत्कालीन समाज की मूलभूत आवश्यकताओं की सम्यक्त या पूर्ति के लिए समाज के विभिन्न अंगों में कार्यों का उचित ढंग से विभाजन तथा उनका नियम पूर्वक पालन किया जाता हो। वेदकालीन समय में समाज की सृष्टि की आधारभूत निम्नलिखित चार आवश्यकताएँ थीं-

(क) अध्ययन-अध्यापन, धार्मिक कृत्य।

(ख) समाज की सुरक्षा और राज्यव्यवस्था का सम्यक्त या संचालन करना।

(ग) आर्थिक क्रियाओं की सम्पूर्ति करना।

(घ) समाज की सेवा करना।

समाज को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए यह आवश्यक होता है कि समाज को कुछ निश्चित भागों में विभाजित कर तथा उनके कर्मों का विभाजन कर समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाए। इसी उद्देश्य से समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया था जिससे वे अपने-अपने कर्मों का सुचारु रूप से पालन कर सकें।

गुण के आधार पर- वर्णों की उत्पत्ति गुणों के आधार पर भी विवेचित की जा सकती है, इसे भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से गीता[12] में कहा है-''हमने गुण और कर्म के विभाग से चारों वर्णों की सृष्टि की। इस विवेचना के अनुसार एक व्यक्ति किस वर्ण का सदस्य है यह बात इस पर निर्भर नहीं है कि उसका जन्म किस परिवार में या वर्ण में हुआ है अपितु इस बात पर निर्भर है कि उसमें किस प्रकार के गुण पाये जाते हैं अर्थात् वर्णों का विभाजन व्यक्तिगत स्वभाव पर आधारित है।

भारतीय मान्यता के अनुसार गुण तीन प्रकार के होते हैं- सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। मनु के अनुसार जिस मनुष्य के स्वभाव में जिस गुण की प्रधानता होती है उसी के अनुसार उस व्यक्ति का एक विशिष्ट वर्ण हो जाता है। मनु[13] के अनुसार ज्ञान सत्वगुण का, अज्ञान तमोगुण का तथा रागद्वेष रजोगुण का लक्षण है। आत्मा का निर्मल पक्ष जो प्रीतियुक्त प्रशान्त तथा प्रकाश रूप है वह सत्त्वगुण है। इस गुण की प्रधानता जिसमें हो उसे ब्राह्मण जानना चाहिए। धैर्यपूर्वक कार्य करना तथा यशस्वी होने की इच्छा रजोगुण के लक्षण हैं, यह जिसमें हो वह क्षत्रिय है। इसीलिए क्षत्रियों को शासन व्यवस्था, लोक रक्षा तथा शौर्य के कार्य सौंपे गये। तमोगुण मिश्रित रजोगुण प्रधान वैश्य तथा तमोगुण प्रधान शूद्र होता है। इस प्रकार चारों वर्णों का विभाजन उनके स्वभावानुसार गुणों के आधार पर किया गया है।

## जन्म के आधार पर

मुख्य कतिपय विद्वानों का मत है कि वर्ण विभाजन का मुख्य आधार जन्म है। जो व्यक्ति जिस परिवार में जन्म लेता है पिता के अनुसार उसी वर्ण का वह होता है। क्योंकि कर्म के आधार पर वर्णव्यवस्था निश्चित होती तो द्रोणाचार्य क्षत्रिय कहलाते क्योंकि उनका व्यवसाय शस्त्र-शिक्षा तथा युद्ध था किन्तु उन्हें कभी क्षत्रिय की संज्ञान हीं दी गयी, जन्म के आधार पर उन्हें ब्राह्मण ही कहा गया है। अश्वत्थामा को क्रूर कर्म करने पर भी ब्राह्मण[14] ही कहा गया और वह गलती करने पर भी अवध्य बताया गया।

महात्मा युधिष्ठिर के अंग-अंग में सत्त्वगुण भरा था उनका स्वभाव इस प्रकार का था कि उन्हें चाहे कितने भी कटु वचन कहे किन्तु उसे वे क्षमा ही करते थे। क्षमा ब्राह्मण का विशिष्ट आभूषण है किन्तु उक्त गुण होते हुये भी युधिष्ठिर को क्षत्रिय ही कहा गया है। गुण परिवर्तनशील होता है। किसी भी क्षण व्यक्ति में गुणों का परिवर्तन हो सकता है किन्तु वर्ण में नहीं।

अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्णव्यवस्था का आधार जन्म है। जन्म के ही आधार पर वह जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उसी वर्ण का कहा जाता है तथा पीढ़ी उसी वर्ण में उसकी सन्तति की भी गणना की जाती है।

## वर्णों के अधिकार और कर्त्तव्यः

ब्राह्मण- वैदिक समाज में ब्राह्मणों का सर्वश्रेष्ठ स्थान था। वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं धर्मशास्त्रों में ब्राह्मण को ''भूदेव'' के रूप में स्वीकृत किया गया है। देवता परोक्ष देव किन्तु ब्राह्मणों को प्रत्यक्ष देव माना गया है यह विश्व ब्राह्मणों द्वारा धारण किया गया है। ब्राह्मणों की कृपा से ही देवता स्वर्ग में स्थित हैं। इनके द्वारा कहे गये शब्द कभी झूठे नहीं होते।[15] जप, तप, व्रत, यज्ञ आदि के सभी दोष ब्राह्मणों की स्वीकृति मात्र से नष्ट हो जाते है। ब्राह्मण वचन देव वाक्य समझे जाते थे, वह सर्वदेवमय[16] हैं। श्रोत्रिय ब्राह्मण अवध्य, अबन्ध्य, अदण्ड्य, अबहिष्कार्य अपरिवाध एवं अपरिहार्य माने जाते थे।[17] ब्राह्मण सभी प्रकार के कर से मुक्त थे। सामान्यतया अध्यापन, पौरोहित्य और दान ग्रहण ब्राह्मणों के विशेष अधिकार थे। इन तीनों कार्यों में अन्य वर्णों का बिलकुल हस्तक्षेप नहीं था। अन्य वर्णों के कर्त्तव्यों का निर्धारण, जीविका, साधनों का निर्देश और उनके सम्यक् आचरण का समालोचन सम्बन्धी अधिकार भी ब्राह्मणों के ही पास सुरक्षित था। पाये हुए धन पर भी ब्राह्मणों का ही अधिकार होता था जबकि अन्य वर्णोंको मिला हुआ धन राजा ग्रहण कर लेता था। ब्राह्मण चारों वर्णों की कन्या को पत्नी बना

सकता था। इस प्रकार समाज में ब्राह्मण को सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त थी। शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म माने जाते थे।[18] अध्यापन-अध्ययन, यज्ञ करना-कराना, दान देना और दान लेना ब्राह्मणों के विशिष्ट रूप से छः कर्म थे।[19]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से उनकी वृत्ति, कर्त्तव्य और सामाजिक स्थिति भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है।

क्षत्रिय- ब्राह्मणों के बाद समाज में क्षत्रियों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। तैत्तिरीय संहिता में क्षत्रिय को राजा माना गया[20] है। ''ब्रह्म वै ब्राह्मणः क्षत्रं राजन्यः'' समाज में क्षत्रियों के दो रूप प्रचलित थे। प्रथम क्षात्र-धर्म का निर्वाह करने वाले और द्वितीय प्रजा के ऊपर शासन करने वाले। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में ''क्षत्र''[21] शब्द का प्रयोग पराक्रम के अर्थ में मिलता है किन्तु चतुर्थ मण्डल[22] में राष्ट्र शासक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। क्षत्रियों के लिए ''राजन्यः'' एवं राष्ट्र शासक उनकी प्रभुता और उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा का द्योतक है।

क्षत्रिय शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ दूसरों की रक्षा करना (क्षतात्त्रायते) है। प्रजा की रक्षा में निपुण, शूर, पराक्रमी और दुष्टों का दमन करने में समर्थ व्यक्ति को क्षत्रिय कहा जाता था।[23] क्षत्रिय की सम्पत्ति उसके शस्त्र ही समझे जाते थे।[24]

वीरता, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध क्षेत्र से न भागना, दान देना और प्रजा पर शासन करना क्षत्रियों का स्वाभाविक कर्म था।[25] प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेदों का अध्ययन करना, विषयों के भोगों में लिप्त न होना क्षत्रियों के प्रधान कर्म थे।[26]

इस प्रकार प्रजा पालन, धर्मयुद्ध, न्याय सम्मत शासन, दान, यज्ञ और विविध विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करना क्षत्रियों के परम कर्तव्य माने जाते थे।

वैश्य- वैश्य का स्थान समाज में ब्राह्मण और क्षत्रिय के बाद आता है। ऋग्वेद में वैश्य शब्द के लिये ''विश'' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। वैश्यों की शिक्षा-दीक्षा क्षत्रिय, ब्राह्मण-ब्रह्मचारियों के साथ ही होती थी। वैश्यों की गणना द्विजों में की जाती थी। वैश्यों की पहुँच राज दरबार तक थी इससे यह अनुमान होता है कि व्यापार विषयक परामर्श देने के लिए इस वर्ग का प्रतिनिधित्व राजसभा में आवश्यक माना जाता था किन्तु उत्तरवैदिक काल में वैश्यों का स्थान निम्न कोटि का माना जाने लगा।[27] इस वर्णन से अनुमान होता है कि कृषि, पशुपालन और वाणिज्य जैसे अर्थोत्पादक आजीविका प्रधान कर्म करने के कारण ही वैश्यों को वर्णत्रय में स्थान प्राप्त हुआ होगा किन्तु समाज में उनकी प्रतिष्ठा थी। धर्मशास्त्रकारों ने कृषि, पशुपालन और व्यापार को वैश्यों का कर्म घोषित किया है। विष्णु पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने वैश्य की जीविका के लिए तीन कर्म निर्धारित किये हैं-कृषि, पशुपालन और वाणिज्य।[28] गीता के अनुसार खेती, पशुपालन का उद्यम और वाणिज्य वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं।[29] पशुओं का पालन करना, दान देना, व्यापार करना, (सूद) पर रुपये देना और खेती करना वैश्यों का कर्म होता है।[30] उपर्युक्त वर्णन के अनुसार पौरोहित्य, वेदाध्ययन और प्रतिग्रह कार्यों को छोड़कर सभी ब्राह्मणोचित कार्यों को वैश्य कर सकता था।

शूद्र- शूद्रों का स्थान वर्ण परम्परा में अन्तिम माना जाता था उन्हें वर्णाधम समझा जाता था। तीनों वर्णों की सेवा करना उसका परम कर्त्तव्य था। मनु के अनुसार उन्हें ब्राह्मण की सेवा के लिए ही ब्रह्मा ने उत्पन्न किया था। समाज में इनकी स्थिति इतनी दयनीय थी कि इन्हें शुद्ध वस्त्र और भोजन भी नहीं प्राप्त हो पाते थे। इन्हें अपने मालिक केपुराने वस्त्र, छाता, जूते, चटाई और उच्छिष्ट भोजन पर ही अपना जीवन-यापन करना पड़ता था।[31] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार शूद्र को मारने पर वही पाप लगता है जो एक काक, गिरगिट, मयूर, चक्रवाक, हंस, मेढ़क, नेवला, छछुन्दर और कुत्ते को मारने पर लगता है। शूद्रों को वैदिक क्रियाएँ करने का और पवित्र अग्नियाँ जलाने का भी अधिकार नहीं था। वेद पढ़ने और सुनने का भी अधिकार नहीं था।[32] गौतम के मतानुसार यदि शूद्र जानबूझकर वेदों का स्मरण कर ले या वेदपाठ सुन ले तो उसके कानों में शीशा और लाख भर दें। यदि वह वेद-मन्त्रोच्चारण करे तो उसकी जीभ खींच लेनी चाहिए और यदि उसने वेद पर अधिकार कर लिया है तो उसके शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहिये।[33] याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार शूद्र तीनों वर्णों की सेवा करे और कृषि, पशुपालन, भारवाहन, क्रय-विक्रय, चित्रकारी, नृत्य और संगीत का कार्य करे।[34]

इस प्रकार गीता के अनुसार तीन वर्णों की सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।[35] बिना किसी ईर्ष्या के इन जातियों की सेवा करना, इसी एक कर्म करने की उस प्रभु ने शूद्रों की आज्ञा दी।[36]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिककाल में समाज में शूद्रों का स्थान नगण्य था। उनके लिए शिक्षा, भोजन, वस्त्र आदि पर भी कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। तीनों वर्णों का दासत्व स्वीकार करके वे समाज में रह सकते थे।[37] इस प्रकार मैंने संक्षेप में वैदिक कालीन समाज में वर्णव्यवस्था की स्थिति को जानने का प्रयास किया है।

## संदर्भ सूचीः-


1. समुदोरजः पशुषुः । पा.सू. 3/3/6 पर काशिकावृत्ति.
2- By group we mean only eallenction of human beings who arebrought into social relationships with one another society, p. 213.
3. प्राचीन भारतीय सामाजिक आर्थिक संस्थाएँ, पृ० 26.
4. ऋ०सं 10/90/12.
5. ऋ०सं 10/90/12.
6. चातुवर्ण्यं मयासृष्टं गुणकर्म विभागशः।
   तस्यकर्त्तारमपि मांविद्ध्य कर्त्तारमव्ययम्। गीता 4/13.
7. लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहू रुपाहृतः।
   ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयता।। मनुस्मृति 1/31.
8. ज्ञानविज्ञान मास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।। गीता 18/42.
9. शौर्यं तेजो धृतिदाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
   दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्मस्वभावजम्।। गीता 18/43.

10. (क) कृश गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।। गीता, 18/44.
    (ख) कृषि वाणिज्य गोरक्षां कुसीदंतुर्यमुच्यते।
    वार्ता चतुर्विधातत्रवयंगोकृतयो निशम्।। श्री म०भ० 10/24/21.
11. परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।। गीता 18/44.
12. गीता 4/13.
13. मनुस्मृति, अध्याय 12/26, 27
14. उवाच चा सहृन्त्यस्य बन्धनानयनं सती।
    मुच्यतामुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः।। भागवत 1/7/43
15. विष्णुधर्मसूत्र 19/20-22.
16. पाराशरस्मृति, 6/52-53.
17. गौतमसूत्र, 8/12/13.
18. गीता, 18/42.
19. मनु, 1/88.
20. तै०सं०, 3/9/14.
21. ऋ०, 1/157/2.
22. ऋ०, 4/42/1.
23. लोकसंरक्षणे दक्षः शूरोदात्तः पराक्रमी।
    दुष्टनिग्रहशीलेयः स वै क्षत्रिय उच्यते।। शुक्रनीति, 1/41.
24. पंचतन्त्र, 1/24.
25. गीता, 18/43.
26. मनु०, 1/89.
27. एतरेय ब्राह्मण, 29/4.
28. पशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं च मनुजेश्वर।
    वैश्याय जीविका ब्रह्मादादौ लोकपितामह।। वि०पु०, 3/8/30.
29. गीता, 18/43.
30. मनुस्मृति, 2/190.
31. मनुस्मृति, 10/124, 25.
32. स्त्री शूद्रा द्विज बन्धूनांत्रयी न श्रुतिगोचरः।। भागवत्, 1/4/25.
33. अथ हास्यवेद भयशृण्वतस्त्र पुजवुभ्यां स्रातेपूरण-
    मदाहरेण जिह्वाच्छेदो धारणे शरीर भेदः।। गौतम, 12/4.
34. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/12 पर मिताक्षरा टीका.
35. परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।। गीता, 18/44.
36. मनुस्मृति, 1/91.
37. वेद कालीन समाज और संस्कृति, पृष्ठ 50.

# कोविड-19 महामारी और भारतीय प्रशासन की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन


## निखिल गुप्ता

*असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री ब्रज बिहारी डिग्री कॉलेज, कोसीकलां, मथुरा, उ0प्र0*



**शोध सारांश:**

कोविड-19 महामारी, जो 2019 के अंत में उत्पन्न हुई और पूरे विश्व में फैल गई, ने भारतीय प्रशासन और समाज को गहरे संकट में डाल दिया। भारत में यह महामारी स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, और सामाजिक संरचना पर व्यापक प्रभाव डालने के साथ-साथ प्रशासनिक ढांचे की परीक्षा भी बनी। इस शोध पत्र का उद्देश्य कोविड-19 महामारी के दौरान भारतीय प्रशासन द्वारा उठाए गए कदमों का विश्लेषण करना है और उनके प्रभावों को समझना है।यह अध्ययन भारतीय प्रशासन की भूमिका का मूल्यांकन करता है, विशेष रूप से महामारी के प्रारंभिक चरणों में उठाए गए कदमों, जैसे लॉकडाउन की घोषणा, स्वास्थ्य सेवा प्रणाली का प्रबंधन, और आर्थिक राहत पैकेजों की व्यवस्था। इसके अतिरिक्त, इसमें कोविड-19 के दौरान सामाजिक असमानताएँ, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, और डिजिटल प्लेटफार्मों का उपयोग जैसे प्रमुख प्रशासनिक चुनौतियों पर भी विचार किया गया है। इस शोध पत्र में कोविड-19 महामारी के बाद स्वास्थ्य सेवाओं का आधुनिकीकरण, डिजिटल अवसंरचना में सुधार, और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के विस्तार की आवश्यकता पर चर्चा की गई है, ताकि भविष्य में ऐसी किसी भी आपातकालीन स्थिति का प्रभावी तरीके से सामना किया जा सके इस शोध पत्र का उद्देश्य महामारी के समय भारतीय प्रशासन की रणनीतियों, उनके प्रभाव और भविष्य के सुधारों की दिशा को समझना है।



**मुख्य शब्द:** कोविड-19 महामारी, भारतीय प्रशासन, लॉकडाउन, स्वास्थ्यसेवाएँ, आर्थिक राहत पैकेज, टीकाकरण अभियान, प्रशासनिक सुधार।


**परिचय** - कोविड-19 महामारी, जो 2019 के अंत में चीन के वुहान शहर से उत्पन्न हुई, ने पूरी दुनिया को तहस-नहस कर दिया। यह वैश्विक स्वास्थ्य संकट न केवल इंसान के जीवन को प्रभावित किया, बल्कि पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था, समाज, और प्रशासनिक संरचनाओं को भी गंभीर रूप से प्रभावित किया। भारतीय प्रशासन के लिए यह महामारी एक अभूतपूर्व चुनौती थी, जिसने न केवल स्वास्थ्य प्रणालियों की सीमाओं को उजागर किया, बल्कि इसे प्रबंधित करने के लिए प्रशासनिक तंत्र की कार्यक्षमता की भी परीक्षा ली।भारत में कोविड-19 के प्रकोप के शुरुआती दिनों में, भारतीय प्रशासन ने विभिन्न स्वास्थ्य सुरक्षा उपायों, लॉकडाउन की घोषणा, स्वास्थ्य सेवाओं के सुधार, और आर्थिक राहत योजनाओं के कार्यान्वयन जैसे कदम उठाए। महामारी के कारण स्वास्थ्य सेवाओं पर दबाव बढ़ गया, और प्रशासन को महामारी से निपटने के लिए त्वरित और प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता महसूस हुई।

इस शोध पत्र का उद्देश्य कोविड-19 महामारी के दौरान भारतीय प्रशासन की भूमिका का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन भारतीय प्रशासन द्वारा महामारी के प्रति उठाए गए विभिन्न कदमों, उनके प्रभावों और सामाजिक-आर्थिक परिणामों पर ध्यान केंद्रित करेगा। इसमें विशेष रूप से प्रशासन द्वारा उठाए विभिन्न कदमों इसके अलावा, इस शोध में महामारी के दौरान सामने आई प्रशासनिक चुनौतियों, जैसे सामाजिक असमानताएँ, स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे की कमी, और सूचना की कमी पर भी ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

कोविड-19 की उत्पत्ति - कोविड-19 (COVID-19) एक महामारी है, जो कोरोना वायरस (Coronavirus) के परिवार से संबंधित SARS-CoV-2 _Severe Acute Respiratory Syndrome Coronavirus 2) नामक वायरस के कारण उत्पन्न हुई। यह वायरस पहले 2019 के दिसंबर में चीन के वुहान शहर में पाया गया, और इसके बाद तेजी से दुनिया के विभिन्न हिस्सों में फैल गया।

1. वुहान में पहला मामला, कोविड-19 का पहला ज्ञात मामला वुहान, चीन में दिसंबर 2019 में सामने आया था। यह वायरस सांपों और बाजारों में बिकने वाले जंगली जानवरों के माध्यम से मानव में संक्रमित हुआ था। शुरुआती रिपोर्टों में कहा गया था कि वुहान के हुआनान सीफूड मार्केट से यह वायरस फैलने की संभावना है, जहां जंगली जानवरों का भी व्यापार होता था। हालांकि, इसके बाद शोध में यह पाया गया कि यह वायरस मानव-से-मानव प्रसार द्वारा भी फैल सकता है, और इसका स्रोत चीन के जंगली जानवरों से संबंधित हो सकता है।
2. वायरस का फैलाव, जनवरी 2020 तक, वुहान में संक्रमण के मामलों की संख्या में तेजी से वृद्धि होने लगी, और यह वायरस चीन के अन्य हिस्सों और फिर अन्य देशों में फैलने लगा।30 जनवरी 2020 को, विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने इसे वैश्विक स्वास्थ्य आपातकाल घोषित किया, और 11 मार्च 2020 को इसे महामारी (Pandemic) का दर्जा दिया गया।

महामारी का प्रारंभ और प्रारंभिक प्रशासनिक कदम- कोविड-19 महामारी का प्रारंभ 2019 के अंत में चीन के वुहान शहर से हुआ, जब वहां पर कोरोना वायरस _SARS-CoV-2) के संक्रमण के मामलों का पता चला। यह वायरस धीरे-धीरे अन्य देशों में फैलने लगा और 2020 की शुरुआत तक वैश्विक स्वास्थ्य संकट बन गया। भारत में इस महामारी के प्रभाव और इससे निपटने के लिए भारतीय प्रशासन ने शुरुआती चरणों में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए, जो महामारी के प्रसार को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण साबित हुए।

महामारी का प्रारंभ- वुहान, चीन में उत्पत्ति: कोविड-19 का पहला मामला दिसंबर 2019 में वुहान, चीन में सामने आया। इसे प्रारंभ मेंa SARS&CoV-2 नामक वायरस द्वारा फैलने के रूप में पहचाना गया, जो कोरोना वायरस परिवार से संबंधित था।

चीन में फैलाव: चीन में वायरस के फैलने के बाद, जनवरी 2020 तक यह वायरस अन्य देशों में भी फैलने लगा, और भारत में भी संक्रमण के पहले मामले सामने आए

भारत में कोविड-19 के पहले मामले की पुष्टि- भारत में कोविड-19 का पहला मामला 30 जनवरी 2020 को केरल राज्य में पाया गया था। इसके बाद, वायरस के अन्य मामलों का पता भी चला और संक्रमण धीरे-धीरे देश के अन्य हिस्सों में फैलने लगा।

इस स्थिति को देखते हुए, भारत सरकार और राज्य सरकारों ने महामारी के प्रसार को रोकने के लिए त्वरित कदम उठाए।

## प्रारंभिक प्रशासनिक कदम -

लॉकडाउन- 24 मार्च 2020 को भारत सरकार ने पूरे देश में लॉकडाउन की घोषणा की। यह कदम वैश्विक स्तर पर कोविड-19 के प्रसार को रोकने के लिए एक निर्णायक कदम था। इस लॉकडाउन के दौरान सभी सार्वजनिक स्थानों, स्कूलों, कॉलेजों, बाजारों और कार्यालयों को बंद कर दिया गया था।लॉकडाउन का मुख्य उद्देश्य था सोशल डिस्टेंसिंग को बढ़ावा देना और वायरस के मानव-से-मानव प्रसार को नियंत्रित करना।

स्वास्थ्य सेवाओं का प्रबंधन - कोविड-19 के प्रसार को रोकने के लिए स्वास्थ्य विभाग को सक्रिय किया गया। सरकारी और निजी अस्पतालों में कोविड-19 के मामलों के लिए विशेष प्रबंधन किया गया।

स्वास्थ्य मंत्रालय ने आईसीएमआर (ICMR) के साथ मिलकर वायरस के परीक्षण (Testing) की प्रक्रिया को तेज किया और अधिक टेस्टिंग किट्स उपलब्ध कराई।

क्वारंटाइन और आइसोलेशन - लॉकडाउन के दौरान, प्रशासन ने संक्रमित व्यक्तियों को क्वारंटाइन और आइसोलेट करने के लिए क्वारंटाइन सेंटर बनाए, ताकि संक्रमित लोग दूसरों को न फैला सकें।इसके साथ ही, विदेशों से आने वाले यात्रियों के लिए 14 दिन का अनिवार्य क्वारंटाइन लागू किया गया।

प्रवासी श्रमिकों का संकट - लॉकडाउन के कारण प्रवासी श्रमिकों को भारी संकट का सामना करना पड़ा। वे शहरों में फंसे हुए थे, और उनके पास घर लौटने के लिए साधन नहीं थे। इस संकट से निपटने के लिए प्रशासन ने विशेष श्रमिक ट्रेनों और बसों का प्रबंध किया ताकि श्रमिकों को उनके गृह राज्य तक सुरक्षित पहुंचाया जा सके।

आर्थिक पैकेज और राहत योजनाएं - प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना (PMGKY) और आत्मनिर्भर भारत अभियान जैसी योजनाओं के माध्यम से सरकार ने गरीबों, मजदूरों, और किसानों को वित्तीय सहायता प्रदान की। इसके तहत खाद्य सहायता, पैसा भेजने की योजनाएं, और स्वास्थ्य उपकरणों की आपूर्ति सुनिश्चित की गई।

सूचना और जागरूकता - प्रशासन ने मास्क पहनने, हाथ धोने, सामाजिक दूरी बनाए रखने जैसे स्वास्थ्य प्रोटोकॉल के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिए बड़े पैमाने पर प्रचार-प्रसार अभियान चलाया। स्वास्थ्य मंत्रालय ने विभिन्न मीडिया चौनलों और सोशल मीडिया के माध्यम से संक्रमण की रोकथाम के बारे में जानकारी दी।

कोविड-19 टेस्टिंग और ट्रैकिंग - प्रशासन ने कोविड-19 परीक्षण केंद्रों को बढ़ाया और परीक्षण को आसान और सस्ता बनाने के लिए कई कदम उठाए।

कॉन्टैक्ट ट्रेसिंग (contact tracing) को सुनिश्चित करने के लिए आधिकारिक ऐप्स जैसे ।तवहल ैमजन का निर्माण किया गया, जिससे लोग अपने जोखिम स्तर को पहचान सकें और संक्रमित व्यक्तियों के संपर्क में आने से बच सकें।

## आपातकालीन स्वास्थ्य सेवाएँ और प्रशासनिक नियंत्रण -

आपातकालीन स्वास्थ्य सेवाएँ- आपातकालीन स्वास्थ्य सेवाओं का उद्देश्य कोविड-19 के फैलाव को रोकने, संक्रमित व्यक्तियों की पहचान करने, और उनके इलाज के लिए त्वरित कदम उठाना था। इसमें कई महत्वपूर्ण कदम शामिल थे

कोविड-19 टेस्टिंग और डाटा संग्रहण- भारत में कोविड-19 टेस्टिंग के लिए भारतीय चिकित्साअनुसंधान परिषद (ICMR) द्वारा दिशा-निर्देश जारी किए गए। सरकार ने टेस्टिंग लैब्स को बढ़ावा दिया और पॉलीमरेज चेन रिएक्शन (PCR) टेस्ट को प्राथमिकता दी।इसके अलावा, आधिकारिक एप्स जैसेArogya Setu और CoWin का उपयोग किया गया, जिससे संक्रमित व्यक्तियों का पता लगाया जा सके और कॉन्टैक्ट ट्रेसिंग को सुनिश्चित किया जा सके।

प्रशासनिक नियंत्रण- महामारी के प्रकोप के दौरान प्रशासन ने विभिन्न क्षेत्रों में नियंत्रण और प्रबंधन सुनिश्चित करने के लिए कई कदम उठाए:

लॉकडाउन और कर्फ्यूमहामारी को फैलने से रोकने के लिए भारत सरकार ने 24 मार्च 2020 से देशव्यापी लॉकडाउन की घोषणा की। यह कदम एक आपातकालीन प्रशासनिक कदम था, जिसका उद्देश्य संक्रमण को नियंत्रित करना था

लॉकडाउन के दौरान, प्रशासन ने आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सुनिश्चित की, और सार्वजनिक स्थानों पर संक्रमण के प्रसार को रोकने के लिए कर्फ्यूऔर सोशल डिस्टेंसिंग के नियम लागू किए।

कोविड-19 नियंत्रण के लिए कानून और नीति - आंध्र प्रदेश, दिल्ली, और महाराष्ट्र जैसे राज्यों ने कोविड-19 के संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए राज्य-स्तरीय नियम और नीति बनाई। इन नीतियों में सार्वजनिक स्थानों पर मास्क पहनना, सोशल डिस्टेंसिंग के नियम, और सैनिटाइजेशन जैसे उपाय शामिल थे।

आकस्मिक परिस्थितियों में नियंत्रण रखने के लिए प्रशासन ने आपदा प्रबंधन अधिनियम का उपयोग किया, और महामारी को नियंत्रित करने के लिए दिशा-निर्देशों का पालन कराया।

प्रवासी श्रमिकों की सहायता - लॉकडाउन के कारण प्रवासी श्रमिकों का जीवन संकट में पड़ गया, और वे अपने गांवों में लौटने के लिए परेशान हो गए थे। प्रशासन ने विशेष ट्रेनों और बसों का संचालन किया, ताकि श्रमिकों को उनके गृहनगर तक सुरक्षित पहुँचाया जा सके।

प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना के तहत राहत पैकेज और आर्थिक मदद प्रदान की गई, ताकि प्रवासी श्रमिकों को अस्थायी सहायता मिल सके।

### *1. स्वास्थ्य सेवाओं में डिजिटल माध्यमों का -*

टेलीमेडिसिन- लॉकडाउन और सोशल डिस्टेंसिंग के कारण टेलीमेडिसिन का उपयोग तेजी से बढा। मरीजों को घर बैठे डॉक्टरों से परामर्श प्राप्त करने की सुविधा मिली। भारत सरकार और निजी क्षेत्र ने डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से ऑनलाइन स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान की। ई-हेल्थ प्लेटफॉर्म जैसे प्रैक्टो, 1उह, और मेडिक्लाइन ने लोगों को कोविड-19 के लक्षण, रोकथाम, और उपचार के बारे में जानकारी देने के साथ-साथ ऑनलाइन डॉक्टर कंसल्टेशन की सुविधा प्रदान की।

कोविड-19 ट्रैकिंग और टेस्टिंग - Arogya Setu ऐपभारत सरकार ने इस ऐप के माध्यम से कोविड-19 संक्रमित क्षेत्रों और व्यक्तियों के बारे में जानकारी प्रदान की। इस ऐप ने कॉन्टैक्ट ट्रेसिंग (Contact Tracing) की प्रक्रिया को सरल और प्रभावी बना दिया, जिससे संक्रमित व्यक्तियों के संपर्क में आए लोगों की पहचान की जा सकी।

ब्वॅपद प्लेटफॉर्म कोविड-19 वैक्सीनेशन अभियान को ट्रैक करने और लोगों को टीकाकरण के लिए रजिस्ट्रेशन करने के लिए ब्वॅपद नामक एक ऑनलाइन पोर्टल का इस्तेमाल किया गया। इस प्लेटफॉर्म ने टीकाकरण के कार्य को पारदर्शी और सुव्यवस्थित बनाया।

## सरकारी सेवाओं में डिजिटल माध्यमों का उपयोग

ऑनलाइन सेवाएँ - कोविड-19 के दौरान, सरकारी सेवाओं को ऑनलाइन प्रदान किया गया। ई-गवर्नेंस और डिजिटल इंडिया के तहत, सरकारी विभागों ने अपने कार्यों को ऑनलाइन किया, ताकि नागरिकों को सेवा प्राप्त करने के लिए कार्यालयों में जाने की आवश्यकता न हो।आधार कार्ड, पासपोर्ट, राशन कार्ड, और कृषि संबंधित योजनाओं की ऑनलाइन सेवाएँ प्रदान की गई।

वित्तीय ट्रांसफर और राहत पैकेज - भारत सरकार ने कोविड-19 संकट के दौरान प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना (PMGKY) और अन्य आर्थिक राहत योजनाओं का लाभ देने के लिए डिजिटल भुगतान प्रणालियाँ अपनाई।योजना के लाभार्थियों के बैंक खातों में सीधे वित्तीय सहायता भेजने के लिए जन धन योजना और राशन कार्ड के माध्यम से डिजिटल भुगतान प्रणाली का उपयोग किया गया।

प्रशासनिक चुनौतियाँ और समस्याएँ - कोविड-19 महामारी ने प्रशासन को अभूतपूर्व चुनौतियों का सामना कराया। इसके दौरान सरकारों, प्रशासनिक अधिकारियों और नीति निर्माताओं को कई समस्याओं का सामना करना पडा, जिनका समाधान करना आवश्यक था, ताकि महामारी का प्रभाव कम किया जा सके और समाज में स्थिरता बनाए रखी जा सके। महामारी के दौरान प्रशासन को विभिन्न स्तरों पर कई समस्याओं का सामना करना पडा, जो न केवल स्वास्थ्य से जुडी थीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, और मानसिक स्तर पर भी व्यापक प्रभाव डालने वाली थीं।

### *1. स्वास्थ्य बुनियादीढांचे की कमी*

अस्पतालों और चिकित्सा उपकरणों की कमी- कोविड-19 के बढते मामलों के कारण अस्पतालों में बिस्तरों की कमी, वेंटिलेटर, ऑक्सीजन, और अन्य चिकित्सा उपकरणों की भारी कमी हो गई थी।

ICu~ (इंटेंसिव केयर यूनिट) और ऑक्सीजन सिलेंडर की भारी कमी देखी गई।सरकारी और निजी अस्पतालों को मेडिकल स्टाफ की कमी का भी सामना करना पड़ा। इस दौरान स्वास्थ्य सेवाओं की मांग आपूर्ति से कहीं अधिक हो गई थी, जो प्रशासन के लिए एक बड़ी चुनौती थी।

### *2. लॉकडाउन और आर्थिक संकट*

रोजगार और अर्थव्यवस्था की मंदी- लॉकडाउन के कारण व्यवसायों और उद्योगों की गतिविधियाँ रुक गईं, जिससे बेरोजगारी बढी।स्मॉल और मीडियम इंटरप्राइजेज (SMEs) और खुदरा व्यापारियों के लिए वित्तीय सहायता और राहत योजनाओं का संचालन करना प्रशासन के लिए कठिन था।

प्रशासन ने प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना और आत्मनिर्भर भारत अभियान जैसी योजनाओं के माध्यम से आर्थिक राहत दी, लेकिन सभी को तुरंत सहायता पहुँचाना एक बडी चुनौती बनी रही।

### *3. सामाजिक असमानताएँ और संवेदनशीलता*

सामाजिक सुरक्षा की समस्या - महामारी के दौरान गरीब वर्ग और निर्भर परिवारों को भोजन और आर्थिक सहायता की तत्काल आवश्यकता थी, लेकिन प्रशासन के लिए इन्हें पहुंचाना एक बडी चुनौती बनी रही।प्रवासी श्रमिकों, दिहाडी मजदूरों, और गैर औपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों के लिए राहत कार्यों को सही तरीके से लागू करना प्रशासन के लिए कठिन था।

### *4. स्वास्थ्य मानकों और दिशा-निर्देशों का पालन*

मास्क और सोशल डिस्टेंसिंग - सरकार ने मास्क पहनने, सोशल डिस्टेंसिंग और हाथ धोने जैसे नियमों को लागू किया, लेकिन कई जगहों पर इनका पालन करवाना मुश्किल था। भीड-भाड वाले इलाकों, बाजारों और धार्मिक स्थलों पर संक्रमण फैलने का खतरा अधिक था, जहां प्रशासन को इन नियमों का पालन कराना चुनौतीपूर्ण हो गया। पब्लिक ट्रांसपोर्ट में भीड और सामाजिक दूरी का पालन करना प्रशासन के लिए एक कठिन कार्य था।

### *5. आपदा प्रबंधन और संसाधन की कमी*

आपदा प्रबंधन के लिए समन्वय - महामारी के दौरान, केंद्रीय और राज्य सरकारों के बीच समन्वय की कमी महसूस हुई। कुछ राज्यों में प्रशासनिक फैसले एकजुट नहीं थे, जिससे नीतियों का सही तरीके से पालन नहीं हो पाया।स्थानीय निकाय और गांवों में प्रशासन को संसाधन वितरण और खाद्य सहायता में कठिनाई आई। विशेषकर, ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय प्रशासन के लिए महामारी के प्रभाव को नियंत्रित करना मुश्किल था।

निष्कर्ष – कोविड-19 महामारी ने न केवल एक स्वास्थ्य संकट को जन्म दिया, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक क्षेत्रों में भी गहरी छाप छोड गई। महामारी के प्रभाव ने भारतीय प्रशासन के संवेदनशीलता, लचीलापन, और नवाचार को परीक्षण में डाला। इस संकट से निपटने के लिए प्रशासन ने त्वरित और कई स्तरों पर कदम उठाए, लेकिन इन प्रयासों के बावजूद प्रशासन को कई प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पडा।

स्वास्थ्य क्षेत्र में चुनौतियाँ – कोविड-19 के दौरान, स्वास्थ्य व्यवस्था की सीमाएँ पूरी तरह से उजागर हो गईं। अस्पतालों में बिस्तरों की कमी, चिकित्सा उपकरणों की आपूर्ति में समस्या, और स्वास्थ्य कर्मियों की अभाव जैसी समस्याएँ सामने आईं। इन कठिनाइयों के बावजूद, प्रशासन ने ऑनलाइन स्वास्थ्य सेवाएँ, टेलीमेडिसिन, और डिजिटल ट्रैकिंग प्लेटफॉर्म का उपयोग किया, जो महामारी की स्थिति को नियंत्रित करने में सहायक साबित हुआ। हालांकि, भविष्य में स्वास्थ्य संकट से निपटने के लिए स्वास्थ्य प्रणाली को मजबूत करना और आपातकालीन संसाधन तैयार रखना जरूरी होगा।

आर्थिक संकट और उसकी प्रभावी रणनीतियाँ – लॉकडाउन और अन्य प्रतिबंधों के कारण आर्थिक गतिविधियाँ ठप हो गईं, जिससे लाखों लोग बेरोजगार हो गए और मजदूरी के लिए विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले श्रमिकों को भारी समस्याओं का सामना करना पडा। प्रशासन ने आर्थिक पैकेज और राहत योजनाएँ लागू कीं, लेकिन इन योजनाओं का प्रभाव हर क्षेत्र में समान रूप से नहीं पहुंच सका। प्रवासी श्रमिकों और निम्न वर्ग तक राहत पहुँचाने के लिए प्रशासन को एक संगठित और समन्वित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता थी।

डिजिटल असमानता और सोशल इन्क्लूजन – कोविड-19 के दौरान, ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल सेवाओं का महत्व बढा। हालांकि, ग्रामीण इलाकों और वंचित वर्गों में इंटरनेट कनेक्टिविटी और स्मार्टफोन की कमी के कारण डिजिटल असमानताएँ और सामाजिक बहिष्करण की समस्या सामने आई। यह बताता है कि भविष्य में डिजिटल समावेशन की दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता है, ताकि हर वर्ग को समान अवसर मिल सकें।

आपातकालीन प्रबंधन और सरकारी समन्वय – कोविड-19 महामारी के प्रबंधन में केंद्रीय और राज्य सरकारों के बीच समन्वय की कमी महसूस हुई, जिससे नीति निर्माण और निर्णय लेने की प्रक्रिया में देरी हुई। स्थानीय प्रशासन को महामारी की प्रतिक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी, लेकिन संसाधनों और बुनियादी ढांचे की कमी ने कार्यान्वयन में बाधाएँ उत्पन्न कीं। भविष्य में आपातकालीन प्रबंधन और संवेदनशीलता को बढावा देने के लिए सरकार को स्थानीय निकायों और गांवों के साथ बेहतर समन्वय करना होगा।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


- भारत सरकार (2020)। कोविड-19 महामारी और भारत सरकार की प्रतिक्रियारू एक रिपोर्ट। नई दिल्ली: भारत सरकार।
- .शर्मा, अ. (2021)। कोविड-19 और भारतीय प्रशासनरू एक विश्लेषणात्मक अध्ययन। जयपुर: प्रकाशन हाउस।
- यादव, ब. (2021)। कोविड-19 संकट के दौरान सरकारी नीतियाँ और प्रशासनिक प्रतिक्रिया। लखनऊ: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- पांडे, ह. (2020)। महामारी संकट में प्रशासन: भारतीय दृष्टिकोण। दिल्लीशोध पत्र।
- .भारतीय राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (2020)। कोविड-19 महामारी के दौरान स्वास्थ्य सेवाओं का प्रबंधन। नई दिल्ली: स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार।
- Government of India (2020).Guidelines for COVID&19 Management in India- Ministry of Health and Family Welfare, Government of India-
- World Health Organization (2020).COVID&19: Emergency Response Framework. World Health Organization, Geneva.
- D*Souza, R. (2020). India's Response to COVID&19: A Public Health Perspective. Journal of Global Health, 10(2),1&10.
- Patel, P., & Kumar, A. (2021).Impact of COVID&19 on Indian Economy: Challenges and Solutions- Economic and Political Weekly, 56(12), 22&25.
- Sharma, M., & Gupta, R. (2020).The Role of Digital Technologies During COVID&19: Case Study of India. Journal of Information Technology and Innovation, 16(3),123&130.
- Kumar, V., & Yadav, S. (2021). COVID&19 Pandemic and Its Impact on the Health Sector in India. The Lancet, 9(6),112&118.
- Agarwal, S., & Singh, R. (2021). India's Administrative Response to the COVID&19 Pandemic: An Overview. International Journal of Public Administration, 45(4),305&318.
- Prasad, S., & Choudhury, A. (2020).Migrants and the COVID&19 Crisis: Administrative Challenges and Solutions in India. Social Policy and Administration, 54(7),1234&1247.
- Ministry of Labour and Employment (2020).Impact of COVID&19 on Migrant Workers in India: Relief Measures and Government Actions. Government of India.
- India Today (2020). Digital Transformation in India: COVID&19 and Beyond. India Today Special Report, New Delhi.
- Jha, S., & Mehta, P. (2020).Economic Recovery Post COVID&19: Role of Government and Private Sector in India- Journal of Business Studies, 32(5),45&52.
- National Disaster Management Authority (2020).Disaster Management Guidelines during COVID&19. National Disaster Management Authority, India.
- Chakraborty, A., & Singh, R. (2020).COVID&19 and Public Health Administration in India: Issues and Recommendations. Indian Journal of Public Health, 64(5), 90&95.
- Rajan, S. (2021).Mental Health during COVID&19: Administrative Challenges and Solutions- Indian Journal of Social Psychiatry, 37(1), 12&17.
- NITI Aayog (2020).Strategy for Economic Revival Post&COVID&19. NITI Aayog Report, Government of India.
- Srinivasan, V., & Rao, R. (2021).The Role of Indian Administration in Managing the COVID&19 Crisis- Journal of Political Science and Administration, 48(2),180&188.
- Bhatia, P. (2020). Lockdown, Digital Shift, and Education in India during COVID&19. Education and Development, 12(4), 150&158.

# भारत में 'पुण्य' की अवधारणा - एक विवेचन


## डॉ० हर्षवर्द्धन मिश्र

*एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय, बिलासपुर, रामपुर, उ0प्र0*


सभी युगों में समस्त सम्प्रदायों और देशों के मनुष्यों द्वारा मान्य यदि कर्तव्य का कोई एक सार्वभौमिक भाव रहा है तो वह है- परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्।''[1] अर्थात परोपकार ही पुण्य है और दूसरो को दुःख पहुँचाना ही पाप है।

अर्थात पुण्य वह है जो प्राणियों के कल्याण एवं हित के लिए किया जाये, इससे स्वयं का ही नहीं सम्पूर्ण जगत का हित साध्य है।

धर्मशास्त्रों में पुण्य कर्मो में यज्ञ, दान, व्रत, स्तुति, तीर्थाटन आदि को रखा गया है। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति का आचरण है जो किसी व्यक्ति के हित या अहित से सीधे सम्बन्धित है।

तैत्तिरीयारण्यक में ब्रह्मयज्ञ के बारे में बड़ा विस्तार से बताया गया है। इसमें आया है कि अथर्वांगिरस का पाठ मधु की आहुतियाँ है, तथा ब्राह्मण ग्रन्थों, इतिहासों, पुराणों, कल्पों (श्रौत कृत्य-सम्बन्धी ग्रन्थों), गाथाओं एवं नाराशंसियों का पाठ मांस की आहुतियों के बराबर है। ब्रह्मयज्ञ से प्रसन्न होकर देव लोग जो पुरस्कार देते हैं वे दीर्घ आयु, दीप्ति, चमक, तेज सम्पत्ति, यश आदि के अन्तर्गत आते हैं।[2]

ब्रह्मयज्ञ से मनुष्य अपना ही उद्धार नहीं करता बल्कि आध्यात्मिक उच्चता को प्राप्त कर प्राणी जगत पर परोपकार करता है जो पुण्य का आधार है।

शान्तिपर्व में लिखा है कि जिस प्रकार पेड़ काटने वाले को भी छाया देता है, उसी प्रकार यदि शत्रु भी आ जाये तो उसका आतिथ्य सत्कार करना चाहिए।[3] वन पर्व एवं अनुशासन पर्व ने आतिथ्य की महत्ता गयी है। अनुशासन पर्व में आया है- आतिथ्यकर्ता को अपनी आँख, मन, मीठी बोली, व्यक्तिगत ध्यान एवं अनुगमन (जाते समय साथ-साथ कुछ दूर तक जाना) देने चाहिए, इस यज्ञ (आतिथ्य में यही पाँच प्रकार की दक्षिणा है।[4]

अतिथि-सत्कार के पीछे एकमात्र प्रेरक शक्ति सार्वभौम दया भावना थी। किन्तु इस कर्तव्य की भावना को महत्ता देने के लिए स्मृतियों ने अन्य प्रेरक भी जोड़ दिये गये हैं।

शाखायन गृहसूत्र का कहना "खेत में गिरा हुआ अन्न इकट्ठा करके जीविका चलाने वाले एवं अग्निहोत्र करने वाले गृहस्थ के घर में यदि ब्राह्मण बिना आतिथ्य-सत्कार पाये रह जाता है तो वह उस गृहस्थ के सारे पुण्यों को प्राप्त कर लेता है, अर्थात हर लेता है।''[5]

बौधायन धर्मसूत्र कहना है सभी लोग भोजन पर निर्भर रहते हैं, वेद के अनुसार भोजन जीवन (प्राण) है, अतः भोजन देना चाहिए, क्योंकि यह सर्वोत्तम छवि है, बिना किसी अन्य व्यक्ति को दिये भोजन नहीं करना चाहिए।[6]

शंख के अनुसार वहाँ तक साथ-साथ जाना चाहिए, जहाँ जब उपवन या जन-समाग्रह (आराम या सभा) हो, प्रमा (धर्मार्थ पानी पिलाने का स्थान) हो, या तालाब, मन्दिर, कोई पवित्र वृक्ष (पीपल या बरगद) या नदी हो। वहाँ अतिथि की प्रदक्षिणा करके कहना चाहिए कि हम पुनः मिलेंगे।[7]

इस प्रकार मनुष्य यज्ञ का मूल लोक कल्याण की भावना से जुड़ा है अर्थात सिर्फ अतिथियों को ही भोजन न कराके प्राणी मात्र के उदर की पूर्ति के लिए अपनी सीमा तक प्रयास ही नृयज्ञ की मूल भावना है। जो एक महान पुण्य कार्य है। परोपकार (पुण्य) का एक अन्य साधन है, दान लेकिन जो दान सुपात्र को दिया जाये वहीं फलित होता है अर्थात वहीं पुण्य है।

धर्मशास्त्र में 'प्रतिग्रह' शब्द का विशिष्ट अर्थ होता। मनु की टीका में मेघातिथि का कथन है- "ग्रहण मात्र प्रतिग्रह नही है। उसी को प्रतिग्रह कहते है, जो विशिष्ट स्वीकृति का परिचायक हो अर्थात जब उसे स्वीकार किया जाय तो दाता को अदृष्ट आध्यात्मिक पुण्य प्राप्त हो और जिसे देते समय वैदिक मन्त्र पढ़ा जाय। जब कोई भिक्षा देता है तब वह कोई मन्त्रोचारण (यथा देवस्य त्वा) नहीं करता, अतः वह शास्त्रविहित दान नहीं है।[8]

देवता ने दान के छः अंग वर्णित किये है, दाता प्रतिग्रहीता, श्रद्धा धर्मयुक्त देय (उचित ढंग से प्राप्त धन) उचित काल एवं उचित देश (स्थान)। इनमें प्रथम चार का स्पष्ट उल्लेख मनु ने किया है- देवों द्वारा वेदपाठी परन्तु कृपण और सूदखोर, परन्तु दानी शूद्र के अन्न को समान रूप से अग्राह्य बताने पर ब्रह्मा जी ने देवों को प्रबोधित करते हुए कहा- देवो! आप लोगों को सम और विषम में अन्तर करते हुए विवेक का परिचय देना चाहिए। आप जानते है कि दान में विचारणीय तत्व है- श्रद्धा, वैश्य के ब्याज जीवी होने के साथ-साथ श्रद्धालु होने के कारण उसका दान पवित्र है, और अन्न ग्राह्य है। इसके विपरीत कृपण ब्राह्मण के श्रद्धारहित होने के कारण उसके द्वारा दिया दान अपवित्र एवं अग्राह्य है। वस्तुतः श्रद्धा ही दान का पावन करने वाला तत्व है।[9]

इन छः अंगों के विवरण से पहले इष्टापूर्त का अर्थ समझ लेना चाहिए। यह शब्द ऋग्वेद में भी आया है। इसका अर्थ है "यज्ञ कर्मो तथा दान कर्मो से उत्पन्न पुण्य।'' ऋग्वेद में हाल में (तुरन्त) मरे हुए एक आत्मा के विषय में आया है- "तुम पितरो से मिल सको, तुम यम से मिल सको तथा मिल सको स्वर्ग में अपने इष्टापूर्त से।'' 'इष्ट' का अर्थ है जो यज्ञ के लिए दिया गया है और पूर्त का अर्थ है, जोभर गया है।[10]

दान के पात्रों के विषय में धर्मशास्त्रकारों ने बहुत कुछ लिखा है।

दक्ष ने लिखा है- "माता पिता, गुरुमित्र, चरित्रवान व्यक्ति, उपकारी, दरिद्र (दीन), असहाय (अनाथ), विशिष्ट गुण वाले व्यक्ति को दान देने से पुण्य प्राप्त होता है, किन्तु धूर्तो, कुवैद्यों, जुआरियों, वृचकों चाटों, चारणों एवं चोरों को दिया गया दान निष्फल होता है।[11]

दान के पदार्थो एवं उपकरणों के विषय में बहुत से नियम बने हैं, अनुशासनपर्व के मत से संसार के सर्वश्रेष्ठ प्यारे पदार्थ तथा जिसे व्यक्ति बहुत मूल्यवान समझता है, उसका गुणवान व्यक्ति को दिया जाना अक्षय गुण एवं पुण्य देने वाला दान कहा जाता है।[12]

देवल के मत से वह वस्तु देय है जिसे दाता ने बिना किसी को सताये, चिन्ता एवं दु:ख दिये बिना स्वयं प्राप्त किया हो, वह चाहे छोटी हो या मूल्यवान हो। देय की बड़ाई या छोटाई अथवा न्यूनता या अधिकता पर पुण्य नहीं निर्भर रहता, वह तो मनोभाव, दाता की समर्थता तथा उसके धनार्जन के ढंग पर निर्भर रहता है। श्रद्धा से जो कुछ सुपात्र को दिया जाय वह सफल देय है, किन्तु अश्रद्धा से या कुपात्र को दिया गया धन निष्फल होता है। अपनी समर्थता के अनुसार देना चाहिए।[13]

दान करने के उचित कालों के विषय में बहुत से नियम बने हुए है। प्रतिदिन के दान कर्म अतिरिक्त अन्य विशिष्ट अवसरों के दान की व्यवस्था करते हुए धर्मशास्त्रकारों ने लिखा है कि प्रतिदिन के दान कर्म से विशिष्ट अवसरों के दान कर्म अधिक सफल एवं पुण्यप्रद माने जाते हैं।[14]

विवाह के लिए ब्राह्मण को तथा उसे पूर्ण रूपेण व्यवस्थित करने के लिए जो दान दिया जाता है, उसकी भी प्रभूत महत्ता गायी गयी है। दक्ष ने लिखा है- "मातृविहीन ब्राह्मण के संस्कार एवं विवाह आदि कराने से जो पुण्य होता है, उसे कूता नहीं जा सकता, एक ब्राह्मण को व्यवस्थित करने से जो फल प्राप्त होता है, वह अग्निहोम एवं अग्निष्टोम यज्ञ करने से प्राप्त नहीं होता।"[15]

प्राचीन समय के धनी लोग भी दान एवं पुण्य कार्य में विश्वास करते थे, जुन्नार के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि अनेक खेतों के स्वामियों ने अपने खेतों को इसलिए दान में दिया था कि उनकी आय पुण्य के कार्यो में लगाई जा सके।[16]

804 ईस्वी के कागड़ा अभिलेख से पता चलता है कि कुछ खेतों के स्वामी किसान न होकर व्यापारी भी होते थे।[17] जो इस आय से पुण्य के कार्य करते थे।

मनु के अनुसार गोदान करने वाला सूर्यलोक में जाता है।[18] याज्ञवल्क्य के अनुसार देय गाय के सींग तथा खुर क्रम से सोने एवं चाँदी से जड़ित होने चाहिए। गाय के गले में घण्टी, उसको दुहने के लिए पात्र एवं उसके ऊपर वस्त्रावरण होना चाहिए। गाय सीधी होनी चाहिए। दान के साथ दक्षिण होनी चाहिए। जो इस प्रकार की गाय का दान करता है वह उतने ही वर्षो तक स्वर्ग में रहता है जितने कि गाय के शरीर पर बाल होते हैं।[19]

अनुशासन पर्व में गोदान की महिमा का वर्णन है।[20] याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि कपिला गाय का दाता अपने साथ अपनी सात पीढ़ियों को तार देता है। (पाप से रक्षा करता है)।[21]

वराहपुराण ने गोदान का वर्णन किया है जिसे हम यहाँ संक्षेप में देते हैं। कपिला गाय को बछड़े के साथ पूर्वाभिमुख करके दाता (स्नान करके तथा शिखा बाँधकर) उसकी पूजा करता है। वह उसकी पूँछ के पास बैठता है और प्रतिग्रहीता उतराभिमुख बैठता है। दाता अपने हाथ में घृतपूर्ण पात्र लेता है। जिसमें सोने का एक टुकड़ा रख दिया जाता है। गाय की पूँछ को मक्खन में डुबोकर प्रतिग्रहीता के दाहिने हाथ में पकड़ा दिया जाता है, किन्तु गाय की पूँछ का बाल वाला भाग पूर्व दिशा में ही रख जाता है। प्रतिग्रहीता के हाथ में जल, तिल एवं कुश रख दिये जाते है। दाता अपने हाथ में जलपात्र लेकर पौराणिक मन्त्रों के साथ जल छिड़कता है, दक्षिणा देता है और जब गाय प्रतिग्रहीता के साथ चलने लगती है तो वह कुछ कदम आगे अनुसरण करके गाय की स्तुति करता है।[22]

सूत्रों एवं मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य जैसी प्राचीन स्मृतियों में तीर्थों को कोई महत्वपूर्ण स्थिति नहीं दर्शायी गयी है, किन्तु महाभारत एवं पुराणों में उनकी महिमा गायी गयी है और उन्हें यज्ञों से बढ़कर माना गया है। वनपर्व में देवयज्ञो एवं तीर्थयात्राओं की तुलना की गयी है, यज्ञों में बहुत से पात्रों, यन्त्रों, संभार-संचयन, पुरोहितो का सहयोग, पत्नी की उपस्थिति आदि की आवश्यकता होती है, अत: उनका सम्पादन केवल राजकुमारों या धनिक लोगों द्वारा ही सम्भव है। निर्धनों द्वारा, विधुरों असहायों, मित्रविहीनों द्वारा उनका सम्पादन सम्भव नहीं। तीर्थयात्रा द्वारा जो पुण्य प्राप्त होते है, वे अग्निष्टोम जैसे यज्ञों द्वारा, जिनमें पुरोहितों को अधिक दक्षिणा देनी पड़ती है, प्राप्त नहीं हो सकते है, अत: तीर्थयात्रा यज्ञों से उत्तम है।[23]

किन्तु वन पर्व ने तीर्थयात्रा से पूर्ण पुण्य प्राप्त करने के लिए उच्च नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों पर बहुत बल दिया है। ऐसा कहा गया है- जिसके हाथ, पाँव, मन, सुसंयत है जिसे विद्या, तप एवं कीर्ति प्राप्त है, वही तीर्थयात्रा से (पूर्ण) फल प्राप्त कर सकता है। जो प्रतिग्रह (दान ग्रहण आदि) से दूर रहता है, जो कुछ मिल जाय उससे संतुष्ट रहता है एवं अहंकार से रहित है, वह तीर्थ फल प्राप्त करता है। जो प्रवृचना या कपटाचरण से दूर है, निराम्भ है (अर्थात् धन कमाने के लिए भाँति-भाँति के उद्योगो से निवृत है), लध्वाहारी (कम खाने वाला) है, जितेन्द्रिय है अर्थात जो अपनी इन्द्रियों के संयम द्वारा पापकर्मो से दूर रहता है, और वह भी जो अक्रोधी है, सत्यशील है, दृढ़व्रती है, अपने सामान ही अन्यो को जानने-मानने वाला है, वह तीर्थयात्राओं से पूर्णफल प्राप्त करता है।[24]

इसका तात्पर्य यह है कि जिन्हे ये विशेषताएं नहीं प्राप्त है, वे तीर्थयात्रा द्वारा पापों का नाश कर सकते है किन्तु जो इन गुणों से युक्त है वे और भी अधिक पुण्य फल प्राप्त करते हैं।

वायुपुराण में आया है- "पापकर्म् कर लेने पर यदि धीर (दृढ़संकल्प या बुद्धिमान) श्रद्धावान एवं जितेन्द्रिय व्यक्ति तीर्थयात्रा करने से शुद्ध हो जाता है, तो उसके विषय में क्या कहना जिसके कर्म शुद्ध है? किन्तु जो अश्रद्धावान है, पापी है नास्तिक है, संशयात्मा है (अर्थात तीर्थयात्रा के फलों एवं वहाँ के कृत्यों के प्रति संशय रखता है) और जो हेतु द्रष्टा (व्यर्थ के तर्को में लगा हुआ) है- ये पाँचो तीर्थफलभागी नहीं होते।"

ब्रह्म पुराण ने विन्ध्य के दक्षिण की छ: नदियों और हिमालय से निर्गत छ: नदियों को देवतीर्थो में सबसे अधिक पुनीत माना है, यथा- गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोयणी, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती विशोका एवं वितस्ता।[26]

गंगा पुनीतम नदी है। गंगा का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में नदी सूक्त में आया है।[27] अनुशासन पर्व में आया है कि वे जनपद एवं देश, वे पर्वत एवं आश्रम, जिनसे होकर गंगा बहती है, पुण्य का फल देने में महान है। वे लोग, जो जीवन के प्रथम भाग में पापकर्म करते हैं, यदि गंगा की ओर जाते हैं तो परम पद

प्राप्त करते हैं। जो लोग गंगा में स्नान करते है, उनका फल बढ़ता जाता है, वे पवित्रात्मा हो जाते है और ऐसा पुण्य फल पाते है, जो सैकड़ों वैदिक यज्ञों के सम्पादन से भी नहीं प्राप्त होता।28

भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि धाराओं में गंगा हूँ।[29] मनु ने साक्षी को सत्योच्चारण के लिए जो कहा है, उससे प्रकट होता है कि मनुस्मृति के काल में गंगा एवं कुरुक्षेत्र सर्वोच्च पुनीत स्थल है।[30]

इस प्रकार सभी धर्मशास्त्रकारो ने गंगा को पुण्य दायिनी कहा है। प्रयाग, काशी एवं गया को त्रिस्थली कहा जाता है।

प्रयाग को तीर्थराज कहा गया है।[31] वन पर्व में आया है कि ब्रह्मा की यज्ञ-भूमि देवों द्वारा पूजित है और यहाँ पर थोड़ा भी दिया गया दान महान होता है।[32]

विश्व में कोई ऐसा नगर नहीं है जो बनारस (वाराणसी) से बढ़कर प्राचीनता निरन्तरता एवं मोहक आदर का पात्र हो। लगभग तीन सहस्राब्दियों से यह पुनीतता ग्रहण करता आ रहा है। इस नगर के कई नाम प्रचलित रह हैं, यथा वाराणसी, अविमुक्त एवं काशी।

शिव को वाराणसी बड़ी प्यारी है, यह उन्हें आनन्द देती है, अतः यह आनन्द कानन या आनन्दवन है।[33]

भारत में कई तीर्थों की स्थापना राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने के लिए हुआ, शंकराचार्य द्वारा स्थापित चारो पीठ- ज्योतिष्पीठ (बद्रीनाथ), गोवर्धन पीठ (पुरी), शारदापीठ (द्वारिका), शृंगेरी पीठ (मैसूर) मुख्यतः भारतीय लोगों को एक सांस्कृतिक सूत्र में पिरोने का सराहनीय प्रयास था जिससे एक प्रान्त के लोग दूसरी जगह जाये तो उनकी संस्कृति से भी परचित हो। जिससे एक सांस्कृतिक समन्वय स्थापित हो तीर्थयात्रा महज साधन है साध्य नहीं। साध्य तो जन कल्याण है, जिससे अधिक-अधिक लोगों का हित जुड़ा हो।

इस तथ्य को धर्मशास्त्रकारों लोगों प्राचीन काल में ही जान लिया था इसलिए पुण्य कार्यो में दान, व्रत, तीर्थ आदि को सम्मिलित किया, इसका एक कारण यह भी था तब लोग धर्म प्रयाण थे। धर्म ही एक कारण हो सकता जो लोगों को सीमित दायरे से निकाल कर बेहतर सामाजिक जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त कर सकता था। क्योंकि धर्म का मूल अर्थ ही है जो धारण किया जाये अर्थात अच्छाईयाँ संकीर्णता नहीं जिसमें लोक कल्याण निहित है।

इस प्रकार धर्मशास्त्रों के अनुशीलन से यह प्रकट होता है कि ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थाटन एवं जनोपयोगी कार्य जैसे पौशाला की स्थापना करना आदि पुण्य के अन्तर्गत माना जाता था।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि पुण्य का आधार प्राणी मात्र के प्रति सद्भावना है जो मनुष्य को सीमित स्वार्थ से ऊपर उठाती है और समष्टि के कल्याण की ओर अग्रसर करती है।

## संदर्भ सूची-


1. कर्मयोग, पृष्ठ सं0 47
2. तैत्तिरीयारण्यक 2/10-13
3. शान्तिपर्व 146/5
4. अनुशासन पर्व 7/6
5. शांखायन गृहसूत्र 2/17/1
6. बौधायन धर्मसूत्र 2/3/68
7. शंख लिखित गृहस्थ रत्नाकर, पृ0 292
8. मेघातिथि (मनु 5/4)
9. मनुस्मृति 4/27
10. ऋग्वेद 10/14/8
11. दक्ष 3/17-18
12. अनुशासन पर्व 50/7
13. देवल (अपरार्क, पृ0 290) 211/1
14. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/203
15. दक्ष 3/32-33
16. लल्लन गोपाल, पृष्ठ 64
17. ऐपिग्रेफिया इण्डिका 1, पृ0 सं0 20 व 21
18. मनुस्मृति, 4/233
19. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/204-206
20. अनुशासन पर्व 83/26-34
21. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/205
22. वराहपुराण 111
23. ऋषिभिः क्रततः प्रोक्ता देवोष्तिव यथाक्रमम्।
    फलं चौव यथातथ्यं प्रेत्य चेह च सर्वशः।।

न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तु महीपते।
बहुपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्ताराः।।
प्राप्यन्ते पाथिवैरतैः समृद्धैर्वानरै क्वचित्।
नार्थन्यूनैर्नावगणैरेकात्मभिरसाधनै।।
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तु नरेश्वर।
तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तं निबोध युधांवर।।
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसतम।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते।।
–महाभारत (वनपर्व 82/13-17

24. यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चौव सुसयतम।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।।
परिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्।
अहंकारनिवृत्तश्चं स तीर्थफलश्नुते।।
अकल्को नियरम्भो लध्वाहाते जितेन्द्रियः।
विमुक्त सर्वपापेभ्यः स तीर्थफल मश्नुते।।
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढ़व्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलम्श्नुते।।
–वनपर्व 82/9-12

25. तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्धावानों जितेन्द्रिय।
विशुध्येत कि पुन शुभकर्मकृत।।
अश्रद्धधाना पाप्मानो नास्तिकाः स्थितसंशयाः।
हेतुद्रष्टा च पे्चेते न तीर्थफलभागिनः।।
–वायुपुराण 77/125, 127

26. ब्रह्म पुराण 70/30-55
27. ऋग्वेद 10/75/5-6
28. अनुशासन पर्व 36/26, 30-31
29. भगवद्गीता 10/31
30. मनुस्मृति 8/92
31. मत्स्य पुराण 109/95
32. वनपर्व 85/82, 83/77
33. यथा प्रियतमा देवि मम स्वं सर्वसुन्दरि।
तथा प्रियतरं चौतन में सदानन्दकाननम्।।
–स्कन्दपुराण, काशीखण्ड 32/111

# कमलेश्वर के स्त्री पात्र ( 'इतने अच्छे दिन' के विशेष संदर्भ में )


## डॉ० राजेश कुमार

*असि० प्रोफेसर ( हिन्दी ) राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर*


यह सर्वविदित है कि कहानियाँ सम्पूर्ण जीवन की विचाराभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती हैं। कहानी एक ऐसी विधा है जिसमें कम कहते हुए भी बहुत कुछ एक साथ प्रकाशित हो जाता है। वे कहानियाँ ही सबसे अधिक लोकप्रिय होती हैं जिनमें लेखक अपने जीवन की विषम परिस्थितियों को अभिव्यक्त करता है जिसमें जनमानस भी कहानी एवं कहानीकार से तादात्म्य अनुभव करता है। हिन्दी साहित्य में पिछले छः दशकों में कमलेश्वर जैसा सतत् ऊर्जावान कथासर्जक दूसरा नही रहा। कथा साहित्य में 'नई कहानी' की नई प्रतिभा के साथ जो एक बार प्रवेश किया तो फिर बिना रूके चलते ही रहे। उनकी चुनौतियों और कृतित्व का मुख्य क्षेत्र कहानियाँ ही रहीं। हिन्दी कहानियों में अपना विशिष्ट पहचान बनाने वाले कमलेश्वर का जन्म 06 जनवरी 1932 ई. मैनपुरी (उ.प्र.) में हुआ था। कमलेश्वर का पूरा नाम 'कमलेश्वर प्रसाद सक्सेना' था। जगदम्बा प्रसाद सक्सेना की दूसरी पत्नी से कमलेश्वर का जन्म हुआ। जीवन की विषम परिस्थितियों के कारण कमलेश्वर भी अपनी माता की भाँति कठिनाईयों को सहने के अभ्यस्त हो गये। इनकी माता जी परिश्रम की जीती जागती प्रतिमूर्ति थीं। इनका परिवार अभावों के बुरे दौर से गुजर रहा था किन्तु सामाजिक प्रतिष्ठा में आज भी वे जमींदार घराना थीं- "माँ रात ढाई तीन बजे उठकर हाथों में कपड़ा लपेटकर चक्की से गेहूँ पीसती, बर्तन माँजती और भोर होते-होते नहा-धोकर 'पुराने जमींदार घराने की मालकिन' हो जातीं।"[1]

परिवेश एवं परिस्थितियों का प्रभाव मानव के व्यक्तित्व पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ता है। पिता और भाई की मृत्यु के बाद माँ का कठिन परिस्थितियों में जीवन निर्वाह कमलेश्वर के व्यक्तित्व पर जीवन पर्यन्त के लिए गहरी छाप छोड़ गया और उसी प्रभाव के कारण इनकी कहानियों के स्त्री पात्र परिवेश के साथ जद्दोजहद करते दिखाई देते हैं। अपने बचपन का वर्णन करते हुए कमलेश्वर लिखते हैं- "मंडियो में बेशुमार अन्न, घी, गुड़, आलू और कपास थी पर माँ की धोती की खूंट में एक दो नोट और कुछ सिक्के थे.....जब मैं अन्न लेने जाता तो दुकानदार बड़ा तराजू हटा छोटे तराजू से मेरे लिए चीजें तौलता था।"[2] कमलेश्वर के टूटे हुए घराने में अभावों का कोई अभाव नहीं था, लेकिन जीवन की ऊष्मा और जीने की जिजीविषा विद्यमान थी जिसने कमलेश्वर को साहित्यकार कमलेश्वर के रूप में प्रतिस्थापित किया।

कमलेश्वर के स्त्री प्रात्र परम्पराबद्ध नही हैं। वे व्यवहार, जीवन एवं परिस्थितियों के प्रति सजग हैं। यहाँ स्त्री पात्र अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को लेकर अवतरित हुई है। वह किसी की पत्नी होने के साथ ही साथ अपने स्वातन्न्य और अस्मिता को नही भूली है, इसका सशक्त उदाहरण है 'राजा निरबंसिया' की नायिका चन्दा। अपने पति जगपती के प्रति प्रेम से परिपूर्ण चन्दा उसके चोट की कराह से विचलित होकर रोने लगती है- "पट्टी एक जगह खून से चिपक गयी थी, जगपती बुरी तरह कराह उठा। चन्दा के मुख से चीख निकल गयी..... उसकी बाँह पर टप से चन्दा का आंसू चू गया।"[3] पति के प्रति उसे प्रेम है और उसका वह यथोचित निर्वाह भी करती है लेकिन अपने अस्तित्व पर लगे प्रश्नचिह्न का भी मुँहतोड़ जवाब देती है। चन्दा में मानसिक अन्तर्द्वन्द दिखाई पड़ता है, यह मानसिक द्वन्द्व जीवन के विविध संघर्षों को लेकर है। दो पुरूषों को लेकर उसकी द्वन्द्वात्मक स्थिति स्पष्ट दिखाई देती है। एक तरफ उसका पति जगपती है तो दूसरी ओर कंपाउडंर बचन सिंह। अपने उत्तरदायित्वों के निर्वहन के साथ ही साथ अपने अस्तित्व की सुरक्षा की सजगता से परिपूर्ण चन्दा ने जगपती के आक्षेप के विरोध में कहा था- "लेकिन जब तुमने मुझे बेच दिया।"[4] वास्तव में वह बिखरी परिस्थितियों में स्वयं और परिवार को सँभालते-सँभालते टूट गयी। जिसका अहसास उसके जाने के बाद जगपती को भी होता है- "क्या वह ठीक कहती थी? क्या बचनसिंह ने टाल के लिए जो रूपये उधार दिये थे वह ब्याज इधर चुकता हुआ? क्या सिर्फ वही रूपये आग बन गए जिसकी आँच में उसकी सहनशीलता, विश्वास और आदर्श मोम से पिघल गये।"[5] चन्दा की आत्मशुचिता जगपती को विदग्ध कर देती है और वह पश्चाताप की ग्लानि से आत्महत्या कर लेता है। चंदा के मातृत्व पर व्यंग्य करने वाला जगपती- " कि तुम्हारे कभी कुछ नही होगा।" अन्त में यही इच्छा व्यक्त करता है कि "चंदा आदमी को पाप नही पश्चाताप मारता है, मैं बहुत मर चुका था। बच्चे को लेकर जरूर चली आना।"[6]

लेखक ने आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न दाम्पत्य संबंधों में आये तनाव एवं विखंडन एवं आर्थिक मजबूरियों की निरूपायता का बहुत ही सशक्त चित्रण किया है। कमलेश्वर की प्रत्येक कहानी की स्त्री पात्र कही न कही चोट खाई हुई आहत स्त्रियाँ है, जो हताहत होकर भी रूकते नही बल्कि आगे बढते ही रहते हैं। दुनिया के तमाम झंझावतों को झेलते हुये भयंकर मानसिक अर्न्तद्वन्द के बाद भी वे जीवंत रहते हैं। उनकी कहानियों के स्त्री पात्रों की समस्याएं दैनिक जीवन को प्रभावित करती हैं। असंख्य दुश्चिंताओं, उलझनों, अभावों और यंत्रणाओं के बीच अपने सही स्वरूप को खोज कर उसे सही संदर्भों में प्रतिस्थापित करने की तड़प उनमें दिखाई देती है। कमलेश्वर की हर कहानी जिन्दगी की जिजीविषा से भरी हुई है। जिन्दगी अपने अच्छे बुरे हाल में जीती जागती रहती है। राजा निरबंसिया में जगपती नामक पात्र कहता है कि- "वह इतनी घृणा बरदाश्त करके भी जीने को तैयार है।"[7] चंदा की सामाजिक वर्जनाओं को तोडने की जिद ही उसे उसके अस्तित्व का बोध कराती है। उसके निर्णय ही जगपती को सोचने पर मजबूर कर देते है कि सात फेरों का बंधन केवल देह का नही है वो तो उसकी आत्मा में रच बस गया है तभी तो वह कहता है कि- "वह बच्चा मेरा नही पर चंदा तो मेरी है।"[8]

भारतीय स्वाधीनता के बाद सामाजिक क्षेत्र में सबसे अधिक प्रभावित होने वाली स्त्री ही है जो परम्पराओं के मकड़जाल से निकल कर एक ओर सामाजिक आर्थिक स्वावलंबन का मार्ग प्रशस्त किया तो दूसरी ओर असंख्य व्यक्तिगत मानसिक, पारिवारिक समस्याओं से भी दो चार हुई। लेकिन सतत संघर्ष ने उनकी उत्तरजीविता को बनाये रखा। स्त्री की संतुष्टि उपलब्ध संसाधनों तक ही सीमित रही। उसकी महत्वाकांक्षा का दायरा सुनिश्चित है। यही स्थिति कमलेश्वर की कहानी 'खोई हुई दिशायें' की स्त्री पात्रों इन्द्रा और निर्मला की है। जो अपने जीवन की दोनो स्तिथियों में इनकी दुनिया उनकी छोटी सी गृहस्थी तक ही सीमित है जिसमें उसकी आशा-आकांक्षा, सुख-दुख का केन्द्र बिन्दु उसका पति ही है, भले ही भौतिक सुख सुविधाओं का अभाव हो किन्तु पति के प्रति उसकी अपनी निष्ठा में कोई कमी नही रहती। उसका प्रेम निश्छल विश्वास से भरा रहता है अपने पति के प्रति कर्तव्यनिष्ठा और प्रेम से भरी निर्मला उससे पूछती है कि- "बहुत थक गये क्या ?.....क्यों क्या बात है, सुबह भी तो कुछ खा कर नही गये थे, दोपहर में कुछ खाया था?"[9] जीवन में कोई दुविधा कोई भटकन नही। एकदम सहज एवं सरल जीवन जीते हुये वह अपने कर्तव्यों के प्रति सजग एवं सचेत है।

इसी प्रकार कमलेश्वर की एक अन्य कहानी 'ऊपर उठता हुआ मकान में एक छोटे परिवार के पारिवारिक ताने बाने को चित्रित किया है। पति मुरारी से विवाहोपरान्त उपेक्षित होने के बाद भी जीवन के पैंतालिस वर्ष गौरी आराम से गुजार लेती है। सास-ससुर, पति, गृहस्थी सभी का यथोचित निर्वाह वह धैर्य के साथ करती है। मुरारी की जीवन संगिनी और सास ससुर की आर्दश बहू बन कर वह अपने कर्तव्य का सुन्दर निर्वाह करती है। जीवन के इतने बरस साथ बिता कर मुरारी और गौरी की आत्मीयता अनकही हो गयी है जिसे कहने और जताने की आवश्यकता नही है, जो केवल अनुभव की जा सकती है। यहाँ दोनों एक दूसरे से खीजते हैं, गुस्सा होते हैं, लेकिन उन्हें एक दूसरे की चिंता भी रहती है। गौरी का प्रेम मुरारी के लिये एकनिष्ठ है वह भले ही नाराज होकर बेटे पास चली जाती है लेकिन कुछ दिनों बाद ही मुरारी के पास लौट आती है। उसका विश्वास, प्रेम, निष्ठा सब अपने पति के साथ एकनिष्ठ है। गौरी का कुशल नेतृत्व और प्रेम की मौन भाषा मिल कर एक धँसते हुये मकान को ऊपर उठा देते है।

"इतने अच्छे दिन" की कमली अपना और अपने भाई का निर्वाह करने के लिये अपने शरीर का सौदा करती है। जीवन निर्वाह के लिये वह चंदू से विवाह का प्रस्ताव भी अस्वीकार कर देती है। तरह तरह के लोगों के सम्पर्क में रहने के बाद भी जैसे कमली की संवेदनाएँ घनीभूत है वह हड्डियों का व्यवसाय करते बाला से कहती हैं कि-"ये हड्डियाँ गोदाम ले जायेगा?..... बाला ।. इन्हें नदी में सिरा दे। ठीक है ना। कमली ने कहा,,,,,, बुरे दिन होते तो दूसरी बात थी। गोदाम में ही दे आता.....।"[10]

कथाकार कमलेश्वर की प्रत्येक कहानी के स्त्री पात्रों में स्थितियों के साथ समायोजन की अद्‌भुत क्षमता है। जहाँ एक ओर परिस्थितियों के कारण अपने शरीर का व्यावसाय कर जीवन यापन रही है वहीं दूसरी ओर अपने पुरखों के स्नेह और प्रेम से भी पूरित है कुल मिलाकर जीवन कितना ही दुसह क्यों न हो, पर उसे जीने की जिजीविषा हर परिस्थिति में बनी हुई है। कमलेश्वर ने समाज के एक पक्ष पर दृष्टिपात नही किया बल्कि समाज के सभी पक्षों का विभिन्नता के साथ अवलोकन किया है। कहानियों में कथ्य की विविधता ही इनकी प्राणशक्ति है। अपने अर्न्तमन की ऊर्जा का समुचित प्रयोग वह अपनी कहानियों को गढने में करते है। कटु सत्य और यथार्थ के अतिरिक्त उनमें काल्पनिकता का यदा कदा ही प्रयोग मिलता है। अर्थ की दृष्टि से मूल्यबोध भी अति व्यापक शब्द है, जो आधुनिक कहानी की विशेषताओं में से एक है।

'जोखिम' कहानी में माँ और बेटे के तटस्थ संबंधों का चित्रण है। गाँव में माँ अपने अशक्त शरीर और टूटे मन के साथ हर छठे छमाही बेटे का हाल चाल पड़ोसियों के द्वारा चिट्ठी पत्री लिखवा कर ले लिया करती है। स्नेह के सूक्ष्म तंतु माँ की शारीरिक दुर्बलता पर हावी रहते हैं लेकिन बेटे की महानगरीय भटकन उसे अपने साथ साथ अपनी मिट्टी और अपने लोगों से भी दूर कर देती है। 'दुनिया बहुत बडी है' कहानी की नारी पात्र अन्नपूर्णा गाँव में आये डाकबाबू से ब्याह कर लेती है जिसे उसके गाँव वाले स्वीकार नही करते और वह डाकबाबू सालिगराम के साथ तालगाँव छोड कर कस्बे में आ जाती है। मायके और ससुराल दोनों का विरोध झेलते हुये भी वह अपने पति सालिगराम के साथ दस वर्ष खुशी खुशी काट लेती है लेकिन सालिगराम की मृत्यु उसके जीवन में अंधेरा कर देती है। एकाकी जीवन के अकेलेपन को दूर करने के लिये वह दूर के एक रिश्ते के देवर के घर में आश्रय लेती है। अपने आप से लडते हुये गृहस्थी के दैनिक कार्यों को करते हुये, आधी आधी रात अपने में गुम रह कर सोचते हुये तीस बरस का वैधव्य धैर्य के साथ बिताती है। लेकिन कभी कभी धैर्य का बाँध आंसुओं के सैलाब से टूट जाता है और जीवन का एकाकीपन उसे रूला देता है। उसकी घुटन को कहानीकार कमलेश्वर इस प्रकार व्यक्त करते हैं- "वही कमरे, वही दरवाजे, अलमारियाँ और ताक। धुआँ भरा चौका और जले हुये बरतन। गंदे कपडों की वही गंध और बिस्तरों की वही सलवटें.....घरों पर छाया हुआ एक सा अंधेरा और थकान भरी सुबह.....लम्बी जिंदगी की तरह फैली दोपहरियाँ और घुटी घुटी शाम।"[11]

परिस्थितियों से अदभुत सामंजस्य अन्नपूर्णा के व्यक्तित्व की अलग पहचान है। वैधव्य के तीस बरस साथ रह कर भी आश्रयदाता परिवार से आत्मीयता के स्निग्ध तार न जुड पाने के बाद भी वह उन लोगों की सुविधा का पूरा ध्यान रखती है। 'सीखचें' कहानी की नायिका अपने पति के सारे अत्याचार सहती है उसकी दैनिक आवश्यकताओं के उपयोग की चीजें भी नही मिलती। खाने-पीने की चीजों तक का अभाव रहता है। वह शारीरिक यातना और वासनात्मक संबंधों से त्रस्त है लेकिन फिर भी कही न कही डगमगाती परम्परायें और लडखडाती मान्यतायें उसके स्त्री मन की पीड़ा को मजबूती से सभाले रहती है। प्रेम कहीं लेशमात्र भी नही है। लेकिन कर्तव्यनिष्ठा, सामाजिक जिम्मेदारी को वह बखूबी निभाती है। कमलेश्वर कहानी में नायिका के माध्यम से स्त्री मन की इस दुविधा को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं- "उन सात फेरों में क्या विशेषता है? क्या शक्ति है? इन चक्करों में क्या करामात है?"[12]

'सामाजिक जिम्मेदारी' कहानी की नायिका स्वयं के स्वार्थ से अलग कर यह सोचने पर मजबूर कर देती है कि वह समाज में किस स्थान पर है और उसके निर्णय समाज व परिवार के लिये हितकारी रहेगें या नही, यह कमलेश्वर की कहानियों की नायिकायें बखूबी जानती है। एक अन्य कहानी "जो लिखा नही जाता" की स्त्री पात्र सुदर्शना पिता की मृत्यु के बाद अपने जीवन के नितांत अकेलेपन से दुखी है। पूर्वप्रेमी से स्वयं के निश्छल संबंधों को वह जितनी बेबाकी से अपने पति को बताती है वही उसके और पति के बीच संबंधों में दरार का कारण बन जाती है। पति के प्रेम और विश्वास में वह अपने जीवन के अतीत को खोल कर रख देती है जो उसके जीवन का संत्रास बन जाता है। जिसकी सजा उसे पितृगृह छोड कर चुकानी पडती है। पाँच वर्ष पिता के साथ रह कर वह अपने को संभाल लेती है लेकिन पिता की मृत्यु उसे तोड कर रख देती है। लेकिन दुख की इस घडी में भी वह हिम्मत नही हारती और पिता के क्रिया कर्म की पूरी

जिम्मेदारी उठाती है। अन्त्येष्ठि के दूसरे दिन जब सभी सगे संबंधी चिता के फूल बीने रहे होते हैं उस समय सुदर्शना के पति महेन्द्र से कहते हैं कि- "दामाद लडके के बराबर होता है वही जाये"।[13] तो सुदर्शना बिना कुछ कहे चुपचाप अपने पिता के चिता के फूल बीनने चली जाती है वह न तो अपने पति महेन्द्र से किसी प्रकार की सहानुभूति चाहती है और न ही अपने पूर्व मित्र से कोई आत्मीयता या सम्बल की अपेक्षा रखती है। दो दिन रूक कर उसका पति महेन्द्र चला जाता है, वहीं उसका प्रेमी सोचता है कि अभी दीन हीन सी सुदर्शना उसके सामने आयेगी-"जी में आ रहा था कि सुदर्शना से कहूँ कि तुमने यह अपने दुख को दार्शनिक खोल क्यों पहना रखा है? तुम्हें इसी में रस मिलता है ?.....।"[14] लेकिन सुदर्शना इसके विपरीत एकदम अलग दिखती है- "एक बजे मेरे कमरे के दरवाजे पर दस्तक हुई। बाहर निकला तो देखा कि सुदर्शना सजी सँवरी खडी है, ठीक वैसी ही जैसी कि दस साल पहले थी। लगता था जैसे वक्त लौट आया हो और फिर एक इतिहास वहीं से शुरू होने जा रहा हो..... उसी बिन्दु से जहाँ से उसकी घटनाओं ने मोड लिया था।"[15]

सुदर्शना का अकेलापन ही उसे अदम्य साहस देता है। उसने प्रेम के कई स्तर पार किये, प्रत्येक स्तर पर अपने प्रेम को अर्थवत्ता देती सुदर्शना प्रतिकार में किसी से कुछ नही चाहती न प्रेम न सहानुभूति। वास्तव में कमलेश्वर एक ऐसे रचनाकार है जिन्होनें सामाजिक विसंगतियों, टूटते हुये जीवन मूल्यों, बढते हुये मानसिक द्वन्द को वाणी देने का कार्य निरन्तर किया है। इन कहानियों में कहानीकार ने स्वतंत्र भारत का ऐसा चित्र उकेरा है जो व्यक्ति को पूरी तरह लाचार कर देता है। श्रेष्ठ साहित्य की एक विशेषता होती है कि वह व्यक्ति को उसकी सीमाओं से उठा कर मानवीय धरातल पर पहुँचाता है। इस साधना को कमलेश्वर ने अपनी कहानियों के द्वारा चरम पर पहुँचाने का काम किया है। वे अपनी कहानियों में शिष्ट हास्य प्रस्तुत कर गम्भीर सच अति सरलता से कह जाते है। इनकी कहानियों में जीवन-अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के केन्द्रबिन्दु मानव मूल्य हैं। 'तलाश', 'देवा की माँ', 'एक अश्लील कहानी', 'सीखचें', 'राजा निरबंसिया' आदि कहानियों में नारी शोषण, नारी विद्रोह, नारी जागरूकता और अस्तित्व चेतना आदि पहलुओं को बदलते समाज के अनुभव अभिव्यक्त किया है। 'माँस का दरिया', 'रातें', 'इतने अच्छे दिन', 'दालचीनी के जंगल', 'तलाशी' आदि कहानियों में नारी के शारीरिक एवं मानसिक शोषण को बखूबी दर्शाया है, जिसमें उनकी विवशता और लाचारी के साथ ही उनके अदम्य साहस और अदभुत निर्णय क्षमता को भी चित्रित किया है। उन्होंने स्त्री को सिर्फ स्त्री माना है उसकी बदलती मनस्थिति को स्वीकार किया है। उनमें न तो ओढा हुआ सतीत्व उजागर किया है न तो थोपी हुई वेश्यावृत्ति। उनके संबंध उनके अपने है उनकी देह उनकी अपनी है और उसके निर्णय का अधिकार भी उनका अपना ही है।

'नीली झील' कहानी में देहाती महेसा की जीवनधारा नवप्रसूता पत्नी पारवती एकदम बदलकर रख देती है। पारबती का गहन प्रेम महेसा को उसकी मृत्यु के बाद एकदम विह्वल कर देता है। असमय मृत्यु उसके विछोह की वेदना को साकार कर देती है। इसी प्रकार 'साँप' कहानी में इन्दु, नायक से विशुद्ध प्रेम करती है पर सामाजिक मर्यादाएं भी उसे सहज नही होने देती। दूसरी ओर 'तलास' में एक विधवा नारी घर में युवा पुत्री के रहते हुए किस प्रकार अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करती है। लेकिन सुभी को आभास होने के बाद भी वह अनजान बने रहने को प्रयासरत रहती है और परिस्थितियों से समझौता करते हुए माँ की प्रत्येक सुविधा का ध्यान रखती है। यहीं पर अपनी माँ की तुलना में उसकी प्रौढ़ता, समझदारी एवं चातुर्य दिखाई देता है। इस कहानी की नायिका संयत मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण है। इसकी नायिका माँ से पहले एक स्त्री है जो जीवन में अपने नारीत्व को ही सार्थक करना चाहती है।

वास्तव में कमलेश्वर के स्त्री पात्रों की बात की जाय तो सर्वप्रथम एक बात सामने आती है कि इन स्त्री पात्रों का सम्बन्ध कही समाज से कटा हुआ नही है और न कहीं वे यथार्थ से मुँह मोड़ती दिखाई पडती है। अपनी वास्तविक स्थिति के प्रति सचेत होते हुए भी उनमें कहीं जिन्दगी से कतराने की प्रवृत्ति नही है। ये सब पलायनवाद से दूर जीवन की कंटीली राहों पर जूझते हुए नवीन अर्थों एवं मूल्यों की खोज में अनवरत संर्घषरत हैं। इनके स्त्री पात्र अति प्रभावी होने के साथ-साथ स्पष्ट मानसिकता वाले परिस्थितियों या परिवेश की असहजता उन्हे विकृत नही करती बल्कि उन्हे साहस देती है। वे जीवन से समझौता करके अपने भीतरी द्वन्द से सामंजस्य स्थापित करती है। ये पुरूषों के समझ से समझौता तो करती हैं लेकिन पलायन नही करती हैं।

## संदर्भ सूची-


01. आइने के सामने, सम्पादक- मोहन राकेश, पृष्ठ- 68
02. वही, पृष्ठ- 79
03. इतने अच्छे दिन (कमलेश्वर की कथा यात्रा के पड़ाव), हिन्द पाकेट बुक, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2013, पृष्ठ- 17
04. वही, पृष्ठ- 36
05. वही, पृष्ठ-37
06. वही, पृष्ठ-43
07. वही, पृष्ठ-41
08. वही, पृष्ठ-41
09. वही, पृष्ठ-65
10. वही, पृष्ठ-105
11. वही, पृष्ठ-162
12. वही, पृष्ठ-172
13. वही, पृष्ठ-198
14. वही, पृष्ठ-206
15. वही, पृष्ठ-206

# मानवीय विकास में शारीरिक शिक्षा का ध्येय एवं उद्देश्यः एक अवलोकन


## जितेन्द्र चौधरी

*शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद विभाग, आर.एस.एम.पी.जी. कॉलेज, धामपुर, बिजनौर, उ0प्र0*


'शारीरिक शिक्षा, शिक्षा के कार्यक्रम का वह भाग है, जिसमें शारीरिक कार्यक्रमों द्वारा बच्चों को विकसित तथा सुशिक्षित किया जाता है। शारीरिक कार्यक्रम साधन है, और उन्हें इस प्रकार चुनकर कराया जाता है कि इनका प्रभाव बच्चें के संपूर्ण जीवन पर पड़े, जिसमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा नैतिक सभी अंग सम्मिलित हैं।' -एच0सी0 बक

'शारीरिक शिक्षा संपूर्ण शिक्षा प्रबंध का एक अभिन्न अंग है, तथा जिसका ध्येय शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा स्वस्थ सामाजिक नागरिकों को निर्माण जैसे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जाता है।' -चार्ल्स बुहर

शारीरिक शिक्षा के ध्येय तीन भागों में विभाजित किये जा सकते है, जैसे- शरीर का विकास, संवेगात्मक सामाजिक व्यक्ति का विकास तथा शरीर के द्वारा व्यक्ति का विकास।

शारीरिक शिक्षा के ध्येय के अन्तर्गत शरीर का विकास भी सम्मिलित है। इस ध्येय की प्राप्ति हेतु शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत कुछ कार्यक्रमों जिसमें भाग लेने वालों को उनकी वृद्धि एवं विकास में पर्याप्त सहायता तथा सहयोग प्राप्त हो। इस प्रकार के कार्यक्रमों में भाग लेने के परिणामस्वरूप भाग लेने वाले में ऐसे शारीरिक गुण अर्जित हो कि क्षमता, शक्ति, साहस, सहन-शक्ति, थकान न होने तथा यदि हो तो थकान शीघ्र दूर होने की योग्यता उत्तम स्वास्थ्य, सीधा व आकर्षक शरीर या डील-डौल प्राप्त हो। उनकी कार्य करने की परिस्थितियां शारीरिक रूप से स्वस्थकर, अनुकूल तथा सुदृढ़ हों। मानव जीवन की सभी अवस्थाएं अपेक्षित, उत्तम तथा उचित हों व विज्ञान-सम्मत व अनुभव पर आधारित हों।

व्यक्ति जीवन और व्यक्तित्व तभी सार्थक है, जबकि वह अपने समाज में अपना उचित स्थान प्राप्त करने की क्षमता रखता हो, इस हेतु यह आवश्यक है कि व्यक्ति की शिक्षा कुछ इस रीति व पद्धति से हो कि वह प्रजातांत्रिक जीवन प्रणाली में अपना उचित स्थान ग्रहण कर सके तथा उसके प्रति अपने नैतिक कर्त्तव्य व उत्तरदायित्त्व को समझे एवं शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम तथा प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों से प्राप्त अनुभवों के आधार पर व्यक्ति वातावरण को उसके अर्थमय रूप में समझ सके एवं उसकी उपयोगिता को आंक सके। व्यक्ति इस बात का अनुभव करे कि वह अपना नैतिक एवं सामाजिक उत्थान शारीरिक शिक्षा के उपलब्ध साधनों के माध्यम से अधिक अच्छी तरह कर सकता है। इस शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का चारित्रिक विकास हो सके। वह नैतिक मूल्यों एवं चरित्र के प्रति गंभीर हो, उचित निर्णय, गंभीरता, उत्तरदायित्त्वपूर्ण प्रवृत्ति, कार्य के प्रति लगन, उमंग, उत्साह इत्यादि उत्तम गुणों के अतिरिक्त आज्ञापालन, सम्मान, आत्म-गौरव, आत्म-बलिदान, सहयोग, साहचर्य, मैत्रीभाव, देशभक्ति, सम्मान, नेतृत्त्व के गुण, जय-पराजय को धैर्य के साथ झेलने की क्षमता, सत्यप्रियता, ईमानदारी, खेल-भावना, आत्म-गौरव इत्यादि उत्तम सामाजिकता के विशिष्ट गुणों का विकास हो सकें।

यह परीक्षित तथ्य है कि शारीरिक शिक्षा की प्रक्रियाओं से व्यक्ति का विकास होता है। इन्द्रियों से अनुभूति होती है एवं ज्ञान प्राप्त होता है। इन्द्रियों को व्यक्त करने के लिए ज्ञान के इन द्वारों की अनुभूति क्षमता बनी रहे, इस हेतु इनका स्वस्थ रहना आवश्यक है। यह सत्य है कि इन्हें शारीरिक शिक्षा की प्रक्रियाओं द्वारा स्वस्थ रखा जा सकता है। इस प्रकार का विकास तभी संभव है, जब अंगों में परस्पर समन्वय हों। शारीरिक शिक्षा की प्रक्रियाओं के द्वारा परिस्थितियों की कुछ ऐसी दशा उपस्थित हो कि मानसिक दृष्टि से प्रेरणास्पद हो तथा संतोष की अनुभूति हो। यह सत्य है कि शारीरिक शिक्षा की प्रक्रियाओं में ऐसी परिस्थितियां तथा दशाएं उत्पन्न होती हैं, जिनके क्रियान्विति से संतोषप्रद अनुभूति होती है। उद्वेग एवं उत्तेजनाएं जो कि वंश-परम्परा के अनुसार कार्य करती हैं, उनकी पूर्ति होने से संतोष प्राप्त होना अनिवार्य है, क्योंकि ऐसा होना समाज के लिए उपयोगी है। यह संतोष व्यक्ति को तभी प्राप्त होगा, जब वह प्राकृतिक क्रियाओं में भाग लेता रहेगा, जैसा कि वह भाग लेता रहा है।

शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है जिसमें शारीरिक, मानसिक तथा चारित्रिक विकास करना है। विद्वानों की राय में शारीरिक शिक्षा उसे कहते हैं जिसमें प्रक्रियाओं का चुनाव प्रभाव की दृष्टि से किया जाता हैं। शारीरिक शिक्षा के उद्देश्यों की महत्ता के संबंध में पंडित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार- 'यदि शरीर साथ नहीं देता तो हृदय चाहे कितना ही मजबूत क्यों न हो, हम कुछ नहीं कर सकते। यदि हम किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक करना चाहते है तो शरीर का बलशाली होना आवश्यक है।' विद्वान एच.सी. बक ने शारीरिक शिक्षा के पांच उद्देश्यों का उल्लेख किया है। ये है- शरीर के विभिन्न अंगो का विकास, चेतना पेशी तालमेल का विकास, खेल योग्य क्षमता का विकास, सामाजिक तथा चारित्रिक विकास, स्वास्थ्य एवं अच्छे स्वभाव का विकास।

व्यक्ति में गति का जो गुण है, वह प्रकृति प्रदत्त है। इस प्रकार प्राकृतिक गति के आधारभूत कौशल के अन्तर्गत दौड़ना, उछलना-कूदना, फेंकना, मारना, चढ़ना, उतरना इत्यादि प्रक्रियाए आती हैं। ये प्रक्रियाएं व्यक्ति को उनके पूर्वजों से वंशानुक्रम के अनुसार प्राप्त हुई हैं तथा इनका प्रयोग किसी भी दशा और किसी

भी अवस्था में निश्चित रूप से होगा। व्यक्ति जो भी क्रिया करता है जो भी खेल खेलता है, वह आधारभूत कौशल से रहित क्रिया कभी नहीं होगी। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि आज जितने प्रकार के खेल दौड़कूद की प्रक्रियाएं इत्यादि शारीरिक शिक्षा की जो सामग्री है, उन्हें इस प्रकार से समझना चाहिए कि व्यक्ति को वंश परम्परानुसार जो गतिप्रद कौशल प्राप्त हुआ है या जो गतियां मिली हैं, खेलकूद और दौड़कूद उनका आधुनिक रूप है। यद्यपि ये परिवर्तित और समयानुसार नवीनता लिए हुए है। शारीरिक शिक्षा अपने कार्यक्रमों में कुछ ऐसी व्यवस्था का निर्धारण करती है कि इस प्रकार के समन्वय की अधिक से अधिक अवसर उपस्थित हों, क्योंकि इस प्रकार का समन्वय स्थापित कर व्यक्ति को गतिप्रद शिक्षा देना, उसमें शारीरिक कौशल का विकास करना शारीरिक शिक्षा के उद्देश्यों में सन्निहित हैं।

शारीरिक शिक्षा की प्रक्रियाओं में सक्रियता अनिवार्य है। कोई भी केवल विचार से इन प्रक्रियाओं में भाग नहीं ले सकता। बालक अथवा व्यक्ति जब इन कार्यक्रमों, प्रक्रियाओं में भाग लेगा, तो निश्चय ही उसके शरीर के विभिन्न अंगों का विकास होगा। शारीरिक विकास शारीरिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस प्रकार की चयनित प्रक्रियाएं करवाई जाती है, जो विज्ञान सम्मत हो। शक्ति की यह निर्मिति तभी संभव है, जबकि विभिन्न बाह्य एवं आन्तरिक अंगों का सम्यक विकास हो। इस विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में अपेक्षित और अनुकूल क्रियाएं या चेष्टाएं करने की योग्यता विकसित होगी तथा थकान कम करने व थकान मिटाने या दूर करने की योग्यता उसे प्राप्त होगी। उसके समस्त अंगों की कार्यक्षमता में वृद्धि होगी। जब शारीरिक विकास होगा तो अनिवार्यत: व्यक्ति की मानसिक एवं संवेगात्मक क्षमता भी विकसित होगी। शारीरिक शिक्षा के इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य के तहत व्यक्ति शारीरिक माध्यम से प्रशिक्षित होगा तथा अपने दैनिक कार्यो-कर्त्तव्यों की पालना पूरे मनोयोग तथा योग्यतापूर्वक करेगा, अर्थात् जीवन को सफलतापूर्वक जीने व प्रसन्नचित रहने की भावना से अभिभूत होगा।

शारीरिक शिक्षा में खेलकूद की प्रक्रियाओं के दौरान व्यक्ति समग्र रूप से यथा मानसिक व शारीरिक रूप से तो सक्रिय होता ही है, वह हंसता है, चीखता चिल्लाता है तथा अपार प्रसन्नता की अभिव्यक्ति करता है। इन सब बातों का प्रभाव उसके समग्र शरीर पर पड़ता है उसका संपूर्ण स्वास्थ्य उत्तरोतर सुंदर, सुगठित और विकसित होता जाता है। इस समस्त प्रक्रिया के पीछे शारीरिक शिक्षा के उद्देश्यों में सन्निहित शारीरिक विकास की भावना ही प्रेरक होती है।

प्राचीन कथन है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। एक खिलाड़ी को खेलते समय तुरंत निर्णय लेने होते हैं। उदाहरण के लिए बॉल के आते ही उसे इस बात का निर्णय तत्काल करना होता है कि अब उसे क्या करना है? खेल के दौरान खिलाड़ी के सम्मुख प्रतिक्षण इस प्रकार की परिस्थितियां आती रहती हैं, जिससे उसकी मानसिक सक्रियता की गति तीव्र होती है, और इससे उसके मानसिक विकास को बल मिलता है। खेल के दौरान वह अलग-अलग परिस्थितियों के अनुकूल हो जाता है, वह मानसिक रूप से सम्पन्न हो जाता है। मनोभौतिक एकत्त्व के सिद्धांत से इस विचार को बल मिला है कि शारीरिक क्रियाओं का प्रभाव मन पर पड़ता है, और मन के अनुसार शारीरिक प्रक्रियाएं प्रभावित होती है। मानसिक विकास के परिणामस्वरूप ज्ञान की अभिवृद्धि होती है, तथा विचार की वृद्धि से समझ आती है व योग्यता में वृद्धि होती है। शारीरिक शिक्षा में विभिन्न प्रक्रियाओं को सीखने के विभिन्न प्रकारों का उपयोग किया जाता है, जिससे मानसिक विकास को बल मिलता है। उसमें समायोजन की योग्यता के अतिरिक्त नियमों की जानकारी, प्रक्रिया विशेष की तकनीक का ज्ञान, बचाव कौशल तथा आक्रमण के चातुर्य की समझ आती है।

निश्चय ही शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों से सामाजिक कौशल या सामाजिक व्यवहार का विकास होता है। खेलकूद की प्रक्रियाएं समूह में सम्पन्न करी जाती हैं तथा परस्पर सहयोग के अभाव में इस प्रकार की प्रक्रियाएं संभव ही नहीं है। इस प्रकार से व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार का विकास होता है। सामाजिक व्यवहार के विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति-व्यक्ति के बीच परस्पर संबंधों में प्रगाढ़ता आती है। समाज में रहते हुए व्यक्ति को व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्तर पर सामंजस्य रखते हुए चलना पड़ता है।

प्रगति के मार्ग में प्रोत्साहन एक बहुत बड़ा संबल होता है। विजय या सफलता का स्वाद प्रत्येक व्यक्ति के लिए जानना आवश्यक है। सफलता का स्वाद चखने का यह अवसर उसे खेल के दौरान प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार व्यक्ति का आत्म-विश्वास बढ़ता है। वह आत्म-निर्भरता की और प्रवृत्त होता है। उसे आनंद और प्रबलता का अनुभव और सामंजस्य के लिए अनुकूलन प्राप्त होता है। प्रसन्नता में ही व्यावहारिकता के भाव सन्निहित है। इन सबसे व्यक्ति संतोष का अनुभव करेगा तथा उसके स्तर में उत्तरोतर विकास होगा। व्यक्ति जीवन में परस्पर सामूहिकता एवं सहयोग की आवश्यकता सदैव ही पड़ती है, इसका उसे ज्ञान होना चाहिए। शारीरिक शिक्षा में उसे खेलकूद तथा सामूहिक सामजंस्य की महत्ता और आवश्यकता का ज्ञान होता है। खेलकूद के दौरान ही उसे हर्ष और विषाद की अनुभूति होती है तथा वह एक-दूसरे के सुख का सहभागी होता है।

साधारणत: मनोरंजन के लिए शारीरिक शिक्षा की प्रवृत्तियों का सहारा लिया जाता है। इस हेतु व्यक्ति कौशल अर्जित करता है, लेकिन केवल कौशल के सीख लेने से ही मनोरंजन हेतु उसे प्रयुक्त किया जाएगा, यह आवश्यक नहीं है। कौशल का सीखना तभी सार्थक होगा, जब उसके प्रति रूचि होगी। इसके लिए व्यक्ति को इस प्रकार प्रेरित किया जाय कि उसकी रूचि इन कार्यो के प्रति जीवन-पर्यन्त बनी रहे, ताकि वह निरंतर क्रियाशील रह सके।

आधुनिक युग ने मनुष्य को श्रम से मुक्त किया है। ऐसे में व्यक्ति के पास अवकाश के अधिक अवसर उपस्थित होते है। व्यक्ति को मिले अवकाश के इस समय का सदुपयोग होना चाहिए, अन्यथा हानि की संभावनाएं बन जाती है। अवकाश का समय एक शक्ति रूप है, जिसे उचित दिशा मिलनी ही चाहिए। इस समय के ठीक उपयोग तथा सही दिशा देने के लिए शारीरिक शिक्षा कौशल एक उत्तम व महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। आज एक ओर व्यक्ति श्रम से मुक्त हुआ है तथा उसे अवकाश मिला है तो दूसरी ओर वह कोलाहल भरे वातावरण से दूर मनोरंजन तलाशता है। वह अपना मनोरंजन शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत खेलकूद कर करता है। खेल-कूद से बढ़कर मनोरंजन का और श्रेष्ठ साधन है भी नहीं। इस प्रकार अतिरिक्त समय के उपयोग के बहुत लाभ है। एक ओर जहां भरपूर मनोरंजन होता है, वहीं शारीरिक और मानसिक रूप से सक्रिय होने से शारीरिक तथा मानसिक विकास के अवसर उपस्थित होते है।

यह जीवन बहुत सहज सरल नहीं है, वरन् खतरों से भरा पड़ा है। जो व्यक्ति इन खतरों से खेलता हुआ एक रक्षित जीवन जी सके, समझना चाहिए कि वह सुरक्षा के आधारभूत सिद्धांतो का ज्ञान रखता है। अर्थात् वह भय की दशाओं से सावधान है तथा सही समय पर सही प्रतिक्रिया करके अपनी रक्षा करता है। इस प्रकार सुरक्षा कौशल के फलस्वरूप संभव है कि दीर्घायु प्राप्त हो।

शारीरिक शिक्षा की प्रक्रियाएं भी खतरों से मुक्त नहीं है। लेकिन इनमें भाग लेने वाला निर्भय होकर खतरों से खेलता है और उसे आनंद प्राप्त होता है। खतरों से खेलना ही जीवन है और भयभीत जीवन का कोई अर्थ नहीं है। शारीरिक शिक्षा की क्रियाओं में भय की दशाओं से परिचय हो जाता है तथा व्यक्ति उनसे सुरक्षा के उपाय तलाश लेता है। शीघ्र निर्णय करने की विचारपूर्ण तीव्र प्रक्रियाएं जो शारीरिक शिक्षा में घटित होती है, जीवन के लिए भी वे स्थानांतरित होकर सुरक्षा प्रदान करने का प्रयत्न करती हैं। इस प्रकार प्रक्रियाओं के माध्यम से सुरक्षा कौशल का विकास होता है, जो कि शारीरिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

साधारणत: शिक्षा का अर्थ करना सरल नहीं है। शिक्षा के विभिन्न अर्थ किये गये है व इसे बहुत व्यापक अर्थ में लिया गया है। शिक्षा को प्रशिक्षण प्रणाली भी समझा गया है जो अध्ययन एवं शिक्षा के द्वारा आती है। अनुभव में क्रमश: होने वाली वृद्धि को भी प्राय: शिक्षा ही समझा जाता रहा है। कुछ का विचार है कि शिक्षा वृद्धि, विकास एवं सामंजस्य का ही रूप है। शिक्षा व्यक्ति जीवन में एक क्रांतिकारी घटना है, जिसके द्वारा पुर्ननिर्माण होता है तथा घटनाओं को अधिक सूक्ष्मता एवं अर्थवता के साथ समझने की दृष्टि पैदा होती हैं। शिक्षा का अर्थ केवल अक्षर ज्ञान नहीं है, या शिक्षण संस्थाओं से प्राप्त पुस्तकीय सूचनाओं का नाम भी शिक्षा नहीं है। यह जीवन पर्यन्त चलने वाली सतत् विकासात्मक प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति में परिवर्तन, संशोधन एवं परिस्थितियों के साथ अनुकूलन की क्षमता विकसित होती रहती है। क्रियाओं के परिणामस्वरूप परिवर्तन से व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं संवेगात्मक रूप से प्रभावित होता है।

भारत एक विशाल देश है। इसकी संस्कृति अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है। सदियों से इसने विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमणों को सहा है। आज वह अपनी सांस्कृतिक थातियों को लिए हुए एक संपूर्ण प्रभुत्त्वसम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य के रूप में विद्यमान है।

आज राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने देश की प्रगति में जी जान से जुट जायं इस प्रकार के कार्यो के लिए राष्ट्रीय भावना जरूरी है। शारीरिक शिक्षा की प्रक्रियाओं से राष्ट्रीय भावना का विकास सहज ही हो सकता है। उदाहरणार्थ अपनी एक टीम विदेश में खेल रही होती है लेकिन उसकी जीत का समाचार सुनकर प्रत्येक नागरिक को प्रसन्नता होती है। ऐसी स्थिति में शारीरिक शिक्षा बहुत हद तक कारगर साबित हो सकती है। अपने उद्देश्यों के माध्यम से राष्ट्र की एकता में योग दे सकती है एवं अनेकता में एकता स्थापित कर सकती है। शारीरिक शिक्षा के माध्यम से ही राष्ट्रीय स्वास्थ्य को सुधारा जा सकता है। अत: भारत जैसे विविधतापूर्ण राष्ट्र में शारीरिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं संवर्द्धन के लिए निरंतर प्रयत्न किये जाने चाहिए।

वर्तमान में वैज्ञानिक प्रगति के साथ मानव श्रम का स्थान मशीनी उपकरणों ने ले लिया है। एक समय में जो कार्य मानव बहुत कठिन श्रम के साथ अपने हाथ-पावों से करता था, आज उसका स्थान उन्नत मशीनों, उपकरणों ने ले लिया है। इस का परिणाम यह हुआ है कि मानव के शारीरिक श्रम में एकदम कमी आ गई है। परिणाम स्वरूप मनुष्य में न केवल शारीरिक रूप से शिथिलता आई है वरन् वह मानसिक रूप से भी निढ़ाल हो गया है। ऐसी परिस्थितियों में उसे शारीरिक शिक्षा की बहुत आवश्यकता है।

गांवों की अपेक्षा शहर के वासियों के जीवन में शारीरिक श्रम के अवसर बहुत ही कम मिलते है। गांवों में जहां लोगों का खेती-बाड़ी में शारीरिक व्यायाम स्वाभाविक रूप से हो जाता है, जैसे खेत तक पैदल जाना वहां श्रम करना, पशुओं को चराना इत्यादि। लेकिन शहरवासियों को यह अवसर उपलब्ध नहीं होते। ऐसे में वह शारीरिक रूप से निष्क्रिय हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में उसके लिए शारीरिक शिक्षा की बहुत आवश्यकता है। खासकर शहरी युवाओं के लिए, जिन्हें रेडियों, टेलीविजन और मनोरंजन के साधनों ने एकदम निष्क्रिय बना दिया है, शारीरिक शिक्षा का महत्त्व बढ़ जाता है।

किसी देश की युवा-शक्ति ही उस देश की असली ताकत होती है, लेकिन युवा-शक्ति तब ही सच्ची ताकत बनती है, जब वह शारीरिक, मानसिक रूप से स्वस्थ और सबल हो। युवा-शक्ति को सर्वांगीण रूप से सबल बनाने का कार्य शारीरिक शिक्षा अपनी संपूर्ण क्षमता के साथ कर सकती है। खासकर वर्तमान परिस्थितियों में शारीरिक शिक्षा की महत्ता और बढ़ जाती है।

## संदर्भ सूची-


1. शारीरिक शिक्षा के मूल तत्व, डॉ0 एम0एल0 कमलेश।
2- Foundation, History and Principle of Physical Education, Dr. Vinod Murotrao Bali
3 खेल-संचालन एवं प्रशिक्षण, श्रीमती अंजना तिवारी, पी.0के0 अरोड़ा।
4. योग शिक्षा, डॉ0 जे0पी0शर्मा ।
5. खेल प्रशिक्षण, डॉ0 हरदयाल सिंह।

# हिंदी भाषा का बढ़ता प्रयोग और महत्व


## डॉ० रीना देवी

*सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, चौधरी ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय, पूंडरी ( कैथल )*



## सार

हिंदी भारत की राजभाषा है और हिंदी भाषा भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में शामिल है। हम इस तथ्य से परिचित हैं कि वर्तमान में हिंदी एक भाषा से कहीं अधिक है। हिंदी भारतीयों के लिए एक सांस्कृतिक विरासत है जो हमें हमारी जड़ों, संस्कृति और हिंदू परंपराओं से जोड़ती है। हिंदी भाषा ही आम भारतीय की बोल-चाल की भाषा है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि हिंदी ही सारे भारत में सबसे ज्यादा लोगो के दवारा बोली जाती है। भावनात्मक रूप से हिंदी ही सारे भारत देश के लोगो को एक सूत्र में बंध्धती है। भारत के लोगो की अगर एक 'सामान्य पत्राचार भाषा' कहा जाए तो वो भाषा हिंदी है। हिन्दी वो भाषा है जिसने ज्ञान की गंगा का प्रवाह कर जन-जन तक जानकारी को सरल शब्दों में पहुंचाया है। हमारे देश की भाषाई विविधताओं के बीच हिंदी भाषा ने एक आपसी तालमेल को बढ़ावा देने का काम किया है। हिंदी भाषा में बहुत से शब्द दूसरी भाषाओं के प्रयोग किये जाते हैं दूसरी भाषाओं की अनेकों सुप्रसिद्ध रचनाओं को हिंदी ने अपने शब्दों से महानता प्रदान की है, ऐसी सुमधुर मातृभाषा को 'हिंदी' कहा जाता है । हिंदी ही एक ऐसी अदभुत भाषा है जिसका उपयोग आम आदमी अपनी समझ बढ़ाने और अपनी बात समझाने के लिए कर सकता है। भारत में 14 सितम्बर को सदैव हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। देशभर में हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के इरादे से मोदी सरकार ने भी सभी सरकारी, स्वायत्त और निजी विभागों को हिंदी का अधिकतम प्रयोग करने की सलाह दी है। इस शोध पत्र में लेखक ने हिंदी भाषा के महत्व को उजागर करने का प्रयास किया है।



**मुख्य शब्दः** हिंदी, भाषा, संविधान, भारत।


## भूमिका

अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व ने भारत में हिंदी भाषा की भूमिका को सीमित कर दिया है। अंग्रेजों ने हमेशा अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को बढ़ावा दिया था। स्वतंत्रता के बाद भी अंग्रेजी का प्रभुत्व कायम रहा है। लेकिन आजादी के बाद कुछ सरकारों ने हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए काम किया था। भारत की न्यायिक प्रणाली में अंग्रेजी का प्रभुत्व अभी भी जारी है। शहरी क्षेत्र में स्थापित कॉन्वेंट स्कूल अंग्रेजी भाषा के प्रभाव को बढ़ावा दे रहा है। अंग्रेजी के प्रभुत्व ने ग्रामीण क्षेत्र में आम आदमी के अधिकारों को सीमित कर दिया है। क्योंकि आम लोगों को उच्च श्रेणी की अंग्रेजी का ज्ञान नहीं है। यह तथ्य है कि ग्रामीण भारत में अधिकांश लोगों को उन्नत अंग्रेजी भाषा का अधिक ज्ञान नहीं है। यह माना जाता है कि निरक्षर समाज कोई भाषा नहीं जानता। लेकिन ग्रामीण भारत में कई निरक्षर भारतीयों को हिंदी भाषा का अच्छा ज्ञान है। उत्तर भारत क्षेत्र हिन्दी भाषी लोगों का मुख्य क्षेत्र है। उत्तर भारत क्षेत्र में अधिकांश लोग हिंदी भाषा में सहज हैं। यह कहा जा सकता है कि हिंदी उत्तर भारतीय लोगों की पहली पसंद की भाषा है। हिंदी भाषा, भारत और विश्व के हिंदू लोगों की पहली पसंद की भाषा है। हिंदी में अद्वितीय भाषिक व्याकरण है जो लोगों की अभिव्यक्ति को लचीलापन और चंचल बोलियों को अनुमति देता है जो हर क्षेत्र को अपने रंग में रंग देता है।

हिंदी भाषा केवल भाषा नहीं है बल्कि भावों की अभिव्यक्ति है। बहुसंख्यक भारतीयों की एक ही भाषा है वो हिंदी है। हिंदी भाषा ही हिंदुस्तान की आम बोलचाल की भाषा है। हिंदी भाषा ही सारे भारत को एक सूत्र में बांधती है। हिंदी भाषा ही हिंदुस्तान का एक ऐसा सेतु है जो अतीत और वर्तमान, स्थानीय और वैश्विक, प्राचीन और आधुनिक को जोड़ता है। हिंदी इंडो-आर्यन भाषाओं की विरासत से संबंधित है जो फारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेजी और द्रविड़ भाषाओं के प्रभावों व विरासत से समृद्ध है। भारतीय संविधान के अनुसार अनुच्छेद 343 के खंड (1) के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी भारत संघ की राजभाषा है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार हिंदी भाषा ही संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा। इसलिए संविधान निर्माताओं ने भी निर्णय लिया था की हिंदी ही भारत की राजभाषा होगी। यह कहा जा सकता है कि 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा ने एकमत से निर्णय लिया था कि हिंदी ही भारत की राजभाषा होगी। हिंदी भारत की आधिकारिक भाषाओं में से एक है। हिंदी की जड़ें जितनी गहरी हैं, इसका इतिहास उतना ही समृद्ध है। अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलनों को वैश्विक स्तर पर सराहना मिलती है। इसके अलावा, भारत की नई शिक्षा नीति 2020 में त्रिभाषा सूत्र के माध्यम से भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिंदी को प्राथमिकता दी गई है। विश्व स्तर पर विश्व हिंदी दिवस, हर साल 10 जनवरी को मनाया जाता है, जो 1950 में हिंदी को भारत की आधिकारिक सरकारी भाषा के रूप में अपनाए जाने की याद में मनाया जाता है। आज की अनेक स्थानीय और क्षेत्रीय भाषाएँ हिंदी भाषा से उत्पन्न हुई हैं।

## हिंदी भाषा का बढ़ता प्रयोग और महत्वः

हिंदी भाषा का बहुत महत्व है क्योंकि हिंदी भाषा में सीखना, लिखना और पढ़ना बहुत आसान है। हिंदी भाषा आज राष्ट्रीय भाषा के साथ अंतरराष्ट्रीय भाषा है। आज सबसे ज्यादा हिंदी के समाचार पत्र और पत्रिकाएं है। आज हिंदी समाचार पत्रों का कवरेज क्षेत्र दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। 21वीं सदी में सिविल सेवा परीक्षा में हिंदी माध्यम सबसे अच्छा विकल्प है। आज के समय में, हिंदी साहित्य सिविल सेवा परीक्षा में सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाला विषय है। वर्तमान में, बहुत से छात्र हिंदी माध्यम से सिविल सेवा में चयनित होते हैं। अधिकांश चयनित राज्य सिविल सेवक हिंदी माध्यम पृष्ठभूमि से हैं। लगभग सभी भारतीय विश्वविद्यालयों में हिंदी माध्यम से परीक्षा देने की अनुमति है। बहुत से इंजीनियरिंग और मेडिकल छात्र हिंदी माध्यम से पढ़ाई कर रहे हैं।

वर्तमान में, अधिकांश लोग भारत में हिंदी चौनल देखने में रुचि रखते हैं। अब कई विदेशी विश्वविद्यालय अपने परिसर में हिंदी विभाग शुरू कर रहे हैं। अब, कई शोधकर्ता हिंदी साहित्य में शोध करने जा रहे हैं। भारत में लगभग आधे शोध हिंदी माध्यम के शोधकर्ताओं द्वारा किए जा रहे हैं। प्रसिद्ध भारतीय विश्वविद्यालय हिंदी माध्यम में कानून विषय पढ़ा रहे हैं। केंद्र की मोदी सरकार ने हिंदी भाषा में बच्चों को व्यावसायिक पाठ्यक्रम सीखने की अनुमति दे दी है। कई निजी स्कूल बच्चों की पढ़ाई हिंदी माध्यम में शुरू कर रहे हैं। अब, अधिकांश मानक पुस्तकें हिंदी माध्यम में आसानी से उपलब्ध हैं । वर्तमान में, हिंदी माध्यम में सभी अच्छी कोचिंग उपलब्ध हैं। भारत में, हालाँकि अब प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हिंदी भाषा का ज्यादा इस्तेमाल कर रहे हैं। यूट्यूब और इंस्टाग्राम भी हिंदी में सामग्री उपलब्ध कराते हैं। भारत में अब कई सरकारी विभाग अपने आधिकारिक पत्र में केवल हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं। एक साधारण व्यक्ति हस्तलिखित हिंदी एप्लीकेशन के माध्यम से सरकारी विभाग से आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकता है। आज सूचना के अधिकार के आधे आवेदन हिंदी भाषा में भरे जाते हैं। हम किसी भी विभाग में कोई भी शिकायत हिंदी भाषा में कर सकते हैं। अब, सभी तकनीकी और वैज्ञानिक शब्द और अवधारणाएँ सरल हिंदी भाषा में उपलब्ध हैं। यह हिंदी भाषा के लिए अच्छी स्थिति है। हिंदी एक ऐसी भाषा है जो देश की सीमाओं और संस्कृतियों के पार लोगों को आपस में जोड़ती है। आज दुनिया भर में 60 करोड़ से ज्यादा लोगों द्वारा बोली जाने वाली यह हिंदी भाषा अंग्रेजी और चीनी के बाद तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में केन्द्र सरकार ने हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार, संरक्षण और आधुनिक प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए कई दूरगामी कदम उठाए हैं। भारत सरकार शिक्षा और प्रशासन के माध्यम से हिंदी को बढ़ावा देती है, जिसमें केंद्रीय विश्वविद्यालयों, इंजीनियरिंग कॉलेजों और सरकारी वेबसाइटों पर हिंदी भाषा के प्रयोग को बढ़ावा देना भी शामिल है। भारतीय प्रधानमंत्री मोदी ने सभी राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में संबोधन देकर हिंदी को वैश्विक मान्यता दिलाई है। मोदी सरकार ने हिंदी में अधिक शोध के लिए कई विदेशी शैक्षणिक संस्थानों को धनराशि दी है। मोदी सरकार ने संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए आवश्यक कदम उठाए हैं। इसका उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र में हिंदी की पहुँच बढ़ाना और दुनिया भर के हिंदी भाषियों को हिंदी भाषा की सामग्री उपलब्ध कराना था। इसीलिए मोदी सरकार ने संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को शामिल करवाया था।

वर्तमान में, कॉलेज और विश्वविद्यालयों के द्वारा हिंदी माध्यम में सम्मेलन आयोजित करवाए जा रहे हैं। केन्द्र सरकार द्वारा हिंदी भाषा को सार्वजनिक प्रशासन, शिक्षा, विज्ञान-प्रौद्योगिकी और संचार का प्रभावी माध्यम बनाने के लिए योजनाएं क्रियान्वित की गई हैं। पूर्व भारतीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र में अपना व्याख्यान हिंदी में दिया था। प्रधानमंत्री मोदी ने भी कई अंतरराष्ट्रीय अवसरों पर हिंदी में व्याख्यान दिया है। मोदी सरकार हिंदी भाषा में वैज्ञानिक लेखन के लिए डॉ. मेघनाद साहा पुरस्कार भी प्रदान करती है और संयुक्त राष्ट्र में भारत की स्थायी प्रतिनिधि रुचिरा कंबोज ने संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए 1 मिलियन अमेरिकी डॉलर का स्वैच्छिक योगदान दिया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मोदी सरकार ने हिंदी भाषा के विस्तार को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न कदम उठाए हैं। यद्यपि भारत में हिंदी भाषा के विस्तार के लिए और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है तथा मोदी सरकार वैश्विक स्तर पर हिंदी पाठकों को प्रोत्साहित करने के लिए भी कार्य कर रही है। मोदी सरकार हिंदी भाषा को प्रोत्साहित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ग्लोबल हिंदी सेंटर स्थापित कर रही है।

## निष्कर्षः

इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि मोदी सरकार ने हिंदी भाषा के विस्तार के लिए अच्छा काम किया है। हालाँकि, अंग्रेजी भाषा की छाप को मिटाने की आवश्यकता है। फिलहाल सरकार को हिंदी भाषा को मजबूत करने के लिए और अधिक कदम उठाने की जरूरत है। हिंदी भाषा का महत्व भारत की राष्ट्रीय भौगोलिक सीमाओं से कहीं आगे तक फैला हुआ है, जो भाषा की समृद्ध विरासत और इसके बढ़ते वैश्विक प्रभाव को दिखाथा है । हिंदी एक ऐसी भाषा है जिसे संरक्षित और संवर्धित करने की भारतीय सरकार द्वारा आवश्यकता है, क्योंकि यह हिंदी भाषा हमारी पहचान और विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

## संदर्भग्रंथ सूचीः

अभिलाषा बजाज. "हिंदी भाषा शिक्षण में कहानी (कंचा) द्वारा शिक्षण के सामाजिक अनुभवों के आधार पर विश्लेषणात्मक अध्ययन." प्राथमिक शिक्षक, 44(4), (2020):पृष्ठ- 109-117.

रमेश तिवारी. "गाँधीजी और हिंदी भाषा." भारतीय आधुनिक शिक्षा, 40(3), (2020): पृष्ठ-73-78.
दीपमाला. "शिक्षण में भाषा की भूमिका." प्राथमिक शिक्षक, 40(3), (2016): पृष्ठ- 31-35.
अमरीन अली. "पाठ्यक्रम में भाषा भारतीय संदर्भ." प्राथमिक शिक्षक, 42(2), (2018):पृष्ठ- 39-44.
पीताम्बर साहू. "हिंदी भाषा की पार्टी पुस्तक भारत में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का अध्ययन." भारतीय आधुनिक शिक्षा, 38(2), (2017):पृष्ठ-97-106.
शंकर शरण. "अज्ञेय कि भाषा शिक्षा." भारतीय आधुनिक शिक्षा ,31(4), (2011): पृष्ठ-16-23.
सुशील कुमार. "विश्व में हिंदी की स्थिति मॉरिशस के विशेष संदर्भ में." साहित्य संहिता, 6(3), (2020): पृष्ठ-27-33.
मेहराज अली. "हिंदी भाषा शिक्षण और पाठ्य निर्धारण." प्राथमिक शिक्षक, 42(1), (2018): पृष्ठ-10-18.
नीलम और मधुबाला शर्मा . षहिंदी भाषा की उपयोगिता और वर्चस्वी प्रसार." (साहित्य संहिता), 5(11), (2019): पृष्ठ- 9-23.
पद्मा यादव. "पूर्व प्राथमिक स्तर पर हिंदी भाषा का शिक्षण." प्राथमिक शिक्षक,42(4), (2018): पृष्ठ-59-63.
बीना माथुर. "मुगलकाल मे हिंदी." अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 3(1), (2015): पृष्ठ-88-91.
राजपाल सिंह यादव. "हिंदी बाल-पत्रिकाओं एवं हिंदी समाचार-पत्रों में बच्चों की दुनिया एक विश्लेषणात्मक अध्ययन." प्राथमिक शिक्षक, 44(4), (2020): पृष्ठ-78-83
ऋतु. "मातृभाषा का व्यक्ति विकास में योगदान: एक अध्ययन." अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 7(4), (2019): पृष्ठ-45-49.
राजनी सिंह. "खड़ी बोली हिन्दी का इतिहास ओर वर्तमान." भारतीय आधुनिक शिक्षा,35(4), (2015), पृष्ठ-83-88.
विक्रम गौतम सिंह शेखावत, "हिन्दी भाषा एवं आधुनिक भारत: विश्लेषण," अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, 6(1),(2018): पृष्ठ-47-58.

# "बलबीर सिंह 'करुण' के प्रबन्धकाव्यो में युगबोध"


## डॉ० साधना तोमर

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जनता वैदिक कॉलेज बड़ौत, बागपत*

## एकता

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जनता वैदिक कॉलेज बड़ौत, बागपत*



### शोधसार

युगबोध रचनाओं का आधार बन उस युग को समझने और आत्मसात करने का अवसर प्रदान करता हैं। 'करुण' जी द्वारा रचित प्रबन्धकाव्यो में युगबोध का अध्ययन हमें हमारी पौराणिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को यथार्थ रूप में जानने का अवसर प्रदान करते है। 'करुण' जी के प्रबन्धकाव्यो के अन्तर्गत महाकाव्य 'मैं द्रोणाचार्य बोलता हूँ', 'समरवीर गोकुला', 'तेजवन्त तेजाजी' व खण्डकाव्य 'विजय-केतु', 'मैं उत्तरा' के अंतर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, परिस्थितियों एवं मान्यताओं का अध्ययन किया गया है।


युगबोध से आशय किसी विशेष समय के प्रति किसी रचनाकार की दृष्टि एवं जागरूकता से होता है जिसमें वह उसे युग की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतक परिस्थितियों एवं मान्यताओं और परंपराओं के प्रति अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता हैं। युगबोध रचनाओं का आधार बन उस युग को समझने और आत्मसात करने का अवसर प्रदान करता हैं।

बलबीर सिंह 'करुण' के महाकाव्य 'मैं द्रोणाचार्य बोलता हूँ' में युगबोध अनेक ऐसे प्रसंगों के माध्यम से प्रकट होता है जिससे आधुनिक समाज भी अछूता नहीं है जैसे असमानत, अन्याय, राजनीतिक स्वार्थ, शिक्षा एवं कर्तव्य का द्वंद आदि। महाकाव्य 'मैं द्रोणाचार्य बोलता हूँ' में समाज में व्याप्त छुआ-छूत, उच्च-नीच, अवसरों में असमानता का प्रसंग एकलव्य के माध्यम से उसकी शिक्षा व्यवस्था एवं सामाजिक भेदभाव के माध्यम से देखने को मिलता है। 'करुण' जी महाकाव्य में लिखते हैं,

*"राजकुमारों के सहपाठी*
*हो सकते ग्रामीण नहीं*
*दो दिन की तो बात नहीं थी*
*परम्परा प्राचीन रही"*[1]

महाकाव्य में द्रोणाचार्य द्वारा नैतिकता और कर्तव्य में भी द्वंद्व की स्थिति को देखा जा सकता हैं जिसमें पाण्डवो के प्रति होते अन्याय को देखते हुए भी कौरवों का नेतृत्व करना पड़ता हैं जो सामाजिक-राजनीतिक स्थिति को प्रकट करता हैं। इस महाकाव्य में व्याप्त सामाजिक स्थिति, अन्याय, आदर्श वर्तमान युग का प्रतिबिंब प्रतीत होते हैं। महाकाव्य में राजनीतिक युगबोध को युद्ध, सत्ता एवं स्वार्थ के रूप में उस प्रकरण के माध्यम से देखा जा सकता हैं जब द्रोणाचार्य का अपमान पांचाल नरेश ध्रुपद के द्वारा होता हैं तब वे अपना प्रतिशोध पूरा करने के लिए हस्तिनापुर की ओर अग्रसर होते हैं। पितामह भीष्म द्रोणाचार्य से कौरव और पाण्डवों को शिक्षा देने का आग्रह करते हैं जिसे वह स्वीकार कर लेते हैं। कौरवों और पाण्डवों को शिक्षा दीक्षा पूर्ण करने के बाद गुरु दक्षिणा में द्रोणाचार्य अपने शिष्यों से कहते हैं,

*"लो मैं माँग रहा हूँ*
*साझी गुरुदक्षिणा तुमसे*
*बस यही माँग रहा हूँ*
*जा घेरों पांचाल देश को*
*कल ही करो चढ़ाई*
*बजा ईंट से ईंट सुपुत्रों !*
*खुलकर करो तबाही"*[2]

बलबीर सिंह 'करुण' के महाकाव्य 'समरवीर गोकुला' एक ऐसा काव्य है जो किसानों के विरुद्ध होने वाले शोषण के प्रति विद्रोह, अन्याय के विरुद्ध बलिदान, राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने वाला, किसान चेतना जागृत करने वाला महाकाव्य है। जिसका मुख्य नायक गोकुल जाट हैं जो मुगलों के विरुद्ध संघर्ष एवं विद्रोह करता हैं। औरंगजेब के इस्लाम कबूल करने की बात पर गोकुला आक्रोशित होकर कहता हैं,

*"हम अनुयाई हैं गीता के*
*मरकर फिर जन्म धरेंगे हम*
*इस मातृभूमि की सेवा में*
*अर्पित फिर प्राण करेंगे हम"*[3]

17वीं शताब्दी की घटनाओं पर आधारित यह काव्य 21वीं शताब्दी में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने वाला महाकाव्य हैं। गोकुल जाट द्वारा किसानों के उत्थान एवं जनसामान्य के कल्याण हेतु क्रांतिकारी कदमों को सामाजिक संदर्भ में आधुनिक सामाजिक न्याय की अवधारणा से जोड़कर देखा जा सकता हैं। आधुनिक युग में राष्ट्रीय मूल्यों को स्थापित करने, जनता में चेतना जागृत करने, अन्याय के विरुद्ध आंदोलन व संघर्ष करने के रूप में यह महाकाव्य एक प्रेरणा स्रोत हैं।

महाकाव्य 'तेजवन्त तेजाजी' में युगबोध का चित्रण तेजाजी की वीरगाथा के साथ-साथ समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को भी अभिव्यक्त करता हैं। सामाजिक युगबोध के रूप में तत्कालीन समाज की विषमताओं, किसानो की दुर्दशा सामाजिक एवं जातीय भेदभाव के प्रति तेजाजी को एक जननायक और समाज सुधारक के रूप में चित्रित किया गया हैं। जब तेजाजी अपनी पत्नी से मिलने ससुराल जाते हैं तो उनकी पत्नी पेमल की सखी लाछा तेजाजी से मदद मांगने के लिए आती हैं और कहती है कि उसकी गायों को तस्कर चुरा ले गए हैं तब उसकी व्यथा सुनकर तेजाजी कहते हैं,

*"पूछा गायें ले गया कौन*
*चाहे बस्ती रह गई मौन*
*पर मैं उनसे टकराऊँगा*
*यमदूतों से मिलवाऊँगा*
*अब ज्यादा देर नहीं होगी*
*चोरों की खैर नहीं होगी"*[4]

तेजाजी जनसामान्य के समस्याओं के लिए हर समय तैयार रहते थे। महाकाव्य में तेजाजी की राष्ट्रभक्ति, स्वतंत्रता, जनकल्याण की भावना, भारतीय समाज में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने का कार्य करती हैं जिसमें आमजन का प्रतिनिधित्व व्याप्त हैं। महाकाव्य में किसान, श्रमिक एवं मजदूर वर्ग की समस्याओं का चित्रण आर्थिक युगबोध को दर्शाता हैं। किसानों की स्थिति का वर्णन करते हुए 'करुण' जी लिखते हैं,

*"बरसादे राम ठीक वर्षा*
*तो लहलहा कर फसल बड़े*
*कर जाये इन्द्र कृपणता तो*
*भूखे सोयें सिर कर्ज चढ़े"*[5]

वही धर्म, कर्तव्य और मानवता की स्थापना के लिए तेजाजी का बलिदान नैतिक एवं आध्यात्मिक युगबोध की ओर इशारा करता हैं। तेजाजी को एक कृषि वैज्ञानिक भी माना जाता था क्योंकि उन्होंने किसानों को कतार में बीज बोना सीखाकर कृषि उत्पादन में वृद्धि लाई थी। 'करुण' जी का महाकाव्य 'तेजवन्त तेजाजी' एक ऐसा ऐतिहासिक आख्यान हैं जो वर्तमान युग की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को परिलक्षित करता हैं। जो कहीं ना कहीं आज भी हमारे समाज में व्याप्त है।

बलवीर सिंह 'करुण' का खण्डकाव्य 'विजय-केतु' समय की सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का एक ऐसा जीता जागता दस्तावेज हैं जो तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्यों से अवगत कराता हैं। इस खण्डकाव्य में मुगल शासन के विरुद्ध महाराणा राजसिंह के संघर्ष, संग्राम, वीरता एवं बलिदान की गाथा से कवि ने बड़े प्रभावपूर्ण तरीके से अवगत कराया हैं। वीरों का सम्मान एवं शौर्य गाथा कहना हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। तत्कालीन समय में राजकुमारी को अपना वर चुनने की आजादी रहती थी इसमें राजकुमार के तेज, बल और शौर्य को मुख्यत: देखा जाता था। वृद्धा जब चच्चल को अकबर और जाँहगीर के चित्र दिखाकर लालायित करने का प्रयास करती है तो चच्चल अपनी सांस्कृतिक धरोहर का द्योतक बन उससे कहती हैं,

*"लौटा दिए चित्र वृद्धा को*
*सस्मित मुद्रा में पूछा-*
*''किसी वीर हिन्दू राजा का*
*चित्र नहीं रखती हो क्या?"*[6]

'करुण' जी की ये पंक्तियाँ हमें सांस्कृतिक युगबोध का आभास कराती हैं। वृद्धा धन के लालच में चच्चल द्वारा औरंगजेब के चित्र के अपमान करने की घटना को औरंगजेब की पुत्री जेबूनिशा कहती हैं जो तात्कालिक राजनीतिक परिस्थिति का दर्शन है। 'करुण' जी ऐसी राजनीतिक स्थिति पर लिखते हैं,

*"बने घृत-आहुति सभी वे चाटुता के बोल*
*पा गई वृद्धा सफल हो कुटिलता का मोल।।"*[7]

खण्डकाव्य में मुगल शासन का राजनीतिक दबाव भी देखने को मिलता हैं जब चच्चला का भाई और पिता औरंगजेब से उसका विवाह करने को तैयार हो जाते हैं। हमारे समाज में नारी शक्ति का वर्णन पौराणिक काल से ही सुनने और देखने को मिलता रहा हैं। इसका उदाहरण खण्डकाव्य के पंचम सर्ग में देखने को मिलता हैं। सलूम्बर के सामन्त 'रतनसिंह चूड़ावत' द्वारा मुगलों से युद्ध करने से पहले उसकी पत्नी उन्हें सभी बन्धनों से मुक्त करते हुए व युद्ध में विजय होने की प्रार्थना के साथ अपना सर काट कर भेंट कर देती हैं ताकि वे अपने कर्तव्य पद से पीछे न हटे। यह प्रसंग हमारे समाज में नारीशक्ति के शौर्य एवं बलिदान को तत्कालीन सामाजिक युगबोध के साथ दृष्टान्त करता हैं। खण्डकाव्य विजय-केतु भावना प्रमुखत: ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी को स्वाभिमान एवं राष्ट्र प्रेम का संदेश देती है।

बलवीर सिंह 'करुण' का खण्डकाव्य 'मैं उत्तरा' पौराणिक कथा के साथ-साथ आधुनिक युगबोध को भी हमारे सामने रखता हैं जिसके माध्यम से लेखक ने महाभारत कालीन पात्रों के द्वारा भारतीय समाज, राजनीतिक स्थिति, मुख्यत: नारी जीवन एवं मूल्यों को बड़ी गहराई से चित्रित किया हैं। खण्डकाव्य में उत्तरा एक परंपरागत नारी के रूप में अपने अस्तित्व, कर्तव्य और दुख के प्रति चेतन दिखाई देती हैं जो वर्तमान स्त्री की जागृत चेतना के समान हैं। उत्तरा तत्कालीन स्थिति से व्याकुल होने के साथ-साथ एक विवेकपूर्ण जागृत महिला का प्रतीक भी है। जो आधुनिक युग की स्त्री को अपने जीवन के प्रति दिशा देने का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। खण्डकाव्य में राजनीतिक युगबोध के रूप में तत्कालीन राजनीतिक स्थिति जिसमें सत्ता के प्रति लोगो का छल और कूटनीति के नाम पर अमानवीय व्यवहार दिखाई देता है। जिसकी झलक वर्तमान राजनीतिक वातावरण में भी देखने को मिलती हैं।

*"राज्य का विस्तार, कोषागार भरना*
*कंठ पर धर पाँव अनगिन मानवों के*
*दौड़ते जाना निरन्तर क्षितिज को गन्तव्य कहकर*
*मृगतृषा यदि है नहीं तो और क्या है?"*[8]

खण्डकाव्य में उत्तरा के रूप में एक भारतीय नारी को त्याग, समर्पण, धैर्य और संघर्ष के प्रतिरूप में चित्रित किया गया है जिसकी झलक आधुनिक युग की नारी में भी देखने को मिलती है।

## निष्कर्ष-

'करुण' जी द्वारा रचित प्रबन्धकाव्यो के अनेकों प्रसंग हमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक युगबोध के दर्शन कराते हैं जिन्हें आधुनिक युग में व्यवहारगत तरीके से देखा जा सकता हैं। प्रबन्धकाव्यो में युगबोध का अध्ययन हमें हमारी पौराणिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को यथार्थ रूप में जानने का अवसर प्रदान करते हैं और तत्कालीन वास्तविक स्थिति से हमारा परिचय कराता हैं।

## संदर्भ


1. बलवीर सिंह 'करुण'- मैं द्रोणाचार्य बोलता हूँ (महाकाव्य), पृ.सं. 100
2. वही, पृ.सं. 147
3. बलवीर सिंह 'करुण'- समरवीर गोकुला (महाकाव्य), पृ.सं. 102
4. बलवीर सिंह 'करुण.- तेजवन्त तेजाजी (महाकाव्य), पृ.सं. 152
5. वही, पृ.सं. 60
6. बलवीर सिंह 'करुण'- विजय-केतु (खण्डकाव्य), पृ.सं. 10
7. वही, पृ.सं. 19
8. बलवीर सिंह 'करुण'- मैं उत्तरा (खण्डकाव्य), पृ.सं. 66

# उच्च शिक्षा एवं वैश्वीकरण: भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रभाव एवं संभावनाएँ


## डॉ० श्याम लाल निराला

*शासकीय बिलासा गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट ऑटोनॉमस कॉलेज, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत*



### सारांश

वैश्वीकरण के युग में उच्च शिक्षा का स्वरूप तीव्र गति से परिवर्तित हुआ है। वैश्वीकरण ने ज्ञान, प्रौद्योगिकी, पूंजी और मानव संसाधनों के अंतरराष्ट्रीय प्रवाह को सशक्त बनाया है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली पर भी पड़ा है। इस शोध सार का उद्देश्य भारतीय परिप्रेक्ष्य में उच्च शिक्षा पर वैश्वीकरण के प्रभावों तथा उससे उत्पन्न संभावनाओं का विश्लेषण करना है। भारतीय उच्च शिक्षा में वैश्वीकरण के प्रभाव बहुआयामी हैं। एक ओर अंतरराष्ट्रीय सहयोग, छात्र एवं शिक्षक आदान-प्रदान, विदेशी विश्वविद्यालयों की भागीदारी, ऑनलाइन शिक्षा तथा अनुसंधान के वैश्विक मानकों को अपनाने से शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। डिजिटल तकनीकों और ओपन लर्निंग प्लेटफॉर्म्स ने शिक्षा की पहुंच को व्यापक बनाया है। दूसरी ओर, शिक्षा का बाजारीकरण, बढ़ती फीस, सामाजिक असमानता, स्थानीय ज्ञान परंपराओं की उपेक्षा और मस्तिष्क पलायन जैसी चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण उच्च शिक्षा के लिए नई संभावनाएँ भी प्रस्तुत करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत अंतरराष्ट्रीयकरण, बहुविषयक शिक्षा, कौशल विकास और शोध को बढ़ावा देने के प्रयास वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भारत को सशक्त बना सकते हैं। यदि नीति-निर्माण में समावेशिता, गुणवत्ता और सांस्कृतिक मूल्यों का संतुलन बनाए रखा जाए, तो वैश्वीकरण भारतीय उच्च शिक्षा को ज्ञान-आधारित समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम बना सकता है।



(***मुख्य शब्द:*** उच्च शिक्षा, वैश्वीकरण, भारतीय परिप्रेक्ष्य, शिक्षा नीति, अंतरराष्ट्रीयकरण, गुणवत्ता एवं समानता)


### भूमिका

इक्कीसवीं सदी में वैश्वीकरण ने विश्व की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा शैक्षिक संरचनाओं को गहराई से प्रभावित किया है। वैश्वीकरण का तात्पर्य विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, प्रौद्योगिकी, सूचना और मानव संसाधनों के मुक्त प्रवाह से है। इस प्रक्रिया ने विश्व को एक "वैश्विक ग्राम" के रूप में परिवर्तित कर दिया है, जहाँ ज्ञान और सूचना की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था के इस दौर में उच्च शिक्षा किसी भी राष्ट्र के विकास, प्रतिस्पर्धा और सामाजिक प्रगति का प्रमुख आधार बन चुकी है (Altbach, 2004)।

उच्च शिक्षा का उद्देश्य केवल डिग्री प्रदान करना नहीं है, बल्कि कुशल मानव संसाधन का निर्माण, वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रोत्साहन, नवाचार का विकास तथा सामाजिक चेतना का निर्माण करना भी है। भारत जैसे विकासशील देश में उच्च शिक्षा राष्ट्र निर्माण, सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण साधन रही है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने विश्वविद्यालयों, तकनीकी संस्थानों और अनुसंधान केंद्रों के माध्यम से उच्च शिक्षा के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया (UGC, 2018)।

वैश्वीकरण के प्रभाव से उच्च शिक्षा की प्रकृति में भी व्यापक परिवर्तन आए हैं। अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालयों की भागीदारी, विदेशी छात्रों की बढ़ती संख्या, ऑनलाइन एवं डिजिटल शिक्षा, संयुक्त शोध परियोजनाएँ और वैश्विक रैंकिंग प्रणालियाँ उच्च शिक्षा को एक अंतरराष्ट्रीय स्वरूप प्रदान कर रही हैं। भारत भी इस प्रक्रिया से अछूता नहीं रहा है। भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली वैश्विक अवसरों के साथ-साथ कई नई चुनौतियों का सामना कर रही है, जैसे शिक्षा का बाजारीकरण, गुणवत्ता में असमानता और सामाजिक समावेशन का प्रश्न (ज्पसां, 2015)।

इस संदर्भ में "उच्च शिक्षा एवं वैश्वीकरण: भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रभाव एवं संभावनाएँ" विषय अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि वैश्वीकरण ने भारतीय उच्च शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित किया है तथा इसके माध्यम से कौन-कौन सी नई संभावनाएँ उत्पन्न हुई हैं। साथ ही, यह भी विश्लेषण किया जाएगा कि किस प्रकार नीतिगत हस्तक्षेपों और संतुलित दृष्टिकोण के माध्यम से वैश्वीकरण को भारतीय उच्च शिक्षा के हित में उपयोग किया जा सकता है। अत: यह शोध न केवल शैक्षिक विमर्श में योगदान देता है, बल्कि भविष्य की शिक्षा नीति के लिए भी दिशा प्रदान करता है।

### वैश्वीकरण की संकल्पना

वैश्वीकरण आधुनिक विश्व की एक महत्वपूर्ण और व्यापक प्रक्रिया है, जिसने राष्ट्रों की सीमाओं को अपेक्षाकृत संकुचित कर दिया है। सामान्य अर्थ में वैश्वीकरण से आशय विभिन्न देशों के बीच आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा शैक्षिक संबंधों के बढ़ते अंतर्संबंध और परस्पर निर्भरता से है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, सूचना, तकनीक और मानव संसाधनों का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तीव्र प्रवाह होता है (Giddens, 1990)।

वैश्वीकरण की अवधारणा को केवल आर्थिक दृष्टि से देखना पर्याप्त नहीं है। यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसके प्रमुख आयाम आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और शैक्षिक हैं। आर्थिक वैश्वीकरण में मुक्त बाजार व्यवस्था, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भूमिका और अंतरराष्ट्रीय व्यापार का विस्तार शामिल है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक वैश्वीकरण के अंतर्गत जीवन-शैली, विचारों, मूल्यों और सांस्कृतिक प्रतीकों का वैश्विक स्तर पर आदान-प्रदान होता है। इसी प्रकार, राजनीतिक वैश्वीकरण में अंतरराष्ट्रीय संगठनों और वैश्विक नीतियों की बढ़ती भूमिका देखी जा सकती है (Held et al., 1999)।

शिक्षा के क्षेत्र में वैश्वीकरण ने ज्ञान को एक वैश्विक संपदा के रूप में स्थापित किया है। उच्च शिक्षा अब केवल राष्ट्रीय आवश्यकताओं तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि वह वैश्विक श्रम बाजार, अंतरराष्ट्रीय मानकों और वैश्विक प्रतिस्पर्धा से गहराई से जुड़ गई है। अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय सहयोग, छात्र एवं शिक्षक गतिशीलता, संयुक्त डिग्री कार्यक्रम, ऑनलाइन शिक्षा और शोध नेटवर्क शिक्षा में वैश्वीकरण के प्रमुख उदाहरण हैं (Knight, 2008)।

वैश्वीकरण के संदर्भ में शिक्षा को मानव पूंजी के विकास का एक प्रमुख साधन माना जाता है। ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में वही राष्ट्र अधिक सशक्त माने जाते हैं, जिनकी उच्च शिक्षा प्रणाली वैश्विक मानकों के अनुरूप होती है। इसी कारण से विकसित और विकासशील दोनों ही देश अपनी शिक्षा नीतियों में अंतरराष्ट्रीयकरण को बढ़ावा दे रहे हैं। हालांकि, आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो वैश्वीकरण शिक्षा के बाजारीकरण, निजीकरण और असमानता को भी बढ़ावा देता है, जिससे शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य प्रभावित होता है (Stiglitz, 2002)।

अत: वैश्वीकरण की संकल्पना एक जटिल और द्वंद्वात्मक प्रक्रिया के रूप में उभरती है। यह जहाँ एक ओर विकास, नवाचार और वैश्विक सहयोग के अवसर प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक प्रभुत्व, असमानता और स्थानीय आवश्यकताओं की उपेक्षा जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न करती है। भारतीय उच्च शिक्षा के संदर्भ में वैश्वीकरण को समझने के लिए इन सभी आयामों का संतुलित विश्लेषण आवश्यक है।

## भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली का स्वरूप

भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली विश्व की सबसे बड़ी और विविधतापूर्ण शिक्षा प्रणालियों में से एक है। इसकी संरचना ऐतिहासिक, सामाजिक और संवैधानिक आधारों पर विकसित हुई है। प्राचीन भारत में तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के प्रमुख केंद्र थे, जहाँ देश-विदेश से विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे। आधुनिक काल में भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली का विकास औपनिवेशिक काल से प्रारंभ होकर स्वतंत्रता के बाद योजनाबद्ध रूप में हुआ (Agarwal, 2009)।

वर्तमान में भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली में केंद्रीय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय, डीम्ड विश्वविद्यालय, निजी विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, तकनीकी संस्थान तथा अनुसंधान संस्थान सम्मिलित हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (न्ळब), अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) और राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (NAAC) जैसी संस्थाएँ उच्च शिक्षा की गुणवत्ता, नियमन और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वर्ष 2020 के बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) ने उच्च शिक्षा में बहुविषयकता, लचीलापन और शोध को विशेष महत्व दिया है (MHRD, 2020)।

भारतीय उच्च शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य सामाजिक न्याय और समान अवसर प्रदान करना रहा है। आरक्षण नीति, छात्रवृत्तियाँ और विशेष सहायता कार्यक्रम वंचित वर्गों की उच्च शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित करने का प्रयास करते हैं। इसके बावजूद, नामांकन अनुपात, क्षेत्रीय असमानता, लैंगिक अंतर और गुणवत्ता में भिन्नता जैसी समस्याएँ आज भी बनी हुई हैं। सकल नामांकन अनुपात (GER) में वृद्धि के बावजूद, भारत अभी भी कई विकसित देशों से पीछे है (UGC, 2019)।

तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा भारतीय उच्च शिक्षा का एक महत्वपूर्ण घटक बन चुकी है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT), भारतीय प्रबंधन संस्थान (IIM) और केंद्रीय विश्वविद्यालय वैश्विक स्तर पर पहचान बना चुके हैं। साथ ही, निजी क्षेत्र की बढ़ती भागीदारी ने उच्च शिक्षा के विस्तार में योगदान दिया है, परंतु इससे शिक्षा के व्यावसायीकरण और गुणवत्ता नियंत्रण की चुनौती भी उत्पन्न हुई है (Tilak, 2015)।

कुल मिलाकर, भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली एक संक्रमणकालीन अवस्था में है। एक ओर यह विस्तार, विविधता और वैश्विक पहचान की दिशा में अग्रसर है, वहीं दूसरी ओर गुणवत्ता, समानता और प्रासंगिकता से जुड़ी चुनौतियों का सामना कर रही है। वैश्वीकरण के संदर्भ में इस प्रणाली का स्वरूप यह निर्धारित करेगा कि भारत ज्ञान-आधारित वैश्विक समाज में किस प्रकार अपनी भूमिका स्थापित करता है।

## भारतीय उच्च शिक्षा पर वैश्वीकरण का प्रभाव

वैश्वीकरण ने भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली पर गहरा और व्यापक प्रभाव डाला है। इस प्रभाव को शैक्षिक संरचना, गुणवत्ता, पहुंच, पाठ्यक्रम, अनुसंधान तथा प्रशासन जैसे विभिन्न आयामों में देखा जा सकता है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय उच्च शिक्षा अब केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित न रहकर अंतरराष्ट्रीय मानकों, प्रतिस्पर्धा और सहयोग से जुड़ गई है (Altbach - Knight, 2007)।

वैश्वीकरण का एक प्रमुख प्रभाव अंतरराष्ट्रीय सहयोग और शैक्षिक आदान-प्रदान के रूप में सामने आया है। भारतीय विश्वविद्यालयों और विदेशी शिक्षण संस्थानों के बीच संयुक्त डिग्री कार्यक्रम, छात्र एवं शिक्षक विनिमय, तथा साझा शोध परियोजनाएँ बढ़ी हैं। इससे भारतीय छात्रों को वैश्विक दृष्टिकोण, उन्नत शोध सुविधाएँ और अंतरराष्ट्रीय अनुभव प्राप्त हो रहा है। साथ ही, विदेशी छात्रों की भारत में बढ़ती उपस्थिति ने भारतीय परिसरों को बहुसांस्कृतिक बनाया है (Knight, 2008)।

तकनीकी नवाचार और डिजिटल शिक्षा भी वैश्वीकरण का एक महत्वपूर्ण प्रभाव है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के विकास ने ऑनलाइन शिक्षा, ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग और अंतरराष्ट्रीय ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म्स को बढ़ावा दिया है। MOOCs, वर्चुअल क्लासरूम और डिजिटल लाइब्रेरी ने उच्च शिक्षा की पहुंच को विस्तारित किया है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ पारंपरिक संस्थानों की उपलब्धता सीमित है (UNESCO, 2019)।

हालाँकि, वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। उच्च शिक्षा का बढ़ता निजीकरण और बाजारीकरण एक गंभीर चिंता का विषय है। निजी विश्वविद्यालयों और विदेशी संस्थानों की भागीदारी से शिक्षा की लागत में वृद्धि हुई है, जिससे आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की पहुंच सीमित हो सकती है। इसके अतिरिक्त, वैश्विक रैंकिंग और प्रतिस्पर्धा के दबाव में कई संस्थान स्थानीय आवश्यकताओं और सामाजिक दायित्वों की उपेक्षा करने लगे हैं (Tilak, 2015)।

मस्तिष्क पलायन (Brain Drain) भी वैश्वीकरण से जुड़ी एक प्रमुख चुनौती है। बेहतर शिक्षा और रोजगार के अवसरों की तलाश में प्रतिभाशाली विद्यार्थी और शोधकर्ता विदेशों की ओर आकर्षित हो रहे हैं, जिससे देश में उच्च स्तरीय मानव संसाधन की कमी उत्पन्न होती है। इसके साथ ही, पश्चिमी ज्ञान मॉडल का प्रभुत्व स्थानीय ज्ञान परंपराओं और भाषाई विविधता को हाशिये पर धकेलने का खतरा भी पैदा करता है (Altbach, 2004)।

अत: यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण ने भारतीय उच्च शिक्षा को नई दिशा और अवसर प्रदान किए हैं, परंतु इसके साथ अनेक संरचनात्मक और सामाजिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। इन प्रभावों का संतुलित और विवेकपूर्ण मूल्यांकन ही भारतीय उच्च शिक्षा को वैश्विक संदर्भ में सशक्त बना सकता है।

## वैश्वीकरण के संदर्भ में उच्च शिक्षा की संभावनाएँ

वैश्वीकरण के प्रभावों के साथ-साथ भारतीय उच्च शिक्षा के समक्ष अनेक नई संभावनाएँ भी उभरकर सामने आई हैं। यदि इन संभावनाओं का सुनियोजित और संतुलित उपयोग किया जाए, तो भारत वैश्विक ज्ञान समाज में एक सशक्त भूमिका निभा सकता है। वैश्वीकरण ने उच्च शिक्षा को अंतरराष्ट्रीय मंच प्रदान किया है, जिससे गुणवत्ता, नवाचार और प्रतिस्पर्धा के नए अवसर उपलब्ध हुए हैं (Knight, 2008)।

वैश्वीकरण के संदर्भ में उच्च शिक्षा की सबसे महत्वपूर्ण संभावना अंतरराष्ट्रीयकरण है। भारतीय विश्वविद्यालय अब विदेशी संस्थानों के साथ अकादमिक सहयोग, संयुक्त डिग्री कार्यक्रम, शोध साझेदारी और छात्र-शिक्षक विनिमय के माध्यम से वैश्विक नेटवर्क से जुड़ रहे हैं। इससे भारतीय छात्रों को अंतरराष्ट्रीय मानकों की शिक्षा, बहुसांस्कृतिक अनुभव और वैश्विक रोजगार बाजार के अनुरूप कौशल प्राप्त हो रहे हैं (Altbach - de Wit, 2018)।

कौशल विकास और रोजगारोन्मुख शिक्षा भी वैश्वीकरण से जुड़ी एक प्रमुख संभावना है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में वही उच्च शिक्षा प्रणाली प्रभावी मानी जाती है, जो उद्योगों की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप कुशल मानव संसाधन तैयार करे। भारत में तकनीकी, प्रबंधन, स्वास्थ्य, डेटा विज्ञान और नवाचार आधारित पाठ्यक्रमों का विस्तार इस दिशा में सकारात्मक संकेत देता है। इससे युवाओं की रोजगार क्षमता में वृद्धि होती है और देश की आर्थिक प्रतिस्पर्धात्मकता मजबूत होती है (World Bank, 2020)।

अनुसंधान और नवाचार के क्षेत्र में भी वैश्वीकरण नई संभावनाएँ प्रस्तुत करता है। अंतरराष्ट्रीय शोध परियोजनाएँ, वैश्विक फंडिंग एजेंसियाँ और बहु-संस्थागत सहयोग भारतीय शोधकर्ताओं को वैश्विक स्तर पर पहचान दिला सकते हैं। ज्ञान अर्थव्यवस्था के इस युग में उच्च गुणवत्ता वाला अनुसंधान किसी भी राष्ट्र की शक्ति का महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका है (OECD, 2019)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने वैश्वीकरण के सकारात्मक पक्षों को ध्यान में रखते हुए उच्च शिक्षा में बहुविषयकता, लचीलापन, अकादमिक बैंक ऑफ क्रेडिट, विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश और अनुसंधान को बढ़ावा देने की व्यवस्था की है। यह नीति भारतीय उच्च शिक्षा को वैश्विक मानकों के अनुरूप विकसित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम मानी जा सकती है (MHRD, 2020)।

अत: स्पष्ट है कि वैश्वीकरण भारतीय उच्च शिक्षा के लिए केवल चुनौती नहीं, बल्कि अपार संभावनाओं का क्षेत्र भी है। आवश्यकता इस बात की है कि इन संभावनाओं का उपयोग राष्ट्रीय हित, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण के साथ किया जाए।

## चुनौतियाँ एवं समाधान

वैश्वीकरण के संदर्भ में भारतीय उच्च शिक्षा के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं, जिनका समाधान किए बिना इसके लाभों को पूर्ण रूप से प्राप्त करना संभव नहीं है। सबसे प्रमुख चुनौती गुणवत्ता और समानता के बीच संतुलन की है। एक ओर उच्च शिक्षा संस्थानों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा की गुणवत्ता में व्यापक असमानता देखने को मिलती है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों, केंद्रीय और राज्य संस्थानों तथा सार्वजनिक और निजी विश्वविद्यालयों के बीच गुणवत्ता का अंतर अभी भी एक गंभीर समस्या बना हुआ है (Tilak, 2015)।

दूसरी महत्वपूर्ण चुनौती उच्च शिक्षा का बढ़ता निजीकरण और बाजारीकरण है। वैश्वीकरण के प्रभाव से शिक्षा को एक सेवा और निवेश के रूप में देखा जाने लगा है, जिससे शिक्षा की लागत बढ़ी है। इसका सीधा प्रभाव आर्थिक रूप से कमजोर और वंचित वर्गों पर पड़ता है, जिनके लिए उच्च शिक्षा तक पहुंच कठिन हो जाती है। यदि यह प्रवृत्ति अनियंत्रित रही, तो उच्च शिक्षा का सामाजिक न्याय आधारित स्वरूप कमजोर हो सकता है (UNESCO, 2019)।

सांस्कृतिक पहचान और स्थानीय ज्ञान परंपराओं का संरक्षण भी एक बड़ी चुनौती है। वैश्विक पाठ्यक्रमों और पश्चिमी ज्ञान मॉडल के प्रभुत्व के कारण भारतीय भाषाओं, पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों और स्थानीय संदर्भों की उपेक्षा का खतरा बढ़ गया है। इससे शिक्षा का सांस्कृतिक और सामाजिक आधार प्रभावित होता है (Altbach, 2004)।

इन चुनौतियों के समाधान के लिए बहुस्तरीय और समन्वित प्रयास आवश्यक हैं। सर्वप्रथम, गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी नियामक तंत्र, पारदर्शी मूल्यांकन प्रणाली और संस्थागत जवाबदेही को मजबूत करना होगा। NAAC और NIRF जैसी प्रणालियों को केवल रैंकिंग तक सीमित न रखकर वास्तविक शैक्षिक सुधार से जोड़ना आवश्यक है।

दूसरे, समानता और समावेशन को बढ़ावा देने हेतु छात्रवृत्तियों, शिक्षा ऋण, डिजिटल अवसंरचना और ओपन लर्निंग संसाधनों का विस्तार किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्रस्तावित बहुविषयक और लचीली शिक्षा संरचना इस दिशा में सहायक हो सकती है (MHRD, 2020)।

अंततः, वैश्वीकरण को अपनाते हुए भी भारतीय उच्च शिक्षा को अपनी सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक उत्तरदायित्व और राष्ट्रीय आवश्यकताओं से जुड़ा रहना होगा। संतुलित नीति, दूरदर्शी नेतृत्व और सामाजिक प्रतिबद्धता के माध्यम से ही इन चुनौतियों को अवसरों में बदला जा सकता है।

## निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण ने भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली को गहराई से प्रभावित किया है। इस प्रभाव का स्वरूप न तो पूर्णतः सकारात्मक है और न ही पूर्णतः नकारात्मक, बल्कि यह एक जटिल और द्वंद्वात्मक प्रक्रिया के रूप में सामने आता है। वैश्वीकरण ने जहाँ एक ओर भारतीय उच्च शिक्षा को अंतरराष्ट्रीय मंच प्रदान किया है, वहीं दूसरी ओर उसने गुणवत्ता, समानता और सांस्कृतिक पहचान से जुड़ी कई गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं (Altbach - Knight, 2007)।

वैश्वीकरण के कारण उच्च शिक्षा में अंतरराष्ट्रीय सहयोग, तकनीकी नवाचार, डिजिटल शिक्षा और शोध के नए अवसर उपलब्ध हुए हैं। भारतीय विश्वविद्यालय वैश्विक रैंकिंग, संयुक्त शोध परियोजनाओं और छात्र-शिक्षक विनिमय कार्यक्रमों के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय शैक्षिक व्यवस्था का हिस्सा बन रहे हैं। इससे ज्ञान उत्पादन, नवाचार और कौशल विकास को बढ़ावा मिला है, जो भारत को ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था की दिशा में आगे ले जाने में सहायक हो सकता है (OECD, 2019)।

हालाँकि, इसके साथ ही उच्च शिक्षा का बढ़ता निजीकरण, बाजारीकरण, सामाजिक असमानता और मस्तिष्क पलायन जैसी समस्याएँ भी उभरकर सामने आई हैं। यदि उच्च शिक्षा को केवल बाजार की मांगों के अनुसार संचालित किया गया, तो इसका सामाजिक उद्देश्य कमजोर पड़ सकता है। भारतीय संदर्भ में उच्च शिक्षा का मूल उद्देश्य केवल वैश्विक प्रतिस्पर्धा नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समावेशन और राष्ट्रीय विकास भी होना चाहिए (Tilak, 2015)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने वैश्वीकरण के सकारात्मक पक्षों को अपनाते हुए भारतीय उच्च शिक्षा को अधिक लचीला, बहुविषयक और शोधोन्मुख बनाने का प्रयास किया है। विदेशी विश्वविद्यालयों की भागीदारी, अकादमिक क्रेडिट की स्थानांतरण प्रणाली और डिजिटल शिक्षा के विस्तार जैसे प्रावधान भारतीय उच्च शिक्षा को वैश्विक मानकों के अनुरूप विकसित करने की क्षमता रखते हैं। परंतु इन नीतियों की सफलता प्रभावी क्रियान्वयन, मजबूत नियामक तंत्र और सामाजिक प्रतिबद्धता पर निर्भर करेगी (MHRD, 2020)।

अंततः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैश्वीकरण भारतीय उच्च शिक्षा के लिए एक अवसर और चुनौती दोनों है। आवश्यकता इस बात की है कि नीति-निर्माता, शिक्षाविद और समाज मिलकर एक ऐसा संतुलित दृष्टिकोण अपनाएँ, जिसमें वैश्विक ज्ञान और स्थानीय आवश्यकताओं के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके। तभी भारतीय उच्च शिक्षा न केवल वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनेगी, बल्कि एक समावेशी, गुणवत्तापूर्ण और मूल्य-आधारित शिक्षा प्रणाली के रूप में भी विकसित हो सकेगी।

## संदर्भ सूची


1. अल्टबाख, पी. जी. (2004). Globalisation and the University. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स। पृष्ठ संख्या: 3-18, 65-82
2. अल्टबाख, पी. जी. एवं नाइट, जे. (2007). The Internationalization of Higher Education: Motivations and Realities, जर्नल ऑफ स्टडीज इन इंटरनेशनल एजुकेशन, 11(3-4)। पृष्ठ संख्या: 290-305
3. अल्टबाख, पी. जी. एवं डी विट, एच. (2018). Globalization and Internationalization of Higher Education, बोस्टन: सेंटर फॉर इंटरनेशनल हायर एजुकेशन। पृष्ठ संख्या: 1-22, 47-60
4. अग्रवाल, पी. (2009). Indian Higher Education% Envisioning the Future, नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस। पृष्ठ संख्या: 15-38, 101-125
5. गिडेंस, ए. (1990). The Consequences of Modernity, कैम्ब्रिज: पोलिटी प्रेस। पृष्ठ संख्या: 63-78, 175-185
6. हेल्ड, डी., मैकग्रू, ए., गोल्डब्लैट, डी. एवं पेराटन, जे. (1999). Global Transformations, स्टैनफोर्ड: स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पृष्ठ संख्या: 1-31, 327-345
7. नाइट, जे. (2008). Higher Education in Turmoil: The Changing World of Internationalization, रॉटरडैम: सेंस पब्लिशर्स। पृष्ठ संख्या: 21-44, 109-132
8. तिलक, जे. बी. जी. (2015). Higher Education in India: In Search of Equality, Quality and Quantity, नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान। पृष्ठ संख्या: 56-79, 143-170
9. भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (MHRD). (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली: भारत सरकार। पृष्ठ संख्या: 33-55, 79-92
10. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC). (2018). Higher Education in India: Issues and Challenges. नई दिल्ली: न्ळब प्रकाशन। पृष्ठ संख्या: 12-29, 64-88
11. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC). (2019). Higher Education in India: Statistical Overview. नई दिल्ली: न्ळब। पृष्ठ संख्या: 5-18, 41-57
12. यूनेस्को (2019). Global Education Monitoring Report. पेरिस: न्छम्ब्ब। पृष्ठ संख्या: 87-104, 211-225
13. व्म्ब्ब (2019). Education at a Glance, पेरिस: OECD पब्लिशिंग। पृष्ठ संख्या: 45-62, 189-201
14. विश्व बैंक (2020). World Development Report: Learning to Realize Education's Promise. वाशिंगटन डी.सी.: ॅवतसक ठंदा। पृष्ठ संख्या: 71-90

# आधुनिक अवधी का रामभक्ति काव्यः एक विवेचन


## डॉ० चित्रा यादव

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के. के. पी.जी. कॉलेज इटावा, उ0प्र0*


रामकथा का प्राचीनतम व क्रमबद्ध रूप हमें बाल्मीकीय रामायण में दृष्टिगोचर होता है परन्तु विद्वानों का ऐसा मानना है कि बाल्मीकि से पूर्व भी स्फुट आख्यानों तथा मौखिक रूप में रामकथा विद्यमान थी इसके पश्चात् महर्षि बाल्मीकि ने इन स्फुट आख्यानों को कथासूत्रों में संग्रथित कर रामायण महाकाव्य की रचना की।[1] फादर कामिल बुल्के के मतानुसार इसके प्रमाण 'बौद्ध त्रिपिटक' में मिलतें है।[2] इसके अतिरिक्त बाल्मीकि रामायण के प्रथम काण्ड में रामकथा नारद द्वारा बाल्मीकि को सुनायी गई जिसको उन्होने अपने काव्य का विषय बनाया।[3] रामकथा बाल्मीकि से पूर्व भी प्रचलित थी किन्तु क्रमबद्ध व संगठित रूप में सर्वप्रथम छन्दोबद्ध कर काव्य के रूप में बाल्मीकि जी ने प्रस्तुत किया।

पौराणिक साहित्य में भी रामकथा के कुछ अंशो का उल्लेख मिलता है। हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, कूर्म पुराण, अग्नि पुराण, लिंग पुराण, वामन पुराण, नारदीय पुराण, ब्रह्म पुराण, गरूण पुराण, स्कंद पुराण, पद्मपुराण, नरसिंह पुराण, कल्कि पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण के स्फुट प्रसगों में रामकथा के सूत्र मिलते है।[4]

महाभारत के आरण्यक, द्रोण, शान्ति पर्वो में तो रामायण के कुछ ही अंशों का उल्लेख है किन्तु रामोपाख्यान में तो पूरी रामकथा दी है।[5]

बौद्ध साहित्य में रामकथा की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है ईसापूर्व तीसरी शताब्दी में रचित जातको में महात्मा बुद्ध को राम का पुनरावतार मानने की संकल्पना के आधार पर जातकों में रामकथा को उचित स्थान मिला। रामकथा सम्बन्धी जातको में तीन मुख्य हैं दशरथ जातक, अनामक जातक, तथा दशरथ कथानक।[6] बौद्धों के समान ही जैनियों ने भी राम को आदर्श चरित्र के रूप में अपनाया। इनकी आरम्भिक रामकथा में दो धाराएं पाई जातीं है पहली विमल सूरि के 'पउम चरिउ' और रविषेण के 'पद्म चरिउ' तथा दूसरी धारा गुणभद्र के 'उत्तर पुराण' की।[7] इसी परम्परा की परवर्ती रचनाओं में हेमचन्द्र कृत त्रिष्टिशलाका का पुरूष चरित के अन्तर्गत जैन रामायण, जिनदास कृत 'रामायण' अथवा रामदेव पुराण, हेमचन्द्र कृत-योग शास्त्र की टीका के अन्तर्गत 'सीता रावण' कथानकम्, सोमसेनकृत 'रामचरित, आचार्य सोमप्रभ कृत 'लघुत्रिष्टिशलाका पुरूष चरित आदि।

'वाल्मीकि रामायण' के पश्चात् रामकथा को धार्मिक साहित्य में तो सम्मान जनक स्थान मिला ही साथ ही सामान्य नायक के रूप में भी उनके चरित्र का वर्णन किया गया जिससे लौकिक साहित्य में रामकथा को उचित स्थान मिला। संस्कृत लौकिक साहित्य में रामकथा विषयक रचनाओं के अन्तर्गत प्रमुख हैं-कालिदास कृत रघुवंश, महाकवि कुमारदास कृत जानकी हरणम्, महाकवि भास कृत महावीर चरित, प्रतिमा नाटकम् भट्टि रचित रावण वध, राजशेखर की बालरामायण आदि।[8]

ज्यों-ज्यों रामभक्ति का विकास होता गया रामकथा को साम्प्रदायिक रूप मिलने लगा, राम के आदर्श चरित्र तथा उनके नायकत्व को स्वीकार करके अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुरूप उनके चरित्र को ढाला गया। इस प्रकार से साम्प्रदायिक रामायणें की रचना हुई इनमें प्रमुख रूप से आध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण, योगवशिष्ट रामायण आते है। इनके अतिरिक्त भी अनेक रामायणों का उल्लेख मिलता है यथा-महारामायण, संवृत रामायण, लोमश रामायण, अगत्स्य रामायण, मंजु रामायण, सोपध रामायण, रामायण महामाल, सौहार्द रामायण, रामायण मणिरत्न, सौर्य्य रामायण, स्वायंभुव रामायण, सुब्रह्म रामायण, सुवर्चस रामायण, देव रामायण, श्रवण रामायण, दुरंत रामायण, रामायण चम्पू आदि।[9]

हिन्दी भाषा का प्रथम रामकाव्य होने का गौरव भक्तकवि विष्णुदास द्वारा रचित 'रामायन कथा' को दिया जाता है परन्तु तुलसीदासजी द्वारा चरित 'रामचरितमानस' लोकप्रियता की दृष्टि से सर्वोपरि है। तुलसीदास जी का अधिकांश साहित्य राम की भक्ति भावना से पूरित है। 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त बरवै रामायण, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्नावली, गीतावली, कवितावली आदि।[10]

तुलसी के ही समकालीन रामभक्त कवियों में अग्रदास और नाभादास को विशेष स्थान दिया जाता है अग्रदास ने 'अष्टयाम' तथा 'ध्यान मंजरी' और नाभादास ने 'अष्टयाम' में राम-सीता चरित का वर्णन किया इस काल की अन्य रामकथाओं में केशवदास की रामचन्द्रिका, सोढ़ी मेहरबान का आदिरामायण, हृदयराम कृत हनुमन्नाटक, लालदास कृत 'अवध विलास' प्रमुख हैं।[11]

खड़ी बोली गद्य की प्राचीनतम प्रौढ़ रचनाओं में प्रमुख रूप से रामप्रसाद निरंजनी के 'भाषा योगवशिष्ठ' दौलतराम के 'पद्मपुराण' तथा सदल मिश्र के 'रामचरित' में रामकथा सम्बन्धी वर्णन मिलता है।[12]

इनके अतिरिक्त अन्य रचनाओं में मैथिली शरणगुप्त की साकेत, हरिऔध का 'बैदेही बनवास, नाथूलाल अग्निहोत्री कृत 'नृप की वनस्थली', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का 'उर्म्मिला' श्री रमानाथ ज्योतिषी का 'श्रीरामचन्द्रोदय' श्रीहरदयालु सिंह का 'रावण', डॉ0 रामकुमार वर्मा की 'उत्तररामायण' पौद्दार रामावतार अरूण की 'अरूण रामायण' श्री मनबोधन लाल का 'भगवान राम' आदि।[13]

ब्रजभाषा में रचित रामकाव्यों में प्रमुख हैं-रामानन्द कृत-बैष्णवमताष्जभास्कर, श्रीरामार्चन पद्वति, और विष्णुदास कृत 'रामायन कथा' आदि।[14]

अवधी भाषा के रामकाव्यों में ईश्वरदासकृत 'भरतविलाप', 'रामजन्म' तथा 'अंगदपैज,' गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' नाभादास कृत 'अष्टयाम', प्राणचन्द्र चौहान कृत 'रामायण नाटक', राम प्रियाशरण कृत 'सीतायन', महाराजा रघुराज सिंह कृत 'रामस्वयवंर', और 'रामरसिकावली', जानकी प्रसाद रसिक बिहारी कृत 'रामरसायन', संत बलदूदास कृत 'रामकुंडलिया', श्री शीतला सिंह गहरवार कृत 'श्रीराम चरितायन', राम प्रसाद पाण्डेय द्विजदीन कृत 'रागरामायण' आदि आते है।[15]

हिन्दी में ही नहीं अपितु हिन्दीतर भाषाओं में भी रामकाव्य की एक पुष्ठ परम्परा देखने को मिलती हैं जैसे-मलयालय भाषा में जिन रामकाव्यों की रचनायें हुई उनमें प्रमुख हैं-दक्षिण विरूवांकर की सुसंस्कृत उपभाषा में लिखने वाले 'रामनायक कवि का 'रामचरितम्', अरित पिल्लेआरान कृत 'रामकथा पाट्टु', कण्णश्श पणिक्कर कृत 'कण्णश्श रामायण', एजुस्तधन का संस्कृत आध्यात्म रामायण का मलायालम में अनुवाद आदि।[16]

बंगला राम साहित्य में कृतिवास की 'श्रीरामपंचाली', अद्भुताचार्य का 'आश्चर्य रामायण', रामेश्वर दत्त का 'अद्भुत रामायण', चन्द्रावती की 'रामायण गाथा', कमललोचन दत्त कृत 'रामभक्ति रसामृत', शंकर चक्रवर्ती की 'आध्यात्म रामायण', रामायण 'पंचाली', रामचन्द्र का 'विभीषठोर रायबार', काशीराम का 'कालनेमिर रायबार', द्विज तुलसी का 'अगंद रायबार', आदि प्रमुख रूप से आती हैं।[17]

उड़िया भाषा में जिन रामकाव्यों में रचना हुई है उनमें प्रमुख हैं-अर्जुनदास कृत 'रामविभा', धनंजय भण कृत 'रघुनाथ विलास', शंकर दास कृत 'बारमासी कोइल', सिद्देश्वरदास कृत 'विलंका रामायण',भुंइआ माधवदास कृत 'विचित्र रामायण', इत्यादि।[18]

असमिया भाषा के रामसाहित्य का मुख्य ग्रन्थ 'माधवकंदली रामायण' है। जिसकी रचना तीन कवियों ने मिलकर की प्रथम पाँच काण्ड अर्थात अयोध्या से युद्धकाण्ड तक की रचना 'माधव कंदली' द्वारा की गई, उत्तरकाण्ड की रचना शंकरदेव तथा आदिकांड़ शंकरदेव के शिष्य माधवदेव द्वारा रचित बताया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य रचनाओं में हरिहरविप्र कृत 'लवकुशर युद्ध', माधव कदंली कृत 'रामायण', दुर्गावर कृत 'गीतिरामायण', अनन्तकदली कृत-'जीवस्तुति रामायण' 'महीरावण वध', 'पातालखण्ड रामायण', 'सीतार पाताल प्रवेश नाटक शंकरदेव कृत 'रामविजय नाटक' अनन्तठाकुर भाषा कृत 'श्रीरामकीर्तन' प्रमुख हैं।[19]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनेक भाषाओं में रामकथा पर आधारित रामकाव्य लिखे गये।

जिस प्रकार हिन्दी साहित्य का इतिहास तीन कालों में विभाजित किया गया यथा-आदिकाल मध्यकाल (भक्तिकाल, रीतिकाल) तथा आधुनिक काल उसी प्रकार रामकाव्य को भी वर्गीकृत किया जा सकता है-

आदिकाल का रामकाव्य-आदिकाल में रचित रामकाव्यों में प्रमुखत: कवि स्वयंभू कृत 'पउम चरिउ', पुष्पदन्त कृत 'महापुराण', विमलसूरि कृत 'पउम चरिउ', भुवनतुंगसूरि प्रणीत 'सियाचरियम्', 'रामचरियम्', रविषेण कृत 'पदम् चरित', गुणभद्र रचित 'उत्तर पुराण', हरिषेण कृत 'रामायण कथानकम्[20] 'सीता कथानकम्' चन्द्रवरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो', सोमदेव कृत 'कथा सरित्सागर' राजशेखर कृत 'बाल रामायण', आदि आती हैं।[21]

भक्ति काल में जिन रामकाव्यों की रचना हुई उनमें-ईश्वर दास कृत 'भरतविलाप', 'रामजन्म', 'अंगदपैज', अग्रदास कृत 'अष्टयाम', ध्यानमंजरी', केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका', सोढ़ी मेहरबान कृत 'आदिरामायण', हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' लालदास कृत 'अवध विलास',[22] रामानन्द कृत 'रामरक्षा स्त्रोत', तुलसीदास कृत 'रामचरति मानस', प्राणचन्द्र चौहान कृत 'रामायण महानाटक', नाभादास कृत 'अष्टयाम', माधवदास चारण कृत 'रामरासो', 'अध्यात्म रामायण', नरहरिबारहट कृत 'पौरूषेय रामायण', प्रमुख हैं।[23]

रीतिकाल का रामकाव्य-रीतिकाल के रामकाव्यों में गुरूगोविन्द सिंह कृत 'गोविन्द रामायण', जानकी रसिक शरण कृत 'अवध सागर', भगवन्तराय खीची कृत 'रामायण', 'हनुमत्पच्चीसी', जनकराजकिशोरी शरण कृत 'सीताराम सिद्वान्त मुक्तावली', 'सीताराम रस तरंगिणी', 'जानकी करूणाभरण', 'रघुवर करूणाभरण', नवलसिंह कृत 'रामचन्द्र विलास', 'आल्हारामायण', 'रूपक रामायण', 'सीतास्वंयवर', 'रामविवाह खण्ड', 'नामरामायण', 'राम-सुमिरनी', विश्वनाथसिंह कृत 'रामायण', 'गीता', 'रघुनन्दन प्रमाणिक', 'आनन्द रघुनन्दन', रामप्रियाशरण कृत 'सीतायन', रसिक अली कृत 'अष्टयाम', मिथिला बिहार', कृपानिवास कृत 'माधुरी प्रकाश', मधूसूदन कृत 'रामश्वमेघ', जानकीशरण कृत 'सियाराम रसमंजरी' ललकदास कृत 'सत्योपाख्यान', प्रमुख रूप से आती है।[24]

आधुनिककाल में रचित रामकाव्यों में-शिवरत्न शुक्ल का 'श्रीरामावतार', बंशीधर शुक्ल कृत 'राम मड़ैया', रामनाथ ज्योतिषी कृत 'श्रीराम चन्द्रोदय', रामचरित उपाध्याय कृत 'रामचरित चिन्तामणि', मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत', हरिऔध कृत 'वैदेही वनवास', बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'साकेतसन्त', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', कृत 'उर्म्मिला', केदारनाथ मिश्र कृत 'कैकेयी',[25] रामनारायण कृत 'जनक बाड़ा', गंगा प्रसाद कृत 'रामाभिषेक', गिरिधर बाल कृत 'रामवनयात्रा', नारायण सहाय कृत 'रामलीला', रामगुलाम कृत 'घनुषज्ञलीला', आदि आते है।[26]

अवधी में रामकाव्य परम्परा का श्री गणेश 15 वीं शती के मध्य में ईश्वरदास प्रणीत 'भरत विलाप', 'अंगदपैज', तथा 'रामजन्म', आदि कृतियों से माना जाता है। अवधी के सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ में गोस्वामी तुलसीदास कृत 'श्री रामचरित्र मानस' का नाम बड़े ही सम्मान के साथ लिया जाता है।

अवधी भाषा के अन्य ग्रन्थों में श्री शीतला सिंह गहवार प्रणीत 'श्री सीतारामचरितायन', पंड़ित रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय कृत 'राग रामायण', महाराजा रघुराज सिंह कृत 'रामस्वंयवर', पंड़ित श्यामबिहारी शर्मा उपनाम 'रामबिहारी शरण कृत 'मैथिल महत्व', ठाकुर मथुरा प्रसाद सिंह कृत 'श्री रामविलास', स्वामी श्री रामप्रियाशरण जी कृत 'श्री सीतायन', मधुसूदन दास कृत 'रामश्वमेध', अग्रदास कृत 'अष्टयाम', कामदेन्द्र मणि कृत 'श्री सीताराम भद्र केलि कादम्बिनी', रामरसरगंमणिजी कृत 'श्री राम रसरंग विलास', आदि आते हैं।

'श्री सीतारामचरितायन' दोहा, चौपाई सोरठा, छन्द में रचित ग्रन्थ है, मंगलाचरण में राम की चरण ब्रेन्दना की गई है तथा इसके पश्चात् उत्तरकाण्ड की सम्पूर्ण कथा वर्णित है।

'रागरामायण' अपने नाम के अनुसार ही विभिन्न राग रागनियों से युक्त दोहा, चौपाई कवित्त, कुण्डलिया तथा छन्दों में विरचित रामायण है इसमें कुल आठ काण्ड हैं क्रमशः बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्काण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड, उत्तरकाण्ड़, तथा लवकुश काण्ड़, इस ग्रन्थ का मूलाधार गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' है।

'रामस्वंयर' जिसको 'श्रीमद्रामायण' के नाम से भी जाना जाता है, कवित्त, सोरठा, दोहा, चौपाई, छन्द (चौबोला, दडंक हरिगीतिका) सवैया, घनाक्षरी आदि में रचित ग्रन्थ है 972 पृष्ठों का यह ग्रन्थ कुल 23 प्रबन्धों में विभक्त है इस ग्रन्थ में विशेषता यह है कि इसमें रावण तथा कुंभकर्ण के तीन जन्मों की कथा वर्णित है।[27]

चौपाई, दोहा, छन्द, सोरठा आदि में रचित 'श्रीरामविलास' में श्रीराम का जन्म, विवाह, सखियों तथा सरहजों से हास-विलास, वन गमन, रावनादि वध, रामराज आदि प्रसंगो का वर्णन है।

स्वामी श्री शर्मा प्रियाशरण द्वारा विरचित 'श्रीसीतायन' सीता चरित्र को केन्द्र में रखकर लिखा गया ग्रन्थ है जिसका अंगीरस शृंगार है तथा वस्तु संगठन, नाट्य सन्धियाँ और संध्याळ्ो की सफल सुन्दर योजना हुई है, दोहा, छन्द, सोरठा आदि के प्रयोग के साथ ही विभिन्न राग-रागिनियों यथा-विलावल, संकरावली, काफी, जयतिश्री, कान्हा, मालकौस की भी समायोजना हैं। यह ग्रन्थ कुल छः काण्डों में विभक्त है-बालकाण्ड, मधुरमाल काण्ड, जयमाल काण्ड, रसमाल काण्ड, सुखमाल काण्ड, और रसाल काण्ड।

मधूसूदन कृत 'रामश्वमेघ' दोहा, चौपाई, छन्दो, सोरठा, में रचित 89 अध्यायों का ग्रन्थ है कथा का प्रारम्भ रावण वध के पश्चात् श्रीराम का अयोध्या आगमन से होता है और समाप्ति श्रीराम की अश्वमेध की पूर्णता पर होती है।

अग्रदास विरचित 'अष्टयाम' दोहा, कवित्त शैली में रचित विभिन्न राग रागनियों से संयुक्त ग्रन्थ है यथा-राग ललित, टोड़ी, खेटक, सारंग, कान्हर, जयजयवन्ती, दादरा, परज, पैतश्री, मल्हार, तथा विलावल। ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्री सीताराम के चरण चिन्हों का वर्णन तथा उनके मुख्य आठ पार्षदों का वर्णन किया गया है। 'अष्टयाम' के अन्तर्गत प्रातः उत्थापन, वागबिहार, हिंडोल वर्णन, दतुवन, मंगल गान, सियाराम का तेल उबटन, जल विहार, यज्ञदान, पतिपूजन, कलेऊ, सास ससुर पूजन, मातृ-पितृ दर्शन, वृहद शृंगार, शृंगार आरती, सभा कुन्ज विहार, चौपड़ खेल, गुरूजन स्वागत, सखियों का गान, आखेट लीला, दिन का शयन, जागरण, बागविहार, ग्रीष्म का सरयू विहार, श्री प्रमोदवन विहार, युगल नृत्य, विवाह, लीला विहार, कोहवर विहार, बसन्त वर्णन, होरी वर्णन, झूलन, शयन आदि से सम्बन्धित पद वर्णित है।

कामदेन्द्रमणि कृत 'श्री सीताराम भद्र केलि कादम्बिनी' ग्रन्थ 'मेघा' में विभाजित है दोहा, सोरठा, चौपाई तथा छन्दों में रचित इस ग्रन्थ में कुल 6 मेघ हैं प्रथम में श्रीसीताराम का परिकरों के साथ सरयूगमन, द्वितीय से पष्ठमेघ में सरयूविहार तथा विनोद वर्णन किया गया है तत्पश्चात् महल वापसी तथा युगल स्वरूप की वर्ष ग्रन्थि और बधाई के पद हैं।

निष्कर्षतः आधुनिक अवधी का रामभक्ति काव्य अत्यन्त समृद्ध है, जिसे और भी समृद्ध किया जा सकता है।

## संदर्भ सूची-


1. हिन्दी रामकथा का स्वरूप और विकास-प्रेमचन्द्र महेश्वरी, पृष्ठ 19
2. देखिये रामकथा-फादर कामिल बुल्के, पृष्ठ 105
3. बाल्मीकि रामायण, 2/7/1
4. हिन्दी रामकाव्य परम्परा और भारत-आशा भारती, पृष्ठ 55-58
5. हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप विकास-प्रेमचन्द्र महेश्वरी, पृष्ठ 21
6. हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप विकास-प्रेमचन्द्र महेश्वरी, पृष्ठ 24
7. रामकथा-फादर कामिल बुल्के, पृष्ठ 32
8. रामकथा का उद्भव और विकास-आशा भारती, पृष्ठ 28
9. रामकाव्य परम्परा-विकास और प्रभाव-आशा भारती, पृष्ठ 60
10. रामकाव्य परम्परा विकास और प्रभाव-आशा भारती, पृष्ठ 64, 65
11. रामकथा-फादर कामिल बुल्के, पृष्ठ 199, 200
12. वही, पृष्ठ 201
13. देखिये रामकाव्य परम्परा-विकास और प्रभाव-आशा भारती, पृष्ठ 71-84
14. ब्रजभाषा रामकाव्य परम्परा में 'मुरलीधर' कृत रामचरित-डॉ0 अशोकी लाल शर्मा, पृष्ठ 3,5,7
15. अवध-अवधी विविध आयाम-डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी पृष्ठ 195-203
16. रामकथा और उसके प्रमुख नारी पात्र-श्रीमती आशा भारती, पृष्ठ 50
17. रामकथा-फादर कामिल बुल्के, पृष्ठ 191-193
18. रामकथा और उसके प्रमुख नारी पात्र-आशा भारती, पृष्ठ 48
19. रामकथा-फादर कामिल बुल्के, पृष्ठ 187 से 189

20. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ 59
21. रामकथा-फादर कामिल बुल्के, पृष्ठ 174, 162
22. रामकथा-फादर कामिल बुल्के, पृष्ठ 199-200
23. देखिये हिन्दी साहित्य इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ 185, 186, 191
24. देखिय हिन्दी साहित्य इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ 382 से 386
25. रामकथा-फादर कामिल बुल्के, पृष्ठ 201
26. देखिये- हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ 501
27. देखिये- 'रामस्वयंवर'- महाराजा रघुराज सिंह

# पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता

**ज्ञान प्रकाश**

*असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, श्री बजरंग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दादर आश्रम, सिकन्दरपुर, बलिया*

## सारांश

भारत में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना का उद्देश्य लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करना और समावेशी शासन सुनिश्चित करना है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992, ने त्रि-स्तरीय ग्रामीण स्वशासन को संवैधानिक मान्यता दी, जिससे सत्ता का विकेंद्रीकरण संभव हुआ और स्थानीय समुदायों को अपने विकास की जिम्मेदारी मिली। महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान इस सुधार का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जिसने भारतीय राजनीति में उनकी भागीदारी को अभूतपूर्व रूप से बढ़ाया। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी संख्यात्मक प्रतिनिधित्व से इतर, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों को भी प्रेरित करती है। हालांकि, चुनौतियों जैसे सरोगेट प्रतिनिधित्व और सामाजिक पूर्वाग्रहों का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं का समाधान कानूनी उपायों के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों से ही किया जा सकता है। अगर सरकारें, नागरिक समाज, और राजनीतिक दल मिलकर क्षमता निर्माण और जागरूकता पर ध्यान केंद्रित करें, तो पंचायती राज संस्थाएं लैंगिक समानता और समावेशिता का आदर्श मॉडल बन सकती हैं, जिससे महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज के सपने की दिशा में मजबूती से बढ़ा जा सकेगा।

## प्रस्तावना

भारत में लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करने और जमीनी स्तर पर शासन को समावेशी बनाने के उद्देश्य से पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 ने इस त्रि-स्तरीय ग्रामीण स्वशासन प्रणाली को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया, जिसका उद्देश्य सत्ता का विकेंद्रीकरण करना और स्थानीय समुदायों को अपने विकास की बागडोर संभालने में सक्षम बनाना था। इस सुधार का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और परिवर्तनकारी पहलू महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान था। इस प्रावधान ने भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी के लिए एक अभूतपूर्व मंच प्रदान किया है। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता केवल संख्यात्मक प्रतिनिधित्व बढ़ाने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य में मौलिक परिवर्तनों का अग्रदूत भी है। इस निबंध का उद्देश्य पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता के महत्व, इसके द्वारा लाए गए परिवर्तनों, चुनौतियों और भविष्य की दिशाओं का विस्तृत विश्लेषण करना है।

## पंचायती राज और महिलाओं के लिए आरक्षण का ऐतिहासिक संदर्भ

भारत में महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व देने की मांग स्वतंत्रता संग्राम के समय से ही उठती रही है। हालांकि, आजादी के बाद भी, उच्च स्तरीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी सीमित रही। ग्रामीण स्तर पर सत्ता तक उनकी पहुंच सुनिश्चित करने के लिए, 73वें संशोधन ने पंचायतों में कुल सीटों में कम से कम एक तिहाई (33 प्रतिशत) सीटों को महिलाओं के लिए आरक्षित करना अनिवार्य कर दिया। बाद में, कई राज्यों ने इस आरक्षण को बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया, जिससे महिलाओं की संख्यात्मक उपस्थिति में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

इस आरक्षण का मुख्य उद्देश्य उन संरचनात्मक बाधाओं को तोड़ना था जो पारंपरिक रूप से महिलाओं को सार्वजनिक जीवन और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं से बाहर रखती थीं। आरक्षण ने महिलाओं को औपचारिक राजनीतिक शक्ति प्रदान की, जिससे वे न केवल मतदाता बल्कि निर्वाचित प्रतिनिधि भी बन सकीं। यह कदम भारतीय लोकतंत्र के लिए एक क्रांतिकारी प्रयास था, जिसने ग्रामीण भारत की आधी आबादी को शासन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भागीदार बनाया।

## सहभागिता के सकारात्मक प्रभाव और परिवर्तन

पंचायतों में महिलाओं के नेतृत्व ने जमीनी स्तर पर कई सकारात्मक बदलाव लाए हैं। सबसे पहला और स्पष्ट प्रभाव शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही का बढ़ना है। अध्ययनों से पता चलता है कि जब महिलाएं नेतृत्व संभालती हैं, तो वे अक्सर भ्रष्टाचार के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं और सार्वजनिक धन के उपयोग में अधिक ईमानदारी दिखाती हैं। चूंकि महिलाएं घरेलू बजट और समुदाय के कल्याण से सीधे जुड़ी होती हैं, वे उन प्राथमिकताओं पर ध्यान केंद्रित करती हैं जो महिलाओं और बच्चों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाती हैं।

महिलाओं के चुने जाने के बाद, विकास प्राथमिकताओं में स्पष्ट बदलाव देखे गए हैं। पेयजल, स्वच्छता, स्वास्थ्य सुविधाओं (विशेषकर मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य), और प्राथमिक शिक्षा तक पहुंच जैसे मुद्दों को प्राथमिकता मिलने लगी है। उदाहरण के लिए, कई महिला सरपंचों ने अपने क्षेत्रों में खुले में शौच मुक्त (ODF) लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, क्योंकि वे व्यक्तिगत स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य के महत्व को बेहतर ढंग से समझती हैं।

इसके अतिरिक्त, महिलाओं की सहभागिता ने सामाजिक मानदंडों को चुनौती दी है। जब महिलाएं निर्णय लेती देखती हैं, तो यह अन्य महिलाओं को सशक्त बनाता है और उनमें राजनीतिक चेतना जागृत करता है। यह न केवल अन्य महिलाओं को चुनावों में खड़े होने के लिए प्रेरित करता है, बल्कि समुदाय के भीतर महिलाओं के प्रति सम्मान और उनकी क्षमताओं पर विश्वास भी बढ़ाता है। पंचायतें अब ऐसी सार्वजनिक मंच बन गई हैं जहाँ महिलाएं अपनी समस्याओं को बिना किसी डर के उठा सकती हैं।

## चुनौतियां और बाधाएं

संख्यात्मक प्रतिनिधित्व की सफलता के बावजूद, पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की प्रभावी सहभागिता कई महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना कर रही है। इनमें सबसे बड़ी चुनौती 'प्रॉक्सी' या 'सरोगेट' प्रतिनिधित्व की समस्या है। अक्सर, महिलाएं निर्वाचित होती हैं, लेकिन वास्तविक शक्ति उनके पति, ससुर या परिवार के पुरुष सदस्य प्रयोग करते हैं। इसे 'सरपंच पति' या 'मुखिया पति' की संस्कृति के रूप में जाना जाता है, जो महिलाओं को नाममात्र का नेता बनाए रखती है।

दूसरी बड़ी चुनौती क्षमता निर्माण और जागरूकता की कमी है। ग्रामीण महिलाएं अक्सर औपचारिक शिक्षा से वंचित रही होती हैं और उन्हें पंचायती राज कानूनों, वित्तीय प्रबंधन, और योजना निर्माण की प्रक्रियाओं का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता है। हालांकि सरकार द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाते हैं, लेकिन उनकी पहुँच और प्रभावशीलता सीमित रही है। राजनीतिक दलों और स्थानीय पुरुषों द्वारा उन्हें सहयोग न मिलना भी एक महत्वपूर्ण अवरोध है। कई बार महिला प्रतिनिधियों को बैठकों में भाग लेने से रोका जाता है या उनके निर्णयों को नजरअंदाज किया जाता है।

आरक्षण की प्रकृति भी एक चुनौती प्रस्तुत करती है। चक्रानुक्रम (रोटेशन) की नीति के कारण, एक ही सीट हर पांच साल में अलग-अलग श्रेणियों के लिए आरक्षित हो जाती है। इससे महिला प्रतिनिधियों को अपने काम का अनुभव अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित करने का अवसर नहीं मिल पाता। यदि कोई महिला एक कार्यकाल में अनुभव प्राप्त करती है, तो अगली बार वही सीट अनारक्षित या पुरुष के लिए आरक्षित हो सकती है, जिससे निरंतरता प्रभावित होती है।

## क्षमता निर्माण और राजनीतिक उद्यमिता का विकास

इन चुनौतियों का समाधान क्षमता निर्माण और सही समर्थन प्रणाली के विकास में निहित है। प्रभावी महिला नेतृत्व के लिए, उन्हें केवल कानूनी ज्ञान ही नहीं, बल्कि आत्मविश्वास और संवाद कौशल भी विकसित करने की आवश्यकता है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों को केवल नियमों तक सीमित न रखकर, नेतृत्व कौशल, वित्तीय साक्षरता और सामाजिक मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

स्वयं सहायता समूहों (SHGs) और महिला मंडलों ने महिला प्रतिनिधियों के लिए एक मजबूत समर्थन आधार प्रदान किया है। ये समूह महिलाओं को एकजुट होने, सामान्य मुद्दों पर चर्चा करने और एक दूसरे को राजनीतिक रूप से समर्थन देने का अवसर प्रदान करते हैं। कई राज्यों में, महिला समूहों ने सामूहिक रूप से स्थानीय समस्याओं के समाधान के लिए पहल की है, जिससे महिला नेताओं की विश्वसनीयता बढ़ी है।

इसके अतिरिक्त, मीडिया और नागरिक समाज संगठनों (CSOs) की भूमिका महत्वपूर्ण है। ये संगठन महिला प्रतिनिधियों की सफलता की कहानियों को उजागर करके और उनकी विफलताओं के कारणों का विश्लेषण करके एक सकारात्मक माहौल बना सकते हैं। राजनीतिक दलों को भी यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे महिलाओं को केवल टिकट वितरण तक सीमित न रखें, बल्कि उन्हें पार्टी के भीतर वास्तविक नेतृत्व की भूमिकाओं के लिए तैयार करें।

## नीतिगत सुधार और आगे का रास्ता

पंचायती राज में महिलाओं की सहभागिता को गहरा और सार्थक बनाने के लिए नीतिगत स्तर पर कुछ सुधार आवश्यक हैं। सबसे महत्वपूर्ण है सरोगेट प्रथा को सख्ती से रोकना और यह सुनिश्चित करना कि निर्वाचित महिलाएं ही बैठकों में भाग लें और निर्णय लें। इसके लिए जागरूकता अभियान और राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

दूसरे, आरक्षण नीति में निरंतरता बनाए रखने के लिए राज्यों को चक्रानुक्रम (रोटेशन) की व्यवस्था पर पुनर्विचार करना चाहिए ताकि अनुभवी महिला नेताओं को लगातार काम करने का मौका मिल सके। साथ ही, महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों पर पुरुषों को हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए सख्त नियम लागू होने चाहिए।

तीसरा, प्रशासनिक और तकनीकी समर्थन बढ़ाना महत्वपूर्ण है। ग्राम पंचायतों को डिजिटल रूप से सशक्त बनाने और महिलाओं को ई-गवर्नेंस उपकरणों का उपयोग सिखाने से उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होगी। सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों को भी संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है ताकि वे महिला प्रतिनिधियों के साथ सम्मानजनक और सहयोगी व्यवहार करें।

अंततः, जमीनी स्तर पर सामाजिक मानसिकता में बदलाव लाना दीर्घकालिक सफलता की कुंजी है। यह तभी संभव है जब पुरुष भी महिलाओं के नेतृत्व को स्वीकार करें और उन्हें सहयोग दें। शिक्षा और सार्वजनिक जागरूकता अभियानों के माध्यम से लैंगिक समानता के मूल्यों को बढ़ावा देना आवश्यक है ताकि निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी को स्वाभाविक और आवश्यक माना जाए।

## निष्कर्ष

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता भारतीय लोकतंत्र की एक महत्वपूर्ण सफलता की कहानी है, जिसने ग्रामीण शासन में एक नई जान फूंकी है। 73वें संशोधन ने एक कानूनी ढांचा प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप लाखों महिलाएं राजनीतिक रूप से सक्रिय हुई हैं और विकास प्राथमिकताओं को पुनर्परिभाषित किया है। हालांकि, संख्यात्मक प्रतिनिधित्व अभी भी प्रभावी नेतृत्व की गारंटी नहीं देता। सरोगेट प्रतिनिधित्व, क्षमता की कमी और सामाजिक

पूर्वाग्रह जैसी गंभीर चुनौतियां अभी भी मौजूद हैं। इन चुनौतियों का समाधान केवल कानूनी उपायों से नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों से ही संभव है। यदि सरकारें, नागरिक समाज और राजनीतिक दल मिलकर क्षमता निर्माण, जागरूकता और सही समर्थन प्रणाली पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तो पंचायती राज संस्थाएं वास्तव में लैंगिक रूप से न्यायसंगत और समावेशी शासन का आदर्श मॉडल बन सकती हैं, जो महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज के सपने को साकार करने की दिशा में एक मजबूत कदम होगा।

## संदर्भ


1. Bhattacharya, M. (2006). Women in Panchayats: A Study of Grassroots Democracy in India. Economic and Political Weekly, 41(32), 45-51.
2. Datta, P. (2012). Women in Panchayati Raj Institutions: A Study of Empowerment in West Bengal. Indian Journal of Political Science, 73(3), 513-524.
3. Government of India. (1992). The Constitution (Seventy-third Amendment) Act, 1992. Ministry of Law and Justice.
4. Jayal, N. D. (2006). Affirmative Action in Panchayats: The State of Implementation in India. IDS Bulletin, 37(3), 55-64.
5. Rathore, M. S. (2018). Challenges and Prospects of Women Empowerment through Panchayati Raj Institutions in Rajasthan. International Journal of Research in Social Sciences, 8(5), 570-585.

# प्राचीन भारत मे महिलाओं की शैक्षिक व सामाजिक स्थितिः एक सामाजशास्त्रीय अध्ययन


## राम प्रताप चौरसिया

*असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, देवेन्द्र पी0जी0 कालेज, बेल्थरा रोड, बलिया*



### सारांश

प्राचीन भारत का इतिहास भारतीय सभ्यता की नींव को दर्शाता है, जिसमें महिलाओं की स्थिति, शैक्षिक अवसर और सामाजिक भूमिकाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण है। वैदिक काल से उत्तर-गुप्त काल तक, महिलाओं का स्थान समय के साथ बदलता रहा। ग्रंथों में सम्मानजनक दृष्टिकोण होने के बावजूद, धर्म और विवाह प्रथाओं के कारण उनकी स्वायत्तता और सामाजिक स्वतंत्रता कमजोर होती गई। यह अध्ययन विभिन्न युगों के साक्ष्यों, जैसे वेदों, उपनिषदों, और बौद्ध एवं जैन साहित्य के माध्यम से महिलाओं की स्थिति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करता है। वैदिक काल में महिलाओं को उच्च बौद्धिक सम्मान मिला; वे दार्शनिक संवाद में भाग लेती थीं। लेकिन उत्तर वैदिक काल से पितृसत्तात्मक मूल्यों के प्रभाव में उनकी शैक्षिक पहुंच कम हुई। बौद्ध और जैन धर्मों ने महिलाओं को आध्यात्मिक मुक्ति के अवसर प्रदान किए। यह दर्शाता है कि धार्मिक और कानूनी ढांचे महिलाओं की भूमिकाओं को परिभाषित करते रहे, जबकि सामाजिक शक्ति और अधिकार अधिकांशतः पुरुषों के पास केंद्रित रहे।


### प्रस्तावना

प्राचीन भारत का इतिहास, जो हजारों वर्षों तक फैला हुआ है, भारतीय सभ्यता की नींव का प्रतिनिधित्व करता है। इस दीर्घकालिक कालखंड में महिलाओं की स्थिति, उनके शैक्षिक अवसरों और सामाजिक भूमिकाओं का अध्ययन समकालीन समाजशास्त्र के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह समझना आवश्यक है कि वैदिक काल से लेकर उत्तर-गुप्त काल तक समाज के ताने-बाने में महिलाओं को कैसा स्थान प्राप्त था। यद्यपि प्राचीन भारतीय ग्रंथों में महिलाओं के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण के संकेत मिलते हैं, फिर भी सामाजिक संरचनाओं, विशेषकर धर्म और विवाह प्रथाओं के कारण उनकी स्वायत्तता और पहुंच समय के साथ बदलती रही। यह अध्ययन प्राचीन भारत में महिलाओं की शैक्षिक और सामाजिक स्थिति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें विभिन्न युगों के साक्ष्यों, जैसे वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों और बौद्ध एवं जैन साहित्य का सहारा लिया जाएगा।

### वैदिक काल में महिलाओं की शैक्षिक स्थितिः स्वर्ण युग की झलक

प्राचीन भारत के प्रारंभिक काल, जिसे वैदिक काल (लगभग 1500 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व) के रूप में जाना जाता है, को अक्सर भारतीय महिलाओं के लिए सबसे उदार और प्रगतिशील दौर माना जाता है। इस काल में महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था और वे वेदों के अध्ययन तथा यज्ञों में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। ऋग्वेद में कई विदुषियों का उल्लेख मिलता है, जैसे गार्गी, मैत्रेयी, रोशा, और लोपामुद्रा, जिन्होंने ऋचाओं की रचना की और दार्शनिक बहसों में भाग लिया।

समाजशास्त्र की दृष्टि से, यह काल मातृसत्तात्मक नहीं था, फिर भी शिक्षा तक पहुंच पुरुषों के बराबर थी। स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी (जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लिया और वेदों का अध्ययन किया) और सद्योवधू (जिन्होंने विवाह से पहले शिक्षा ग्रहण की) के रूप में पहचानी जाती थीं। अथर्ववेद में विवाह पूर्व कन्याओं की शिक्षा पर जोर दिया गया है, जो दर्शाता है कि शिक्षा उनके जीवन का एक अभिन्न अंग थी। परिवार में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी, खासकर धार्मिक अनुष्ठानों में पति के साथ उनकी उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी। इस काल में महिलाओं को संपत्ति का अधिकार सीमित रूप में प्राप्त था, परंतु उनकी बौद्धिक स्वतंत्रता अधिक थी।

### उत्तर वैदिक काल और सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव

जैसे-जैसे समाज कृषि आधारित अर्थव्यवस्था से विकसित होकर जटिल क्षेत्रीय राज्यों की ओर बढ़ा, उत्तर वैदिक काल (लगभग 1000 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व) में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में धीरे-धीरे गिरावट आने लगी। इस परिवर्तन का मुख्य कारण कर्मकांडों का बढ़ता महत्व और वर्ण व्यवस्था का कठोर होना था।

यज्ञों की जटिलता बढ़ने से पुरोहित वर्ग (ब्राह्मणों) का प्रभुत्व स्थापित हुआ, और महिलाओं की धार्मिक सहभागिता पर प्रतिबंध लगने शुरू हुए। शिक्षा का क्षेत्र धीरे-धीरे आश्रमों और गुरुकुलों तक सीमित हो गया, जहाँ प्रवेश मुख्य रूप से पुरुषों के लिए सुलभ था। हालांकि, उच्च कुलीन वर्गों की स्त्रियों को घर पर शिक्षा मिलती रही, सामान्य महिलाओं के लिए औपचारिक शिक्षा के द्वार संकीर्ण होने लगे थे। मनुस्मृति के संकलन के आसपास, महिलाओं को श्पर्दाश्

या संरक्षण की आवश्यकता वाली इकाई के रूप में देखना शुरू किया गया, जिसे समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से पितृसत्तात्मक नियंत्रण की वृद्धि का संकेत माना जाता है।

## बौद्ध और जैन धर्म का योगदान

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म और जैन धर्म के उदय ने तत्कालीन सामाजिक संरचनाओं को चुनौती दी। इन धर्मों ने जातिगत भेदभाव और कठोर कर्मकांडों की आलोचना की, जिसका सकारात्मक प्रभाव महिलाओं की स्थिति पर पड़ा।

बौद्ध धर्म ने भिक्षुणी संघ की स्थापना की, जिसने महिलाओं को आध्यात्मिक और बौद्धिक विकास के लिए एक संगठित मंच प्रदान किया। बुद्ध ने महिलाओं को संघ में शामिल होने की अनुमति दी, जिससे उन्हें पारंपरिक पारिवारिक सीमाओं से बाहर निकलकर अध्ययन और सेवा का अवसर मिला। बौद्ध साहित्य में अनेक प्रबुद्ध भिक्षुणियों का उल्लेख है। जैन धर्म ने भी त्याग और आध्यात्मिक ज्ञान के मार्ग पर चलने वाली महिलाओं का समर्थन किया, हालांकि अधिकांश महिलाएं गृहस्थ जीवन तक ही सीमित रहीं। इन धर्मों ने कम से कम आध्यात्मिक क्षेत्र में महिलाओं को पुरुषों के समानांतर खड़ा किया, जो उस समय की सामाजिक सोच में एक बड़ा बदलाव था।

## स्मृति काल और कानूनी एवं सामाजिक प्रतिबंध

मौर्योत्तर और गुप्त काल के दौरान, स्मृतियों, विशेषकर मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति, ने सामाजिक और कानूनी ढांचे को दृढ़ता से परिभाषित किया। इस काल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में स्पष्ट गिरावट देखी गई। शिक्षा केवल धार्मिक ग्रंथों के पठन तक सीमित हो गई, और गहन दार्शनिक अध्ययन दुर्लभ हो गया।

मनुस्मृति में कहा गया है कि महिला को बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। यह अवधारणा पितृसत्तात्मक समाज की सर्वोच्चता को स्थापित करती है, जहाँ महिला की स्वायत्तता न्यूनतम थी। विवाह संबंधी नियम कठोर हो गए। बाल विवाह की प्रथा धीरे-धीरे जड़ पकड़ने लगी, जिसने किशोरियों के लिए शिक्षा प्राप्त करने की संभावनाओं को लगभग समाप्त कर दिया। संपत्ति के अधिकार सीमित होकर केवल श्स्त्री धनश् तक रह गए, जिसका अर्थ था वह संपत्ति जो उसे विवाह के समय उपहार में मिली थी। समाजशास्त्रियों के अनुसार, यह गिरावट कृषि समाज के स्थायित्व, संपत्ति के हस्तांतरण की चिंता और कठोर अनुष्ठानिक शुद्धता की अवधारणाओं के कारण आई, जिसने महिलाओं को घर की चारदीवारी के भीतर सीमित कर दिया।

## सामाजिक भूमिकाएँ: गृहस्थी से सार्वजनिक जीवन तक

प्राचीन भारत में महिला की प्राथमिक सामाजिक भूमिका पत्नी और माता की थी। गृहस्थी का प्रबंधन, धार्मिक कर्तव्यों का पालन और बच्चों का पालन-पोषण उसके मुख्य उत्तरदायित्व माने जाते थे। हालांकि, इन भूमिकाओं में भी विविधता थी।

उच्च वर्ग की महिलाओं को अक्सर कलाओं, संगीत और साहित्य का ज्ञान होता था, क्योंकि उनका प्रदर्शन सामाजिक प्रतिष्ठा का विषय था। वैजयंतीमाला और प्रभावती गुप्त जैसी रानियों के उदाहरण हमें बताते हैं कि राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में भी महिलाएं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावशाली थीं।

सार्वजनिक जीवन में भागीदारी, जैसे व्यापार या राजनीति में सक्रिय भूमिका, अत्यंत दुर्लभ थी और प्रायः शासक परिवारों तक ही सीमित थी। साधारण महिलाओं के लिए, उनका सामाजिक दायरा घर और समुदाय तक ही सीमित था। बौद्ध भिक्षुणियों ने इस सामाजिक सीमा को तोड़ा, क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक तपस्या के माध्यम से सार्वजनिक रूप से उपदेश देने का अधिकार प्राप्त किया था।

## शिक्षा के स्रोतों और प्रकारों में भिन्नता

प्राचीन काल में शिक्षा का स्वरूप वर्ग और लिंग के आधार पर विभाजित था। ब्राह्मण और क्षत्रिय परिवारों की कन्याओं को वेदों और शास्त्रों का ज्ञान घर पर ही दिया जाता था, अक्सर निजी शिक्षकों द्वारा।

इसके विपरीत, शूद्रों और निम्न जातियों की महिलाओं के लिए औपचारिक या यहां तक कि अनौपचारिक शिक्षा के अवसर भी अत्यंत सीमित थे। बौद्ध और जैन मठों ने इस खाई को कुछ हद तक पाटने का प्रयास किया, क्योंकि ये संगठन जातिगत बंधनों से मुक्त शिक्षा प्रदान करने का दावा करते थे, हालांकि यहाँ भी महिलाओं की उपस्थिति पुरुषों की तुलना में कम थी। शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट रूप से भिन्न था: पुरुषों के लिए जीवनयापन और धार्मिक नेतृत्व, जबकि महिलाओं के लिए मुख्यतः विवाह के पश्चात गृहस्थी के प्रबंधन और धार्मिक दायित्वों के निर्वहन के लिए तैयारी करना।

## निष्कर्ष

प्राचीन भारत में महिलाओं की शैक्षिक और सामाजिक स्थिति एक रैखिक प्रगति या गिरावट नहीं थी, बल्कि यह एक जटिल, युगानुसार परिवर्तित होने वाली वास्तविकता थी। वैदिक काल ने महिलाओं को उच्चतम बौद्धिक सम्मान प्रदान किया, जहां वे दार्शनिक संवाद में भाग लेती थीं। उत्तर वैदिक काल से लेकर स्मृति काल तक, सामाजिक संरचनाओं के कठोर होने और पितृसत्तात्मक मूल्यों के संस्थागत होने के कारण उनकी शैक्षिक पहुंच और सामाजिक स्वतंत्रता क्रमशः कम होती गई। बौद्ध और जैन धर्मों ने एक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत किया, जिसने उन्हें आध्यात्मिक मुक्ति के माध्यम से सामाजिक सीमाओं को लांघने का अवसर दिया। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, यह काल दर्शाता है कि धार्मिक और कानूनी ढांचे किस प्रकार महिलाओं की भूमिकाओं को परिभाषित और सीमित करते हैं। प्राचीन भारत महिलाओं के योगदान को स्वीकार करता है, परंतु साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि सामाजिक शक्ति और अधिकार हमेशा पुरुषों के हाथों में केंद्रित रहे।

## संदर्भ


1. जायसवाल, के. पी. (1950). हिस्ट्री ऑफ एन्शिएंट इंडिया. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, पृ0 65।
2. मित्तल, ए. (2009). ए स्टडी ऑफ विमेन्स स्टेटस इन एन्शिएंट इंडिया, फ्रॉम वैदिक टू गुप्ता पीरियड. नई दिल्ली, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, पृ0 89।
3. शर्मा, आर. एस. (2005). सोशियल एंड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएंट इंडिया (सी. 600 बीसी टू सी. 1000 एडी). नई दिल्ली, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, पृ0 76।
4. शर्मा, आर. एस. (2008). अर्ली इंडियन हिस्ट्री. मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लिमिटेड, पृ0 33।